● पुस्तक
कल्पसूत्र

● सम्पादक-विवेचक
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

● प्राप्तिस्थल
श्री लक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गाधी मार्ग, अहमदाबाद १

● मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा
वास्ते राज मुद्रणालय

● दिशा निर्देशक
पण्डित प्रवर, श्रद्धेय सद्गुरु वर्य
श्री पुष्कर मुनि जी महाराज

● प्रकाशक
श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान
गढ सिवाना ((बाडमेर-राजस्थान)

● प्रथम प्रवेश
१५ अगस्त १९६८

● मूल्य ,
सोलह रुपए

On the occasion of Twenty five hundredth years Lord Mahavira

KALP-SUTRA

BY

(SHRUT KEWALI BHADRA BAHU)
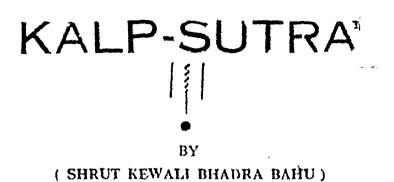
Directions - Instructed

By

Gambhir Tatva Chintak, Prasidha Vakta

Param Shradhyaya Pandit Pravar

Shri Pushkar Muniji Maharaj

Edited & Annoted

By

Devendra Muni, Shastri, Sahitya Ratna

Published By

Sri Amar Jain Agam Shodh Sansthan,

SHIVANA

○ Book
Kalpa - Sutra

○ Directions-Intrasted by
Gambhir Tatva Chintak Prasidha Vakta
Param Shradhyaya Pandit Pravar
Shri Pushkar Muniji Maharaj

○ Edited & Annoted by
Devendra Muni, Shastri
Sahitya Ratana

○ Published by
Sri Amar Jain Agam Shodh Sansthan
Shivana (Marwar)

○ Available
Sri Laxmi Pustak Bhandar
Gandhi Marag
Ahmedabad

○ First Entrance
15th August 1968

○ Printed
Prem Printing Press, Agra
For, Raj Mudranalay

○ Price
Rs. 16 / only

समर्पण
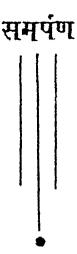
सूर्य की तरह जिनका जीवन तेजस्वी था,
चन्द्र की तरह जिनका मन सौम्य था,
स्वर्ण की तरह जिनका आचार निर्मल था,
सागर की तरह जिनके विचार गंभीर थे,
मधु की तरह जिनकी वाणी मीठी थी,
जो दूसरों के प्रति फूल से भी अधिक कोमल थे,
और
अपनी संयम-साधना के प्रति -
वज्र से भी अधिक कठोर थे।

अपने उन परम गुरु
परम श्रद्धेयरत्न
महास्थविर, स्वर्गीय

पूज्यपाद श्री ताराचन्द्र जी महाराज
को
भक्तिभाव, समर्पित
विनयावनत
— देवेन्द्र मुनि

प्रकाशकीय-प्रकाश

प्रबुद्ध पाठकों के पाणि-पद्मों में चिर-अभिलषित-चिर प्रतीक्षित श्री कल्पसूत्र का सर्वाङ्ग-सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण श्रद्धास्निग्ध उपहार अर्पित करते हुए हम अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। अपनी तरह का यह एक अनुपम और अभूतपूर्व ग्रन्थ है, जो हिन्दी साहित्य को एक नवीन देन है। यहाँ पर यह उल्लेख करना अनुचित एवं अप्रामाणिक न होगा कि हिन्दी में ही नहीं, अपितु किसी भी भाषा में कल्पसूत्र पर इस प्रकार शताधिक ग्रन्थों के विमलप्रकाश में लिखा गया ससन्दर्भ प्रामाणिक विवेचन अद्यावधि प्रकाशित नहीं हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्वान् एवं विचारक लेखक श्री देवेन्द्र मुनि जी, शास्त्री, साहित्य-रत्न ने कल्पसूत्र के सम्बन्ध में बहुप्रचलित भ्रान्तियों एवं अज्ञानमूलक धारणाओं का परिष्कार तथा परिमार्जन ही नहीं किया, अपितु वह सत्य-तथ्य प्रकट किया जो आगम सम्मत है, इतिहास-सिद्ध है और प्रामाणिक ग्रन्थों में प्रमाणित है, एतदर्थ यह ग्रन्थरत्न नयी पीढ़ी के नये विचारशील मनीषी युवकों के लिए तथा श्रद्धाशील वृद्धों के लिए, एवं भावनाशील महिलाओं के लिए पठनीय तथा मननीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक, श्रमण संघीय गम्भीर तत्त्व चिन्तक, प्रसिद्ध वक्ता, पण्डित प्रवर परम श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी म० के सुयोग्य शिष्य श्री देवेन्द्र मुनि जी हैं। वे कुशल लेखक, सुयोग्य सम्पादक एवं मधुर प्रवक्ता हैं। उनके द्वारा लिखित ऋषभदेव : एक परिशीलन, धर्म और दर्शन, संस्कृति के अंचल में, चिन्तन की चाँदनी, साहित्य और संस्कृति प्रभृति ग्रन्थ अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। मुनि श्री द्वारा सम्पादित दो दर्जन से भी अधिक ग्रन्थ हिन्दी, गुजराती एवं राजस्थानी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं। अन्य आवश्यक लेखन कार्य में अत्यन्त व्यस्त होने पर भी हमारे प्रेम भरे आग्रह को सम्मान देकर कल्पसूत्र का अत्यन्त श्रम के साथ और हमारी भावना के अनुरूप सम्पादन किया तदर्थ हम ग्रन्थ के दिशा-निर्देशक सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी म० के व सम्पादक देवेन्द्र मुनि जी के अत्यन्त आभारी हैं।

ग्रन्थ को मुद्रणकला की दृष्टि से अधिकाधिक शुद्ध व सुन्दर बनाने में तथा प्रूफ संशोधन में श्रीचन्द्र जी सुराणा 'सरस' का मधुर सहयोग सम्प्राप्त हुआ है तथा सम्पादन आदि के लिए ग्रन्थोपलब्धि में श्री अमर जैन ज्ञान भण्डार, सादड़ी, श्री जिनदत्त सूरि ज्ञान-मन्दिर, गढ़ सिवाना, श्री तारक गुरु ग्रन्थालय पदराडा का स्नेहपूर्ण सहकार प्राप्त हुआ है जो सदा स्मरणीय रहेगा। साथ ही अर्थ सहयोगियों का उदार सहयोग विस्मरण नहीं किया जा सकता, जिनके उदात्त सहयोग के कारण ही हम प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में प्रकाशित करवा सके हैं।

सुलतानमल रांका
मन्त्री
श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान
गढ़ सिवाना, जि० बाड़मेर
(राजस्थान)

क ल्प सू त्र के प्र का श न मे

अर्थ-सहयोगी

२०००) श्रीमान् हस्तीमलजी जेठमल जी, जिनाणी, गढ सिवाना (मारवाड)

२०००) श्रीमान् रिखवचन्द जी पारसमल जी जिनाणी, गढ सिवाना ,,

१०००) श्रीमान् सुखलाल जी छोगालाल जी जिनाणी, गढ सिवाना ,,

१०००) श्रीमान् दीपचन्द जी प्रेमचन्द जी जिनाणी, गढ सिवाना ,,

१०००) श्रीमान् मुलतानमल जी माणकचन्द जी राका, गढ सिवाना ,,

१०००) श्रीमान् मुलतानमल जी हजारीमल जी राका, गढ सिवाना ,,

७००) श्रीमान् धीगडमल जी मुलतानमल जी कानुगा, गढ सिवाना ,,

५००) श्रीमान् डूगरचन्द जी राजमल जी ललवाणी, गढ सिवाना ,,

★ अर्थ सहयोगियों की : परिचय रेखा

राजस्थानी इतिहास के निर्माण मे सिवाना गढ की अपनी विशिष्ट देन रही है।

अर्थ सहयोगी

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ

गुलाबपुरा (उदयपुर)

श्री मुलतानमल जी रांका जिनकी प्रबल प्रेरणा के कारण ही प्रस्तुत ग्रन्थ ने मूर्तरूप धारण किया, वे एक प्रतिभा सम्पन्न, विवेक निष्ठ श्रद्धालु श्रावक हैं। सर्वप्रथम स्थानकवासी जैन समाज मे कल्पसूत्र को प्रकाशित करवाने का श्रेय आपको ही है, आपकी ही प्रेरणा से स्वर्गीय उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी महाराज ने कल्पसूत्र तैयार किया था, और वह रतलाम जैनोदय प्रेस से मुद्रित हुआ था। वह संस्करण कभी का समाप्त हो चुका था और समाज की ओर से प्रतिदिन माग बढ़ती हुई देखकर आपने श्रद्धेय सद्गुरुवर्य प्रसिद्ध वक्ता, गम्भीर तत्त्वचिन्तक पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के सुशिष्य [illegible]

कानुगा एक सुलझे हुए विचारक एव समझदार युवक हैं। आपकी धार्मिक भावना सराहनीय है। आपका धार्मिक अध्ययन अच्छा है। आपका व्यवसाय अहमदावाद मे है। पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज के शास्त्र प्रकाशन मे भी आपने अच्छा सहयोग दिया है। कल्पसूत्र के प्रकाशन मे आपने ७०१ रुपये का अर्थ सहयोग दिया है।

श्रीडुंगरचन्द जी ललवाणी :

सिवाना गढ के सास्कृतिक धार्मिक, एव सामाजिक उत्थान मे ललवाणी परिवार का योगदान भी अपूर्व रहा है। श्रीमान् राजमल जी ललवाणी के सुपुत्र श्री डुगरचन्द जी ललवाणी एक विवेक निष्ठ धर्मप्रेमी युवक सज्जन हैं। त्याग व सयम के प्रति इनमे गहरी आस्था है। सन् १९६५ में श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के पास श्री पूनमचन्द जी गुमानमलजी दोशी, वडु (मारवाड) निवासी के सुपुत्र वालब्रह्मचारी रमेश कुमार जी और राजेन्द्र कुमार जी की दीक्षाएँ गढ सिवाना मे वड़े उत्साह के साथ सम्पन्न हुई थी, उसमे श्री रमेशकुमार जी की दीक्षा आपके घर से हुई थी और उनकी मातेश्वरी धापकुंवर वहिन की दीक्षा खाण्डप मे चन्दनवाला श्रमणी सघ की अध्यक्षा त्यागमूर्ति स्वर्गीया महासती श्री सोहनकुंवर जी महासती की सुशिष्या परम विदुषी महासती पुष्पवती जी, प्रतिभामूर्ति प्रभावती जी म० के पास सम्पन्न हुई थी। उनका नाम महासती प्रकाशवती जी हैं। प्रस्तुत कल्पसूत्र के प्रकाशन मे ललवाणी जी ने ५०१ का अर्थ सहयोग प्रदान किया है।

सर्व प्रथम स्वाध्यायी सघ, गुलावपुरा ने एक साथ कल्पसूत्र की १०० प्रतियाँ अग्रिम लेकर हमारे उत्साह को वढाया है।

हम उन सभी सज्जनो को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होने अत्यधिक उदारता के साथ अपनी स्वेच्छा से प्रस्तुत प्रकाशन के लिए अर्थ सहयोग प्रदान किया व श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान का निर्माण किया। प्रस्तुत सस्थान मरुधर देश मे सर्व प्रथम स्थानकवासी जैन धर्म का प्रचार करने वाले आचार्य सम्राट् श्री अमरसिंह जी महाराज के स्मृति मे स्थापित किया जा रहा है। प्रस्तुत सस्थान का उद्देश्य स्थानकवासी जैन धर्म का प्रचार करना है। कल्पसूत्र इस सस्थान का प्रथम प्रकाशन है। अन्तगड सूत्र इसी प्रकार नव्य-भव्य रूप मे द्वितीय पुष्प के रूप मे अर्पित करने का सस्थान का विचार है, अत हम भविष्य मे भी आप सभी के उदार सहयोग की मगल कामना करते हैं।

मन्त्री,

श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान

गढ सिवाना (राजस्थान)

प्रस्तावना

नन्दीसूत्र मे आगम साहित्य की सविस्तृत सूची प्राप्त होती है। आगम की जितनी भी शाखाएं हैं, उनका निरूपण उसमें किया गया है। प्रथम आगम को अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य मे विभक्त कर फिर अंग बाह्य और आवश्यक व्यतिरेक इन दो भागो मे विभक्त किया है, उसके पश्चात् आवश्यक व्यतिरेक के भी दो भेद किये हैं, कालिक और उत्कालिक। कालिक श्रुत की सूचि मे एक कल्प का नाम आता है जो वर्तमान मे बृहत्कल्प के नाम से जाना पहचाना जाता है, और उत्कालिक श्रुत की सूची मे 'चुल्लकल्पश्रुत' और 'महाकल्पश्रुत' इन दो कल्पसूत्रों के नाम आते हैं। प० मुनि श्री कल्याणविजय जी का मानना है कि महाकल्प को विच्छेद हुए हजार वर्ष से भी अधिक समय हो गया है और 'चुल्लकल्पश्रुत को आज पर्युषणा कल्पसूत्र कहते हैं।[1] परन्तु लेख मे मुनि श्री कल्याणविजय जी ने कोई प्राचीन ग्रन्थ का आधार प्रस्तुत नहीं किया।

आगम प्रभावक प० मुनि श्री पुण्यविजय जी का अभिमत है कि 'महाकल्प' और 'चुल्लकल्प' ये आगम नन्दीसूत्रकार देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के समय मे भी नहीं थे। उन्होंने उस समय कुछ यथाश्रुत एवं कुछ यथादृष्ट नामों का संग्रह मात्र किया है। अत 'चुल्लकल्पश्रुत' को पर्युषणा कल्पसूत्र मानने का मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत युक्तियुक्त और आगम सम्मत नहीं है।[2]

स्थानाङ्ग सूत्र मे दशाश्रुत स्कंध का नाम 'आयार दसा (आचार दशा) दिया है। उसके दस अध्ययन है, उसमे आठवां अध्ययन पर्युषणा कल्प है।[3] जो वर्तमान मे पर्युषणा कल्पसूत्र है, वह दशाश्रुत स्कंध का ही आठवा अध्ययन है।

दशाश्रुतस्कंध की प्राचीनतम प्रतियां (१४वी शताब्दी से पूर्व की) जो पुण्यविजय जी महाराज के सौजन्य से मुझे देखने को मिली हैं, उनमे आठवें अध्ययन मे पूर्ण कल्पसूत्र आया है। जो यह स्पष्ट प्रमाणित करता है कि कल्पसूत्र कोई स्वतंत्र एव मनगढन्त रचना नहीं है, अपितु दशाश्रुतस्कंध का ही आठवा अध्ययन है।

दूसरी बात दशाश्रुतस्कंध पर जो द्वितीय भद्रबाहु की निर्युक्ति है, जिसका समय विक्रम की छट्ठी शताब्दी है, उसमे और उस निर्युक्ति के आधार से लिखित चूर्णि मे, दशाश्रुतस्कंध के आठवें अध्ययन मे जो वर्तमान मे पर्युषणा कल्पसूत्र प्रचलित है, उसके पदों की व्याख्या लिखी है। मुनि श्री पुण्यविजय जी का अभिमत है कि दशाश्रुतस्कंध की चूर्णि लगभग सोलह सौ वर्ष पुरानी है।[4]

---

१ प्रबन्ध पारिजात, मुनि कल्याणविजय जी पृ० १८[illegible]

२ [illegible] के नाम लिखे पत्र का संक्षिप्त सारांश, पत्र सं० [illegible] [illegible] सुदि ४ गुरुवार अहमदाबाद से।

३. आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा—वीसं असमाहिट्ठाणा, एगवीसं सबला, तेत्तीसं आसायणाओ, अट्ठविहा गणिसंपया, दस चित्तसमाहिट्ठाणा, एगारस उवासगपडिमाओ, बारस भिक्खुपडिमाओ, पज्जोसवणाकप्पो, तीसं मोहणिज्जट्ठाणा, आजाइट्ठाणं। —स्थानांग १० स्थान

४. कल्पसूत्र, प्रस्तावना पृ० ८

ग्रन्थो के लेखक एव सम्पादक श्री देवेन्द्र मुनि जी शास्त्री से प्रार्थना की और मुनि श्री ने अत्यन्त परिश्रम के साथ नवीन शैली से यह ग्रन्थ तैयार किया।

श्री मुलतानमल जी राका की धर्मपत्नी धर्मानुरागिणी प्यारकुँवर बहिन ने उभरते हुए यौवन मे जब दीक्षा ग्रहण करना चाहा तब अपनी इच्छा से आपका द्वितीय पाणिग्रहण श्री राजमल जी भसाली की सुपुत्री डाई बाई के साथ करवाया और असार ससार को छोडकर, पति के प्यार से मुख मोडकर, विदुषी महासती श्री किस्तुरकुँवर जो के पास दीक्षा ग्रहण की। छ. वर्ष तक उत्कृष्ट सयम-साधना कर डग (झालावाड) गाँव मे सथारा सलेखना कर स्वर्गस्थ हुई। श्री राका जी के वर्तमान मे एक पुत्र हैं, जिनका नाम श्री माणिकचन्द जी हैं और चार पुत्रियाँ है। सक्षेप मे कहा जाय तो श्री मुलतानमल जी राका मिवाना गढ के स्थानकवासी समाज के गौरव हैं। प्रस्तुत प्रकाशन मे १००१ रुपये प्रदान कर साहित्यिक सुरुचि एव उदारता का परिचय दिया है।

श्रीमान् मुलतानमल जी हजारीमल जी रांका :

ये भी गढ सिवाना के निवासी थे, वड़े ही समझदार, विवेकशील व धर्मप्रेमी थे। अभी अभी आपका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। आपका व्यवसाय मेसूर स्टेट मे वल्लारी ग्राम मे था, आप एक कुशल व्यापारी थे, वल्लारी मे जैन स्थानक के भव्य-भवन के निर्माण कराने मे आपका पूर्ण सहयोग रहा। अनेक वाधाओ के वावजूद भी आपने स्थानक का कार्य पूर्ण करके ही छोडा। कल्पसूत्र के निर्माण मे १००१ रुपये का सहयोग प्रदान कर शास्त्र प्रेम का परिचय दिया।

वागरेचा परिवार :

सिवानागढ के रांका परिवार की तरह ही वागरेचा (जिनाणी) परिवार का भी धार्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक दृष्टि से वहुत महत्त्व रहा है। सामाजिक दृष्टि से ही नही, धार्मिक दृष्टि से भी यह परिवार सदा अगुआ रहा है। सन्त भगवन्तो की ही नही, अपितु श्रद्धालु स्वधर्मी वन्धुओ की भी सेवा-शुश्रूषा करना इस परिवार को अत्यधिक प्रिय रहा है।

स्वर्गीय सुश्रावक भभूतमल जी एक धर्म प्रेमी श्रावक थे, जो स्वभाव से भद्र और प्रकृति से विनीत थे। जिन्होने जीवन की सान्ध्य वेला मे सथारा कर समाधि पूर्वक आयु पूर्ण किया था। उनके चार सुपुत्र थे, श्री छोगालाल जी, चुनीलाल जी, मिश्रीमल जी और हस्तीमल जी, ये चारो भाई पूज्य पिता को तरह ही धर्म निष्ठ थे। आगे तीन भाई तो स्वर्गस्थ हो चुके हैं, केवल हस्तीमल जी साहव इस समय उपस्थित हैं।

श्रीमान् हस्तीमल जी जेठमल जी :

आप प्रकृति से वड़े उदार, मिलनसार तथा धर्मनिष्ठ है। आपकी आगम स्वाध्याय के प्रति सहज निष्ठा है तथा स्तोक (थोकडे) साहित्य का आपका गहरा अभ्यास है। आप वर्षों तक सिवाना गढ के स्थानकवासी सघ के मन्त्री रहे हैं। आपकी तरह आपके सुपुत्र

जेठमल जी धर्म प्रेमी आगम अभ्यासी हैं। श्रीमान् हस्तीमल जी साहब ने प्रस्तुत प्रकाशन मे दो हजार रु० प्रदान कर अपनी आगम अभिरुचि का परिचय दिया है।

श्रीमान् छोगालाल जी :

श्रीमान् छोगालाल जी साहब वर्तमान मे हमारे सामने नही हैं, किन्तु उनकी पुण्य स्मृति आते ही हृदय गद्गद् हो जाता है। क्या थी उनमे अतिथि सत्कार की उत्कट भावना! और क्या थी उनमे मुनियो के प्रति गजब की निष्ठा! वर्तमान मे आपके तीन पुत्र हैं—(१) श्री सुखराज जी। (२) श्री घेवरचन्द जी और (३) श्री लालचन्द्र जी।

श्रीमान् सुखराज जी :

श्री सुखराज जी साहब एक बहुत ही मधुर प्रकृति के व्यक्ति हैं। हृदय मे उदार हैं और मन से साफ हैं। आगम-व स्तोक साहित्य के अच्छे अभ्यासी हैं। आपकी धार्मिक भावना प्रशसनीय है। आपका व्यवसाय बेंगलोर, मद्रास, और बम्बई मे बागरेचा एण्ड कम्पनी के नाम से चलता है। आपके दोनो लघुभ्राता भी धर्म प्रेमी व श्रद्धालु श्रावक हैं। श्री सुखराज जी साहब ने कल्पसूत्र के प्रकाशन मे एक हजार का अर्थ सहयोग दिया है। आप बेंगलोर मे भी श्रावक सघ के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष पदों पर रह चुके हैं।

स्वर्गीय श्री चुन्नीलाल जी के सुपुत्र चनणमल जी एक उत्साही, धर्म प्रेमी सज्जन हैं।

श्रीमान् मिश्रीमल जी और उनके सुपुत्र :

श्री मिश्रीमल जी साहब का भौतिक देह भी आज हमारे सामने नही है, पर आपकी मधुर स्मृति मानस पटल पर अकित है। आपने वीर पुरुष की तरह संथारा कर अपने जीवन को सफल किया था। आपके वर्तमान मे दो पुत्र हैं जिनका नाम क्रमशः श्री मदन चन्द जी और पारसमल जी हैं। दोनो भाई पूज्य पिता की तरह ही धर्मनिष्ठ हैं, और बहुत ही उदार हैं, आपने भी प्रस्तुत कल्पसूत्र के प्रकाशन मे दो हजार रुपये प्रदान किये हैं।

श्रीमान् प्रेमचन्द जी :

स्वर्गस्थ श्री प्रेमचन्द जी बागरेचा बहुत ही मधुर स्वभाव के सज्जन थे। धर्म के प्रति उनके मन मे अटूट श्रद्धा थी, सन्तो के प्रति गहरी भक्ति थी। आपके चार पुत्र हैं (१) हरकचन्द जी (२) दीपचन्द जी (३) राणमल जी, और (४) देवीचन्द जी।

श्री दीपचन्द जी :

श्री दीपचन्द जी एक उत्साही युवक हैं। पूज्य पिता की तरह ही आपकी धार्मिक भावना है। साहित्य के प्रति सहज अभिरुचि है। आपने १००१ रुपये कल्प सूत्र के लिए प्रदान किये हैं। इस प्रकार बागरेचा परिवार की ओर से ६ हजार रुपये कल्पसूत्र के लिए प्राप्त हुए हैं।

श्री घीगड़मल जी कानुगा :

[illegible] और बागरेचा परिवार की तरह ही [illegible] कानुगा परिवार भी एक सम्पन्न परिवार है। श्रीमान् [illegible] जी कानुगा के सुपुत्र श्री घीगड़मल जी साहब

कानुगा एक सुलझे हुए विचारक एव समझदार युवक हैं। आपकी धार्मिक भावना सराहनीय है। आपका धार्मिक अध्ययन अच्छा है। आपका व्यवसाय अहमदाबाद मे है। पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज के शास्त्र प्रकाशन मे भी आपने अच्छा सहयोग दिया है। कल्पसूत्र के प्रकाशन मे आपने ७०१ रुपये का अर्थ सहयोग दिया है।

श्रीडुंगरचन्द जी ललवाणी :

सिवाना गढ के सास्कृतिक धार्मिक, एव सामाजिक उत्थान मे ललवाणी परिवार का योगदान भी अपूर्व रहा है। श्रीमान् राजमल जी ललवाणी के सुपुत्र श्री डुगरचन्द जी ललवाणी एक विवेक निष्ठ धर्मप्रेमी युवक सज्जन हैं। त्याग व सयम के प्रति इनमे गहरी आस्था है। सन् १९६५ मे श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के पास श्री पूनमचन्द जी गुमानमलजी दोशी, वडु (मारवाड) निवासी के सुपुत्र बालब्रह्मचारी रमेश कुमार जी और राजेन्द्र कुमार जी की दीक्षाएँ गढ सिवाना मे बडे उत्साह के साथ सम्पन्न हुई थी, उसमे श्री रमेशकुमार जी की दीक्षा आपके घर से हुई थी और उनकी मातेश्वरी धापकु वर बहिन की दीक्षा खाण्डप मे चन्दनबाला श्रमणी सघ की अध्यक्षा त्यागमूर्ति स्वर्गीया महासती श्री सोहनकुव र जी महासती की सुशिष्या परम विदुषी महासती पुष्पवती जी, प्रतिभामूर्ति प्रभावती जी म० के पास सम्पन्न हुई थी। उनका नाम महासती प्रकाशवती जी हैं। प्रस्तुत कल्पसूत्र के प्रकाशन मे ललवाणी जी ने ५०१ का अर्थ सहयोग प्रदान किया है।

सर्व प्रथम स्वाध्यायी सघ, गुलाबपुरा ने एक साथ कल्पसूत्र की १०० प्रतियाँ अग्रिम लेकर हमारे उत्साह को बढाया है।

हम उन सभी सज्जनो को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होने अत्यधिक उदारता के साथ अपनी स्वेच्छा से प्रस्तुत प्रकाशन के लिए अर्थ सहयोग प्रदान किया व श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान का निर्माण किया। प्रस्तुत सस्थान मरुधर देश मे सर्व प्रथम स्थानकवासी जैन धर्म का प्रचार करने वाले आचार्य सम्राट् श्री अमरसिंह जी महाराज के स्मृति मे स्थापित किया जा रहा है। प्रस्तुत सस्थान का उद्देश्य स्थानकवासी जैन धर्म का प्रचार करना है। कल्पसूत्र इस सस्थान का प्रथम प्रकाशन है। अन्तगड सूत्र इसी प्रकार नव्य-भव्य रूप मे द्वितीय पुष्प के रूप मे अर्पित करने का सस्थान का विचार है, अत हम भविष्य मे भी आप सभी के उदार सहयोग की मगल कामना करते हैं।

मन्त्री,

श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान

गढ सिवाना (राजस्थान)

प्रश्न हो सकता है कि आधुनिक दशाश्रुतस्कध की प्रतियो मे कल्पसूत्र क्यो नही मिलता ? इसका उत्तर यही है कि जब से कल्पसूत्र का वाचन पृथक् प्रारभ हुआ तब से स्थानशून्यार्थं उसमें सक्षिप्त कर दिया गया होगा। यदि पहले से ही सक्षिप्त होता तो नियु`क्ति और चूर्णि मे उनके पदो की व्याख्या कैसे आती ?

स्थानकवासी जैन समाज दशाश्रुत स्कध को एक प्रामाणिक आगम स्वीकार करता है, तो कल्पसूत्र उसी का एक विभाग होने के कारण उसे अप्रामाणिक मानने का कोई कारण नही है। मूल कल्पसूत्र मे ऐसा कोई प्रसग और न घटना ही आयी है जो स्थानकवासी जैन परम्परा की मान्यता के विपरीत हो। श्रमण भगवान् महावीर की जीवन झाकी का वर्णन आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध के साथ मिलता जुलता है। भगवान् ऋषभदेव का वर्णन भी जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति से विपरीत नही है, अन्य तीर्थ करो का वर्णन जैसा सूत्र रूप मे अन्य आगम साहित्य मे बिखरा पडा है, उसी प्रकार का इसमे भी है। समाचारी का वर्णन भी आगम सम्मत है। स्थविरावली का निरूपण भी कुछ परिवर्तन के साथ नन्दी सूत्र मे आया ही है, अत हमारी दृष्टि से कल्पसूत्र को प्रामाणिक मानने मे बाधा नही है।

पाश्चात्य विचारकों का यह अभिमत हैं कि कल्पसूत्र मे चौदह स्वप्नो का आलकारिक वर्णन पीछे से जोडा गया है, एव स्थविरावली तथा समाचारी का कुछ अश भी बाद मे प्रक्षिप्त किया गया है। प० पुण्यविजय जी का मन्तव्य है कि उन विचारको के कथन मे अवश्य ही कुछ सत्य तथ्य रहा हुआ है, क्योकि कल्पसूत्र की प्राचीनतम प्रति वि० स० १२४७ की ताडपत्रीय प्राप्त हुई है, उसमे चौदह स्वप्नो का वर्णन नही है और कुछ प्राचीन प्रतियो मे स्वप्नो का वर्णन आया भी है तो अति सक्षिप्त रूप से आया है। नियु`क्ति, चूर्णि एव पृथ्वीचन्द्र टिप्पण आदि मे भी स्वप्न सम्बन्धी वर्णन की व्याख्या नही है, परन्तु इतना निश्चित है कि जो आज कल्पसूत्र मे स्वप्न सम्बन्धी आलकारिक वर्णन है वह एक हजार वर्ष से भी कम प्राचीन नही हैं, यह किसका निर्मित है यह अन्वेषणीय है।[५]

कल्पसूत्र की नियु`क्ति, चूर्णि आदि से यह सिद्ध हैं कि इन्द्र आगमन, गर्भचक्रमण, अट्ट, णशाला, जन्म, प्रीतिदान, दीक्षा, केवल ज्ञान, वर्षावास-निर्वाण अन्तकृत्भूमि आदि का वर्णन उसके निर्माण के समय कल्पसूत्र मे था और यह भी स्पष्ट है कि जिनचरितावली के साथ उस समय स्थविरा-वली और समाचारी विभाग भी था।[६]

---

५ कल्पसूत्र—प्रस्तावना—पृ० ९ का साराश

६ पुरिमचरिमाण कप्पो, मंगल्ल वद्धमाणतित्थम्मि।
इह परिकहिया जिण-गणहराइथेरावलि चरित्तं।

—कल्पसूत्र नियु`क्ति गा० ६२

पुरिमचरिमाण य तित्थगराण एम मग्गो चेव जहा वासावासं पज्जोसवेयव्व पडतु वा वास मावा मज्झिमगाण पुण भयित। अवि य वद्धमाणतित्थम्मि मगलणिमित्तं जिणगणहर (राईथेरा) वलिया सव्वेसिं च जिणाण समोसरणाणि परिकहिज्जति।

—कल्पसूत्र चूर्णि प० १०१, पुण्यविजय जी सम्पादित

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि स्थविरावली में जो देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक के नाम आये हैं, वे श्रुतकेवली भद्रबाहु के द्वारा वर्णित नहीं हैं, अपितु आगम वाचना के समय इनमें संकलित कर दिये गये हैं।

मुनि श्री पुण्यविजय जी के अभिमतानुसार समाचारी विभाग में 'अन्तरा वि से कप्पइ नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए'' यह पाठ, संभवतः आचार्य कालक के पश्चात् का बनाया गया हो।

संक्षेप में सार यह है—श्रुतकेवली भद्रबाहु के रचित कल्पसूत्र में अन्य आगमों की तरह कुछ अंश प्रक्षिप्त हुआ है। प्रक्षिप्त अंश को देखकर श्री वेबर ने जो यह धारणा बनायी कि कल्पसूत्र का मुख्य भाग देवर्द्धिगणी के द्वारा रचित है[7], और मुनि अमरविजय जी के शिष्य चतुरविजय जी ने द्वितीय भद्रबाहु की रचना मानी है[8], यह कथन प्रामाणिक नहीं है।

आज अनेकानेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि कल्पसूत्र श्रुतकेवली भद्रबाहु की रचना है, जब दशाश्रुतस्कन्ध भद्रबाहु निर्मित है, तो कल्पसूत्र उसी का एक विभाग होने के कारण वह भद्रबाहु का ही निर्मित है, या निर्यूढ है।[9]

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्रुतकेवली भद्रबाहु ने दशाश्रुतस्कन्ध आदि जो आगम लिखे हैं, वे कल्पना की उड़ान से नहीं लिखे हैं अपितु उन्होंने दशाश्रुतस्कन्ध, निशीथ, व्यवहार, और बृहत्कल्प ये सभी आगम नौवें पूर्व के, प्रत्याख्यान विभाग से उद्धृत किए हैं।[10] पूर्व गणधरकृत हैं, तो ये आगम भी पूर्वों से निर्यूढ होने के कारण एक दृष्टि से गणधरकृत ही हैं।

दशाश्रुतस्कंध छेद सूत्र में होने पर भी प्रायश्चित्त सूत्र नहीं है, किन्तु आचार सूत्र है एतदर्थ आचार्यों ने इसे चरणकरणानुयोग के विभाग में लिया है।[11] छेदसूत्रों में दशाश्रुतस्कन्ध को मुख्य स्थान दिया गया है।[12] जब दशाश्रुतस्कन्ध छेद सूत्रों में मुख्य है, तो उसी का विभाग होने से कल्पसूत्र की मुख्यता स्वतः सिद्ध है। दशाश्रुतस्कंध का उल्लेख मूलसूत्र उत्तराध्ययन के इकतीसवें अध्ययन में भी हुआ है।[13]

---

७ इण्डियन एण्टीक्वेरी जि० २१ पृ० २१२-२१३

८ भद्रबाहु-चिन्तामणि—जैन स्तोत्र संदोह, प्रस्तावना पृ० १२-१३, प्रकाशक—साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद सन् १९३६।

९ (क) वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरिमसगलसुयनाणिं
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे। —दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति गा० १

(ख) तेण भगवता आयारपकप्प दसाकप्प ववहारा य नवमपुव्वनीसंदभूता निज्जूढा।
—[illegible] गाथा [illegible] चूर्णि

१० [illegible] दसाकप्पो ववहारो य। [illegible]—पच्चक्खाण पुव्वाओ।
—दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि पत्र २

११ इह चरणकरणाणुओगेण अधिकारो। —दशाश्रुतस्कन्ध, चूर्णि पत्र २

१२ इमं पुण छेयसुत्तपमुहभूतं। —दशाश्रुतस्कन्ध, चूर्णि, पत्र २

१३ पणवीसभावणाहिं, उद्देसेसु दसाइणं।
जे भिक्खु जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले। —उत्तराध्ययन अ० ३१ गा० १७

नियुंक्ति-चूर्णि

कल्पसूत्र की सबसे प्राचीन व्याख्या नियुंक्ति और चूर्णि है। नियुंक्ति गाथा रूप है और चूर्णि गद्य रूप है। दोनो की भाषा प्राकृत है। नियुंक्ति के रचयिता द्वितीय भद्रबाहु है। चूर्णि के रचयिता के सम्बन्ध मे अभी कोई निर्णय नही हो सका है।

कल्पान्तर्वाच्य

नियुंक्ति और चूर्णि के पश्चात् कल्पान्तर्वाच्य प्राप्त होते हैं। ये व्याख्या ग्रन्थ नही हैं, अपितु वक्ता कल्पसूत्र का वाचन करते समय प्रवचन को रसप्रद बनाने के लिए अन्यान्य ग्रन्थो से जो नोट्स लेता था उन्हे ही कल्पान्तर्वाच्य की संज्ञा दी गयी है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि जितने कल्पान्तर्वाच्य प्राप्त होते हैं वे सभी एक की ही प्रतिलिपियाँ नही है, अपितु विविध लेखको ने अपनी-अपनी दृष्टि से उनको तैयार किये हैं। कुछ लेखक तपागच्छीय, कुछ खरतरगच्छीय और कुछ अचलगच्छीय रहे हैं। क्योकि साम्प्रदायिक मान्यताओ के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। एक कल्पान्तर्वाच्य को श्री सागरानन्द सूरि ने 'कल्प समर्थन' के नाम से प्रसिद्ध करवाया है।

टीकाएँ—

जैनाचार्यों ने संस्कृत वाङ्मय की अत्यधिक अभिवृद्धि देखकर आगमो पर भी संस्कृत भाषा मे टीकाएँ लिखी। कल्पसूत्र की टीकाओ मे नियुंक्ति और चूर्णि के प्रयोग के साथ ही अपनी ओर से लेखको ने उसमे बहुत कुछ नया संदर्भ मिलाया है।

सन्देह विषौषधि कल्पपंजिका—इस टीका के रचयिता 'जिनप्रभसूरि' हैं। वृहट्टिप्पनिका के अभिमतानुसार टीका का रचना काल सं० १३६४ है। श्लोक परिमाण २५०० के लगभग है। भाषा प्रौढ है, कही-कही अनागमिक वर्णन भी आ गया है।[१४] इन्होने भगवान् महावीर के षट्कल्याणको की चर्चा भी की है।

कल्प-किरणावली—इस टीका के निर्माता तपागच्छीय उपाध्याय श्री धर्मसागरजी हैं। विक्रम सं० १६२८ मे इसका निर्माण हुआ है। श्लोक परिमाण ४८१४ है। इस टीका की परिसमाप्ति राधनपुर मे हुई है। इतिवृत्त सम्बन्धी अनेक भूलें टीका मे दृष्टिगोचर होती हैं। इस पर सन्देहविषौषधी टीका का स्पष्ट प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

प्रदीपिका वृत्ति—इसके टीकाकार पन्यास संघविजय हैं। टीका का परिमार्जन उपाध्याय धनविजय जी ने १६८१ मे किया था। श्लोक परिमाण ३२५० है। टीका की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि लेखक खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति से अलग-थलग रहा है। पूर्व टीकाओ की तरह इस टीका मे भी कुछ स्थलो पर त्रुटियाँ अवश्य हुई हैं।

कल्पदीपिका—इस टीका के लेखक पं० पन्यास जयविजयजी हैं और संशोधन कर्त्ता हैं भाव विजयगणी। सं० १६७७ के कार्तिक शुक्ला सप्तमी को यह टीका समाप्त हुई है। लेखक ने प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम उपाध्याय विमल हर्ष दिया है। श्लोक परिमाण ३४३२ है, भाषा प्राञ्जल है।

---

१४. प्रबन्ध पारिजात—मुनि कल्याण विजय, पृ० १५७

आने ग्रन्थों के विरुद्ध विषयों का खण्डन भी किया है, पर मधुरता, शिष्टता एवं तर्क के साथ, जिससे पाठक को अखरता नहीं है।

कल्प प्रदीपिका—इस टीका के रचयिता संघविजय है। विक्रम सं० १६७६ में यह टीका समाप्त हुई है।

कल्प सुबोधिका—इस टीका के लेखक उपाध्याय विनयविजय जी हैं। विक्रम सं० १६९६ में यह टीका निर्मित की गयी है। पूर्व की सभी टीकाओं में प्रस्तुत टीका विस्तृत है। भाषा की सरलता एवं विषय की सुबोधता के कारण यह अन्य टीकाओं से अधिक लोकप्रिय हुई है। कल्प किरणावली और कल्प दीपिका टीकाओं का खण्डन भी यत्र-तत्र किया गया है, प्रशस्ति से स्पष्ट है कि टीका का संशोधन उपाध्याय भावविजय जी ने किया है।

कल्प कौमुदी—इस टीका के लेखक उपाध्याय शान्तिसागर जी हैं। विक्रम सं० १७०७ में उन्होंने यह टीका पाटण में लिखी। श्लोक संख्या ३७०७ है। टीका में उपाध्याय विनयविजय जी की कटु आलोचना की गई है। उपाध्याय जी ने सुबोधिका टीका में जो कल्प किरणावली टीका का खण्डन किया उसी का प्रत्युत्तर इसमें दिया गया है।

कल्प-व्याख्यान-पद्धति—इसके संकलनकार वाचक श्री हर्षसागर शिष्य श्री शिवनिधान गणी है। इसमें पूर्ण कल्पसूत्र का अभाव है, मुनि श्री कल्याण विजय जी के अभिमतानुसार इसकी रचना १७ वीं शताब्दी में होनी चाहिए।

कल्पद्रुम कलिका—इस टीका के रचयिता खरतरगच्छीय उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ है। टीका में कहीं पर भी रचना काल का निर्देश नहीं किया गया है। भगवान पार्श्व की जीवनी में सर्पयुगल की घटना, तथा भगवान के मुखारविन्द से नवकार मंत्र सुनाने[१५] की घटनाएँ श्वेताम्बर चरित्र ग्रन्थों से विपरीत है।

कल्पलता—इस टीका के रचयिता समयसुन्दर गणी है। विक्रम सं० १६९९ के आसपास उन्होंने यह रचना की है। वृत्ति का ग्रन्थमान ७७०० श्लोक प्रमाण है। हर्षनन्दन ने इस टीका का संशोधन किया है।

कल्पसूत्र टिप्पनक—इसके रचयिता आ० पृथ्वीचन्द्रसूरि है। श्री पुण्यविजय जी के अभिमतानुसार वे चौदहवीं शताब्दी में होने चाहिए। श्लोक परिमाण ६८५ है।

कल्पप्रदीप—इस टीका के रचयिता संघविजय गणी है।

कल्पसूत्रार्थ प्रबोधनी—इस टीका के रचयिता अभिधानराजेन्द्र कोष के सम्पादक श्री राजेन्द्र सूरि है। टीका काफी विस्तृत है।

इन टीकाओं के अतिरिक्त कल्पसूत्र वृत्ति—उदयसागर। कल्पान्तर्वाच्य, [illegible] व्याख्यान, पर्युषण पर्व विचार, कल्पान्तर्वाच्य-[illegible], कल्पसूत्र ज्ञान दीपिका—[illegible], अवचूरि, बालावबोध, टब्बा आदि अनेक टीकाएँ उपलब्ध होती है। हमारा स्पष्ट अभिमत है कि कल्पसूत्र का

---

१५. लेखक का ग्रंथ—'पार्श्वनाथ : एक अध्ययन' देखें।

इग्लिश मे अनुवाद प्रकाशित किया है और उस पर महत्त्वपूर्ण भूमिका भी लिखी है। स्थानकवासी मुनि उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी म० ने सक्षिप्त हिन्दी अनुवाद सहित कल्पसूत्र प्रकाशित किया है। सुत्तागमे के द्वितीय भाग मे मुनि पुप्फभिक्खुजी ने भी मूल कल्पसूत्र छापा है। पूज्य प० मुनि श्री घासीलालजी म० ने भी नवीन मौलिक कल्पसूत्र का निर्माण किया है। इस प्रकार कल्पसूत्र पर विशाल व्याख्या साहित्य समय-समय पर निर्मित हुआ है, जो उसकी लोकप्रियता का ज्वलत प्रमाण है।

श्रमण भगवान् महावीर

●

डाक्टर विंटरनिट्स के अभिमतानुसार कल्पसूत्र तीन भागो मे विभक्त है, जिनचरित्र, स्थविरावली और समाचारी।

जिनचरित्र मे सर्वप्रथम श्रमण भगवान् महावीर की जीवन गाथा आयी है। भगवान् महावीर के गर्भ सक्रमण की घटना अत्यधिक विस्तार के साथ चित्रित की गई है। यह घटना बताती है कि श्रमण सस्कृति मे ही क्या वैदिक स स्कृति मे भी क्षत्रियो को ही अध्यात्म-विद्या का गुरु माना है।

दीघनिकाय मे महात्मा बुद्ध ने कहा—"वाशिष्ठ। ब्रह्मा सनत्कुमार ने भी गाथा कही है—गोत्र लेकर चलने वाले जनो मे क्षत्रिय श्रेष्ठ है। जो विद्या और आचारण से युक्त है, वह देव मानवो मे श्रेष्ठ है। वाशिष्ठ। प्रस्तुत गाथा सनत्कुमार ने ठीक कही है, गलत नही। सार्थक कही है, निरर्थक नही, मैं भी इसका अनुमोदन करता हूँ।"[१६]

छान्दोग्योपनिषद् मे आरुणी के पुत्र श्वेतकेतु और प्रवाहण क्षत्रिय का मधुर सवाद है। संक्षेप मे साराश यह है कि श्वेतकेतु सभा मे जाता है। प्रवाहण उससे पाच प्रश्न करता है, किन्तु वह एक भी प्रश्न का उत्तर नही दे सकता। तथा वह अपने विद्या गुरु पिता के पास जाता है और प्रवाहण के प्रश्नो को दुहराता है, किन्तु वह भी उन प्रश्नो के उत्तर नही जानता था। एतदर्थ वे राजा के पास गये और उनसे अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त की। तब राजा ने कहा—गौतम। तुमने मुझम कहा है, पूर्व-काल मे तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणो के पास नही गई है। इसी से सम्पूर्ण लोको मे क्षत्रियो का ही (शिष्यो के प्रति) अनुशासन होता रहा है।[१७]

तात्पर्य यह है कि क्षत्रियो की श्रेष्ठता रक्षात्मक शक्ति और आत्म-विद्या के कारण अत्यधिक मानी जाती थी।

बृहदारण्यक उपनिषद् मे भी राजा प्रवाहण ने आरुणी से कहा—इसके पूर्व यह अध्यात्म विद्या किसी ब्राह्मण के पास नही रही, वह मैं तुम्हे बतलाऊँगा।[१८]

---

१६ दीघनिकाय ३।४, पृ० २४५

१७ यथेय न प्राक् त्वत्त पुरा विद्या ब्राह्मगान् गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै हो वाच—छान्दोग्योपनिषद्। ५।३।१—७० पृ० ४७२—४७६।

१८ यथेयविद्येत पूर्वं न कस्मिश्चन ब्राह्मग उवास ता त्वह तुभ्यं वक्ष्यामि।

—बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।८

विष्णु पुराण के अनुसार—प्रायः सभी मैथिल के राजा आत्म-विद्या को आश्रय देते थे।[१९]

ब्राह्मणों के अहंकार पर करारा व्यंग करते हुए अजातशत्रु ने गार्ग्य से कहा—"ब्राह्मण क्षत्रिय की शरण में इस आशा से जाय कि वह मुझे ब्रह्म का उपदेश करेगा, यह तो विपरीत है, तथापि मैं तुम्हें उसका ज्ञान कराऊँगा ही।[२०]

कौशीतकी ब्राह्मण[२१], शतपथ ब्राह्मण[२२] आदि ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों से क्षत्रिय श्रेष्ठ है, यह प्रतिपादित किया है।

ब्राह्मण परम्परा में हिंसा का प्राधान्य था और क्षत्रिय परम्परा में अहिंसा का। अहिंसा प्रेमी होने के कारण क्षत्रिय अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता था। 'संस्कृति के चार अध्याय' में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं—"अवतारों में वामन और परशुराम ये दो ही हैं, जिनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। बाकी सभी अवतार क्षत्रियों के वंश में हुए हैं। यह आकस्मिक घटना हो सकती है, किन्तु इससे यह अनुमान आसानी से निकल आता है कि यज्ञों पर पलने के कारण ब्राह्मण इतने हिंसा प्रिय हो गए थे कि समाज उनसे घृणा करने लगा और ब्राह्मणों का पद उन्होंने क्षत्रियों को दे दिया। प्रतिक्रिया केवल ब्राह्मण धर्म के प्रति ही नहीं, ब्राह्मणों के गढ़ कुरु पंचाल के खिलाफ भी जगी और वैदिक सभ्यता के बाद वह समय आ गया जब उज्ज्वल कुरु पंचाल की नहीं, बल्कि मगध और विदेह की होने लगी। कपिल वस्तु में जन्म लेने के ठीक पूर्व जब तथागत स्वर्ग में देवयोनि में विराज रहे थे, तब की कथा है कि देवताओं ने उनसे कहा कि—अब आपका अवतार होना चाहिए। अतएव आप सोच लीजिए कि किस देश और किस कुल में जन्म-ग्रहण कीजियेगा। तथागत ने सोच समझ कर बताया कि—महाबुद्ध के अवतार के योग्य तो मगधदेश और क्षत्रियवंश ही हो सकता है।"

"भगवान् महावीर वर्द्धमान भी पहले एक ब्राह्मणी के गर्भ में आये थे। लेकिन इन्द्र ने सोचा—इतने बड़े महापुरुष का जन्म ब्राह्मणवंश में कैसे हो सकता है? अतएव उसने ब्राह्मणी का गर्भ चुराकर उसे एक क्षत्रियाणी की कुक्षी में डाल दिया। इन कहानियों का निष्कर्ष निकलता है कि उन दिनों यह अनुभव किया जाने लगा था कि अहिंसा धर्म का महाप्रचारक ब्राह्मण नहीं हो सकता, इसलिए बुद्ध और महावीर के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होने की कल्पना लोगों को बहुत अच्छी लगने लगी।"[२३]

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी आता है कि "क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नहीं है। राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण नीचे बैठकर क्षत्रिय की उपासना करता है। वह क्षत्रिय में ही अपने यश को स्थापित करता है।[२४]

---

१९. प्रायेणैत आत्मविद्याश्रयिणो भूपाला भवन्ति।

—विष्णुपुराण ४।५।३४

२०. बृहदारण्यकोपनिषद् २।१।१५

२१. कौशीतकी ब्राह्मण २६।५

२२. शतपथ ब्राह्मण ११ की कण्डिका

२३. संस्कृति के चार अध्याय पृ० १०९-११०

२४. बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।११, पृ० २६५

प्रस्तुत कथन की तुलना श्रमण भगवान महावीर के जीवन के उस प्रसग से की जा सकती है—जब भगवान समवसरण मे स्फटिक सिंहासन पर बैठते हैं उनके प्रमुख शिष्य गौतमादि जो वर्ण से ब्राह्मण हैं, वे नीचे बैठकर उनकी उपासना करते हैं, ज्ञान का अलौकिक प्रकाश प्राप्त करते हैं।[२५]

जिस प्रकार कल्पसूत्र मे कहा है 'न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न होगा ही कि अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव अथवा वासुदेव अन्त-प्रान्त, तुच्छ, कृपण, भिक्षुक और ब्राह्मण कुलो मे जन्मे थे, जन्मे हैं और जन्मेगे। अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, हरिवंश कुल मे या इसी प्रकार के उच्च कुल मे जन्मे थे, जन्मे हैं और जन्मेगे।[२६] इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तरा मे भी कहा है—बोधि सत्त्व चाण्डाल कुल, वेणुकार कुल, रथकार कुल, पुक्कस कुल जैसे हीन कुलो मे जन्म नही लेते। वे या तो ब्राह्मण कुल मे जन्म लेते हैं या क्षत्रिय कुल मे। जब लोक ब्राह्मण-प्रधान होता है तो ब्राह्मण कुल मे जन्म लेते हैं और जब क्षत्रिय-प्रधान होता है तब क्षत्रिय कुल मे जन्म लेते हैं।[२७]

उपरोक्त चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि भारतीय सस्कृति मे क्षत्रिय का महत्त्व अधिक रहा है। जैन सस्कृति के सभी तीर्थ कर क्षत्रिय रहे हैं, वे आत्म-विद्या के पुरस्कर्ता एव अहिंसा के प्रबल प्रचारक रहे हैं।

भगवान् महावीर के जीवन की दिव्य एव भव्य झाकी स्वय सूत्रकार ने प्रस्तुत की है। अत पाठको से अनुरोध है कि वे उसका रसास्वादन मूल ग्रन्थ से ही करें। और विशेष जिज्ञासु लेखक का 'महावीर जीवन दर्शन' ग्रन्थ देखें।

श्रमण भगवान् महावीर के सम्बन्ध मे यह एक भ्रान्त धारणा चल रही है कि 'उन्होंने सर्वतन्त्र स्वतन्त्र धर्म की संस्थापना की थी, वे एक नये धर्म के प्रवर्तक थे,' पर यह बात सही नही है, उन्होंने किसी नये धर्म की सस्थापना नही की, पर जो पूर्व तीर्थ करो की लम्बी परम्परा चली आ रही थी वे उसके उन्नायक थे, सुधारक थे, प्रचारक थे और उद्धारक थे। आचाराग मे स्वय भगवान् ने कहा—जो अर्हद् हो चुके हैं, जो वर्तमान मे हैं और आगे होगे उन सबका यही निरूपण है कि किसी भी जीव की हिंसा न करो।[२८]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि देश-काल के अनुसार तीर्थ कर की शासन व्यवस्था मे भेद भी होता है, पर सर्वथा ही भेद हो यह बात नही होती। भगवान् पार्श्व और महावीर की शासन व्यवस्था मे अनेक बातो मे भेद रहा है, पर भेद से भी अभेद अधिक था।

---

२५ आवश्यक निर्युक्ति।

२६ कल्पसूत्र

२७ ललित विस्तरा पृ० २२

२८ आचाराग १।४।१

●

डाक्टर हर्मन जेकोबी भगवान् पार्श्व को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं।[29] उन्होंने जैनागमों के साथ ही बौद्ध पिटकों के प्रमाणों के प्रकाश में यह सिद्ध किया कि भगवान् पार्श्व एक ऐतिहासिक पुरुष हैं। उनके इस कथन का समर्थन अन्य अनेक विद्वानों ने भी किया है। डाक्टर वाशम के मन्तव्यानुसार 'भगवान् महावीर को बौद्ध पिटकों में बुद्ध-प्रतिस्पर्द्धी के रूप में उट्टङ्कित किया है, एतदर्थ उनकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। भगवान् पार्श्वनाथ चौबीस तीर्थंकरों में से तेवीसवें तीर्थंकर के रूप में विश्रुत है।[30] भगवान् पार्श्व का अस्तित्व काल ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दी है। वे भगवान् महावीर के ढाई सौ पच्चास वर्ष पूर्व हुए थे।[31] उनका जीवन काल सौ वर्ष का था। दिगम्बर आचार्य गुणभद्र के अभिमतानुसार भगवान् पार्श्व के परिनिर्वाण के २५० वर्ष पश्चात् भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ।[32] यदि इस अभिमत को स्वीकार किया जाय तो पार्श्वनाथ का अस्तित्व ईस्वी पूर्व नौवीं शताब्दी ठहरता है। जे० चार्पेन्टियर का मन्तव्य है 'पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष हैं और आज जैनधर्म के सच्चे संस्थापकों के रूप में माने जाने लगे हैं। कहा जाता है कि महावीर से २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ। वे सम्भवतः ईसा से पूर्व आठवीं शताब्दी में रहे होंगे।[33] एच० सी० राय चौधरी ने लिखा है "जैन तीर्थंकर पार्श्व का जन्म ईसा पूर्व ८७७ और निर्वाण काल ईसा पूर्व ७७७ है।[34]

---

२९ That Parshva was a historical person, is now admitted by all as very probeble —The Sacred Books of the East, Vol XLV, Introduction p 21

३० As he (Vardhamana Mahavira) is referrd to in the Buddhist scriptures as one of the Buddha's chief opponents his historicity is beyond doubt . Parshva was remembered as the twenty third of the twentyfour great teachers or Tirthankaras 'ford-makers' of the Jaina Faith

—The Worder that was India
(A L Basham, B A. Ph-D, F R A S)
Reprinted 1956, pp 287-88

३१ पासजिणाओ य होइ वीरजिणो।
अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं चरिमो समुप्पन्नो। —आवश्यक निर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति प० २४१

३२ पार्श्वेशतीर्थसन्ताने पञ्चाशद्द्विशताब्दके।
तदभ्यन्तरवर्त्यायु-र्महावीरोऽत्र जातवान्। —महापुराण (उत्तर पुराण) पर्व ७४ पृ० ४६२
प्रका० भारतीय ज्ञानपीठ काशी

३३ इंसाइक्लोपीडिया आव रिलिजन एण्ड एथिक्स, जिल्द ७ पृ० ४६५ में 'द' [illegible] लेख।

३४ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया पृ० ९७
[illegible]

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के ग्रथो के आधार से यह पूर्ण सिद्ध है कि भगवान पार्श्व की जन्मभूमि सुप्रसिद्ध काशी राष्ट्र की राजधानी वाराणसी थी। काशी नरेश अश्वसेन उनके पिता थे और वामा उनकी माता थी। पोप कृष्णा दशमी को उनका जन्म हुआ।[३५] आपके युग मे तापस परम्परा का प्राबल्य था। अज्ञान तप का ही सच्चा और सही तप समझा जाता था। गृहस्थाश्रम मे ही आपने पचाग्नि तप करते हुए कमठ को अहिंसा का उपदेश दिया और धूनी में जलते हुए सर्प को नमस्कार महामत्र सुनवाकर उसका उद्धार किया।[३६] सयम ग्रहण करने के पश्चात् उग्र साधना कर कैवल्यज्ञान प्राप्त किया। कुरु, कौशल, काशी, सुम्ह, अवन्ती, पुण्ड्र, मालव, अग, वग कलिग, पाचाल, मगध, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, सौराष्ट्र, कर्णाटक' कोंकण, मेवाड, लाट, द्राविड, काश्मीर कच्छ, शाक, पल्लव, वत्स, आभीर[३७] आदि प्रदेशो मे परिभ्रमण कर विवेक मूलक धर्म साधना के मार्ग को बताया। भगवान् पार्श्वनाथ के आत्मा, व्रत, आदि तात्विक विषयो का जन मानस पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि वैदिक सस्कृति के उपासको ने भी उसे अपनाया। भगवान पार्श्वनाथ के उपदेशो की स्पष्ट झाँकी उपनिषदो मे भी आयी है। प्राचीनतम उपनिषद् भी पार्श्व के बाद के है।[३८]

डाक्टर विमलाचरण लॉ के अभिमतानुसार—'भगवान पार्श्व के धर्म का प्रचार भारत के उत्तरवर्ती क्षत्रियो मे था और उसका प्रमुख केन्द्र वैशाली था।[३९] वृज्जिगण के प्रमुख महाराजा चेटक भगवान पार्श्व के धर्म का पालन करने वाले थे।[४०] भगवान महावीर क माता पिता पार्श्वनाथ की परम्परा के मानने वाले श्रमणोपासक थे।[४१]

---

३५ (क) पासनाह चरिय—देवभद्रसूरि
(ख) पार्श्वनाथ चरित्र-भावदेव सूरि

३६ तओ भगवया णियपुरिसवयणेण दवाविओ से पचणमोक्कारो पच्चक्खाण च, पडिच्छिय तेण।
—चउप्पन्नमहापुरिस चरियं पृ० २६२

३७ सकलकीर्ति, पार्श्वनाथ चरित्र, १५।७६-८५।२३।१७-१९

३८. राधाकृष्णन्—इण्डियन फिलोसफी भाग १ पृ० १४२ 'ऐतरेय, कौशीतकी, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक—ये सभी उपनिषद् प्राचीनतम हैं। ये बुद्ध के पूर्व के हैं। इनका काल मान ईसा पूर्व दसवी शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक माना जा सकता है।" —राधाकृष्णन्
(ख) दी प्रिंसिपल उपनिषदाज् पृ० २२
(ग) पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सियन्ट इण्डिया, पृ० ५२, एच० सी० राय चौधरी
(घ) दी वेदाज, पृ० १४६-१४८ एफ० मेक्समूलर,

३९ Kshatriya claus in Buddhist India p 82

४० वेसालीए पुरीए सिरिपासजिणेससासणसणाहो
हेहयकुलसभूओ चेडगनामानिवोअसि ॥
—उपदेशमाला श्लोक ९२

४१ समणस्स ण भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा वाविहोत्था—
—आचाराग २, चूलिका ३, सू० ४०१

सुप्रसिद्ध बौद्ध धर्मानुरागी और विद्वान धर्मानन्द कौशाम्बी कहते हैं कि तथागत बुद्ध ने अपने पूर्व जीवन में पार्श्वनाथ परम्परा का अनुसरण किया था।[४२]

आठवीं सदी के दिगम्बराचार्य देवसेन के अभिमतानुसार महात्मा बुद्ध प्रारम्भ में जैन थे। जैनाचार्य पिहितास्रव ने सरयूनदी पर अवस्थित पलाश नामक ग्राम में पार्श्व के संघ में उन्हें दीक्षा दी थी और उनका नाम 'बुद्धकीर्ति' रखा।[४३]

श्रीमती राइस डेविड्स के मन्तव्यानुसार बुद्ध सर्वप्रथम गुरु की अन्वेषणा में वैशाली पहुँचे। वहाँ पर आलार और उदक से उनका सम्पर्क हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने जैन धर्म की तपविधि का अभ्यास किया।

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी का मानना है कि बुद्ध ने उस युग में प्रचलित दोनों साधनाओं का आत्मानुभव के लिए अभ्यास किया। आलार और उदक के निर्देश से ब्राह्मण मार्ग का फिर जैन मार्ग का और उसके पश्चात अपने स्वतन्त्र साधना मार्ग का।[४४]

महात्मा बुद्ध ने जैन धर्म में दीक्षा ग्रहण की या नहीं, इस प्रश्न को हम महत्त्व न भी दें तथापि यह स्पष्ट है कि उनके अहिंसा धर्म के उपदेश का मूल आधार भ० पार्श्वनाथ की परम्परा है, क्योंकि जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे भगवान पार्श्व नाथ की परम्परा के अधिक सन्निकट हैं। महात्मा बुद्ध का मुख्य शिष्य मौद्गल्यायन भी पूर्व भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में था।[४५] कपिलवस्तु में भी भगवान् पार्श्व का धर्म फैला हुआ था। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा के अनुसार गौतम बुद्ध के चाचा 'वप्प' निर्ग्रन्थ श्रावक थे।[४६] न्यग्रोधाराम में उनके साथ बुद्ध का संवाद हुआ था।[४७]

भगवान् महावीर के शासन काल में अनेक पार्श्वापत्यीय श्रावक व श्राविका थे जिनका उल्लेख आगमों में एवं व्याख्या ग्रन्थों में मिलता है।[४८] विस्तारभय से यहाँ उन सभी का उल्लेख नहीं किया जा रहा है।[४९]

---

४२ भारतीय संस्कृति और अहिंसा, तथा 'पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म', पुस्तकें

४३ सिरिपासणाहतित्थे, सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्ति मुणी। —दर्शनसार ६

४४. हिन्दू सभ्यता, पृ० २३९

४५ धर्म परीक्षा, अध्याय १८

४६ अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा, भाग २ पृ० ५५९

४७ एवं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं [illegible] अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठ सावको [illegible]॥
—अंगुत्तर निकाय चतुक्कनिपात वग्ग ५,
[illegible] भाग० पृ० २१०—२१३

४८ (क) भगवती १ | ९
(ख) भगवती ५ | ९
(ग) उत्तराध्ययन २३ | २५
(घ) सूत्रकृतांग २ | ७
(ङ) आवश्यक निर्युक्ति, गाथा २३८

४९ विस्तार के लिए देखिए—भगवान् पार्श्व: एक अध्ययन, लेखक का ग्रन्थ।

भगवान् अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर थे। आधुनिक इतिहासकारो ने उनको ऐतिहासिक पुरुषो की पंक्ति मे स्थान नही दिया है, किन्तु जब वे कर्मयोगी श्री कृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं तो अरिष्टनेमि भी उसी युग मे हुए थे। उनके निकट के पारिवारिक सम्बन्ध थे, अर्थात् श्री कृष्ण के पिता वसुदेव और अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय दोनो सहोदर—सगे भाई थे। अत उन्हे ऐतिहासिक पुरुष मानने मे सकोच नही होना चाहिए।

ऋग्वेद मे 'अरिष्टनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है। "स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि" (ऋग्वेद १।१४।८९।६) यहाँ पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए ही आया है।[५०]

छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम 'घोर आंगिरस ऋषि' आया है। घोर आंगिरस ने श्री कृष्ण को आत्म-यज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। उनकी दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिंसा, सत्यवचन रूप थी।[५१] धर्मानंद कौशाम्बी का मानना है कि आंगिरस भगवान् नेमिनाथ का ही नाम था।[५२]

ऋग्वेद कार ने भगवान् अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भी लिखा है।[५३]

महाभारत मे भी 'तार्क्ष्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिए।[५४] उन्होंने राजा सागर को मोक्षमार्ग का जो उपदेश दिया है वह जैन धर्म के मोक्ष मन्तव्यो के अत्यधिक अनुकूल है। उसे पढते ही ऐसा ज्ञात होता है कि मोक्ष सम्बन्धी आगमिक वर्णन ही पढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा—

सागर। मोक्ष का सुख ही वस्तुत सही सुख है, जो अहर्निश धन-धान्य उपार्जन मे व्यस्त है, पुत्र और पशुओं मे ही अनुरक्त है वह मूर्ख है, उसे यथार्थ ज्ञान नही होता। जिसकी बुद्धि विषयो मे आसक्त है, जिसका मन अशान्त है, ऐसे मानव का उपचार कठिन है, क्यों कि जो राग के बंधन मे बँधा हुआ है, वह मूढ है तथा मोक्ष पाने के लिए अयोग्य है।[५५]

---

५० ऋग्वेद— १। १४। ८९। ६
१। २४। १८०। १०
३। ४। ५३। १७
१०। १२। १७८। १

५१ अत यत् तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा ।
—छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

५२ भारतीय सस्कृति और अहिंसा, पृ० ५७

५३ त्यमू षु वाजिन देवजूतं सहावान तरुतार रथानाम् अरिष्टनेमि पृतनाजमाशु स्वस्तये तार्क्ष्यमिहाहुवेम।
—ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

५४ एवमुक्तस्तदा तार्क्ष्य सर्वशास्त्रविदावर ।
विबुध्य सपद चाग्र्या सद्वाक्यमिदमब्रवीत ।
—महाभारत, शान्तिपर्व २८८।४

५५ महाभारत, शान्तिपर्व २८८।५,६

यजुर्वेद में अरिष्टनेमि का उल्लेख आया है। "अध्यात्म यज्ञ को प्रगट करने वाले, संसार के सब जीवों को सब प्रकार से यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से जीवों की आत्मा बलवान होती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ।"[५६]

प्रभास पुराण में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है।[५७] साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण कई स्थलों पर स्पष्ट नाम का निर्देश होने पर भी टीकाकारों ने अर्थ में परिवर्तन किया है। अतः आज आवश्यकता है तटस्थ दृष्टि से उस पर चिन्तन करने की।

भगवान अरिष्टनेमि का नाम अहिंसा की अखण्ड ज्योति जगाने के कारण इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि महात्मा बुद्ध के नामों की सूची में एक नाम अरिष्टनेमि भी है।[५८]

इक्कीसवें तीर्थंकर नमि, बीसवें मुनिसुव्रत और उन्नीसवें मल्ली भगवती का वर्णन वैदिक और बौद्ध वाङ्मय में नहीं मिलता।

अठारहवें तीर्थंकर 'अर' का वर्णन अंगुत्तर निकाय में भी आता है। वहाँ पर महात्मा ने अपने से पूर्व जो सात तीर्थंकर हो गये थे उनका वर्णन करते हुए कहा कि उनमें से सातवें तीर्थंकर 'अरक' थे।[५९] 'अरक' तीर्थंकर के समय का निरूपण करते हुए कहा कि 'अरक' तीर्थंकर के समय मनुष्य की आयु ६० हजार वर्ष की होती थी। ५०० वर्ष की लड़की विवाह के योग्य समझी जाती थी। उस युग में मानवों को केवल छह प्रकार का कष्ट था—(१) शीत, (२) उष्ण, (३) भूख, (४) तृषा, (५) पेशाब, (६) मलोत्सर्ग। इनके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की पीड़ा और व्याधि नहीं थी। तथापि अरक ने मानवों को नश्वरता का उपदेश देकर धर्म करने का सन्देश दिया।[६०] उनके उस उपदेश की तुलना उत्तराध्ययन के दसवें अध्ययन से की जा सकती है।

---

५६ वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धमानोऽस्मै स्वाहा।
—यजुर्वेद, अध्याय ९ मंत्र २५, पृ० ४३

५७ कैलासे विमले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः,
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः।
रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले,
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥
—प्रभास पुराण

५८ बौद्ध धर्म दर्शन, पृ० १६२

५९ भूतपुब्बं भिक्खवे सुनेत्तो नाम सत्था अहोसि तित्थकरो कामेसु वीतरागो ... मूगपक्खो ... ... अरनेमि ... कुद्दालक ... हत्थिपाल, ... जोतिपाल ... अरको नाम सत्था अहोसि तित्थकरो कामेसु वीतरागो। अरकस्स खो पन, भिक्खवे, सत्थुनो अनेकानि सावकसतानि अहेसुं।
—अंगुत्तर निकाय, भाग ३, पृ० २५६-२५७
सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, पालि प्रकाशन मण्डल, बिहार राज्य

जैनागम के अनुसार भगवान् 'अर' की आयु ८४००० वर्ष है और उनके पश्चात् होने वाली तीर्थंकर मल्ली की आयु ५५००० वर्ष की है।[६१] इस दृष्टि से 'अरक' का समय 'भगवान 'अर' और भगवती मल्ली के मध्य मे ठहरता है। यहाँ पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'अरक' तीर्थंकर से पूर्व वुद्ध के मत मे 'अरनेमि' नामक एक तीर्थंकर और हुए हैं। वुद्ध के वताये हुए अरनेमि और जैन तीर्थंकर 'अर' स भवत दोनो एक हो।

भगवान शान्ति

●

भगवान् शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हैं। वे पूर्वभव मे जव मेघरथ थे तव कवूतर की रक्षा की, यह घटना वसुदेव हिंडी,[६२] त्रिषष्टिशालाका पुरुष चरित्र[६३] आदि मे मिलती हैं। तथा शिवि राजा के उपाख्यान के रूप मे वैदिक ग्रथ महाभारत मे प्राप्त होती है और वौद्ध वाङ्मय मे 'जीमूत-वाहन, के रूप मे चित्रित की गई है। प्रस्तुत घटना हमे वताती है कि जैन परम्परा केवल निवृत्ति रूप अहिंसा में ही नही, पर मरते हुए की रक्षा के रूप मे—प्रवृत्ति रूप अहिंसा मे भी धर्म मानती हैं।

मोरेन्सन ने महाभारत के विशेष नामो का कोष वनाया है। उस कोष मे सुपार्श्व, चन्द्र, और सुमति ये तीन नाम जैन तीर्थंकरो के आये हैं। महाभारतकार ने इन तीनो को असुर वताया है।[६४] वैदिक मान्यता के अनुसार जैन धर्म असुरो का धर्म रहा है। यद्यपि असुर लोग आर्हत धर्म के उपासक थे इस प्रकार का वर्णन जैन साहित्य मे नही मिलता, किन्तु विष्णु पुराण,[६५] पद्म पुराण,[६६] मत्स्य पुराण,[६७] देवी भागवत[६८] और महाभारत आदि मे असुरो को अर्हत या जैनधर्म का अनुयायी वताया है। अवतारो के निरूपण मे जिस प्रकार भगवान् ऋषभ को विष्णु का अवतार कहा है, वैसे ही सुपार्श्व को कुपथ नामक असुर का अ शावतार कहा है तथा सुमति नामक असुर के लिए वर्णन मिलता है कि वरुणप्रासाद मे उनका स्थान दैत्यो और दानवो मे था।[६९]

---

६० अप्पक जीवित मनुस्सान परित्त लहुक वहुदुक्ख 'वहुपायास मन्तय वोद्धव्वं कत्तव्व कुसल, चरितव्व, ब्रह्मचरिय, नत्थि जातस्स अमरण।

—अ गुत्तर निकाय, अरकसुत्त भाग ३ पृ० २५७

स० वही, प्रकाशन वही।

६१ आवश्यक नियु क्ति गाथा ३२५-२२७ ५६

६२ वसुदेव हिंडी २१ लम्भक,

६३ त्रिपष्टि० श० पु० ५१४

६४ जैन साहित्य का वृहद इतिहास, प्रस्तावना, पृ० २६

६५ विष्णु पुराण ३।१७।१८

६६. पद्म पुराण सृष्टि खण्ड, अध्याय १३ श्लो० १७०-४१३

६७, मत्स्य पुराण २४।४३-४९

६८ देवी भागवत ४।१३।५४-५७

६९ जैन साहित्य का वृहद् इतिहास पृ० २६

महाभारत में विष्णु और शिव के जो सहस्र नाम हैं उन नामों की सूची में 'श्रेयस' अनन्त, धर्म, शान्ति और सम्भव ये नाम विष्णु के भी आते हैं जो जैन धर्म के तीर्थंकर भी थे। हमारी दृष्टि से इन तीर्थंकरों के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण ही इनको वैदिक परम्परा ने भी विष्णु के रूप में अपनाया है। नाम साम्य के अतिरिक्त इन महापुरुषों का सम्बन्ध असुरों से जोड़ा गया है, क्योंकि वे वेद विरोधी थे। वेद विरोधी होने के कारण उनका सम्बन्ध श्रमण परम्परा से होना चाहिए। यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध है।

भगवान् अजित

बौद्ध थेरगाथा में एक गाथा अजितथेर के नाम से आयी है।[70] उस गाथा की अट्ठकथा में बताया गया है ये अजित ९१ कल्प से पूर्व प्रत्येक बुद्ध हो गये हैं। जैन साहित्य में अजित नाम के द्वितीय तीर्थंकर हैं और सम्भव बौद्ध साहित्य में उन्हें ही प्रत्येक बुद्ध अजित कहा गया हो, क्योंकि दोनों की योग्यता, पौराणिकता, एवं नाम साम्य है। महाभारत में अजित और शिव को एक चित्रित किया गया है। हमारी दृष्टि से जैन तीर्थंकर अजित ही वैदिक बौद्ध परम्परा में भी पूजनीय रहे हैं और उनके नाम का स्मरण अपनी दृष्टि से उन्होंने किया है।

भगवान् ऋषभ

श्रमण परम्परा का उद्गम भगवान् ऋषभदेव से हुआ है। जयघोष ब्राह्मण ने निर्ग्रन्थ विजयघोष से पूछा—धर्म का मुख क्या है? विजयघोष ने उत्तर दिया—धर्म का मुख काश्यप ऋषभ है।[71]

श्रीमद् भागवत् के अनुसार भगवान् ऋषभ श्रमणों ऋषियों तथा ब्रह्मचारियों (ऊर्ध्वमंथिन) का धर्म प्रकट करने के लिए शुक्ल-सत्वमय विग्रह से प्रकट हुए।[72]

भगवान् ऋषभ जैन संस्कृति की दृष्टि से प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्म-चक्रवर्ती थे।[73] श्री मद्भागवत् में भी प्रस्तुत कथन का समर्थन होता है। वहाँ पर बताया गया है कि वासुदेव ने आठवाँ अवतार नाभि और मरुदेवी के यहाँ धारण किया। वे ऋषभ रूप में अवतरित हुए और उन्होंने सब आश्रमों द्वारा नमस्कृत मार्ग दिखलाया।[74] एतदर्थ ऋषभ को मोक्ष धर्म की विवक्षा से वासुदेवांश कहा है।[75]

---

७०. मरणे मे भयं नत्थि निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि सम्पजानो पटिस्सतो। —थेरगाथा १ | २०

७१. उत्तराध्ययन २५।१४।१६

७२. धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार। —श्रीमद्भागवत ५।३।२०

७३. उसहे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढमकेवली पढमतित्थकरे पढमधम्मवरचक्कवट्टी, समुप्पज्जित्थे। —जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २।३०

७४. अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः। दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम्। —श्रीमद्भागवत १।३।१३

७५. तस्मात् वासुदेवांशं, मोक्षधर्मविवक्षया। —वही ११।२।१६

भगवान् ऋषभ का एक नाम ब्रह्मा भी रहा है और हिरण्यगर्भ भी। ऋग्वेद के अनुसार हिरण्यगर्भ भूत जगत् का एक मात्र पति है।[७६] सायण के अनुसार वह देहधारी है।[७७] महाभारत के अनुसार हिरण्यगर्भ ही योग का पुरातन विद्वान् है, अन्य नहीं।[७८] भगवान् ऋषभ को हिरण्यगर्भ कहने का कारण यह है कि जब वे गर्भ मे आये तब कुबेर ने हिरण्य की वृष्टि की, एतदर्थ उन्हें हिरण्यगर्भ भी कहा गया है।[७९]

मि० वालिस का कहना हैं कि हिरण्यगर्भ शब्द लाक्षणिक है। यह विश्व की एक महान् शक्ति को सूचित करता है।[८०]

श्रीमद् भागवतकार ने ऋषभ को योगेश्वर कहा है।[८१] उन्होने नाना योग-चर्चाओ का चरण किया था।[८२] हठयोगियो ने भगवान् ऋषभ को हठयोग विद्या के उपदेष्टा के रूप मे नमस्कार किया है।[८३] जैनाचार्यो ने भी उन्हे योग विद्या का सस्थापक माना है।[८४] इस प्रकार भ० ऋषभ आदिनाथ 'हिरण्यगर्भ' और ब्रह्मा आदि अनेक नामो से सम्बोधित किये गये है।

ऋग्वेद मे भगवान् ऋषभदेव को केशी भी कहा गया है। वहां पर वातरशन मुनि के उल्लेख के प्रकरण में ही केशी की स्तुति आयी हैं।[८५] जो ऋषभदेव की वाचक है।

ऋग्वेद मे अन्यत्र केशी और ऋषभ का एक साथ उल्लेख भी मिलता है।[८६] मुद्गल ऋषि की

---

७६ हिरण्यगर्भ १ समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्।
स सदाधारपृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ —ऋग्वेद १०।१०।१२१।१

७७ हिरण्यगर्भ हिरण्मयस्याण्डस्य गर्भभूत प्रजापतिर्हिरण्यगर्भ । तथा च तैत्तिरीयकप्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भ प्रजापतेरनुरूपाय (तै० स० ५।५।१।२।यद्वा हिरण्यमयोऽअण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ उच्यते। अग्रे प्रपञ्चोत्पत्ते प्राक् समवर्तत मायाध्यक्षात् सिसृक्षो परमात्मन साकाशात् समजायत। ' सर्वस्य जगत् पतिरीश्वर आसीत्
—तैत्तिरीयारण्यक, प्रपाठक १०, अनुवाक् ६२ सायणभाष्य

७८ हिरण्यगर्भो योगस्य, वेत्ता नान्य पुरातन । —महाभारत शान्ति पर्व ३४९।६५

७९ सैषा हिरण्यमयी वृष्टि धनेशेन निपातिता, विभोर्हिरण्यगर्भत्वमिव बोधयितु जगत् ॥
—महापुराण १२।९५

(ख) गब्भट्ठिअस्स जस्स उ हिरण्णवुढ्ढी सकचणापडिया।
तेण हिरण्णगब्भो जयम्मि उवगिज्जए उसभो —पउमचरिउ ३।६८।विमलगणिरचित

८० हिस्ट्री आफ प्री० वुद्धिस्टिक इ डियन फिलोसफी डा० वालिस।

८१ भगवान् ऋषभदेवो योगेश्वर —श्रीमद् भागवत् ५।४।३

८२ नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपति ऋषभ —श्रीमद् भागवत् ५।५।२५

८३ श्री आदिनाथाय नमोस्तु तस्मै, येनोपदिष्टा हठयोगविद्या। —हठयोग प्रदीपिका

८४ योगिकल्पतरु नौमि, देव-देव वृषध्वजम्। —ज्ञानार्णव १।२

८५ केश्यग्नि केशी विष केशी विभर्त्ति रोदशी।
केशी विश्व स्वर्दृशे केशीद ज्योति रुच्यते ॥ —ऋग्वेद १०।११।१३६।१

८६ ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवत सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्। —ऋग्वेद १०।९।१०२।६

गायें (इन्द्रियाँ) चुराई जा रही थीं तब ऋषि के सारथी केशी वृषभ के वचन से वे अपने स्थान पर लौट आयीं। अर्थात् वे इन्द्रियाँ ऋषभ के उपदेश से अन्तर्मुखी हो गईं।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार भगवान् ऋषभ जब मुनि बने तब उन्होंने चार मुष्टि केशलोच किया था। जो सामान्य परम्परा पंच मुष्टि केशलोच करने की है। जब भगवान् केशलोच कर रहे थे दोनों भागों का केश लोच करना अवशेष था, उसी समय देवराज शक्रेन्द्र ने भगवान् से नम्र प्रार्थना की —'इतनी रमणीय केशराशि को रहने दें। तब भगवान् ने इन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर वैसे ही केश रहने दिये।[८७] यही कारण है कि केश होने के कारण से वे केशी या केशरियाजी कहलाये। जिस प्रकार सिंह अपने केशों के कारण केशरी कहलाता है, इसी प्रकार ऋषभदेव भी केशी, केशरी और केशरियाजी आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

भगवान ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में 'ऋषभदेव, एक परिशीलन' ग्रन्थ में विस्तार से पर्यालोचन किया गया है एतदर्थ उसके अवलोकन की सूचना के साथ-साथ मैं विषय को सम्पन्न कर रहा हूँ।

स्थविरावली

जिनचरित के पश्चात् स्थविरावली में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की परम्परा आती है। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की परम्परा एक विशुद्ध परम्परा रही है। अभयदेव सूरि के शब्दों में देखिये —'देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की परम्परा को मैं भाव-परम्परा मानता हूँ। इसके बाद शिथिलाचारियों ने अनेक द्रव्य-परम्पराओं का प्रवर्तन कर दिया।

स्थविरावली में आये हुए स्थविरों की परिचय रेखा, तथा कुल, गण आदि का परिचय विवेचन में दिया है।

समाचारी

स्थविरावली के पश्चात् अन्तिम विभाग समाचारी का आता है। इस का सार आचार है।[८९] यह मुक्ति का साधन है। यही कारण है कि जैनागमों में जहाँ दार्शनिक तत्त्वों की सूक्ष्म विवेचना की गई है

---

८७ चउहिं अट्ठाहिं लोअं करेइ। मुनि-दीक्षया पञ्चमुष्टि लोचसम्भवेऽपि अस्य भगवतश्चतुर्मुष्टिक लोच-गोचरः श्री हेमाचार्यकृत ऋषभचरित्राभिप्रायोऽयं प्रथममेकया मुष्ट्या श्मश्रु-कूर्चयोस्तिसृभिश्च शिरोलोचे कृते एका मुष्टिमवशिष्यमाणां पवनान्दोलितां कनकावदातयोः प्रभुस्कन्धयोरुपरि लुठन्तीं मरकतोपमानमाबिभ्रतीं परमरमणीयां वीक्ष्य प्रमोदमानेन शक्रेण भगवान्! मय्यनुग्रहं विधाय ध्रियतामियमित्थमेवेति विज्ञप्ते भगवतापि सा तथैव रक्षितेति, न ह्येकान्तभक्तानां याञ्चामनुग्रहीतारः खण्डयन्तीति। —जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २ सू० ३०

८८ देवड्ढिखमासमणजा, परंपरं भावओ वियाणेमि।
सिढिलायारे ठविया, दव्वेण परंपरा बहुहा॥ —आगम अट्ठुत्तरी गाथा १४

८९ अंगाणं सार आयारो।

वहां पर आचार का भी सूक्ष्मतम निरूपण किया है। सम्यक्-आचार ही समाचार, या समाचारी है। दिगम्बर ग्रन्थो मे भी ये शब्द व्यवहृत हुए हैं और उसके चार अर्थ किये गये हैं :—

(१) समता का आचार

(२) सम्यक् आचार

(३) सम (तुल्य) आचार

(४) समान (परिमाण युक्त) आचार[६०]

सक्षेप मे समाचारी शब्द का अर्थ है—मुनि का आचार-व्यवहार, एव इतिकर्तव्यता। प्रस्तुत परिभाषा के प्रकाश मे श्रमण जीवन की वे सारी प्रवृत्तिया समाचारी मे आ जाती हैं जो वह अहर्निश करता है।

आवश्यक नियुक्तिकार भद्रबाहु ने समाचारी के तीन प्रकार बतलाये हैं—(१) ओघसमाचारी (२) दस-विध समाचारी, (३) पद विभाग समाचारी।[६१]

ओघ समाचारी का निरूपण 'ओघ नियुक्ति' मे किया गया है। उसके (१) प्रतिलेखन, (२) पिण्ड, (३) उपधि-प्रमाण (०) अनायतन (अस्थान) वर्जन, (५) प्रतिसेवना—दोषाचरण, (६) आलोचना और विशोधि,[६२] ये सात द्वार हैं।

दसविध समाचारी का वर्णन भगवती[६३] स्थानाग[६४] उत्तराध्ययन[६५] आवश्यक नियुक्ति[६६] आदि मे मिलता है। पद-विभाग समाचारी का वर्णन छेद सूत्रो मे वर्णित है। कल्पसूत्र मे जो समाचारी का वर्णन है वह पद-विभाग-समाचारी मे आता है। वादिवेतालशान्ति सूरि ने उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्ति मे ओघसमाचारी का अन्तर्भाव धर्मकथानुयोग मे और पदविभाग समाचारी का अन्तर्भाव चरण करणानुयोग मे किया है। कल्पसूत्र की समाचारी चरण करणानुयोग के अन्तर्गत है।

डाक्टर विन्टर नीट्स ने भी समाचारी विभाग को कल्पसूत्र का प्राचीनतम भाग होने की सभावना की है, और अपने अनुमान की पुष्टि में उनका यह कहना है कि कल्पसूत्र का पूरा नाम 'पर्युषणा कल्प' यह समाचारी विभाग के कारण ही हैं।[६७]

---

६० समदा समाचारो, सम्माचारो समो व आचारो।
सव्वेसि सम्माण समाचारो हु आचारो॥ —मूलाचार गाथा १२३

६१ आवश्यक नियुक्ति, गाथा ६६५

६२ पडिलेहण च पिण्डं, उवहिपमाण अणाययण वज्ज।
पडिसेवणमालोअण, जह य विसोही सुविहियाण॥ —ओघनियुक्ति, २

६३ भगवती २५।७

६४. स्थानाग १०।७४९

६५. उत्तराध्ययन—अ० ६६ भा० २-३-४

६६ आवश्यक नियुक्ति
(१) आवश्यकी, (२) नैषेधिकी, (६) आपृच्छा (४) प्रतिपृच्छा (५) वन्दना, (६) इच्छाकार, (७) मिच्छाकार, (८) तथाकार, (९) अभ्युत्थान (१०) उपसंपद।

६७ हिस्ट्री आफ इडियन लिटरेचर पृ० डा० विंटरनीट्स लिखित

निशीथ में पर्युषणा कल्प की सविस्तृत विधि दी है। पहले के युग में श्रमण समुदाय रात्रि के प्रथम प्रहर में काल ग्रहण पूर्वक पर्युषणा-कल्प (समाचारी) का श्रवण और पठन करते थे। किसी भी गृहस्थ या गृहस्थिनी के सामने अन्य तीर्थिक के सामने, एवं अवसन्नसंयती के सामने उसे पढ़ने का निषेध था। क्योंकि उनके सामने पढ़ने से सचार दोष, सघाडग्गा दोष, समिश्रगान दोष, प्रभृति अनेक दोषों को लगने की संभावना होती है अतः उसे सभी के सामने पढ़ने का स्पष्ट निषेध किया गया। और पढ़ने वाले के लिए प्रायश्चित्त का विधान भी किया।[98]

सर्व प्रथम पर्युषणा कल्पसूत्र का सभा के समक्ष पठन आनन्दपुर में राजा ध्रुवसेन के पुत्र-शोक को नष्ट करने के लिए चैत्यवासी सिद्धिवासागे श्रमणों ने चतुर्विध संघ के समक्ष किया।[99] ध्रुवसेन नामक मैत्रक वंशीय वल्लभी में तीन राजा हुए हैं, जिनका अस्तित्व इस प्रकार है—प्रथम ध्रुवसेन (गु० सं० २००-२३० तक) ई० स० ५१९ से ५४९। द्वि० ध्रुवसेन (गु० सं० ३०८ से ३२३) ई० सं० ६२७ से ६४२। तृतीय ध्रुवसेन (गु० सं० ३३१ से ३३४) ई० सं० ६५० से ६५४।

इन राजाओं की राजधानी वल्लभी में भी थी। पर 'महास्थान' होने के कारण वे आनन्दपुर में भी रहते थे। पर अन्वेषणीय यह है कि किस राजा के समय इसका पठन किया गया।

कल्पसूत्र की कहानी

●

सुश्रावक सुलतानमलजी राका, श्री हस्तीमलजी एवं सुगराज जी जिनाणी प्रभृति सज्जनों का आग्रह था कि आप कल्पसूत्र का सम्पादन करें। प्रारम्भ में मैं उनके प्रेम भरे आग्रह को टालता रहा पर अन्त में उनकी उत्कृष्ट अभीप्सा से परम श्रद्धेय गुरुदेव ने मुझे आदेश के स्वर में कहा—यह कार्य तुझे करना है। 'आज्ञा गुरूणामविचारणीया' के अनुसार मैंने इसके सम्पादन का कार्य स्वीकार किया।

---

९८. पज्जोसवणाकप्पं, पज्जोसवणाइ जो उ कड्ढिज्जा।
गिहि-अन्नतित्थि-ओसन्न-संजईणं च आणाई ॥१॥

पज्जोसवणा-कप्पसुत्तं। गिहि-पासत्थ अन्नतित्थियाण ति [illegible] [illegible] ओसन्नाण य संजईण य जो 'एत पज्जोसवणा' एयासु पर्युषणाकल्प पठति [illegible] आणाईया य दोसा।

गिहि अन्नतित्थि-ओसन्नदुग मे सम्पूणेगु [illegible]।
सम्भोगवाय संकाइणो य दोसा [illegible] ॥२॥

व्याख्या—[illegible] ॥

—कल्पसूत्र पृथ्वीचन्द्र टिप्पण से उद्धृत

९९. कल्पसूत्र चूर्णि

१००. कल्पसूत्र टीकाएँ

सम्पादन कार्य सरल नही है, अपितु कठिन है और फिर प्राचीन ग्रन्थो के सम्पादन का तो कहना ही क्या ? जिनकी भाषा और भावधारा वर्तमान युग की भाषा और भावधारा से अत्यधिक व्यवधान पा चुकी है। किन्तु जब सम्पादन का कार्य हाथ मे लिया तो भन्डारो मे से प्राचीन हस्त-लिखित कल्पसूत्र की प्रतियो का अवलोकन करना प्रारभ किया, पर कोई भी प्रति पूर्ण शुद्ध नही मिली। अत अन्त मे हमने यही निर्णय लिया कि श्री पुण्यविजय जी म० के द्वारा सम्पादित कल्पसूत्र के पाठ को ही मूल आधार रखा जाय और वही हमने स्वीकार किया है। उपाध्याय पण्डित प्रवर श्रद्धेय हस्तीमल जी म० सम्पादित कल्पसूत्र की पाण्डुलिपि भी मेरे सामने रही है। अर्थ आदि की दृष्टि से उसका भी उपयोग किया गया है, तथा प्राचीन निर्युक्ति, चूर्णि, पृथ्वीचन्द टिप्पण, व अनेक कल्पटीकाओ से उपयुक्त सामग्री भी मैंने ली है, इस प्रकार प्रस्तुत सम्पादन मे अपनी ओर से कुछ न मिलाकर इधर-उधर से सामग्री बटोरकर व्यवस्थित रूप देने का कार्य मैंने किया हैं। उन सभी ग्रथ और ग्रन्थकारो का मैं ऋणी हूँ, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी प्रकार का मुझे सहयोग मिला है।

ग्रन्थो की पूर्ण उपलब्धि न होने से तथा शीघ्रता के कारण, मैं जैसा चाहता था वैसा नही लिख सका हूँ, अत अपनी दुर्बलता के लिए प्रारम्भ मे ही क्षमा याचना कर लेता हूँ, तथापि कुछ लिखा है, वह कैसा है यह निर्णय करना प्रबुद्ध पाठको का काम है। पूर्ण सावधानी रखने पर भी सम्भव हैं कही इधर-उधर लिखा गया हो, मूल भावनाएँ पूर्ण स्पष्ट न हो सकी हो, विपर्यास भी हो गया हो तो उन सबके लिए मैं विज्ञो से यही नम्र निवेदन करूंगा कि वे मुझे आत्मीयता की परम पवित्र भावना के साथ त्रुटियो की ओर मेरा ध्यान केन्द्रित करें जिससे मैं उनका परिमार्जन कर सकूँ।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य प्रसिद्धवक्ता गंभीर तत्वचिन्तक श्री पुष्कर मुनि जी म० का मुझे गुरुतर लेखन कार्य मे सक्रिय योग, पथ प्रदर्शन, एव प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, जिससे मेरी कार्य दिशाए सदा आलोकित रही हैं। उनकी अपार कृपा के बिना यह कार्य कभी सुन्दर रीति से पूर्ण नही हो सकता था। उनकी विशाल ज्ञान राशि एव गभीर चिन्तन मे से मैं ज्ञान के ज्योति स्फुलिंग प्राप्त कर सका हूँ यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं श्रद्धेय गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर भारमुक्त बनू इसकी अपेक्षा मुझे यही श्रेयस्कर लग रहा है कि उनके आशीर्वाद का शक्ति-सबल प्राप्त कर अधिक भारी बनूँ और नये शोधपूर्ण लेखन कार्य मे दत्तचित से लग जाऊँ।

स्नेह-सौजन्यमूर्ति श्रीहीरामुनिजी, साहित्य रत्न, शास्त्री श्रीगणेश मुनिजी, जिनेन्द्रमुनि, राजेन्द्र मुनि और पुनीत मुनि प्रभृति मुनि-मण्डल का स्नेहास्पद व्यवहार भुलाया नही जा सकता और न श्रीचन्द जी सुराणा 'सरस' का मुद्रण आदि की दृष्टि से किया गया मधुर व्यवहार व सफल प्रयास भी विस्मरण किया जा सकता, जिसके कारण ही ग्रन्थ छपाई सफाई आदि की दृष्टि से सुन्दर बना है।

सेठ मेघजी थोभण जैन धर्म स्थानक
१७०, कादावाडी, बम्बई

—देवेन्द्र मुनि

●

कल्पसूत्र

का

अनुक्रम

○ भगवान महावीर-चरित्र

○ भगवान महावीर की पूर्व परम्परा

श्री कल्प सूत्र

उपक्रम

आचारात्तपसा कल्पः, कल्प. कल्पद्रुरीप्सिते ।
कल्पो रसायन सम्यक्, कल्पस्तत्त्वार्थ-दीपक ॥

—कल्प समर्थनम्, कल्पमहिमा श्लोक १

उपक्रम

कल्प की परिभाषा और भेद

कल्प का अर्थ है—नीति, आचार, मर्यादा, विधि और समाचारी। आचार्य उमास्वाति कहते हैं—जो कार्य ज्ञान, शील, तप, का उपग्रह (वृद्धि) करता है और दोषों का निग्रह (शमन) करता है वह निश्चय दृष्टि मे कल्प है और शेष अकल्प है।[1] कल्प सूत्र की टीका के अनुसार श्रमणो का आचार कल्प है।[2] कल्प के आगम, भाष्य, निर्युक्ति और चूर्णि साहित्य मे अनेक भेद, प्रभेद निरूपित हुए है। उन सभी की यहाँ चर्चा न कर केवल दस कल्पो अर्थात् कल्प के दस प्रकारो पर ही विचार किया जा रहा है। वे दस कल्प इस प्रकार हैं :—

(१) आचेलक्य, (२) औद्देशिक, (३) शय्यातर-पिण्ड, (४) राज-पिण्ड, (५) कृतिकर्म, (६) व्रत, (७) ज्येष्ठ, (८) प्रतिक्रमण, (९) मासकल्प, (१०) पर्युषणा-कल्प।[3]

आचेलक्य

'चेल' शब्द का अर्थ—वस्त्र है। न—चेल, अचेल है। 'अ' शब्द का एक अर्थ अल्प भी है।[4] जैसे—अनुदरा। आचारांग के टीकाकार ने ईषत् (अल्प) अर्थ मे नञ्—समास मान कर अचेल का अर्थ 'अल्पवस्त्र' किया है।[5] उत्तराध्ययन[6] और कल्पसूत्र[7] की टीकाओ मे भी यही अर्थ मान्य हुआ है।

श्रमण संस्कृति मे श्रमणो के लिए दो प्रकार के कल्प विहित है—जिनकल्प और स्थविरकल्प। निर्युक्ति और भाष्य के अनुसार जिनकल्पी श्रमण वह होता है जो वज्र-ऋषभनाराच संहनन वाला हो, तथा कम से कम नव पूर्व की तृतीय आचार वस्तु का श्रुतपाठी हो और अधिक से अधिक कुछ कम दस पूर्व तक श्रुतपाठी हो।[8] जिनकल्पिक श्रमण भी पहले स्थविरकल्पी ही होता है। स्थविरकल्पिक श्रमण ही जिनकल्प को स्वीकारता है।

जिनकल्पिक श्रमण नग्न, निष्प्रतिकर्म और विविध अभिग्रहधारी होते हैं। उनके दो प्रकार हैं—

(१) पाणिपात्र—हाथ मे भोजन करने वाले।

(२) पात्रधारी—पात्र मे भोजन करने वाले।

पाणिपात्र जिनकल्पिक श्रमण भी उपधि की दृष्टि से चार प्रकार के होते हैं। कितने ही श्रमण मुख-वस्त्रिका और रजोहरण—ये दो उपधि रखते हैं। कितने ही श्रमण मुख-वस्त्रिका, रजोहरण और एक चद्दर रखते हैं। कितने ही श्रमण मुख-वस्त्रिका, रजोहरण और दो चद्दर रखते है, और कितने ही श्रमण मुख-वस्त्रिका, रजोहरण तथा तीन चद्दर रखते हैं।

पात्रधारी जिनकल्पिक श्रमण भी उक्त दो, तीन, चार, और पाँच उपकरणो के अतिरिक्त सात प्रकार के पात्र-निर्योग रखने से क्रमश नौ, दस, ग्यारह, और बारह प्रकार की उपधि से उनके भी चार भेद होते हैं। इस प्रकार जिनकल्पिक श्रमणो के मुख्य दो, और उत्तर भेद आठ होते है।

आगमानुसार स्थविरकल्पिक श्रमण के भी उपधि की दृष्टि से अनेक भेद किए जा सकते है। कितने ही श्रमण तीन वस्त्र और एक पात्र रखते थे। कितने ही श्रमण दो पात्र और एक वस्त्र रखते थे और कितने ही श्रमण एक पात्र और एक वस्त्र रखते थे।

उपरोक्त चर्चा का सार यह है कि जिनकल्पिक हो या स्थविरकल्पिक, वे कम से कम मुख-वस्त्रिका और रजोहरण ये दो उपकरण तो रखते ही हैं। अत यहाँ पर आचेलक्य-कल्प का अर्थ सपूर्ण वस्त्रो का अभाव नही, किन्तु अल्प मूल्य वाले प्रमाणोपेत जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण करना है।

पूर्वाचार्य रचित कल्पसमर्थन मे कहा है कि—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर का धर्म (आचार) अचेलक है और बावीस तीर्थंकरो का धर्म (आचार) सचेलक और अचेलक दोनो प्रकार का है।[९] इसका अर्थ यह है कि भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर के श्रमणो के लिए यह विधान है कि वे श्वेत और प्रमाणोपेत वस्त्र रखे, पर बावीस तीर्थंकरो के श्रमणो के लिए प्रस्तुत विधान नही है।[१०] वे विवेक-निष्ठ और जागरूक साधक थे। अत चमकीले रगबिरगे प्रमाण से अधिक वस्त्र भी रख सकते थे। उन बढिया वस्त्रो के प्रति उनके मन मे आसक्ति नही होती थी।

उत्तराध्ययन सूत्र मे भगवान् पार्श्वनाथ के श्रमण केशीकुमार और भगवान महावीर के प्रधान अन्तेवासी गणधर गौतम का मधुर सवाद है। केशीकुमार श्रमण ने गौतम से जिज्ञासा प्रस्तुत की, कि "भगवान् महावीर का धर्म अचेलक है और भगवान् पार्श्वनाथ का सचेलक है। क्या इस लिग-भेद को देख कर आपके मानस मे शका नही होती ?"[११]

समाधान करते हुए गौतम ने कहा—"विज्ञवर ! विज्ञान से तत्त्व को जानकर ही धर्म साधनों की आज्ञा दी गई है। लोक में प्रतीति के लिए, संयम निर्वाह के लिए, ज्ञानादि गुण-ग्रहण के लिए, वर्षाकल्प आदि में संयम पालन के लिए ही वस्त्रादि उपकरणों की आवश्यकता है। वस्तुतः दोनों तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा (प्ररूपणा) मोक्ष के सद्भूत साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र-रूप ही है। उसमें कोई अन्तर नहीं है।"[12]

आगमानुसार सभी तीर्थंकर देवदूष्य वस्त्र के साथ प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं।[13] कुछ समय तक वे देवदूष्य वस्त्र को रखते हैं।[13A] भगवान् श्री महावीर ने भी एक वर्ष तक देवदूष्य वस्त्र को धारण किए रखा था, उसके बाद वे पूर्ण अचेलक बने।[14]

बावीस परीषहों में छट्ठा परीषह अचेल परीषह है।[15] उसका भी अर्थ है—"वस्त्रों के जीर्ण होने पर श्रमण यह चिन्ता न करे कि मैं वस्त्र रहित हो जाऊँगा, अथवा यह भी विचार न करे कि अच्छा हुआ वस्त्र जीर्ण हो गए हैं और अब मैं नये वस्त्रों से सचेलक हो जाऊँगा। सचेल और अचेल दोनों ही अवस्था में श्रमण खिन्न न हो।"[16]

यहाँ तो आचेलक्य-कल्प का संक्षेप में अर्थ हुआ—अल्प, प्रमाणोपेत एवं श्वेत वस्त्र धारण करने की मर्यादा।

औद्देशिक

औद्देशिक कल्प का अर्थ है श्रमण को दान देने के उद्देश्य से, या परिव्राजक, श्रमण, निर्ग्रन्थ आदि सभी को उद्देश्य कर निर्मित अशन, पान, भवन आदि।[17] वह श्रमण के लिए अग्राह्य एवं असेव्य है। यदि श्रमण को यह ज्ञात हो जाय तो वह स्पष्ट रूप से कहे कि—यह अशनादि मुझे नहीं कल्पता।[18]

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के श्रमणों के लिए यह विधान है कि 'एक श्रमण को उद्देश्य करके निर्मित आहार आदि न उसे ग्रहण करना कल्पता है, और न अन्य श्रमणों को ही ग्रहण करना कल्पता है।' किन्तु बावीस तीर्थंकरों के समय में जिस श्रमण को उद्देश्य कर आहार आदि निर्मित किया गया हो वह उसे ग्रहण करना नहीं कल्पता, पर शेष श्रमणों के लिए वह ग्राह्य हो सकता है।[19]

दशवैकालिक,[20] प्रश्नव्याकरण,[21] सूत्रकृताङ्ग,[22] उत्तराध्ययन,[23] आचारांग,[24] और भगवती[25] आदि आगमों में अनेक स्थलों पर औद्देशिक आहार आदि ग्रहण करने का निषेध है, क्योंकि औद्देशिक आदि ग्रहण करने में त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा का अनुमोदन होता है,[26] अतः वह श्रमण के लिए अग्राह्य है।[27]

शय्यातर-पिण्ड

श्रमण को शय्या (वसति-उपाश्रय) देकर संसार-समुद्र को तैरने वाला गृहस्थ शय्यातर कहलाता है।[28] अर्थात् जो गृहपति जिसके मकान में श्रमण ठहरे हुए हों, शय्यातर

है।[२९] निशीथभाष्य के अभिमतानुसार स्वय गृहपति या उसके द्वारा निर्दिष्ट कोई भी अन्य व्यक्ति शय्यातर होता है।[३०] शय्यातर कब होता है? इस पर आचार्यों के विभिन्न मत हैं।[३१] निशीथ भाष्य और चूर्णि मे उन सभी मतो का निर्देश किया गया है, तथा भाष्यकार ने अपना स्पष्ट अभिमत इस प्रकार दिया है 'श्रमण जिस स्थान मे रात्रि रहे, सोए, और चरमावश्यक कार्य करे उस स्थान का अधिपति शय्यातर होता है।[३२]

श्रमण के लिए शय्यातर के अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, आदि अग्राह्य हैं और तृण, राख, पाट वाजोट, आदि ग्राह्य हैं।[३३] सूत्रकृताङ्ग मे शय्यातर के स्थान मे "*सागारियपिण्ड*" लिखा है,[३४] पर उसका अर्थ भी टीकाकार ने शय्यातर-पिण्ड किया है।[३५]

● राज-पिण्ड

मूर्धाभिषिक्त अर्थात् जिसका राज्याभिषेक हुआ हो वह 'राजा' कहलाता है। उसका भोजन राजपिण्ड है।[३६] जिनदासगणीमहत्तर के अभिमातानुसार सेनापति, अमात्य, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह सहित जो राजा राज्य का उपभोग करता है उसका पिण्ड (भोजन) ग्रहण नही करना चाहिए। अन्य राजाओ के लिए नियम नही है। यदि दोष की सम्भावना हो तो ग्रहण नही करना चाहिए, और निर्दोष हो तो ग्रहण किया जा सकता है।[३७]

राजपिण्ड का तात्पर्य—राजकीय भोजन है। राजकीय भोजन सरस, मधुर व मादक होता है। जिसके सेवन से रस-लोलुपता बढने की सम्भावना रहती है। साथ ही वह उत्तेजक भी होता है। इस प्रकार का सरस आहार सर्वत्र प्राप्त भी होना सम्भव नही, रस-लोलुप मुनि कही अनेषणीय आहार सग्रहण न करे, इस दृष्टि से राजपिण्ड का निषेध किया गया है। एषणाशुद्धि ही प्रस्तुत विधान की मूल-दृष्टि है।[३८] यदि कोई इस विधान को विस्मृत करके राजपिण्ड को ग्रहण करता है, या राजपिण्ड का उपयोग करता है तो उस श्रमण को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[३९]

राजपिण्ड के निषेध के पीछे अन्य अनेक तथ्य रहे हुए हैं।[४०] जिनका उल्लेख, निशीथभाष्य और चूर्णि मे किया गया है। राजभवन मे प्राय सेनापति आदि का आवागमन रहता है। कभी शीघ्रतादि के कारण श्रमण के चोट लगने की और पात्रादि फूटने की सम्भावना भी रहती है। किसी कार्यवश जाते हुए साधु को देखने पर उसको वे अपशकुन भी समझ सकते हैं।[४१] इन कारणो से राजपिण्ड को अग्राह्य तथा अनेषणीय माना है तथा उसको ग्रहण करना अनाचार है।[४२]

भगवान महावीर और श्री ऋषभदेव के श्रमणो के लिए ही राजपिण्ड का निषेध है, पर बावीस तीर्थंकर के श्रमणो के लिए नही।[४३] राजपिण्ड से अभिप्राय है चार प्रकार के आहार, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण—ये आठ वस्तुएँ, और ये आठो अग्राह्य मानी हैं।[४४]

कृतिकर्म

कृतिकर्म का अर्थ है अपने मे सयमादि मे ज्येष्ठ व सद्‌गुणो मे श्रेष्ठ श्रमणो का खड़े होकर हृदय मे स्वागत करना। उन्हे बहुमान देना, उनकी हितशिक्षाओ को श्रद्धा से नतमस्तक होकर स्वीकार करना।[४५]

चौबीस ही तीर्थंकरो के श्रमण अपने मे चारित्र मे ज्येष्ठ श्रमणो को वन्दन-नमस्कार करते है। यह कल्प सार्वकालिक है।[४६]

व्रत

व्रत का अर्थ है विरति।[४७] विरति असत् प्रवृत्ति की होती है। अकरण, निवृत्ति, उपरम और विरति ये एकार्थक शब्द है।[४८] व्रत शब्द का प्रयोग निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनो ही अर्थो मे होता है। जैसे "वृषलान्न व्रतयति" अर्थात् वह शूद्र के अन्न का परिहार करता है। "पयोव्रतयति" अर्थात् केवल दूध पीता है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही खाता। इसी तरह असत् प्रवृत्ति का परिहार और सत् मे प्रवृत्ति इन दोनो अर्थों मे व्रत शब्द का प्रयोग हुआ है।[४९]

भगवान् श्री महावीर और ऋषभदेव के श्रमण पाँच महाव्रत रूप धर्म का पालन करते हैं और अन्य बावीस तीर्थंकरो के श्रमण चार यामो का। इसका क्या रहस्य है, यह प्रश्न भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अन्तिम प्रतिनिधि केशीकुमार श्रमण के मन को कचोट रहा था। उन्होंने गौतम गणधर से पूछा।[५०] गौतम ने समाधान करते हुए कहा—"विज्ञवर! प्रथम तीर्थंकर के श्रमण ऋजु-जड होते है, अन्तिम तीर्थंकर के श्रमण वक्र जड होते हैं और मध्य के तीर्थंकरो के श्रमण ऋजु-प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थंकर के मुनि कठिनता से समझते हैं और अन्तिम तीर्थंकर के शिष्यो को धर्मपालन करना कठिन होता है, किन्तु मध्यवर्ती युग के श्रमणो के लिए समझना और पालना सुलभ होता है।[५१]

चातुर्याम और पञ्चयाम का जो भेद है वह भी बहिर्दृष्टि से है, न कि अन्तर्दृष्टि से। मध्यवर्ती श्रमण परिग्रह त्याग मे ही चतुर्थव्रत का समावेश कर लेते थे। कञ्चन और कांता दोनो का वे अन्योन्याश्रय सम्बन्ध समझते थे।[५२] स्त्री को भी परिग्रह मे गिनते थे। कुछ आधुनिक चिन्तको ने लिखा है कि वे कान्तामुक्त थे, पर उनकी यह कल्पना अनागमिक एव असगत है।

ज्येष्ठ

जैन धर्म गुण प्रधान होने पर भी इसकी परम्परा पुरुष-ज्येष्ठ रही है। सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी भी आज के दीक्षित श्रमण को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमस्कार करती है।[५३]

ज्येष्ठ कल्प का दूसरा अर्थ है—बावीस तीर्थंकरो के समय श्रमणो के सामायिक चारित्र ही होता है, पर प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय श्रमणो के सामायिक चारित्र

के साथ ही छेदोपस्थापनिक चारित्र भी होता है। उसके आधार से ही श्रमण ज्येष्ठ या कनिष्ठ होता है। आज के युग मे सामायिक चारित्र के ग्रहण को लघु-दीक्षा और छेदोपस्थापनिक चारित्र के ग्रहण को वडी-दीक्षा कहते हैं।"[५४]

ज्येष्ठ कल्प का तीसरा अर्थ है कि पिता-पुत्र, राजा-मन्त्री, सेठ-मुनीम, माता-पुत्री आदि यदि एक ही साथ प्रव्रज्या ग्रहण करे तो पिता, राजा, सेठ, माता आदि ज्येष्ठ माने जाए। यदि पुत्र आदि ने प्रथम सामायिक चारित्र आदि ग्रहण कर लिया है और फिर पिता आदि के अन्तर्मानस मे प्रव्रज्या लेने की भावना उद्बुद्ध होती है तो चार-छह माह तक उसे छेदोपस्थापनिक चारित्र न दे। प्रथम पिता आदि को चारित्र देकर ज्येष्ठ वनावे।"[५५]

● प्रतिक्रमण

प्रतिक्रमण जैन धर्म की साधना का प्रमुखतम अंग है। प्रतिक्रमण का अर्थ है "प्रमादवश स्व-स्थान से च्युत होकर पर-स्थान को प्राप्त करने के पश्चात् पुन स्व-स्थान को प्राप्त करना।"[५६] अतिक्रमण का अर्थ समझने से प्रतिक्रमण का अर्थ-वोध स्पष्ट हो जायेगा। अतिक्रमण का अर्थ है सीमा को लाघना और तव प्रतिक्रमण का अर्थ हुआ पुन अपनी सीमा मे लौट आना। आत्मा निज स्वरूप में पर स्वरूप मे चला जाने पर उसे पुन अपने स्वरूप मे ले आने की क्रिया प्रतिक्रमण है।

मिथ्यात्व, अविरति, कपाय, और अप्रशस्त योग ये चार दोष साधना के क्षेत्र मे वहुत ही भयकर माने गए हैं, अत साधक को इन दोपो के परिहार हेतु प्रतिक्रमण करना चाहिए। मिथ्यात्व को त्याग कर, सम्यक्त्व को स्वीकार करना चाहिए। अविरति को छोड कर, व्रत अगीकार करना चाहिए। कपाय से मुक्त होकर, क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता धारण करना चाहिए। अप्रशस्त योगो को छोड कर प्रशस्त योगो मे रमण करना चाहिए।[५७]

वावीस तीर्थंकरो के समय के साधक अतीव विवेकनिष्ठ एव जागरूक थे, अत वे दोप लगने पर ही प्रतिक्रमण करते थे।[५८]

कुछ आचार्यो का अभिमत है कि दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक, इन पाच प्रतिक्रमणो मे मे वावीस तीर्थंकरो के समय दैवसिक और रात्रिक ये दो ही प्रतिक्रमण होते थे शेप नही।[५९] जिनदासगणी महत्तर ने स्पष्ट कहा है कि "प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय नियमित रूप से उभय काल प्रतिक्रमण करने का विधान है और साथ ही दोप काल मे भी ईर्यापथ एव भिक्षा आदि के रूप मे तत्काल प्रतिक्रमण का विधान है। वावीस तीर्थंकरो के शासन काल में दोप लगते ही शुद्धि करली जाती थी, उभय काल नियमेन प्रतिक्रमण का विधान नही था।[६०]

——— ● मासकल्प

श्रमण का आचार है कि वह एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं रहता। चातुर्मास के सिवाय वह शीत (हेमन्त) और ग्रीष्म ऋतु में विहार करता रहता है।[61] भारण्डपक्षी की तरह अप्रमत्त होकर ग्रामानुग्राम विहार करता है।[62]

विहार की दृष्टि से काल को दो भागों में विभक्त किया गया है—वर्षाकाल और ऋतुबद्ध काल। वर्षाकाल में श्रमण चार मास तक एक स्थान पर स्थिर रह सकता है और ऋतुबद्ध काल में एक मास तक। वर्षाकाल का समय एक स्थान पर स्थिर रहने का उत्कृष्ट समय है। अतः उसे संवत्सर कहा है।[63] बृहत्कल्प भाष्य में वर्षावास का परम-प्रमाण चारमास बताया है[64] और शेष काल का परम प्रमाण एक मास।[65] जिस स्थान पर श्रमण उत्कृष्ट काल रह चुका हो, अर्थात् जिस स्थान में वर्षा ऋतु में वर्षावास किया हो उस स्थान में दो चातुर्मास्य अन्यत्र किए बिना चातुर्मास्य न करे, और जिस स्थान पर मासकल्प किया हो उस स्थान पर दो मास अन्यत्र बिताए बिना न रहे।[66] यद्यपि गाथा में तृतीय वार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किंतु स्थविर अगस्त्यसिंह के अभिमतानुसार चकार के द्वारा वह प्रतिपादित है।[67]

भगवान् ऋषभदेव और महावीर के श्रमणों के लिए ही मासकल्प का विधान है, शेष बावीस तीर्थङ्करों के श्रमणों के लिए नहीं।[68] वे चाहे तो दीर्घकाल तक भी एक स्थान पर रह सकते हैं और चाहे तो शीघ्र ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रस्थान कर जाते हैं।

——— ● पर्युषणाकल्प

"परि" उपसर्ग पूर्वक वस् धातु से "अन" प्रत्यय लगाकर पर्युषण शब्द बना है। जिसका अर्थ है आत्मा के समीप रहना, पर-भाव से हटकर स्व-भाव में रमण करना। आत्म-मज्जन, आत्म-रमण या आत्मस्थ होना। आत्म-रमण का यह कार्य एक दिन सामूहिक रूप से मनाया जाता है और वह 'पर्व' कहलाता है। यह पवित्र पर्व आषाढ़ी पूर्णिमा से उनपचास अथवा पचासवें दिन मनाया जाता है।[69] जिसे संवत्सरी महापर्व कहते हैं।

पर्युषणा-कल्प का दूसरा अर्थ है एक स्थान पर निवास करना। यह सालम्बन और निरालम्बन रूप दो प्रकार का है। सालम्बन का अर्थ है सकारण और निरालम्बन का अर्थ है कारण रहित। निरालम्बन के भी जघन्य और उत्कृष्ट-रूप दो भेद हैं।[70]

पर्युषणा के पर्यायवाची शब्द इस प्रकार बतलाए गए हैं—(१) परियाय ववत्थवणा (२) पज्जोसमणा (३) पागइया (४) परिवसणा (५) पज्जुसणा (६) वासावास (७) पढमसमोसरण (८) ठवणा और (९) जेट्ठोग्गह।

यद्यपि ये सब नाम एकार्थक हैं तथापि व्युत्पत्ति भेद के आधार पर इनमें किंचित् अर्थभेद भी है और ये सभी भेद पर्युषणा से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को, [illegible]

काल मे की जाने वाली क्रियाओ का महत्त्वपूर्ण निदर्शन करता है। इन अर्थों से कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी व्यक्त होते हैं।

पर्युषणा काल के आधार से काल गणना करके दीक्षापर्याय की ज्येष्ठता व कनिष्ठता गिनी जाती है अर्थात् जितने पर्युषण—उतनी ही दीक्षापर्याय ज्येष्ठ। पर्युषणा-काल एक प्रकार का 'वर्षमान' गिना जाता रहा है। अतएव पर्युषणा को दीक्षापर्याय की व्यवस्था का कारण माना है।

वर्षावास मे भिन्न प्रकार के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सम्बन्धी कुछ विशेष पर्यायो (क्रियाओ) का आचरण किया जाता है, इस कारण पर्युषण का दूसरा नाम "पज्जोसमणा" है।

गृहस्थ आदि सभी के लिए समानभावेन आराधनीय होने के कारण यह कल्प 'पागइया' (प्राकृतिक) कहलाता है।

इस नियत अवधि मे साधक आत्मा के अधिक निकट रहने का प्रयत्न करता है, अत वह 'परिवसना' भी कहा जा सकता है।

पज्जुसणा—का अर्थ सेवा भी है। इस काल मे साधक आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि निज गुणो की सेवा—उपासना करता है, अत इसे 'पज्जुसणा' भी कहते है।

इस कल्प मे श्रमण एक स्थान पर चार मास तक निवास करता है, अतएव इसे 'वासावास—वर्षावास' कहा गया है।

कोई विशेष कारण न हो तो प्रावृट् काल मे ही चातुर्मास्य व्यतीत करने योग्य क्षेत्र मे प्रवेश किया जाता है, अतएव इसे 'पढमसमोसरण' (प्रथम समवशरण) कहते हैं।

ऋतुवद्ध काल की अपेक्षा इसकी मर्यादाएँ भिन्न होती है। अतएव यह 'ठवणा' है। ऋतुवद्ध काल मे एक-एक मास का क्षेत्रावग्रह होता है, किन्तु वर्षाकाल मे चार मास का, अतएव इसे जेट्ठोग्गह—ज्येष्ठावग्रह कहते हैं।[७१]

अगर साधु आषाढी पूर्णिमा तक नियत स्थान पर आ पहुँचा हो और वर्षावास की जाहिरात करदी हो तो श्रावणकृष्णा पचमी से ही वर्षावास प्रारम्भ हो जाता है। उपयुक्त क्षेत्र न मिलने पर श्रावणकृष्णा दशमी को, फिर भी योग्य क्षेत्र की प्राप्ति न हो तो श्रावण मास की पचदशमी (अमावस्या) का वर्षावास आरम्भ करना चाहिए। इतने पर भी योग्य क्षेत्र न मिले तो पाँच-पाँच दिन वढाते हुए अन्तत भाद्रपद शुक्ला पचमी तक तो प्रारम्भ कर देना अनिवार्य माना गया है। इस समय तक भी उपयुक्त क्षेत्र प्राप्त न हुआ हो तो अन्तत वृक्ष के नीचे ही पर्युषणा कल्प करना चाहिए। पर इस तिथि का किसी भी स्थिति मे उल्लघन नही करना चाहिए।

पचमी, दशमी और पचदशमी, इन पर्वो मे ही पर्युषणाकल्प करना चाहिए, अन्य तिथि—अपर्व मे नही। इस प्रकार का सामान्य विधान होने पर भी विशिष्ट कारण से

आर्य कालक ने चतुर्थी तिथि में पर्युषणा की आराधना की थी, मगर उसे सामान्य नियम नहीं समझना चाहिए और वह किसी परम्परा के रूप में मान्य नहीं की जा सकती।[72]

वर्षावास में भी विशेष कारण से श्रमण विहार कर सकता है। स्थानाङ्ग में पांच कारणों का निर्देश किया है। वे कारण ये हैं—(१) ज्ञान के लिए (२) दर्शन के लिए (३) चारित्र के लिए, (४) आचार्य और उपाध्याय के काल करने पर (५) आचार्य, उपाध्याय आदि की वैयावृत्य के लिए।[73]

कल्पसूत्र की टीकाओं में कुछ अन्य कारण भी वर्षावास में विहार करने के बताये हैं। जैसे कि 'दुष्काल के कारण भिक्षा की उपलब्धि न होने से, राज-प्रकोप होने से, रोग उत्पन्न होने से। जीव उत्पत्ति का आधिक्य होने से, आदि आदि।[74]

वर्षावास समाप्त होने पर श्रमण को विहार करना चाहिए। पर, यदि वर्षा का आधिक्य हो, वर्षा से मार्ग दुर्गम व भग्न हो गये हों, कीचड़ अधिक हो, बीमारी आदि कोई कारण हो तो वह अधिक भी ठहर सकता है।[75]

वर्षावास के लिए भी वही क्षेत्र उत्तम माना गया है, जहां पर तेरह गुण हों। वे गुण इस प्रकार हैं :—(१) जहां पर विशेष कीचड़ न हो, (२) अधिक जीवों की उत्पत्ति न हो, (३) शौच-स्थल निर्दोष हो, (४) रहने का स्थान शान्तिप्रद हो, (५) गोरस की उपलब्धि यथोचित होती हो, (६) जनसमूह विशाल और भद्र हो, (७) कुशल वैद्य हो, (८) औषध सुलभ हो, (९) गृहस्थ वर्ग धन धान्यादि से समृद्ध हो, (१०) राजा धार्मिक हो, (११) श्रमण ब्राह्मण का अपमान न होता हो, (१२) भिक्षा सुलभ हो, (१३) जहां पर स्वाध्याय के योग्य स्थान हो।[76]

भगवान् ऋषभदेव और महावीर के श्रमणों के लिए वर्षावास—पर्युषणा का पूर्ण विधान है, अर्थात् वे चार मास तक के नियत काल में एक ही क्षेत्र में वास करते हैं। शेष बावीस तीर्थङ्कर के श्रमणों के लिए ऐसा नहीं है। वे वर्षा आदि के कारण ठहरते भी थे और कारणाभाव में विहार भी कर जाते थे।[77]

इन दस कल्पों में (१) आचेलक्य, (२) औद्देशिक, (३) प्रतिक्रमण, (४) राजपिण्ड, (५) मासकल्प, (६) पर्युषणा कल्प, ये छह कल्प अस्थिर हैं।[78] (१) शय्यातर पिण्ड, (२) चतुर्याम रूप धर्म, (३) पुरुषज्येष्ठ (४) कृतिकर्म ये चार कल्प अवस्थित हैं और बाईस ही तीर्थंकरों के शासन में मान्य होते हैं।[79]

● कल्प : तीसरी औषध

कल्प के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए पूर्वाचार्यों ने एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।

क्षितिप्रतिष्ठित नगर था। [illegible] राजा था। [illegible] [illegible] के बाद उसकी [illegible] से एक पुत्र-रत्न की उत्पत्ति हुई। [illegible]

प्रसन्न बना रहे एतदर्थ राजा ने अपने राज्य के तीन सुप्रसिद्ध वैद्यो को बुलाया और उनसे कहा—"वैद्यराज ! ऐसी औषध बतलाओ जिसके सेवन से मेरा पुत्र गुलाब के फूल की तरह सदा खिला रहे।"

उन वैद्यो मे से प्रथम वैद्य ने कहा—"राजन् ! मेरी औषध मे वह चमत्कार है कि यदि शरीर मे किसी भी प्रकार का कोई रोग हो तो सेवन करते ही नष्ट हो जायेगा और यदि शरीर मे रोग नही है तो रोग उत्पन्न हो जायेगा।"

राजा ने कहा—"वैद्यवर ! मुझे ऐसी औषध की आवश्यकता नही है। रोग का निमन्त्रण देने वाली यह औषध किस काम की !"

दूसरे वैद्य ने कहा—"राजन् ! मेरी औषध मे अपूर्व शक्ति है। शरीर व्याधि से ग्रसित है तो व्याधि से मुक्त हो जायेगा, यदि शरीर मे व्याधि नही है तो औषध न लाभ करेगी, न हानि ही करेगी।"

राजा ने कहा—"वैद्यवर ! आपकी औषध तो राख मे घी डालने के समान है। इस औषध की भी मुझे आवश्यकता नही है।"

तृतीय वैद्य ने कहा—"राजन् ! मेरी औषध विलक्षण गुणवाली है। यदि शरीर मे रोग है तो उससे मुक्ति मिल जायेगी, रोग नही, तो भविष्य मे रोग उत्पन्न नही होगा। इसके सेवन से शरीर मे अभिनव चेतना, तथा नवस्फूर्ति का सचार होगा। बल, वीर्य की वृद्धि होगी। शरीर सदा स्वस्थ और मन प्रसन्न रहेगा।"

राजा ने प्रसन्न होकर कहा—"वैद्यवर ! तुम्हारी औषाध वस्तुत उत्तम है। राजकुमार के लिए यही उपयुक्त है।"

औषध के सेवन से राजकुमार स्वस्थ, सशक्त और तेजस्वी हो गया।

आचार्यो ने प्रस्तुत दृष्टात के द्वारा यह भाव व्यक्त किया है कि कल्प का पालन भी तृतीय-औषध के समान हितावह है। दोष लगने पर भी और दोषमुक्त अवस्था मे भी।[८०] दोष लगा है तो शुद्धि हो जाती है और दोष नही लगा है तो सदा सावधानी और जागृति रखने से भूल की धूल नही लगती। इस प्रकार कल्प एक रसायन है, जो आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि गुणो को परिपुष्ट करता है।

——— ● अस्थिर और अवस्थित कल्प क्यो ?

एक जिज्ञासा हो सकती है कि सभी तीर्थङ्करो के श्रमणो का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है, फिर प्रथम, अन्तिम और मध्य के बावीस तीर्थङ्करो के श्रमणो के आचार कल्प मे यह अन्तर क्यो है ? अस्थिर और अवस्थित कल्प का भेद क्यो है ?

समाधान है—प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमण जड और सरल होते थे। अजित—आदि बावीस तीर्थङ्करो के काल मे श्रमण विज्ञ और सरल होते थे। भगवान् महावीर के

श्रमण जड और वक्र होते थे, अतः उन्हे सुख-बोध्य एवं सुपाल्य हो, इस दृष्टि से मोक्ष मार्ग एक होने पर भी आचार-कल्प मे अन्तर किया गया है।

प्रथम तीर्थङ्कर के श्रमण जड होते थे, उनमे बावीस तीर्थङ्करो के श्रमणो जितनी प्रतिभा की तेजस्विता नही होती। वे किसी भी वस्तु के अन्तस्तल तक जल्दी नही पहुँच पाते, सरल होने के कारण वे भूल को सहज रूप मे स्वीकार कर लेते थे। जैसे कि निम्न उदाहरण से स्पष्ट है—

एक बार भगवान् ऋषभदेव के श्रमण शौच के लिए गए। बहुत विलम्ब से लौटे। गुरु ने पूछा—"इतना विलम्ब कैसे हुआ?" शिष्यो ने निवेदन किया—"गुरुदेव! मार्ग मे एक नट नृत्य कर रहा था, हम उसे देखने के लिए रुक गए।" गुरु ने उपालम्भ देते हुए कहा—"वत्स! श्रमणो को नट का नृत्य नही देखना चाहिए।" "तहत्ति" कहकर उन्होने गुरु के आदेश को शिरोधार्य किया।

कुछ ही दिन व्यतीत हुए, एक दिन पुनः शिष्य विलम्ब से आये। गुरु ने कारण पूछा। उन्होने बताया, 'गुरुदेव! मार्ग मे एक नटनी का मनोहर नृत्य हो रहा था, उसे देखने के लिए हम रुक गये।' आज्ञा की अवहेलना करने के कारण गुरु ने विशेष उपालम्भ देते हुए कहा—जब नट का नृत्य देखने का निषेध किया गया तो स्वतः ही नटनी के नृत्य का निषेध भी समझ लेना चाहिए। क्योकि वह विशेष राग का कारण है। शिष्यो ने अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य मे सावधानी रखने का सकल्प किया।

बावीस तीर्थङ्करो के श्रमण मेधावी होते थे। उनके जीवन मे भी ऐसा ही प्रसग आया। गुरु ने नट-नृत्य का निषेध किया, उन्होने बुद्धि की प्रखरता से नटनी आदि सभी प्रकार के नृत्यो का निषेध समझ लिया।

महावीर के श्रमण जड और वक्र होते थे। उनके जीवन मे जब ऐसा प्रसग आया तो उन्होने गुरु को उपालम्भ देते हुए कहा—"आपकी भूल है। आपने प्रथम स्पष्टीकरण क्यो नही किया कि 'नट का नृत्य नही देखना और नटनी का भी नही देखना चाहिए।' आपने ऐसा कहा नही, सिर्फ नट के नृत्य का निषेध किया, अतः हम नटनी का नृत्य देखने लग गए।' यह है जडता के साथ वक्रता का निदर्शन!

——— ● जड और सरल

दूसरा दृष्टान्त देखिये—कोंकण देश मे एक श्रेष्ठी रहता था। आचार्य के वैराग्य-रस उपदेश को सुनकर उसे ससार से विरक्ति हुई। दीक्षा ग्रहण की। एक दिन ईर्यापथिके कायोत्सर्ग मे उसे अधिक समय लगा। गुरु ने पूछा—"वत्स! इतने समय तक ध्यान मे क्या चिन्तन किया था?

शिष्य ने कहा—"गुरुदेव! जीव दया का सहज चिन्तन कर रहा था।

समान मनोवांछित ऋद्धि, समृद्धि और आत्म-सुख का प्रदाता है।[८२] जो मानव जिन-शासन की प्रभावना करता हुआ, जिन धर्म पर दृढ-निष्ठा रखता हुआ, एकाग्रचित्त से कल्पसूत्र का श्रवण और पठन करता है वह शीघ्र ही ससार सागर से पार हो जाता है।[८३] महापुरुषो के गुणानुवाद करने से कर्मों की निर्जरा होती है। सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है।[८४] सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का लाभ होता है। तथा इनके लाभ से जीव सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है।[८५]

अर्हम्

नमोऽत्थुण समणस्स भगवओ वीरवद्धमाणसामिस्स

चरिमसुयकेवलिसिरिभद्दबाहुसामिविरइय

सिरिकप्पसुत्तं

[दसासुयक्खंधसुत्तस्स अट्ठम अज्झयण]

मूल. अर्थ. विवेचन

गुरु ने पुन पूछा—"बताओ किस प्रकार चिंतन कर रहे थे ?'

शिष्य—"गुरुदेव ! मेरे घर खेती का धन्धा था। मैं खेत को रेशम की तरह मुलायम करता, वर्षा होने पर उसमे धान्य बोता, फिर उसमे घास आदि जो भी पैदा हो जाता उसे उखाड कर एक तरफ करता, और खेती की तल्लीनता से रक्षा करता। गाँव मे मेरी ही खेती सबसे बढिया होती थी। अब मेरे भोले-भाले लडके क्या करते होगे ? यदि ध्यान नही रखेंगे तो धान अच्छा नही पैदा होगा और बिना धान के उनकी कैसी दयनीय दशा होगी ?"

गुरु ने कहा—"शिष्य ! इस प्रकार का ध्यान धर्म-ध्यान नही, दुर्ध्यान है। अहिंसक ध्यान नही, हिंसक ध्यान है। भविष्य मे इस प्रकार का ध्यान न करना।" शिष्य ने भूल स्वीकार की। यह है जडता के साथ सरल मानस का चित्रण !

भगवान ऋषभदेव के शासन काल की सरल मनोवृत्ति का परिचय देने वाला एक उदाहरण है। एक शिष्य भिक्षा लेकर आया। गुरु ने भिक्षा पात्र खोला, पात्र मे एक ही बडा देखकर गुरू ने साश्चर्य मुद्रा मे पूछा—'वत्स ! ऐसा कौन दाता मिला, जिसने एक ही बडा दिया ?'

शिष्य ने विनम्र शब्दो मे निवेदन किया—"गुरुदेव ! गृहस्थ ने मुझे उदार भावना से बत्तीस गर्मागर्म बडे दिए थे। मैंने सोचा, ये सारे बड़े अकेले गुरूजी नही खायेंगे। आधे मुझे भी देंगे ही। फिर गर्मागर्म बडो को ठण्डा करने से लाभ क्या है ? मैंने अपने हिस्से के सोलह बडे खा लिए। बडे बहुत ही अच्छे लगे। फिर सोचा, सोलह बडो के भी तो दो विभाग किए जायेगे। यह सोच आठ और खा गया। पूर्ववत् विचार करता हुआ, चार और खा गया। फिर दो खा गया। फिर विभाग का विचार करता हुआ एक खा गया। इस प्रकार इकतीस बडे मैंने खाये।"

गुरु ने कहा—'वत्स ! बिना गुरूजी को खिलाए वे बडे तुम्हारे गले के नीचे कैसे उतर गए ?'

एक बडा जो पात्र मे पडा था उसे मुँह मे डालते हुए शिष्य ने कहा—'गुरूजी ! इस प्रकार वे गले के नीचे उतर गए।'

शिष्य की सरलता देखकर गुरूजी की आँखो मे मन्द-स्मित की रेखाये थिरक उठी। गुरूजी ने समझाया—'वत्स ! मार्ग मे चलते हुए, तथा गुरुजी को बिना दिखलाए खाना श्रमणाचार के विरुद्ध है।' शिष्य को अपनी भूल का परिज्ञान हुआ, भविष्य में ऐसी भूल न करने का वचन दिया।

अब देखिए एक वक्र श्रेष्ठी पुत्र का उदाहरण भी। एक सेठ ने अपने वाचाल पुत्र को शिक्षा देते हुए कहा—'पुत्र ! बडो के सामने नही बोलना चाहिए।'

पुत्र ने सोचा—'पिता को ऐसा छट्ठी का दूध पिलाऊँ जिससे पिता भी याद रखे। एक दिन सभी घर वाले बाहर गये हुए थे। वह अकेला ही घर मे था। घर के सभी द्वार बन्द कर वह एक कमरे मे बैठ गया। पिता लौटे, आवाज दी, पर वह न बोला और न द्वार ही खोला। सेठ ने सोचा, सम्भव है कुछ अनहोनी घटना घटित हो गई हो, चिन्तातुर दीवाल को लाघ कर अन्दर पहुँचा। लडका अन्दर बैठा हुआ मन ही मन हस रहा था। सेठ ने कहा—'अरे मूर्ख! इतनी आवाजे दी, बोला क्यो नही? उसने खिलखिलाकर हसते हुए कहा—'आपने ही तो कहा था कि बडो के सामने बोलना नही।'

आचार्यों ने इन उदाहरणो मे प्रथम, अतिम एव मध्यम तीर्थङ्करो के युग का मनोविश्लेषण उपस्थित किया है कि तद्युगीन मनुष्यो की वृत्तियाँ, एव मन स्थिति किस प्रकार, ऋजुजड, वक्रजड एव ऋजु-प्राज्ञ होती थी।

● पर्युषण और कल्पसूत्र का महत्त्व

भारतवर्ष पर्व प्रधान देश है। पर्वों का जितना सूक्ष्मविवेचन और विशद विश्लेषण भारतीय साहित्य मे दृष्टिगोचर होता है उतना अन्य साहित्य मे नही। यहाँ सात वार हैं तो नौ त्यौहार!

पर्व दो प्रकार के होते हैं, लौकिक तथा लोकोत्तर। लौकिक पर्व, आनन्द, भोग एव खेल कूद से मनाये जाते हैं, किन्तु लोकोत्तर पर्व—त्याग, तपस्या एव साधना के द्वारा।

लोकोत्तर पर्वों मे भी पर्युषणपर्व का अपना विशिष्ट स्थान है। अपनी कुछ मौलिक विशेषताओ के कारण ही यह 'महापर्व' कहलाता है। जैसे—क्षीरो मे गोक्षीर, जलो मे गगा नीर, पट सूत्रो मे हीर, वस्त्रो मे चीर, अलकारो मे चूडामणि, ज्योतिषो मे निशामणि, तुरगो मे पचवल्लभ किशोर, नृत्य मे मयूर-नृत्य, गजो मे ऐरावत, दैत्यो मे रावण, वनो मे नन्दन वन, काष्ठो मे चन्दन, तेजस्वियो मे आदित्य, राजाओ मे विक्रमादित्य, न्यायकर्त्ताओ मे श्रीराम, रूप मे काम, सतियो मे राजीमती, शास्त्रो मे भगवती, वाद्यो मे भभा, स्त्रियो मे रम्भा, सुगन्धो मे कस्तूरी, वस्तुओ मे रत्नमजुरी, पुण्य-धारियो मे नल, पुष्पो मे कमल, वैसे ही पर्वो मे पर्युषण पर्व है। पर्युषण पर्व के पुण्य-पलो मे साधक को बहिरात्मभाव से अधिकाधिक हटकर अन्तरात्मा मे रमण करना चाहिए। त्याग, वैराग्य और प्रत्याख्यान से जीवन को सजाना चाहिए।

पर्युषण मे जीवनोत्थान की मगलमय प्रेरणा प्राप्त करने के लिए ही कल्पसूत्र के वाचन व श्रवण की परम्परा है। कल्पसूत्र इसी दृष्टि से महत्त्व का आगम है। इसके तीन विभाग है। प्रथम विभाग मे तीर्थंकर भगवन्तो का पवित्र चरित्र है। द्वितीय विभाग मे स्थविरावली है और तृतीय विभाग मे समाचारी है।[१]

कल्पसूत्र के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए आचार्यों ने कहा है, कल्पसूत्र आचार और धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह कल्पसूत्र के

समान मनोवाँछित ऋद्धि, समृद्धि और आत्म-सुख का प्रदाता है।[८२] जो मानव जिन-शासन की प्रभावना करता हुआ, जिन धर्म पर दृढ-निष्ठा रखता हुआ, एकाग्रचित्त से कल्पसूत्र का श्रवण और पठन करता है वह शीघ्र ही ससार सागर से पार हो जाता है।[८३] महापुरुषो के गुणानुवाद करने से कर्मों की निर्जरा होती है। सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है।[८४] सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का लाभ होता है। तथा इनके लाभ से जीव सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है।[८५]

अर्हम्

नमोऽत्थुण समणस्स भगवओ वीरवद्धमाणसामिस्स

चरिमसुयकेवलिसिरिभद्दबाहुसामिविरइय

सिरिकप्पसुत्तं

[दसासुयक्खधसुत्तस्स अट्ठम अज्झयण]

मूल. अर्थ. विवेचन

॥ नमः श्री सर्वज्ञाय ॥

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

अर्थ—अरिहन्तो को नमस्कार हो ।
सिद्धों को नमस्कार हो ।
आचार्यों को नमस्कार हो ।
लोक मे स्थित सर्व साधुओ को नमस्कार हो ।

यह पंच नमस्कार सर्व पापो को नाश करने वाला और सर्वमंगलो मे प्रथम मंगल है ।

विवेचन—नमस्कार महामन्त्र, जैन संस्कृति का एक सर्वमान्य प्रभावशाली मन्त्र है । यह संसार के समस्त मन्त्रो मे मुकुटमणि के समान है । कल्पतरु, चिंतामणि, कामकुम्भ और कामधेनु के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । लोक में अनुपम है । आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक सभी प्रकार की बाधाओं को दूर करने वाला अमोघमन्त्र है ।

इसके जाप से पाप नष्ट होता है, बुद्धि की शुद्धि होती है, लक्ष्मी की वृद्धि होती है, सिद्धि की उपलब्धि होती है, आरोग्य की प्राप्ति होती है, चिन्ताएँ नष्ट होती है। भूत, प्रेत, राक्षस, पिशाच, डाकिनी-शाकिनी आदि सभी प्रकार के उपद्रवो का उपशमन होता है। लौकिक और लोकोत्तर सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते है। मलिन से मलिन एव पतित-से-पतित आत्मा भी नमस्कार मत्र के जाप से निर्मल तथा पवित्र हो जाता है।

आचार्य कहते है—'नमस्कार महामत्र के एक अक्षर का ध्यान करने से भी सात सागरोपम काल मे किए गए पाप नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण महामत्र का ध्यान करने से पाँच सौ सागरोपम काल मे सञ्चित पापो का विनाश होता है।[1] जो नमस्कार महामत्र का निष्कामभाव से विधिपूर्वक एक लाख बार जाप करता है, उसकी अर्चना करता है, वह तीर्थंकरनामकर्म की उपार्जना करता है, वह शाश्वत-धाम (मुक्ति) को प्राप्त होता है।[2] जो भावुक भक्त आठ करोड, आठ हजार, आठ सौ आठ वार नमस्कार महामन्त्र का जाप करता है वह तीसरे भव मे मोक्ष प्राप्त करता है।'[3]

जैन आगम व आगमेतर साहित्य मे ऐसी अनेक कथाएँ विद्यमान है जिनमे नमस्कार महामन्त्र का अद्भुत प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। महामत्र के प्रवल प्रभाव से ही श्रेष्ठी सुदर्शन ने शूली को सिंहासन के रूप मे परिणत किया था। नाग जैसे क्षुद्र जीव को भी धरणेन्द्र की पदवी प्राप्त हुई थी। सती सुभद्रा ने कच्चे धागो से छलनी को बाँध कर कुएँ से पानी निकाला था और चम्पा के द्वार खोले थे। सती सीता ने अग्नि-कुण्ड को जल-कुण्ड के रूप मे वदल दिया था। आग की लपलपाती लपटें भी वर्फ-सी शीतल हो गई थी। सती श्रीमती ने भयकर विषधर को सुमन-माला के रूप मे परिवर्तित कर दिया था। इसी महामन्त्र के चमत्कार से ही श्रीपाल और मैना सुन्दरी का जीवन सुखी वना था। द्रौपदी का चीर वढा था। विष को पीयूष, शत्रु को मित्र, अग्नि को पानी, दु खी को सुखी वनाने वाला दिव्यप्रभावशाली यह महामन्त्र नमस्कार ही है।

यह महामन्त्र अनादि है, भूतकाल मे अनन्त तीर्थंकर हुए हैं, भविष्य

मे अनन्त तीर्थंकर होगे, पर कोई भी इस महामन्त्र की आदि नही जानता है।[४] जिसकी आदि है नही, उसकी आदि जानी भी कैसे जा सकती है ? यह अनादि-निधन मन्त्र है।

इस महामन्त्र मे व्यक्ति-विशेष की उपासना नही, किन्तु गुणो की उपासना की गई है। आत्मिक गुणो को विकसित करने वाले जो महापुरुष है, उनको नमस्कार किया गया है। यह महामन्त्र पन्थ, परम्परा व सम्प्रदाय की परिधि से मुक्त है। अत मानवमात्र की एक अनमोल निधि है, और सबके लिए समान भाव से सदा स्मरणीय है।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था। तं जहा-हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते१ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए२ हत्थुत्तराहिं जाए३ हत्थुत्तराहिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाण-दंसणे समुप्पन्ने५ साइणा परिनिव्वुए भयवं ॥१॥

अर्थ—उस काल उस समय भगवान् महावीर के पांच [कल्याण] हस्तोत्तर [उत्तराफाल्गुनी] नक्षत्र मे हुए। हस्तोत्तर नक्षत्र मे भगवान् स्वर्ग से च्यवकर गर्भ मे आये (१)। हस्तोत्तर नक्षत्र मे भगवान् एक गर्भ से दूसरे गर्भ मे संहरण किए गए (२)। हस्तोत्तर नक्षत्र मे भगवान् जन्मे (३)। हस्तोत्तर नक्षत्र मे मुण्डित होकर गृहत्याग कर अनगारत्व स्वीकार किया (४)। हस्तोत्तर नक्षत्र मे भगवान् को अनन्त, अनुत्तर, अव्याबाध, निरावरण समग्र और परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ (५)। स्वाति नक्षत्र मे भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए (६) ॥१॥[६]

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तीन शब्द विचारणीय है। "समणे" "भगवं" और "महावीरे"। आचाराग और कल्पसूत्र मे भगवान महावीर के तीन नाम

आए है, उनमे दूसरा नाम "समण" है। "समण" शब्द के 'समन' 'सुमनस्' और 'श्रमण' ये तीन सस्कृत रूप होते है।

सभी जीवो को आत्म-तुला की दृष्टि से तोलने वाला समतायोगी "समन" कहलाता है।[६] राग द्वेष रहित मध्यस्थवृत्ति वाला 'समनस्' अथवा 'सुमनस्' कहलाता है।[७] 'समनस्' के स्थान पर 'सुमनस्' का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ है–'जिसका चित्त सदा कल्याणकारी कार्यो मे लगा रहता हो, मन से कभी पाप का चिंतन न करता हो उसे 'समनस्' या 'सुमनस्' कहा जाता है।'

तपस्या से खिन्न[८] क्षीणकाय और तपस्वी 'श्रमण'[९] कहलाता है। समभाव प्रभृति सद्गुणो से सम्पन्न होने से भगवान् श्रमण कहलाते थे।

भगवान् में–"भग" शब्द का प्रयोग ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म और प्रयत्न इन छह अर्थो मे होता है।[१०] जिसके यश आदि का महान विस्तार होता है उसे भगवान् कहते है।[११] यजुर्वेद (१५। ३८) के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य उव्वट ने भी 'भग' शब्द के ये ही अर्थ मान्य किए है। बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार भगवान् शब्द की व्युत्पत्ति यो है–जिसके राग, द्वेष, मोह एवं आश्रव भग्न–नष्ट हो गये है–वह भगवान् है।[१२]

महावीर–यश और गुणो मे महान् वीर होने से भगवान् महावीर कहलाए।[१३] जो शूर–विक्रान्त होता है उसे वीर कहते है, कषायादि महान् शत्रुओ को जीतने से भगवान् महाविक्रात–महावीर कहलाये।[१४] आचारांग मे कहा है–'भयकर भय-भैरव तथा अचेलकता आदि कठिन तथा घोराति-घोर परीषहो को दृढतापूर्वक सहन करने के कारण देवो ने उनका नाम महावीर रखा।[१५]

कल्पसूत्र के चूर्णिकार ने[१६] और टिप्पणकार आचार्य पृथ्वीचन्द्र[१७] ने हस्तोत्तरा का अर्थ किया है "हस्त से उत्तर हस्तोत्तर है", अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। नक्षत्रो की गणना करने से हस्त नक्षत्र जिसके उत्तर (पहले) आता है वह नक्षत्र, इसी नक्षत्र मे भगवान् महावीर के पाँच कल्याणक हुए।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढ-सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुंडरीयाओ महा-विमाणाओ वीसं सागरोवमट्ठियाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणद्धभरहे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमाए समाए विइक्कंताए दुस्समसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए पंचहत्तरीए वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहिं सेसेहिं इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं दोहि य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोतमसगुत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं वीइक्कंतेहिं समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थकरे पुव्वतित्थकरनिद्दिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्ख-त्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीर-वक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२॥

अर्थ—उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर ग्रीष्मकाल के चतुर्थमास और आठवें पक्ष अर्थात् आषाढ शुक्ल षष्ठी के दिन महाविजय पुष्पोत्तरप्रवर पुण्डरीक महाविमान से बीस सागरोपम की आयु, भव और स्थिति का क्षय करने के पश्चात् च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध भरत में, इसी अवसर्पिणी काल में, जब सुषमासुषम, सुषम, सुषम-दुषम, नामक आरे

व्यतीत हो चुके थे और दुषम-सुषम नामक आरा भी प्राय समाप्त हो गया था, अर्थात् एक कोटाकोटी सागरोपम मे बयालीस हजार वर्ष न्यून प्रमाणवाला दुषम सुषम-नामक आरे का वहुभाग व्यतीत हो गया था। केवल पचहत्तर (७५) वर्ष और साढे आठ माह शेष रह गये थे। इससे पूर्व ही इक्ष्वाकु कुल मे जन्म ग्रहण किये हुए और काश्यपगोत्रीय इक्कीस तीर्थंकर हो गये थे और हरिवश कुल मे जन्म पाये हुए गौतमगोत्र वाले दो तीर्थंकर भी हो चुके थे। इस प्रकार तेवीस तीर्थंकर हो चुकने पर 'श्रमण भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थंकर होगे' इस प्रकार पूर्व-तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट भगवान् महावीर माहण-कुण्डग्राम नगर मे कोडाल गोत्रीय ऋपभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे, अर्द्धरात्रि के समय, हस्तोत्तरा [उत्तर-फाल्गुनी] नक्षत्र के योग मे, देव सम्वन्धी आहार, भव और शरीर त्याग कर गर्भ रूप मे उत्पन्न हुये।

विवेचन—जैनागमो मे वीस कोटाकोटी सागरोपम परिमित समय को काल-चक्र कहा है। उसके दो विभाग है, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी[18]। दस कोटाकोटी सागरोपम परिमित वह ह्रासकाल, जिसमे समस्त पदार्थो के वर्णादि गुणो की क्रमशः हानि होती है, अवसर्पिणी है[19] और दस कोटाकोटी सागरोपम परिमित वह उत्क्रान्ति काल, जिसमे समस्त पदार्थो के वर्णादि गुणो की क्रमश वृद्धि होती है, उत्सर्पिणी कहलाता है।[20]

प्रत्येक काल—चक्रार्ध मे छह-छह आरे होते है।[21] अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे का नाम "सुषम-सुषम" है। यह चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण है। उस समय हस्त-तल की भाँति भूमि सम होती है। पचवर्ण मणियो के समान सुन्दर तृणादि से युक्त पृथ्वी होती है। यत्र-तत्र उद्दाल, कोद्दाल, मोद्दाल, कृतमाल, नृतमाल, दतमाल, नागमाल, श्रृगमाल, शखमाल और श्वेतमाल[22] वृक्षो की छटादार छाया ही नही, अपितु उन वृक्षो मे सुगन्धित पुष्प और मधुर फल लगे होते है। साथ ही भेरुतालवन, हेरुतालवन, मेरुतालवन, पभयाल-वन, सालवन, सरलवन, सप्तवर्णवन, पूगफलीवन, खज्जुरीवन, नारिकेलवन प्रभृति सघनवन[23] भी यत्र तत्र होते है। मानव, प्रकृति से सरल, मानस

से कोमल और उपशान्त रागद्वेष वाले होते हैं। शरीर से सुन्दर एवं स्वस्थ होते हैं। उस समय मानव की उत्कृष्ट ऊँचाई तीन कोस की और उत्कृष्ट आयु तीनपल्योपम की होती है।[24] तीन दिन के पश्चात् उन्हे क्षुधा लगती है। तब वे अरहर की दाल के बराबर मात्रावाला अल्पतम भोजन करते है।[25] दस प्रकार के कल्पवृक्षो से मनोवाछित सुखसाधनो की उपलब्धि होती है। इस युग मे मानव सुखी ही नही, परमसुखी तथा सतुष्ट होता है।

द्वितीय आरे का नाम 'सुषम' है। यह तीन कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण होता है। पूर्वापेक्षया वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की उत्कृष्टता का ह्रास हो जाता है। इस आरे के प्रारम्भ मे मानव की आयु दो पल्योपम की होती है और आरे के अन्त के समय एक पल्योपम की। ऊँचाई भी प्रारम्भ मे दो कोस की और अन्तिम समय एक कोस की। पूर्ववत् उनकी भी इच्छाएँ कल्पवृक्षो से पूर्ण होती है।

तृतीय आरे का नाम 'सुषम-दुषम' है। यह दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण है। इस आरे के प्रारम्भ मे मानव की ऊँचाई एक कोस की और उतरते आरे पाँच सौ धनुष्य की होती है। आयुष्य आदि मे एक पल्योपम का और उतरते आरे करोड पूर्व का होता है। इस आरे के एक पल्योपम का आठवाँ भाग जब शेष रहता है तब प्रथमकुलकर का जन्म होता है और चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष व साढे आठ माह शेष रहने पर प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है।[26]

चतुर्थ आरे का नाम 'दुषम-सुषम' है। यह बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोटाकोटी सागरोपम का होता है। प्रारम्भ में मानव की ऊँचाई पाँच सौ धनुष्य की और उतरते आरे सात हाथ की होती है। प्रारम्भ मे करोड पूर्व की आयु और अन्त में सौ वर्ष से कुछ अधिक उम्र होती है। इस आरे मे तेवीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव तथा बलदेव होते है।[27]

पचम आरे का नाम 'दुषम' है। यह इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इसमें मानव की आयु प्रारम्भ में एक सौ से कुछ अधिक वर्षों की होती है और

अन्त मे बीस वर्ष की। प्रारम्भ मे सात हाथ की ऊँचाई होती है[२८] और बाद मे धीरे धीरे कम होते हुए एक हाथ की रह जाती है। इस आरे मे जन्म ग्रहण किया हुआ व्यक्ति मोक्ष नही पाता। मानव स्वभाव अमर्यादित व उच्छृङ्खल होता है।

छट्ठे आरे का नाम 'दुषम-दुषम' है। यह भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इस आरे के प्रारम्भ मे मानव की उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष की और अन्तिम समय सोलह वर्ष की होती है। प्रारम्भ मे एक हाथ की ऊँचाई और धीरे-धीरे मुण्ड हाथ की। इस आरे मे पृथ्वी अङ्गारे के समान तप्त होती है। मानव कुरूप, निर्लज्ज, कपटी और अमर्यादित स्वभाव वाले होते है। वे बहत्तर प्रकार के बिलो मे निवास करते है।[२९]

इस प्रकार अवसर्पिणी काल के छह आरे समाप्त होने पर उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होता है। उसमें दुषम-दुषम, दुषम, दुषम-सुषम, सुषम-दुषम सुषम, और सुषम-सुषम आरे होते हैं। उत्सर्पिणी काल मे क्रमश अधिकाधिक सुख आदि की अभिवृद्धि होती है।[३०]

प्रत्येक कालचक्रार्ध मे चौबीस तीर्थंकर होते है। भगवान् श्री महावीर के पूर्व तेवीस तीर्थंकर हो चुके थे। उनमे से भगवान् श्रीमुनिसुव्रत और नेमिनाथ ये दो तीर्थंकर हरिवश मे उत्पन्न हुए थे और शेप, इक्कीस तीर्थंकर काश्यप गोत्रीय (इक्ष्वाकुवशीय) थे।[३१] काश्य का अर्थ इक्षु-रस है, उसका पान करने के कारण भगवान् ऋपभ काश्यप कहलाये।[३२] भगवान् ऋषभदेव के गोत्र मे उत्पन्न होने से अन्य तीर्थंकर भी काश्यप गोत्रीय कहलाये।[३३] काश्य का दूसरा अर्थ क्षत्रियतेज है और उस क्षत्रिय तेज की रक्षा करने वाले को काश्यप कहा है।[३४]

भगवान् श्री महावीर के लिए प्रस्तुत सूत्र में 'पूर्वनिर्दिष्ट' विशेषण आया है। उसका तात्पर्य भगवान् श्री ऋषभदेव आदि पूर्ववर्त्ती तेवीस तीर्थकरो की भविष्यवाणी से है।

भगवान महावीर के पूर्वभव

जैनधर्म अवतारवादी नही, किन्तु उत्तारवादी है। उसका यह सुनिश्चित मन्तव्य है कि कोई भी आत्मा या सत्पुरुष ईश्वर या ईश्वर का अंश नही होता। पूर्ण शुद्धस्थिति प्राप्त करने के पश्चात् पुन अशुद्धस्थिति मे नही आ सकता। अवतार का अर्थ है ईश्वरत्व से नीचे उतर कर मानव बनना। और उत्तार का अर्थ है मानव से भगवान् बनना। जैनधर्म के तीर्थंकर नित्यबुद्ध व नित्यमुक्त रूप में रहने वाले ईश्वर नही है और न वे ईश्वर के अवतार या अंश ही है। उनकी जीवन गाथाओ से स्पष्ट है कि उनका जीवन भी प्रारम्भ मे हमारी ही तरह राग-द्वेष आदि से कलुषित था। परन्तु संयम-साधना एवं तपः आराधना करके उन्होने जीवन को निखारा था। एक जीवन की साधना से नही, अपितु अनेक जन्मो की साधना-आराधना से वे तीर्थंकर बने। आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र, महावीर-चरिय, और कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओ मे महावीर के सत्ताईस पूर्व भवो का वर्णन है और दिगम्बराचार्य गुणभद्र रचित उत्तरपुराण में तेतीस भवो का निरूपण है।[३७] इसके अतिरिक्त नाम, स्थल तथा आयु आदि के सम्बन्ध मे भी दोनो परम्पराओं मे अन्तर है[३८] किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उनका तीर्थंकरत्व अनेक जन्मो की साधना का निश्चित परिणाम था।

प्रश्न हो सकता है—सत्ताईस पूर्वभवो का ही निरूपण क्यो किया गया है ? उत्तर है—किसी भी जीव के भवभ्रमण की आदि नही है, अतएव पूर्वभवो की गणना करना भी सम्भव नही है, तथापि जिस पूर्वभव मे मोक्षमार्ग की आराधना का आरम्भ होता है, उसी भव से पूर्वभवो की गणना की जाती है। इस दृष्टि से उसी भव एव उसी जन्म का महत्त्व है जिस भव तथा जिस जन्म मे मोक्षमार्ग के प्रथम चरण रूप सम्यग्दर्शन, अथवा सत्बोधि की प्राप्ति होती है। महावीर के जीव ने नयसार के भव में ही सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, अत उसी भव से उनके पूर्वभवो की परिगणना की गई है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि सत्ताईस भवो की जो गणना है, वह भी क्रमबद्ध नही है। इन भवो के अतिरिक्त अनेक बार उन्होने नरक, देव आदि के भव भी

ग्रहण किये है, पर, उन क्षुद्रभवो का नाम निर्देश नही है। वहाँ आचार्य **"संसारे कियन्तमपि कालमटित्वा"**[३७] अर्थात् कुछ काल पर्यन्त ससार-भ्रमण करके, ऐसा लिखकर आगे वढ गये है।

सत्ताईस भवो की परिगणना के भी दो प्रकार ग्रन्थो मे प्राप्त होते हैं। आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि, मलयगिरिवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, कल्प-सूत्र की टीकाओ और पुरातत्त्ववेत्ता श्री कल्याणविजयजी के मन्तव्यानुसार सत्ताईसवाँ भव देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में जन्म होना है जब कि समवायाङ्ग सूत्र तथा उसकी वृत्ति के अनुसार छब्बीसवाँ भव देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे जन्म ग्रहण करने का है और सत्ताईसवाँ भव त्रिशलारानी के गर्भ मे आने का। श्री महावीर के उन भवो का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(१) नयसार

अपरमहाविदेह के महावप्र विजयक्षेत्र की जयन्ती नगरी के शत्रुमर्दन नामक सम्राट् थे।[३८] प्रस्तुत प्रान्त के पुरप्रतिष्ठान ग्राम मे भगवान् महावीर का जीव उस समय नयसार नामक ग्रामचिन्तक बना।[३९] सम्राट् को नव्य-भव्य प्रासाद हेतु काष्ठ की आवश्यकता हुई।[४०] सम्राट् के आदेशानुसार नयसार अनेक गाडियो को लेकर अरण्य में पहुँचा। भोजन तैयार करके जीमने को बैठने का विचार कर ही रहा था कि सार्थ (समूह) से परिभ्रष्ट और मार्ग-विस्मृत, क्षुधा और पिपासा से पीडित तपस्वी मुनि उधर निकल आये।[४१] नयसार के पूछने पर उत्तर देते हुए मुनियो ने कहा—"भद्र! हमने सार्थवाह के साथ प्रस्थान किया था, सार्थवाह ने विश्राम लिया और हम निकटस्थ ग्राम मे भिक्षा हेतु गये। पुन अपने विश्राम स्थल पर गये तो देखा कि—सार्थवाह पूर्व ही प्रस्थान कर गया था, अब हम मार्ग भूलकर जंगल मे इधर उधर घूम रहे हैं।" नयसार ने भक्ति-भावना से विभोर होकर वह निर्दोष आहार मुनिजनों को प्रदान किया, मार्ग वताया, मुनियो ने भी उपदेश देकर उसे मोक्ष का मार्ग वतलाया। नयसार सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ[४२] और परित-ससारी (अल्प-ससारी) वना।

(२) प्रथम देवलोक

नयसार वहा से आयु पूर्णकर सौधर्मकल्प मे एक पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव बना।[43]

(३) मरीचि [त्रिदण्डी]

नयसार का जीव स्वर्ग से आयु पूर्ण होने पर तृतीय भव मे चक्रवर्ती सम्राट् भरत का पुत्र मरीचि के रूप मे उत्पन्न हुआ।[44] वहा भगवान् श्री ऋषभदेव के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर श्रमणत्व स्वीकार किया।[45] पर एक बार भीष्म-ग्रीष्म के आतप मे प्रताडित होकर मरीचि साधना के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग मे विचलित हो गया। उसके अन्तर्मानस मे ये विचार लहरियाँ तरगित हुई कि "मेरु पर्वत सदृश यह सयम का गुरुतर भार मैं एक मुहूर्त भी वहन करने मे असमर्थ हूँ। क्या मुझे पुन गृहस्थाश्रम स्वीकार करना चाहिए? नहीं, कदापि नही। किन्तु जबकि सयम का विशुद्धता से पालन नही कर पाता, तब फिर श्रमण वेष को छोडकर नवीन वेष-भूषा अपनाना ही उचित है।"[46] उसने सकल्प किया—"श्रमण सस्कृति के श्रमण त्रिदण्ड—मन, वचन काय के अशुभ व्यापारो से रहित होते हैं, इन्द्रिय-विजेता होते है, पर मैं त्रिदण्ड से युक्त हूँ और अजितेन्द्रिय हूँ अत इसके प्रतीक रूप मे त्रिदण्ड धारण करूँगा।"[47]

"श्रमण द्रव्य और भाव से मुण्डित होते हैं, सर्वप्राणातिपातविरमण महाव्रत के धारक होते है, पर मैं शिखा सहित हूँ, क्षुरमुण्डन कराऊँगा और स्थूल प्राणातिपात का विरमण करूँगा।"[48]

"श्रमण अकिंचन तथा शील की सौरभ से सुरभित होते है, पर मैं वैसा नही हूँ, मैं सपरिग्रह रहकर शील की सौरभ के अभाव मे चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूँगा।"[49]

"श्रमण निर्मोही होते है, पर मैं मोह-ममता के [illegible] से युक्त हूँ। इसके प्रतीक रूप मैं छत्र धारण करूँगा। श्रमण नगे पैर रहते है पर मैं उपानह (काष्ठ पादुका) पहनूँगा।"[50]

"श्रमण जो स्थविरकल्पी हैं, वे श्वेतवस्त्र धारण करते है और जिनकल्पी निर्वस्त्र होते है, पर, मैं कपाय से कलुपित हूँ अत. उसके प्रतीक स्वरूप कापायवस्त्र धारण करूगा ।"[५१]

"श्रमण पाप भीरु और वहुत जीवो की घात करने वाले आरम्भ-परिग्रह से मुक्त होते है। सचित्त जल का प्रयोग नही करते। पर मैं वैसा नही कर पाता अत परिमित जल, स्नान और पीने के लिए ग्रहण करूँगा ।"[५२]

इस प्रकार मरीचि ने अपनी नवीन परिकल्पना से परिव्राजक-परिधान एव मर्यादा का निर्माण किया।[५३] और भगवान् के साथ ही ग्राम, नगर आदि मे विचरने लगा।[५४] भगवान् के श्रमणो से मरीचि की पृथक् वेष-भूषा को देख कर जन-जन के मानस मे कुतूहल उत्पन्न होता। जिज्ञासु वनकर वे उसके पास पहुँचते।[५५] मरीचि प्रतिवोध देकर उन्हे भगवान् का शिष्य वनाता।"[५६]

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान् श्री ऋषभ देव से जिज्ञासा की—"प्रभो! क्या इस परिषद् मे कोई व्यक्ति ऐसा है जो आपके सदृश ही भरत क्षेत्र मे तीर्थं कर वनेगा ?"[५७] जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—"स्वाध्याय ध्यान से आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक भविष्य मे वर्धमान (महावीर) नामक अन्तिम तीर्थंकर होगा। इससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ट वासुदेव वनेगा और विदेहक्षेत्र की मूकानगरी मे तुम्हारे जैसा ही प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती वनेगा।[५८] इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियो को वह अकेला ही प्राप्त करेगा।" भगवान् की भविष्यवाणी को श्रवण कर सम्राट् भरत भगवान् को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचे और भगवान् की भविष्यवाणी सुनाते हुए वोले—"हे मरीचि [त्रिदण्डी] परिव्राजक! तुम अन्तिम तीर्थंकर वनोगे, अत मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।[५९] साथ ही वासुदेव व चक्रवर्ती भी होओगे।" यह सुनकर मरीचि की हृत्तत्री के सुकुमार तार झनझना उठे। "मैं वासुदेव वनूँगा, मैं चक्रवर्ती पद प्राप्त करूँगा और तीर्थंकर होऊँगा।[६०] मेरे पिता चक्रवर्ती है, मेरे पितामह तीर्थंकर हैं और मैं अकेला ही तीन पदवियो को धारण करूँगा,[६१] मेरा कुल कितना महान् है, कितना उत्तम है ?" यों कहता हुआ मारे खुशी के वह वाँसो उछलने लगा।

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य बिगड़ गया । कोई उनकी सेवा करने वाला था नही, सेवा करने वाले के अभाव मे क्षुब्ध होकर मरीचि के मानस मे ये विचार उठे कि "मैंने अनेको को उपदेश देकर भगवान् का शिष्य बनाया, पर, आज मै स्वय सेवा करने वाले शिष्य से वचित हूँ, स्वस्थ होने पर मैं स्वय अपना शिष्य बनाऊँगा ।"[११] वह स्वस्थ हुआ । राजकुमार कपिल धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया । उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी । कपिल ने प्रश्न किया—"आप स्वय आर्हत धर्म का पालन क्यो नही करते ?"

उत्तर मे मरीचि ने कहा—"मै उसे पालन करने मे असमर्थ हूँ ।" कपिल ने पुन प्रश्न किया—"क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, उसमे धर्म नही है ?"

इस प्रश्न ने मरीचि के मानस मे आत्मसम्मान का सघर्ष पैदा करदिया और कुछ क्षण रुककर उसने कहा—"यहा पर भी वही है जो जिनधर्म मे है ।"[१३] कपिल मरीचि का शिष्य बना और मिथ्यामत की सस्थापना की, जिसके कारण वह बहु-ससारी बना और कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण ससार भ्रमण करना पड़ा ।[१४] कृत-दोषो की आलोचना किए बिना ही उसने आयुपूर्ण किया ।

(४) ब्रह्मदेवलोक

चौरासी लक्षपूर्व की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव ब्रह्मदेवलोक मे दस सागर की स्थिति वाला देव हुआ ।[१५]

(५) कौशिक

वहाँ से च्यवकर कोल्लाकसन्निवेश मे अस्सी लाख पूर्व की आयु वाले कौशिक ब्राह्मण के रूप मे जन्म लिया ।

(६) पुष्यमित्र

कौशिक का आयु पूर्ण करके वह स्थूणा नगरी मे पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण हुआ । इसकी बहत्तर लाख पूर्व की आयु थी । अन्त समय मे त्रिदण्डी परिव्राजक बना ।

(७) सौधर्म देवलोक

वहाँ से आयु पूर्णकर सौधर्मकल्प मे मध्यमस्थिति वाला देव वना ।

(८) अग्निद्योत

वहाँ से च्यवकर वह चैत्यसन्निवेश मे अग्निद्योत नामक ब्राह्मण हुआ । उसकी आयु चौसठ लाख पूर्व की थी । अन्त मे त्रिदण्डी परिव्राजक हुआ ।

(९) ईशान देवलोक

वहा से आयु पूर्णकर ईशान देवलोक मे मध्यमस्थिति वाला देव वना ।

(१०) अग्निभूति

तत्पश्चात् मन्दिर नामक सन्निवेश मे अग्निभूति नामक ब्राह्मण के रूप मे जन्म लिया । उसकी आयु छप्पनलाख पूर्व की थी । जीवन की साध्य-वेला मे वहा भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक वना ।

(११) सनत्कुमार देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण कर सनत्कुमारकल्प मे मध्यमस्थिति वाला देव हुआ ।

(१२) भारद्वाज

सनत्कुमारकल्प से आयुपूर्ण कर श्वेताम्बिका नगरी मे भारद्वाज नाम का ब्राह्मण हुआ । उसकी आयु चवालीस लक्ष पूर्व की थी । अन्तिम समय मे त्रिदण्डी परिव्राजक वना ।

(१३) माहेन्द्र देवलोक

वहा से आयु पूर्णकर वह माहेन्द्रकल्प मे मध्यमस्थिति वाला देव वना ।[६८]

(१४) स्थावर ब्राह्मण

देवलोक से च्यवकर और कितने ही काल तक ससार मे परिभ्रमण कर, वह राजगृह नगर मे स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ । वहां पर उसकी आयु चौतीस लक्ष पूर्व की हुई । जीवन के प्रान्त भाग मे त्रिदण्डी परिव्राजक वना ।

(१५) ब्रह्म देवलोक

पन्द्रहवे भव मे वह ब्रह्म देवलोक मे मध्यमस्थिति वाला देव हुआ ।

(१६) विश्वभूति

देवलोक की आयु पूर्ण होने पर लम्बे समय तक ससार मे परिभ्रमण करने के पश्चात् वह राजगृह नगर मे विश्वनन्दी राजा के भ्राता तथा युवराज विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति हुआ। राजा विश्वनन्दी के पुत्र का नाम विशाखनन्दी था।

एक समय विश्वभूति पुष्प करडक उद्यान मे अपनी पत्नियो के साथ उन्मुक्त-क्रीडा कर रहा था। महारानी की दासिया उस उद्यान मे पुष्प आदि लेने के लिए आयी, उन्होने विश्वभूति को यो सुख के सागर मे तैरता हुआ देखा तो ईर्ष्या मे उनका मुख म्लान हो गया, उन्होने राजरानी से कहा— "महारानीजी! सच्चा सुख तो विश्वभूति कुमार भोगता है। विशाखनन्दी को राजकुमार होने पर भी विश्वभूति की तरह सुख कहा है? कहलाने को आप भले ही अपना राज्य कहे, पर सच्चा राज्य तो विश्वभूति का है।" दासियों के कथन से रानी के हृदय मे ईर्ष्याग्नि भडक उठी। वह आपे मे बाहर हो गई। राजा ने उसको शान्त करने का प्रयास किया, पर वह कडक कर बोली—"जब आपके रहते यह स्थिति है तो बाद मे क्या होगा?"

राजा ने समझाया—"यह हमारी कुल-मर्यादा के प्रतिकूल है, जब तक प्रथम पुरुष अन्तःपुर सहित उद्यान मे है तब तक द्वितीय पुरुष उसमें प्रवेश नही कर सकता।" अन्त मे अमात्य ने प्रस्तुत समस्या को सुलझाने के लिए अज्ञात मनुष्यो के हाथ राजा के पास कृत्रिम लेख पहुँचाया। लेख पढते ही राजा ने युद्ध की उद्घोषणा की। रणभेरी बज गई। वह यात्रा के लिए प्रस्थान करने लगा। विश्वभूति को यह सूचना मिलते ही वह उद्यान से निकलकर राजा के पास पहुँचा। राजा को रोककर स्वय युद्ध के लिए चल दिया। युद्ध के मैदान मे किसी भी शत्रु को न देखकर वह पुन. दलबल सहित लौट आया। इधर विश्वभूति के जाने के पश्चात राजकुमार विशाखनन्दी ने अन्तःपुर सहित उद्यान मे अपना डेरा जमा दिया। विश्वभूति उद्यान मे प्रवेश करने लगा तो दण्डधारी द्वारपालो ने रोक दिया। कहा—अन्दर राजकुमार विशाख-

नन्दी राजकुमार है। यह सुनकर विश्वभूति को सारे रहस्य का परिज्ञान हो गया कि युद्ध के बहाने मुझे यहा से निकाला गया है। उसने कुपित होकर वही पर कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर एक जोरदार प्रहार किया, जिससे सारे कपित्थ के फल भूमि पर गिर पडे। उसने द्वारपालो को ललकारते हुए कहा—"इसी प्रकार मैं तुम्हारे सिर को नष्ट कर सकता हूँ, पर राजा के गौरव की रक्षा के लिए ऐसा नही करता। मुझसे मागकर यह उद्यान लिया जा सकता था। परन्तु इस प्रकार छल-छद्म करना अनुचित है।" विश्वभूति को इस अपमान से बडा आघात लगा। संसार से विरक्ति हो गई। उसने आर्य सभूति स्थविर के पास सयम ग्रहण कर लिया। उत्कृष्ट तप से आत्मा को भावित करते हुए अनेक लब्धियाँ प्राप्त की।[६७]

एक समय विहार करते हुए विश्वभूति अनगार मथुरा नगरी मे आये। इधर विशाखनन्दी कुमार भी वहाँ की राजकन्या से विवाह करने वहाँ आया और मुख्य मार्ग पर स्थित राजप्रासाद मे ठहरा। विश्वभूति अनगार मासिक-व्रत के पारणा हेतु घूमते हुए उधर निकल आये। विशाखनन्दी के अनुचरो ने मुनि को पहचान कर उसे सवाद सुनाया। मुनि को देखते ही उसके अन्त-र्मानस मे क्रोध की आँधी उठी। सरोष नेत्रो से वह मुनि को देख ही रहा था कि सद्यःप्रसूता गाय की टक्कर से विश्वभूति अनगार पृथ्वी पर गिर पडे।[६८] गिरे हुए मुनि का उपहास करते हुए, विशाखनन्दी कुमार ने कहा—"तुम्हारा वह पराक्रम, जो कपित्थ को तोडते समय देखा था, आज कहाँ गायब हो गया है ?" और वह खिलखिला कर हँस पडा।[६९] विश्वभूति अनगार ने भी आवेश मे आकर गाय के शृङ्गो को पकड कर, चक्र की तरह घुमाकर आकाश मे उछाल दिया और कहा—"क्या दुर्बल सिंह शृगाल से भी गया गुजरा होता है ? यह दुरात्मा आज भी मेरे प्रति दुर्भावना रखता है ? यदि मेरे तप-जप व ब्रह्मचर्य का फल हो तो आगामी भव मे अपरिमित बल वाला बनूं।[७०] इस प्रकार निदान कर इस दोष की आलोचना किये विना ही उन्होने आयु पूर्ण की।

(१७) महाशुक्र देवलोक

वहाँ से आयुपूर्णकर महाशुक्र कल्प मे उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हुआ।[७१]

(१८) त्रिपृष्ठ

देवलोक की आयु पूर्ण होने पर वह पोतनपुर नगर में प्रजापति राजा की महारानी मृगावती की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।[५२] माता ने सात स्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र के पृष्ठ भाग में तीन पसलिएँ होने के कारण उसका "त्रिपृष्ठ" नाम रखा। यौवनावस्था प्राप्त की।

राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक थे। एक बार प्रतिवासुदेव ने निमित्तज्ञ से यह जिज्ञासा प्रस्तुत की कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? निमित्तज्ञ ने बताया कि "जो आपके चण्डमेघ दूत को पीटेगा, तुङ्गगिरि पर रहे हुए केसरी सिंह को मारेगा उसके हाथ से आपकी मृत्यु होगी।"[५३] यह सुनकर अश्वग्रीव भयभीत हुआ। उसने सुना—प्रजापति राजा के पुत्र बड़े ही बलवान् हैं। परीक्षा करने चण्डमेघ दूत को वहाँ प्रेषित किया।

राजा प्रजापति अपने पुत्र तथा सभासदों के साथ राजसभा में बैठा था। संगीत की झंकार से राजसभा झंकृत हो रही थी। सभी तन्मय होकर नृत्य और संगीत का आनन्द लूट रहे थे। ठीक उसी समय अभिमानी दूत ने बिना पूर्व सूचना दिये ही राजसभा में प्रवेश किया। राजा ने सम्भ्रान्त हो दूत का स्वागत किया। संगीत और नृत्य का कार्य स्थगित कर उसका सन्देश सुना।

त्रिपृष्ठ को रंग में भंग करने वाले दूत की उद्दण्डता अखरी। उन्होंने अपने अनुचरों को यह आदेश दिया कि जब यह दूत यहाँ से रवाना हो तब हमें सूचित करना।

राजा ने सत्कार पूर्वक दूत को विदा किया। इधर दोनों राजकुमारों को सूचना मिली। वे जंगल में दूत को पकड़ कर बुरी तरह पीटने लगे। दूत के जो भी साथी-सहायक थे वे सभी भाग छूटे, दूत की खूब पिटाई हुई।

जब प्रजापति को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे चिन्तातुर हो गए। दूत को पुनः अपने पास बुलाकर अत्यधिक पारितोषिक प्रदान किया और कहा कि—"पुत्रों की यह भूल अश्वग्रीव से न कहना।" दूत ने स्वीकार कर लिया, पर, उसके साथी जो पहले पहुँच चुके थे, उन्होंने सारा वृत्तान्त अश्वग्रीव को कह

दिया था। अश्वग्रीव अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। दोनो राजकुमारो को मरवाने का उसने निश्चय किया।

अश्वग्रीव ने तुङ्गग्रीव क्षेत्र मे शालिधान्य की खेती करवायी, और कुछ समय के वाद प्रजापति के पास दूत भेजा। दूत ने आदेश सुनाया कि "शालि के खेतो मे एक क्रूर सिह ने उपद्रव मचा रखा है, वहाँ रखवाली करने वालो को उसने मार डाला, पूरा क्षेत्र भयग्रस्त है, अत आप जाकर सिह से शालिक्षेत्र की रक्षा कीजिए।" प्रजापति ने पुत्रो से कहा—"तुमने दूत के साथ जो व्यवहार किया उसीके फलस्वरूप वारी न होने पर भी यह आज्ञा आई है।"

प्रजापति स्वयं शालिक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने लगा। पुत्रो ने प्रार्थना की—'पिताजी ! आप ठहरिये ! हम जायेगे।' वे गये, और वहाँ जाकर खेत के रक्षको से पूछा—अन्य राजा यहाँ पर किस प्रकार और कितना समय रहते है ? उन्होने निवेदन किया—"जव तक शालि-(धान्य) पक नही जाता है, तब तक चतुरगिनी सेना का घेरा डालकर यहा रहते है और सिंहमे रक्षा करते है।"[७४] त्रिपृष्ठ ने कहा—मुझे वह स्थान वताओ जहाँ वह नवहत्था केसरीसिंह रहता है। रथारूढ होकर सशस्त्र त्रिपृष्ठ वहाँ पहुँचा। सिह को ललकारा। सिंह भी अगडाई लेकर उठा और मेघ-गम्भीर-गर्जना से पर्वत की चोटियो को कपाता हुआ बाहर निकल आया। त्रिपृष्ठ ने सोचा "यह पैदल है और हम रथारूढ है। यह शस्त्र रहित है और हम शस्त्रो से सज्जित है। इस प्रकार की स्थिति मे आक्रमण करना उचित नही।" ऐसा विचार कर वह रथ से नीचे उतर गया, और शस्त्र भी फेक दिए।[७५]

सिह ने सोचा "यह वज्र-मूर्ख है। प्रथम तो एकाकी मेरी गुफा पर आया है, दूसरे रथ से भी उतर गया है, तीसरे शस्त्र भी डाल दिये है। अब एक झपाटे मे ही इसे चीर डालूँ।" ऐसा सोचकर वह त्रिपृष्ठ पर टूट पडा। त्रिपृष्ठ ने भी उछलकर पूरी शक्ति के साथ (पूर्वकृत निदान के अनुसार) उसके जवडो को पकडा और पुराने वस्त्र की तरह उसे चीर डाला। यह देख दर्शक आनन्द विभोर हो उठे। सिंह विशाखनन्दी का जीव था।

त्रिपृष्ठ सिंह-चर्म लेकर अपने नगर आया। आने के पूर्व उसने कृषकों से कहा—'घोटकग्रीव से कह देना कि वह अब निश्चिन्त रहे।' जब उसने यह बात सुनी तो वह अधिक क्रुद्ध हुआ। अश्वग्रीव ने दोनों राजकुमारों को बुलवाया। वे जब न गये तब अश्वग्रीव ने ससैन्य पोतनपुर पर चढ़ाई करदी। त्रिपृष्ठ भी अपनी सेना के साथ देश की सीमा पर आ गया। भयंकर युद्ध हुआ। त्रिपृष्ठ को यह संहार अच्छा न लगा। उसने अश्वग्रीव से कहा—'निरपराध सैनिकों को मारने से लाभ क्या है ? अच्छा हो, हम दोनों ही युद्ध करें।' अश्वग्रीव ने प्रस्ताव स्वीकार किया। दोनों में तुमुल युद्ध हुआ। अश्वग्रीव के सभी शस्त्र समाप्त हो गये। उसने चक्र रत्न फेंका। त्रिपृष्ठ ने उसे पकड़ लिया और उसी से अपने शत्रु के सिर का छेदन कर डाला। तभी दिव्यवाणी से नभोमण्डल गूँज उठा—"त्रिपृष्ठ नामक प्रथम वासुदेव प्रकट हो गया।"[७८]

एक बार संध्या की सुहावनी वेला थी। सूर्य अस्ताचल की ओर पहुँच गया था। उस समय त्रिपृष्ठ वासुदेव के पास कुछ संगीतज्ञ आये। उन्होंने संगीत की सुमधुर स्वरलहरी से वातावरण को मुखरित कर दिया। निद्रा आने का समय होने पर वासुदेव ने शय्यापालकों से कहा—जब मुझे निद्रा आ जाय उस समय तुम गायकों को रोक देना। शय्यापालकों ने 'तथास्तु' कहा। कुछ ही समय में सम्राट् निद्राधीन हो गये। शय्यापालक संगीत पर इतना अधिक मुग्ध हो गया कि संगीतज्ञों को उसने विसर्जित नहीं किया। रात भर संगीत चलता रहा। ऊषा की सुनहरी किरणें मुस्कराने वाली थीं कि सम्राट् की निद्रा टूटी। सम्राट् ने पूर्ववत् ही संगीत चालू देखा। शय्यापालक से पूछा—इन्हें विसर्जित क्यों नहीं किया ? उसने नम्र निवेदन किया—'देव ! श्रवण के सुख में अनुरक्त हो जाने से इनको नहीं रोका।'[७९] यह सुन त्रिपृष्ठ को क्रोध भड़क आया। अपने सेवकों को बुलाकर कहा—"आज्ञा की अवहेलना करने वाले एवं संगीत लोभी इस शय्यापालक के कर्ण-कुहरों में गर्मागर्म शीशा उण्डेल दो।" सम्राट् की कठोर आज्ञा से शय्यापालक के कानों में शीशा उण्डेला गया। भयंकर वेदना से छटपटाते हुए उसने प्राण त्याग दिये।[८०] त्रिपृष्ठ ने सत्ता के मद में उन्मत्त बनकर इस दुष्कृत्य के कारण निकाचित कर्मों का

बन्धन किया। महारभ और महापरिग्रह मे मशगूल बनकर चौरासी लाख वर्ष तक राज्य श्री का उपभोग करता रहा।[७९]

(१९) सातवीं नरक

त्रिपृष्ठ वासुदेव आयु पूर्णकर सातवे तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नारकावास मे नैरयिक रूप मे उत्पन्न हुआ।[८०]

(२०) सिंह

वहा से निकलकर वह केसरीसिंह बना।

(२१) चतुर्थ नरक

वहा से आयु पूर्णकर यह चतुर्थ नरक मे गया।[८१] नरक से निकलने के पश्चात् उसने अनेक भव तिर्यञ्च और मनुष्य के किये।[८२] आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र और "श्रमण भगवान् महावीर" मे बावीसवा भव मानव का लिखा है। पर उसके नाम, आयुष्य आदि का उल्लेख नही है और न यह उल्लेख ही है कि चक्रवर्ती के योग्य पुण्य उपार्जन किन शुभ कृत्यो से किया था।

समवायाङ्ग सूत्र मे और उसकी वृत्ति में महावीर के प्रथम छह भव दिये हैं। बावीसवा भव मानव का मानने पर, समवायाङ्ग का क्रम नही बैठता है। अत हमने यहा बावीसवा भव मानव का नही लिखा है।

(२२) प्रियमित्र चक्रवर्ती

वहा से वह आयु समाप्त कर महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी मे धनञ्जय राजा की धारणी रानी से प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ।[८३] पोट्टिलाचार्य के पावन प्रवचन रूपी पीयूष का पान कर मन मे वैराग्य की ज्योति प्रज्ज्वलित हुई। दीक्षा ग्रहण की। एक करोड वर्ष तक सयम की कठोर साधना की।[८४]

समवायाङ्ग सूत्र मे श्रमण भगवान् श्री महावीर ने तीर्थंकर के भवग्रहण से पूर्व छट्ठा पोट्टिल का भव ग्रहण किया और एक करोड वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया।[८५] नवाङ्गी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत

सूत्र पर टीका करते हुए भगवान् पोट्टिल नामक राजपुत्र हुए लिखा है।[८६] भगवान् के जीव ने दो बार पोट्टिलाचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, पर स्वयं का नाम पोट्टिल था, यह समवायाङ्ग के अतिरिक्त आवश्यक निर्युक्ति, चूर्णि आदि में नहीं मिलता। सभव है कि पोट्टिलाचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण प्रियमित्र चक्रवर्ती ही पोट्टिल कहे गये हो। या प्रियमित्र का ही अपर नाम पोट्टिल हो, पर गुरु शिष्य का एक नाम होने से भ्रम न हो जाय, इस दृष्टि से निर्युक्तिकार आदि ने यह नाम न दिया हो। हमारी दृष्टि से प्रियमित्र ही पोट्टिल होना चाहिए, क्योंकि वे ही छट्ठे भव मे आते हैं। और प्रियमित्र व पोट्टिल दोनो की श्रमण-पर्याय एक वर्षकोटि की है,[८७] जो यह सिद्ध करती है कि वे दोनो पृथक्-पृथक् नही थे।

(२३) महाशुक्र

वहा से आयु पूर्णकर वह महाशुक्र कल्प के सर्वार्थ विमान मे समुत्पन्न हुए। समवायाङ्ग मे महाशुक्र के स्थान पर सहस्रार कल्प के सर्वार्थविमान का उल्लेख है। आचार्य अभयदेव ने नाम निर्देश नही किया है।[८८] उत्तरपुराण-कार ने भी समवायाङ्ग की तरह ही सहस्रारकल्प का निर्देश किया है।[८९] निर्युक्तिकार ने महाशुक्र का नाम न देकर "सव्वट्ठे" ही लिखा है।[९०]

आचार्य जिनदास महत्तर व आचार्य मलयगिरि ने महाशुक्रकल्प का अर्थ सर्वार्थविमान किया है। सत्तरह सागरोपम तक वहां देव सम्बन्धी सुखो का उपभोग करते रहे।[९१]

(२४) नन्दन

वहां से च्यवकर भरत क्षेत्र की छत्रानगरी मे जितशत्रु सम्राट् की भद्रा महारानी की कुक्षि मे उत्पन्न हुए। नन्दन नाम रखा गया।[९२] पच्चीस लक्ष वर्ष की उम्र हुई।[९३] चौबीस लक्ष वर्ष तक गृहवास मे रहे, एक लक्ष वर्ष अवशेष रहने पर पोट्टिलाचार्य के पास संयम ग्रहण किया।[९४] एक लाख वर्ष तक निरन्तर मास खमण की तपस्या की।[९५] ग्यारह लाख साठ हजार मास खमण हुए, और तीन हजार तीन सौ तेतीस वर्ष तीन मास उनतीस दिन

पारणा के हुए । वीस स्थानको की आराधना करके तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया और अन्त मे मासिक सलेखना करके आयु पूर्ण किया ।

(२५) प्राणत देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण होने पर वह प्राणत देवलोक के पुष्पोत्तरावतसक विमान मे वीस सागर की स्थिति वाले देव हुए ।[१७]

(२६) देवानन्दा के गर्भ में

स्वर्ग से च्यवन कर वह ब्राह्मण कुण्ड-ग्राम मे कोडालसगोत्रीय सोमिल नामक ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए ।[१८] मरीचि के भव मे जाति व कुल की श्रेष्ठता के दर्प के सर्प ने जो डसा था, उसका विष अभी तक उतरा नही था, उसी के फलस्वरूप यहाँ देवानन्दा के गर्भ मे आना पडा । और वयासी रात्रि तक उस गर्भ मे रहे ।

(२७) वर्धमान महावीर

तिरासीवी रात्रि को शक्रेन्द्र की आज्ञा से हरिणैगमेषी देव ने उनको सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला क्षत्रियाणी के उदर मे प्रस्थापित किया और वही जन्म लेकर वर्धमान महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

——● गर्भ संहरण

उपर्युक्त सत्ताईस भवो के निरूपण का सारांश यह है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव ने अनेक भवो पूर्व मरीचि तापस को लक्ष्य करके जो कहा था—'यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर होगा ।' वही मरीचि का जीव छब्बीसवे भव मे देवानन्दा के गर्भ मे आया और वहाँ से सहरित होकर त्रिशला रानी के गर्भ से वर्धमान के रूप मे अवतरित हुआ ।

मूल

समणे भयवं महावीरे तिण्णाणोवगए आवि होत्था—चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुए मित्ति जाणइ ॥३॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान [मति, श्रुत और अवधि] से युक्त थे। 'मैं देव भव से चऊँगा' ऐसा वे जानते थे, 'वर्तमान मे च्यवमान हूँ' यह नही जानते थे, और 'देव भव से च्यव गया हूँ' ऐसा वे जानते थे।

विवेचन—जो देव भावी जन्म में तीर्थंकर बनने वाले होते हैं वे तीर्थङ्करत्व के वैशिष्ट्य के कारण जीवन के अन्तिम समय तक भी अधिक कान्तिमान और प्रसन्न रहते है, पर अन्य देव छह माह पूर्व से ही च्यवन के भय से भयभीत बन जाते हैं। मुरझाये हुए फूल की तरह म्लान हो जाते है।[^1]

सूत्र मे "चयमाणे न जाणइ" जो पाठ आया है इसके रहस्य का उद्घाटन करते हुए—चूर्णिकार और टिप्पणकार ने कहा है कि—एक समय मे उपयोग नही लगता। छद्मस्थ जीवों का उपयोग अन्तरमुहूर्त का होता है। किन्तु च्यवनकाल एक समय का ही होता है।[^2] अत च्यवन काल के अत्यन सूक्ष्म समय को छद्मस्थ जीव च्यवन कर रहा हूँ, ऐसा नही जान पाते। तीन ज्ञान होने से मैं च्यवगया हूँ यह जानते है।[^3]

——— ● देवानंदा के गर्भ में

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ॥४॥

अर्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे गर्भ रूप मे अवतरित हुए, उस रात्रि को देवानन्दा ब्राह्मणी अर्धनिद्रावस्था में थी। उस समय उसने उदार, कल्याण, शिव, धन्य व मंगलमय सश्रीक शोभा युक्त चौदह महास्वप्न देखे और फिर जागी।

विवेचन—निद्रा दर्शनावरणीय कर्म का उदय है। उसके पाँच भेद है—(१) निद्रा, (२) निद्रा-निद्रा, (३) प्रचला, (४) प्रचला-प्रचला (५) और स्त्यानर्द्धि-निद्रा। इन पाँच निद्रा मे से तृतीय प्रचला निद्रा-अवस्था मे देवानन्दा चतुर्दश स्वप्न देखती है।[१०२]

यहाँ उदार का अर्थ प्रधान, कल्याण का अर्थ आरोग्यकर, शिव का अर्थ उपद्रवो को शमन करने वाला, धन्य का अर्थ धन (अच्छाई) को धारण करने वाला, मगल का अर्थ पवित्र, श्रीयुक्त का अर्थ शोभा से मनोहर है।[१०३]

मूल :—

तंजहा—

गय वसह सीह अभिसेय, दाम ससि दिणयरं भयं कुंभं।
पउमसर सागर विमाण, भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥५॥

अर्थ—उन चौदह महास्वप्नो के नाम इस प्रकार है—(१) हस्ती, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी-देवी का अभिषेक, (५) पुष्प माला, (६) चन्द्र (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ, (१०) पद्म सरोवर, (११) सागर, (१२) देव-विमान अथवा भवन (१३) रत्न राशि (१४) निर्धूम अग्नि।

मूल :—

तए णं सा देवाणंदा माहणी इमेतारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबुयं पिव समुस्ससिय-रोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए राइहंससरिसीए गईए जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धा-वित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले जाव सस्सिरीए चोद्दस महा-सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं जहा—गय जाव सिहिं च। एएसि णं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं जाव चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥६॥

अर्थ—उस समय देवानन्दा ब्राह्मणी इस प्रकार उदार कल्याण, शिव, धन्य, मगल व श्रीयुक्त चौदह महास्वप्नो को देखकर जागृत हुई, हर्षित एव तुष्ट होकर आनन्दित व प्रीतिमना हुई। परम सौमनस्य को प्राप्त हुई। उनका हृदय हर्ष से प्रफुल्लित हो गया। जैसे कदम्बपुष्प मेघ की धाराओ से खिल जाता है, उसके कांटे खडे हो जाते हैं, उसी प्रकार देवानदा के रोम खडे हो गये। स्वप्नो को स्मरण कर वह अपनी शय्या से उठी, और शनै शनै अचपल-गति से राजहस की तरह चलती हुई जहां पर ऋषभदत्त ब्राह्मण है वहां आती है और ऋषभदत्त ब्राह्मण को "जय हो, विजय हो" इस प्रकार प्रशस्ति करती है। भद्रासन पर बैठकर आश्वस्त और विश्वस्त होने पर हाथो को जोडकर मस्तिष्क पर अजलि घुमाकर इस प्रकार बोली—'निश्चय ही हे देवानुप्रिय ! मैं आज अर्धनिद्रावस्था मे शय्या पर सोई हुई थी, उस समय इस प्रकार उदार व शोभायुक्त चौदह महास्वप्न देखकर जागृत हुई। वे स्वप्न इस प्रकार है—गज से लेकर निर्धूम अग्नि तक। हे देवानुप्रिय ! इन उदार यावत् चौदह महास्वप्नों का क्या कल्याणकारी फल विशेष होगा ?

मूल :—

तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए धाराहयकलंबुयं पिव

समुस्ससियरोमकूवे सुमिणोग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणुपविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, २ करेत्ता देवाणंदां माहणिं एवं वयासी ॥७॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणी से इस बात को श्रवण कर एव धारण कर हर्षित व तुष्ट हुआ, अत्यन्त आह्लाद को प्राप्त हुआ। जैसे मेघ की धारा से सिंचित होने पर कदम्ब-पुष्प खिल उठता है वैसे ही उसको रोमाञ्च हो गया। वह स्वप्नो को अवग्रहण कर उनके फल के अनुसधान मे विचार करने लगा, अपनी स्वाभाविक मनन युक्त बुद्धि विज्ञान से उन स्वप्नो का अर्थ अवधारण कर देवानन्दा ब्राह्मणी से इस प्रकार बोला।

मूल :—

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं० सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाण-मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा। तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोग लाभो देवाणुप्पिए! पुत्त लाभो देवाणुप्पिए! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं वहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजण गुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुण्णं सुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ॥८॥

अर्थ—हे देवानुप्रिये! निश्चय ही तुमने उदार (विशिष्ट) स्वप्न देखे है। कल्याणकारी, शिवरूप, धन्य और मंगलरूप स्वप्न देखे हैं। तुमने आरोग्यवर्धक

दीर्घायुप्रदाता कल्याण करने वाले, मंगल करने वाले, स्वप्न देखे है। हे देवानुप्रिये ! इन स्वप्नो का विशेष फल तुम्हे अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और सुखलाभ रूप होगा। हे देवानुप्रिये ! निश्चय ही नवमास और साढे सात रात्रि व्यतीत होने पर तुम पुत्र रत्न को जन्म दोगी। वह पुत्र हाथ पैरो मे बड़ा ही सुकुमाल, हीनता रहित पाँचो इन्द्रियो से परिपूर्ण शरीर वाला होगा, शुभलक्षणों, शुभ व्यजनो और श्रेष्ठ गुणो वाला होगा, मान, उन्मान एव प्रमाण से युक्त, सर्वाङ्ग सुन्दर, चन्द्र की तरह सौम्य, कान्त, प्रिय, देवकुमार सदृश होगा।

विवेचन–भारतीय सामुद्रिक शास्त्र मे मानव शरीर के लक्षण, व्यजन और हस्तरेखाओ के सम्बन्ध मे बहुत विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। लक्षण-मानव के व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रतीक है। तीर्थंकर व चक्रवर्ती सम्राट् के शरीर पर एक हजार आठ लक्षण होते है। वासुदेव के एक सौ आठ तथा सामान्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के बत्तीस लक्षण होते हैं।

बत्तीस लक्षण की गणना के अनेक प्रकार हैं। एक गणना इस प्रकार है–
(१) छत्र, (२) कमल, (३) रथ, (४) वज्र, (५) कूर्म, (६) अकुश, (७) वापिका, (८) धनुष्य, (९) स्वस्तिक, (१०) तोरण (वन्दनवार), (११) सरोवर, (१२) सिंह, (१३) रुद्र, (१४) शख, (१५) चक्र, (१६) हस्ती, (१७) समुद्र, (१८) कलश, (१९) महल, (२०) मत्स्य, (२१) यव, (२२) यज्ञस्तम्भ, (२३) स्तूप, (२४) कमण्डलु, (२५), पर्वत, (२६) चामर, (२७) दर्पण, (२८) वृषभ, (२९) पताका, (३०) लक्ष्मी, (३१) माला, (३२) मयूर।[**] भाग्यशाली मानव के ये लक्षण हाथ या पैर आदि मे होते है। द्वितीय गणना इस प्रकार है–

(१) नाखून, (२) हाथ, (३) पैर, (४) जिह्वा, (५) ओष्ठ, (६) तालु, (७) नेत्र के कोण ये सात रक्त हो, (८) कक्षा, (९) हृदय (वक्ष स्थल) (१०) ग्रीवा, (११) नासिका, (१२) नाखून, (१३) मुख, ये छह अग उन्नत हो, (१४) दाँत, (१५) त्वचा, (१६) केश, (१७) अगुलियो के पर्व, (१८) नाखून ये पाच बारीक-छोटे हो, (१९) नेत्र, (२०) हृदय, (२१) नासिका, (२२) हनु (ठोडी), (२३) भुजा, ये पाँच अंग लम्बे हो, (२४) ललाट,

(२५) छाती, (२६) मुख ये तीन विशाल हो, (२७) ग्रीवा, (२८) जङ्घा, (२९) पुरुष चिह्न ये तीन लघु हो, (३०) सत्व, (३१) स्वर, (३२) और नाभि ये तीन गभीर हो।

इन वत्तीस लक्षणो से युक्त व्यक्ति आकृति से भव्य और प्रकृति से सौम्य और भाग्यशाली होता है।

व्यञ्जन का अर्थ—मस तिल आदि हैं। पुरुष के दाहिने भाग मे यदि ये चिह्न होते है तो उत्तम फल प्रदाता माने गये है और वांये भाग मैं होने पर मध्यम फलदाता। महिलाओ के वांयी ओर श्रेष्ठ माने गये है।

हस्तरेखा के द्वारा भी मानव के भाग्य और व्यक्तित्व का पता लगता है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार माना जाता है कि जिसके हाथ मे अत्यधिक रेखाएँ होती हैं, या बहुत ही कम रेखाएँ होती है वह दु खी होता है। जिस व्यक्ति के अनामिका अगुली के प्रथम पर्व से कनिष्ठिका अगुली वडी होती है, वह धनवान् होता है। मणिबन्ध से जो रेखा चलती है वह पिता की रेखा है। करभ से कनिष्ठिका अगुली के मूल की ओर से जो रेखाए चलती हैं वे वैभव और आयु की प्रतोक है। ये तीनो ही रेखाएँ तर्जनी और अँगूठे के वीच जा मिलती है। जिसको ये तीनो रेखाएँ पूर्ण और दोष वर्जित हो वह धन धान्य से समृद्ध होता है। पूर्ण आयु का उपभोग करता है। जिसके दाहिने हाथ के अँगूठे मे यव का चिह्न होता है उसका जन्म शुक्ल पक्ष का तथा वह यशस्वी होता है।

जल से सम्पूरित वर्तन मे एक पुरुष प्रवेश करे। उस समय जो पानी वर्तन में से वाहर निकले यदि वह पानी द्रोण (वत्तीस सेर) प्रमाण हो तो वह पुरुष मानयुक्त कहलाता है। तराजू मे तोलने पर यदि पुरुष अर्धभार (प्राचीन तोल विशेप) प्रमाण हो तो उन्मान युक्त माना जाता है। आत्माङ्गुल से शरीर का नाप-प्रमाण कहलाता है। आत्माङ्गुल से नापने पर एक सौ आठ अंगुल ऊँचाई वाला होने पर उत्तम पुरुप, छयानवें और चौरासी अंगुल वाला मध्यम पुरुष कहा जाता है, किन्तु तीर्थंकर का देह सर्वोत्तम होता है। वे सभी उचित लक्षण, व्यजन, मान, उन्मान और प्रमाण से युक्त होते हैं।

मूल :—

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते रिउव्वेय जउव्वेय सामवेय अथव्वणवेय इतिहास-पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाणे सिक्खा-कप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अण्णेसु य बहुसु बंभन्नएसु परिव्वायएसु नएसु परिनिट्ठिए यावि भविस्सइ ॥९॥

अर्थ—वह बालक बालवय से उन्मुक्त होने पर, समझदार एवं समझ मे पक्का होने पर यौवन वय को प्राप्त करेगा। तब वह सांगोपांग तथा रहस्य युक्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का, पाँचवें (वेद) इतिहास का तथा छट्ठे निघण्टु (शब्द कोष) का ज्ञाता होगा। चारो वेदो के विस्मृत विषय को स्मरण करने वाला, चारों वेदो के रहस्य का पारगामी तथा चारो वेदो का धारक होगा। षडङ्ग ज्ञाता, षष्ठितन्त्र विशारद, सांख्य, गणित, आचार शास्त्र, व्याकरण, छन्द, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषचक्र और अन्य अनेको ब्राह्मण सम्बन्धी एवं परिव्राजकशास्त्रो मे परिनिष्णात होगा।

मूल :—

तं ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा जाव आरोग्गतुट्ठिदीहाउयमंगलकल्लाणकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ॥१०॥

अर्थ—इस कारण हे देवानुप्रिये! तुमने जो उदार स्वप्न देखे है, वे आरोग्य वर्धक, मनोरथप्रदाता, दीर्घायु, मंगल व कल्याण कारक है।

मूल :—

तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए

एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी ॥११॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह देवानन्दा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण से स्वप्न के फलो को सुनकर और समझकर प्रसन्न हुई, हृष्ट-तुष्ट यावत् दशनाखूनो को साथ मिलाकर आवर्त करती हुई अर्थात् मस्तिष्क पर अजलि चढाकर ऋषभ-दत्त ब्राह्मण से इस प्रकार बोली।

मूल :—

एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥१२॥

अर्थ—'हे देवानुप्रिय ! आपने जिन स्वप्नो का अर्थ प्रतिपादन किया है वह सर्वथा सत्य है, अवितथ (सही) है, असदिग्ध है, इच्छित (चाहने योग्य) है, प्रतीच्छित है और इच्छित–प्रतीच्छित है। हे देवानुप्रिय ! यह अर्थ सत्य है जो आप कहते हैं, मैं उन स्वप्नो के फल को मान्य करती हूँ।' उसके पश्चात् वह देवानदा ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ मानव सम्बन्धी श्रेष्ठ सुखोपभोग करती हुई विचरने लगी।

——● शक्र की विचारणा

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी

पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलंबवणमालधरे सोहम्मकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सुहम्माए सभाए सक्कंसि सीहासणंसि निसण्णे ॥१३॥

अर्थ—उस काल उस समय शक्र, देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवान्, पाकशासन, दक्षिणार्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, ऐरावत नामक हाथी पर बैठने वाला सुरेन्द्र, रज रहित श्रेष्ठ-उत्तम वस्त्रों को धारण करने वाला, माला और मुकुट से सुसज्जित शरीर वाला जिसके कोमल कपोल नवनिर्मित सुन्दर चचल चित्र-विचित्र एव चलायमान स्वर्णमय कुण्डल युगल की प्रभा से प्रदीप्त है। जो विराट् ऋद्धि व द्युति को धारण करने वाला है, महाबली महायशस्वी है, जिसके गले में लटकती हुई सुन्दर वन माला है, जो सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में शक्र नामक सिंहासन पर बैठा है।

विवेचन—भारतीय साहित्य में इन्द्र के सहस्र नाम प्रसिद्ध हैं। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों ही परम्पराओं में इन्द्र के सम्बन्ध में चर्चाएँ हैं। प्रस्तुत सूत्र में इन्द्र के अनेक नामों में से कुछ विशिष्ट नामों का उल्लेख यहाँ पर हुआ है।

शक्र नामक सिंहासन पर बैठने के कारण या सामर्थ्यवान् होने से वह शक्र कहलाता है। देवताओं के मध्य परम ऐश्वर्ययुक्त होने के कारण वह इन्द्र के नाम से पहचाना जाता है। देवताओं का राजा होने से देवराज है। हाथ में वज्र नामक शस्त्र को धारण करने से वज्र-पाणि है। शत्रुओं के नगरों (पुरों) को नष्ट करने के कारण वह पुरन्दर है। कार्तिक श्रेष्ठी के भव में सौ बार श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा अर्थात् अभिग्रह विशेष को धारण करने के कारण वह शतक्रतु कहलाता है। वैदिक परम्परा के अनुसार शतक्रतु का अर्थ सौ यज्ञ करने वाला होता है।

सौधर्म देव लोक का इन्द्र पूर्वभव में पृथ्वी भूषण नगर में कार्तिक नामक

सेठ था। वीतराग धर्म पर उसकी अविचल आस्था थी। उसकी रग-रग, मे मन के अणु-अणु मे वीतराग धर्म रमा हुआ था। उसने सौ वार श्रावक की पाँचवी पडिमा (प्रतिज्ञा) तक की आराधना की।

एक वार नगर मे गैरिक नामक एक उग्र तपस्वी (तापस) आया। उसके कठोर तप की महिमा जन-जन की जिह्वा पर नाचने लगी। जन समूह दर्शनार्थ उमडा, तपस्वी ने विराट् जन-समूह को देखकर गर्व के साथ पूछा—'क्या अव भी नगर मे ऐसा कोई व्यक्ति है जो मेरे दर्शन के लिए नही आया ?'

एक भक्त ने निवेदन किया—'प्रभो ! कार्तिक श्रेष्ठी को छोडकर अन्य सभी, राजा से रक तक आपके दर्शनार्थ आ चुके हैं।'

क्रोध और अहकार के वश तपस्वी ने अभिग्रह किया—"अच्छा ! तो लो मैं कार्तिक श्रेष्ठी की ही पीठ पर थाली रखकर पारणा करूँगा, अन्यथा नही।" तपस्वी को तप करते हुए एक माह पूरा हो गया, किंतु कार्तिक श्रेष्ठी कभी उसके पास नही आया। राजा ने पारणा करने के लिए प्रार्थना की तव तपस्वी ने अभिग्रह की वात दोहराई।

राजा ने श्रेष्ठी को वुलाया। गर्मागर्म खीर तैयार की गई। राजा के आदेश से सेठ झुका, और तपस्वी ने क्रूरतापूर्वक सेठ की पीठ पर वह गर्म थाली रखी, चमडी जलने लगी, तपस्वी नाक पर अगुली रखकर सेठ से कहने लगा—देखो, तुम मुझे वन्दन करने नही आए। अन्त मे मैने तुम्हारा नाक काट ही दिया। सेठ मन मे सोचने लगा—यदि मैं इसके पूर्व ही प्रव्रजित हो जाता तो आज यह दशा नही होती। उसने समभावपूर्वक यह भयकर कष्ट सहन किया। धीरे-धीरे उपचार से चमडी ठीक हुई। वैराग्य उद्वुद्ध हुआ, एक हजार आठ श्रेष्ठी पुत्रो के साथ मुनिसुव्रत स्वामी के पास सयम ग्रहण किया। द्वादशाङ्गी का अध्ययन कर उत्कृष्ट तप करता हुआ आयुष्यपूर्ण कर सौधर्म देवलोक का इन्द्र वना। गैरिक तापस भी वहाँ से आयु पूर्ण कर इसी इन्द्र का ऐरावत हाथी हुआ। इन्द्र को अपने ऊपर वैठा देखकर घवराया, रूप वदला। इन्द्र ने भी अवधिज्ञान से पूर्वभव देख उसे डाटा-फटकारा, वह शान्त हो गया।

हजार नेत्र होने से इन्द्र का एक नाम सहस्राक्ष है। जैनाचार्यों का यह मन्तव्य है कि इन्द्र के पांच सौ मंत्री हैं, उनके परामर्श से ही वह शासन सूत्र का संचालन तथा राज्य व्यवस्था करता है। आलंकारिक भाषा में मंत्री राजा की आँख होती है उस दृष्टि से पांच सौ मंत्री होने से इन्द्र 'सहस्राक्ष' कहलाता है।

वैदिक परम्परा के अनुसार एक बार इन्द्र गौतमऋषि की पत्नी अहिल्या पर आसक्त हुआ, ऋषि ने सहस्रभग होने का श्राप देना चाहा। पर अभ्यर्थना करने पर उसने सहस्राक्ष होने का श्राप दिया, जिससे वह सहस्राक्ष कहलाया। ऋग्वेद में भी इन्द्र को सहस्राक्ष कहा है।[१००]

महामेघ (वृष्टि आदि का स्वामी) उसके वश में होने से वह मघवा कहलाता है। 'पाक' नामक एक बलवान दैत्य पर शासन करने से वह पाकशासन कहलाया। दक्षिणार्धभरत का अधिपति होने से दक्षिणार्धपति है। बत्तीस लक्ष विमानों का स्वामी है। ऐरावत हाथी का उपयोग करने से ऐरावत-अधिपति है।[१०१]

मूल :—

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं, सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयनट्ट-गीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुपडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥१४॥

अर्थ—वह इन्द्र वहाँ बत्तीस लाख विमानों का, चौरासी हजार सामानिक

(इन्द्र तुल्य ऋद्धि वाले) देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव (मत्री तुल्य देवो का, त्रायस्त्रिंशक देवो को इन्द्र के पूज्यस्थानीय देव भी कहे जाते है ।)[१०७] चार लोकपालो (सोम, यम, वरुण, कुबेर) का, परिवार सहित अष्ट अग्रमहिपियो (पद्मा, शिवा, शची, अञ्जु, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी) का, तीन परिषदो (वाह्य, मध्यम और आभ्यन्तर) का, सप्त सैन्य (गन्धर्व, नाटक, अश्व, गज, रथ, सुभट-पदाति और वृषभ) सप्त सेनापतियो, चार चौरासी सहस्र (तीन लाख छत्तीस हजार) अङ्गरक्षक देवो और अन्य अनेक सौधर्मस्थ देव-देवियो का आधिपत्य करता था। वह सभी मे अग्रसर था। स्वामी के समान वह प्रजा का पालन पोषण करता था और गुरु के समान महामान्य था। इन सभी देवो के ऊपर अपने द्वारा नियुक्त देवो द्वारा दिये गये अपने आदेश को प्रदर्शित करने वाला था। वह निरन्तर उच्च ध्वनि वाले नाट्य सगीत, मुखरित वीणा, करताल, त्रुटित, अन्य वाद्य यत्र, मेघ गभीर रव करने वाला मृदग श्रेष्ठ शब्द करने वाला पटह, इन सभी के मधुर शब्दो को श्रवण करता हुआ आनन्द से रहता है।[१०८]

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे इन्द्र के विराट् वैभव का वर्णन है। इन्द्र के आमोद प्रमोद हेतु नाट्य, सगीत व विविध वाद्य यत्र प्रयुक्त होते थे।[B१०८]

मूल :—

इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ विहरइ, तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे माहण कुंडग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए परमाणंदिए पीइमणे परमसोमणसिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरहिकुसुमचंचुमालइयऊससियरोमकूवे वियसियवरकमलनयणवयणे पयलियवरकडगतुडियकेऊर

मउडकुंडलहारविरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, २ वेरुलियवरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोवियमिसिमिसिंतमणिरयणमंडियाओ पाउयातो ओमुयइ, २ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, एगसाडियं उत्तरासंगं करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं २ त्ता दाहिणं जाणं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ, तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ, कड० २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥१५॥

अर्थ—वह इन्द्र अपने विपुल अवधिज्ञान से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ओर देखता है। उस समय वह श्रमण भगवान् महावीर को जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष के दक्षिणार्धभरत के ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर में कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भ रूप में उत्पन्न हुए देखता है। उसका हृदय हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, परमानन्दित, व प्रीति-युक्त होता है। परम सौमनस्य को प्राप्त करता है। हर्ष से उसका हृदय फूल उठता है। मेघधारा से सिंचित कदम्ब वृक्ष के सुगन्धयुक्त विकसित कुसुमों की तरह रोमांचयुक्त हो जाता है। प्रफुल्लित उत्तम कमल की तरह नेत्र व मुख खिल उठते हैं। श्रेष्ठ कड़े, त्रुटी, केयूर (बाजूबंद) मुकुट [सिर का आभूषण] कुण्डल (कान का भूषण) पहने हुए, तथा हार से सुशोभित वक्षस्थल वाला, लम्बे लटकते हुए पुनः पुनः डोलायमान आभूषणों को धारण किया हुआ, सुरेन्द्र ससम्भ्रम-त्वरा शीघ्र ही सिंहासन से उठकर खड़ा हुआ। पादपीठ से नीचे

उतरा, नीचे उतरकर उत्तम वैडूर्य, वरिष्ठ, अरिष्ट अञ्जन आदि रत्नो से युक्त, कुशल कारीगरो द्वारा निर्मित चमचमाते हुए मणि-मुक्ताओ से मण्डित पादुका (खडाऊ--जूतो) को उतारकर, दुपट्टे से उत्तरासन करके (मुह की यतना करके) अजलि से मुकुलित अग्र हाथवाला वह इन्द्र तीर्थंकर के सम्मुख सात-आठ कदम आगे चलकर दाहिने घुटने को ऊँचा करके, बाये घुटने को भूमि पर रखकर तीन बार मस्तिष्क को पृथ्वी पर लगाकर किञ्चित् ऊँचा होता है और सीधा होकर कडे और त्रुटित से युक्त भुजा को सकुचित करता है, दोनो भुजाओ को सकुचित कर दसनाखून एक दूसरे से सयुक्त रहे इस प्रकार सम्मिलित करके मस्तिष्क पर अजलि करता हुआ इस प्रकार बोला—

मूल :—

नमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं ॥१॥ आइगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं ॥२॥ पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं ॥३॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं ॥४॥ अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ॥५॥ धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं ॥६॥ दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा, (णं) अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं वियट्टछउमाणं ॥७॥ जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं ॥८॥ सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं ॥९॥

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरिमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगये पासउ मे भगवं तत्थगए

इहगयं,-ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ. २ सीहासण-वरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ॥१६॥

अर्थ–"अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो (अरिहन्त भगवान् कैसे है?) धर्म की आदि करने वाले,धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले,अपने आप ही सम्यक्-बोध को पाने वाले, पुरुषो मे श्रेष्ठ, पुरुषो मे सिंह, पुरुषो मे श्रेष्ठ श्वेत-कमल के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान,लोक मे उत्तम,लोक के नाथ,लोक के हितकर्त्ता, लोक मे दीपक तुल्य, लोक मे उद्योत करने वाले, अभयदान देने वाले, ज्ञान रूपी नेत्र के देने वाले, मोक्ष मार्ग का उपदेश देने वाले, शरण के देने वाले, संयम जीवन को देने वाले, सम्यक्त्वरूपी बोधि के देने वाले, धर्म के देने वाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नेता, धर्म-रथ के सारथी हैं। चार गति का अन्त करने वाले, श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती है। भवसागर मे द्वीप रूप, रक्षा रूप, शरण रूप, आश्रय रूप और आधार रूप हैं। अप्रतिहत एव श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारण करने वाले, प्रमाद से रहित, स्वयं रागद्वेष को जीतने वाले, दूसरो को जिताने वाले, स्वय ससार सागर से तिरे हुए और दूसरों को तारने वाले हैं। स्वयं बोध पा चुके हैं, दूसरो को बोध देने वाले हैं। स्वयं कर्म से मुक्त है दूसरो को मुक्त कराने वाले है, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी है तथा शिवरूप (मंगलमय) है। अचल-स्थिर-रूप अरुज–रोगरहित, अनन्त–अन्त रहित, अक्षय-क्षय रहित, अव्याबाध-बाधा पीडा रहित, अपुनरावृत्ति-जहाँ से पुन लौटना नही पडता ऐसी सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके है, भय को जीतने वाले है. रागद्वेष को जीतने वाले है। उन जिन भगवान् को मेरा नमस्कार हो।

नमस्कार हो श्रमण भगवान् महावीर को, जो धर्म की आदि के करने वाले, चरम तीर्थंकर, पूर्व तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट और अपुनरावृत्ति-सिद्धिगति को पाने की अभिलाषा वाले है। यहाँ (स्वर्ग) मे रहा हुआ मैं वहाँ (देवानन्दा के गर्भ मे) रहे हुए भगवान् को वन्दना करता हूं। वहां रहे हुए भगवान् यहाँ रहे हुए मुझे देखें। इस प्रकार भावना करके देवराज देवेन्द्र श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन व नमन करता है और अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठता है।

विवेचन--प्रस्तुत सूत्र के तीन नाम उपलब्ध होते है। कल्पसूत्र, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति आदि आगमो मे शक्रेन्द्र द्वारा वन्दन मे प्रयुक्त होने से यह 'शक्रस्तव' के नाम से प्रसिद्ध है। अनुयोगद्वार सूत्र के आदानपद नाम के उल्लेखानुसार इस स्तुति का 'नमुत्थुण' नाम प्रारभिक पद के ऊपर से चल पड़ा है। "योगशास्त्र" स्वोपज्ञवृत्ति, प्रतिक्रमणवृत्ति आदि ग्रन्थो मे इसका नाम प्रणिपात सूत्र (नमस्कार सूत्र) दिया है।

यह स्तुति अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके एक-एक अक्षर में भक्तिरस कूट-कूटकर भरा है। इस स्तुति मे तीर्थंकरो के आध्यात्मिक गुणो का उत्कीर्तन सर्वत्र मुखरित हुआ है। आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए, साधक को इसे प्रतिदिन एकसौ आठ बार श्रद्धा के साथ स्मरण करना चाहिए। जो साधक भक्तिभावना से विभोर होकर इसका प्रतिदिन नियमित जाप करता है उसके चरणो में अखिल ससार का भौतिक और आध्यात्मिक वैभव अपने आप आकर उपस्थित हो जाता है। उसके अन्तर्मानस मे किसी प्रकार की निराशा नही रहती, वह सदा-सर्वदा सुख व आनन्द को प्राप्त करता है।

मूल :—

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं नं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा किविणकुलेसु वा भिक्खायकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा एवं खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसुवा इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु आयाइंसुवा आयाइंति वा आयाइस्संतिवा॥ १७॥

अर्थ—तत्पश्चात् उस शक्र देवेन्द्र देवराज को इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन रूप तथा अभिलाषा रूप मे, मनमे जागृत हुआ, संकल्प उत्पन्न हुआ कि ऐसा न कभी पूर्व हुआ है, न वर्तमान मे होता ही है और न भविष्य मे होगा ही—'अरिहन्त [तीर्थकर] चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अन्त्यकुल मे, प्रान्तकुल मे अधमकुल मे, तुच्छकुल मे, दरिद्रकुल मे, कृपणकुल मे, भिक्षुककुल मे, अथवा ब्राह्मण कुल मे, जन्मे हो, जन्मते हों अथवा जन्मेगे।

इस प्रकार निश्चय ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव ये उग्रकुल मे, भोगकुल मे, राजन्यकुल मे, इक्ष्वाकुकुल मे, क्षत्रियकुल मे, हरिवंशकुल मे तथाप्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति कुल वाले वंशो मे जन्मे थे, जन्मते हैं और जन्मेगे।

विवेचन—उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल और क्षत्रियकुल इन कुलो की स्थापना भगवान् ऋषभदेव ने की थी। राज्य की सुव्यवस्था के लिए आरक्षक दल बनाया, जिसके अधिकारी दण्ड आदि धारण करने से—'उग्र' कहलाये। मन्त्री-मण्डल बनाया जिसके अधिकारी गुरु-स्थानीय थे वे 'भोग' नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा के समीपस्थ जन, जो समान वय वाले मित्र रूप मे परामर्श प्रदाता थे वे 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए। शेष अन्य राजकुल मे उत्पन्न क्षत्रिय नाम से पहचाने गये।[११०]

भगवान् ऋषभदेव एक वर्ष मे कुछ कम के थे तब नाभिराजा की गोद में बैठे हुए क्रीडा कर रहे थे। उस समय शक्रेन्द्र हाथ मे इक्षु लेकर आए, भगवान् ने हाथ आगे बढाया।[१११] तब इन्द्र ने सोचा भगवान् इक्षु की इच्छा कर रहे हैं, अत इनका वंश इक्ष्वाकु हो, इस प्रकार इक्ष्वाकुवंश की स्थापना इन्द्र ने की।[११२]

हरिवर्ष क्षेत्र से लाये गये युगल से हरिवंश उत्पन्न हुआ।[११३]

तथाप्रकार के अन्य विशुद्ध जाति कुल वंश से तात्पर्य है—महान् शक्ति व तेजःसम्पन्न योद्धा जैसे मल्लवी तथा लिच्छवी राजवंश के राजागण, गुणराज, महर्धिक राजागण जिनके तेजस्वी व्यक्तित्व पर प्रसन्न होकर पुरस्कार प्रदान किया जाय जैसे वीर, सन्निवेश नायक, कुटुम्ब के नायक आदि।

——○ दस आश्चर्य

मूल :—

अत्थिपुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीहिं वीइक्कंताहिं समुप्पज्जति, (ग्रं० १००) नामगोत्तस्सवा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिणस्स उदएणं जन्नं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा ॥१८॥

अर्थ--किन्तु लोक मे इस प्रकार का आश्चर्यभूत कार्य भी अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी व्यतीत होने के पश्चात् होता है, जब कि अरिहन्त भगवान् चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, उस प्रकार के नाम गोत्र कर्म के क्षीण नही होने से (स्थिति क्षय के अभाव मे) रस-विपाक द्वारा कर्म के नही भोगे जाने से, कर्म की निर्जरा नही होने से एव उस कर्म के उदय से वे अन्त्यकुल मे, प्रान्तकुल मे, तुच्छकुल मे, दरिद्र कुल मे, कृपण कुल मे, भिक्षुक कुल मे, ब्राह्मण कुल मे अतीत काल मे आये है, वर्तमान मे आते है और भविष्य मे आयेगे, कुक्षि मे गर्भ रूप मे अतीत काल मे उत्पन्न हुए है, वर्तमान मे होते है और भविष्य में भी उत्पन्न होगे, परन्तु अतीत काल मे भी उन्होने वहाँ पर जन्म नही लिया है, वर्तमान मे भी नही लेते है और न भविष्य मे ही जन्म लेगे।

विवेचन--आगम के समर्थ टीकाकार आचार्य अभयदेव ने कहा है— "जो वात अभूतपूर्व व अलौकिक हो, जिसे देखकर मन मे विस्मय उत्पन्न हो वह आश्चर्य है।"[१०४]--आश्चर्य और असभव शव्दोके अर्थमे वहुत अन्तर है। असभव का अर्थ है जो कभी हो न सकता हो, पर आश्चर्य असंभव नही है, केवल विरल घटना है। यहाँ पर विश्व के अन्य आश्चर्यो का वर्णन न कर केवल जैनागमो मे

आए हुए आश्चर्यों का विश्लेषण करना है। जैनागमों में जिस प्रकार आश्चर्यों का वर्णन है वैसा बौद्ध और वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं कि उन परम्पराओं में आश्चर्य जनक घटनाएँ नहीं हैं। घटनाएँ तो अनेक हो सकती हैं पर उन्होंने उनका इस शैली से निरूपण नहीं किया।

स्थानाङ्ग,[११] प्रवचन सारोद्धार,[११] एवं कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओं में दस आश्चर्यों का उल्लेख है। (१) उपसर्ग, (२) गर्भापहरण, (३) स्त्रीतीर्थ, (४) अभावितपरिषद् (अयोग्य परिषद्), (५) कृष्ण का अपरकंकागमन, (६) चन्द्र सूर्य का आकाश से उतरना, (७) हरिवंश कुल की उत्पत्ति, (८) चमरेन्द्र का उत्पात, (९) उत्कृष्ट अवगाहना के एक सौ आठ सिद्ध, (१०) असंयत पूजा। इनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) उपसर्ग—एक समय आर्यावर्त्त के महामानव भगवान् महावीर धर्मोपदेश करते हुए श्रावस्ती के उद्यान में पधारे। गणधर गौतम भिक्षा के लिए नगरी में गए। उन्होंने सुना—गोशालक अपने आपको जिन व सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहता है। गौतम ने महावीर से निवेदन किया। महावीर ने कहा—'गौतम! मंखलीपुत्र गोशालक मेरा कुशिष्य है। वह जिन नहीं पर 'जिन' का प्रलाप करने वाला है। महावीर का प्रस्तुत कथन श्रावस्ती में प्रसारित हो गया। गोशालक ने भी सुना। उसने छट्ठ के पारणा हेतु गये हुए महावीर के शिष्य आनन्द से कहा—"हे आनन्द! धन प्राप्त करने की लालसा से कुछ वणिक् अशन-पान की व्यवस्था कर भाण्ड आदि लेकर विदेश चले। भयंकर अरण्य में पहुँचने पर साथ का जल समाप्त हो गया। तृषा से छटपटाने लगे, जल की अन्वेषणा करते हुए उन्हें चार बांबी दृष्टिगोचर हुईं। प्रथम बांबी खोली। अमृत-सा मधुर जल निकला, जिसे प्राप्त कर सभी आनन्द-विभोर हो गये। दूसरी बांबी खोली तो चमचमाता हुआ स्वर्ण निकला, तीसरी बांबी खोली तो अमूल्य मणि-मुक्ताएँ उपलब्ध हुईं। ज्यों ही वे चौथी बांबी खोलने के लिए ऊपर पत्थर हटाने लगे त्यों ही एक सुबुद्धि वणिक् ने रोका। पर उन्होंने नहीं माना। खोदने ही उसमें से दृष्टि विष सर्प निकला, जिसकी विषैली फुत्कार से वे सब वहीं पर भस्म हो गये। प्रस्तुत रूपक सुनाकर धर्माचार्य महावीर

पर भी घटित होता है। उन्हे भी सभी वस्तुएँ प्राप्त हो गई है, पर खेद है कि उन्हे अब भी सन्तोष नही है। वे मुझे 'मखलिपुत्र' 'छद्मस्थ' और अपना 'कुशिष्य' कहते है। तू जाकर उन्हे सावधान करदे, अन्यथा मैं स्वय आकर उनकी दशा 'दुर्बुद्धि वणिक्पुत्रो से समान कर दूँगा।'

आनन्द मुनि भगवान् के पास पहुँचा। गोशालक का धमकी भरा कथन निवेदन किया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् तो पूर्व ही जानते थे। भगवान् ने कहा—"आनन्द, तुम जाओ और गौतमादि श्रमणो को सूचित कर दो कि गोशालक यहाँ आ रहा है, कोई भी श्रमण उससे सम्भाषण न करे।"

गोशालक महावीर के पास पहुँचा और बोला—"हे काश्यप ! तुम्हारा शिष्य मखली पुत्र तो मर गया है। वह अन्य था, मैं अन्य हूँ। उसके शरीर को परीषह सहन करने में सुदृढ समझ कर मैंने उसमे प्रवेश किया है।"

महावीर ने कहा—'गोशालक ! जैसे कोई तस्कर छिपने का स्थान प्राप्त न होने पर तृण की ओट में छिपने का प्रयास करता है, वैसे ही तुम भी अन्य न होते हुए भी अपने आप को अन्य बता रहे हो ?'

भगवान् श्री महावीर के सत्य कथन को श्रवण कर गोशालक स्तम्भित एव अवाक् था। वह मन ही मन तिलमिला उठा। वह अपने आपको छिपाने की दृष्टि से अनर्गल प्रलाप करने लगा। महावीर के समक्ष अनर्गल बोलते हुए देखकर भगवान् के अन्तेवासी शिष्य 'सर्वानुभूति' और 'सुनक्षत्र' अनगार ने कहा–'हे गोशालक, तुम्हे अपने धर्माचार्य के प्रति इस प्रकार अशिष्टता प्रदर्शित नही करनी चाहिए।'

गोशालक ने क्रुद्ध होकर उन दोनो अनगारो को तेजोलेश्या से वही पर भस्म कर दिया। दोनो आयु पूर्ण कर आठवे और बारहवें देवलोक मे उत्पन्न हुए।[११७] भगवान् के द्वारा प्रतिबोध देने पर भी गोशालक न समझा। **पय.पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्** की उक्ति के अनुसार उसने भगवान् श्री महावीर पर भी तेजोलेश्या फेकी। पर वह तेजोलेश्या भगवान् के इर्दगिर्द चक्कर काटती हुई ऊपर आकाश मे उछली और पुन गोशालक के शरीर मे प्रविष्ट हो गई। अपनी तेजोलेश्या से भगवान् को भस्म हुआ न देखकर गोशालक

आकुल-व्याकुल हो गया। वह बोला—'हे काश्यप! तू छह मास में पित्त व दाह ज्वर से पीड़ित होकर मर जायेगा।'

महावीर ने गंभीर गर्जना करते हुए कहा—'गोशालक! मैं तो अभी सोलह वर्ष तक गंधहस्ती की तरह इस महीतल पर विचरण करूँगा, परन्तु स्मरण रखना, तू स्वयं सात रात्रि में पित्त-ज्वर से पीड़ित होकर छद्मस्थावस्था में ही काल करेगा।

भगवान् की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। तेजोलेश्या के प्रभाव से भगवान् महावीर को भी छहमास तक पित्त-ज्वर व रक्तातिसार हो गया था।[118] केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् तीर्थंकर का यह अतिशय होता है कि वे जहाँ भी रहते हैं वहाँ और उनके आस पास सौ योजन तक किसी भी प्रकार का वैर-भाव, मृगी, रोग एवं दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होता,[119] पर भगवान् महावीर को केवलज्ञान होने के पश्चात् और उन्हीं के समवसरण में यह उपसर्ग हुआ जो एक आश्चर्य है।

(२) गर्भापहरण—द्वितीय आश्चर्य गर्भापहरण है। तीर्थंकरों के गर्भ का अपहरण नहीं होता, पर श्रमण भगवान् महावीर का हुआ। दिगम्बर परम्परा प्रस्तुत घटना को मान्य नहीं करती, पर श्वेताम्बर परम्परा के माननीय आगमों में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

आचाराङ्ग[120] समवायाङ्ग[121] स्थानाङ्ग[122] आवश्यक निर्युक्ति[123] प्रभृति में स्पष्ट वर्णन है कि श्रमण भगवान् महावीर बयासी [८२] रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर एक गर्भ से दूसरे गर्भ में ले जाये गये। भगवती सूत्र में देवानन्दा ब्राह्मणी का परिचय देते हुए भगवान महावीर ने गौतम से कहा—'हे गौतम! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है।'[124]

जैनागमों की तरह वैदिक परम्परा में भी गर्भ परिवर्तन-विधियों का उल्लेख है। कंस जब वसुदेव की सन्तानों को समाप्त कर देता था, तब विष्णु ने योगमाया को यह आदेश देता है कि वह देवकी का गर्भ रोहिणी के उदर में रखे। विष्णु भगवान के आदेश व निर्देश से योगमाया देवकी का गर्भ रोहिणी के

लौटते हुए विजय शख बजाया,जिसका गभीर रव तीर्थंकर मुनिसुव्रत के पीयूष-वर्षी प्रवचनो का पान करते हुए धातकीखण्डस्थ भरत क्षेत्र के वासुदेव श्री कपिल ने सुना। श्रीकृष्ण से मिलने के लिये वे द्रुतगति से चले, पर श्रीकृष्ण तो पूर्व ही वहा से प्रस्थान कर चुके थे। दूर से ही रथ की ध्वजा को निहार कर कपिल वासुदेव ने शखनाद किया और उसके प्रत्युत्तर मे श्रीकृष्ण ने भी।

यह नियम है कि वासुदेव व चक्रवर्ती सम्राट् अपनी सीमा से बाहर अन्य सीमा मे नही जाते, पर श्री कृष्ण गए, यह एक आश्चर्य है।[१३५]

(६) चन्द्र सूर्य का आकाश से उतरना—एक समय श्रमण भगवान् श्री महावीर छद्मस्थावस्था मे कौशाम्बी मे विराज रहे थे। उस समय भगवान् के दर्शन हेतु सूर्य और चन्द्र दोनो अपने शाश्वत विमानो के साथ उपस्थित हुए।[१३६] सूर्य और चन्द्र तीर्थंकरो के दर्शनहेतु आते है, पर शाश्वत विमानो मे नही। फिर भी आये, यह आश्चर्य है। इस सम्वन्ध मे एक भिन्न मान्यता यह भी है—चन्द्र सूर्य का आगमन महावीर के समवसरण मे हुआ। उस समय सती मृगावती भी वही बैठी थी, रात होने पर भी अधकार न हुआ। चन्द्र सूर्य गए, अंधकार हुआ। मृगावती अपने स्थान पर गई, अग्रणी सती चन्दनवाला ने अकाल-वेला करने पर उलाहना दिया तब आत्मालोचन करते करते मृगावती को केवलज्ञान होगया।[१३७] यह घटना महावोर के २४वे वर्षावास की है।

(७) हरिवंश कुल की उत्त्पत्ति—कौशाम्वी के 'सम्मुख' नामक सम्राट् ने एक वार वीरक की पत्नी वनमाला को देखा। यौवन के मद मे मदमाती वनमाला के सौन्दर्य ने सम्राट् को उन्मत्त वना दिया। सम्राट् के अनुनय-विनय से वह भी अपने धर्म से च्युत हो वीरक की झोंपड़ी छोड़कर वह गगन चुम्वी राजप्रासाद मे पहुँची। वीरक उसके वियोग से व्यथित होकर पागल हो गया वर्षा की सुहावनी वेला थी। आकाश मे उमड-घुमडकर घनघोर घटाएँ आ रही थी। चारु-चपला चमक रही थी। वनमाला के साथ सम्राट् आमोद-प्रमोद मे तल्लीन था। पीक थूकने के लिये गवाक्ष से ज्योही मुंह निकाला

त्योंही नीचे उतरे वीरक की दयनीय दशा देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया। सोचा—'धिक्कार है हमें! हम वासना के कीड़े हैं।' यह विवेक का प्रकाश जगा ही था कि आकाश से बिजली गिरी और देखते-ही-देखते दोनों के प्राण-पखेरू उड़ गये। वीरक ने जब यह सुना तो उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो गया और संसार के विनश्वर स्वभाव को समझकर वह एक एकान्त शान्त कानन में तप करने लगा। प्रशस्त भावना से सुमुख और वनमाला वहा से हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिये बने और वीरक भी तप के प्रभाव से आयु पूर्णकर सौधर्म कल्प में त्रिपल्योपम की स्थितिवाला किल्विषिक देव हुआ।[१३८] उस युगल को क्रीड़ा में निमग्न देखकर उस देव का पूर्व वैर उद्बुद्ध हो गया। उसने सोचा—यहाँ भी ये सुख के सागर पर तैर रहे हैं और यहा से देवलोक में जायेंगे, वहा भी इसी तरह आनन्द करेंगे। अत ऐसा प्रयत्न करूँ जिससे इनका भावी जीवन दुःखमय बने। देव-शक्ति से दो कोस की ऊँचाई को सौ धनुष्य की करदी।[१३९] वहा से दोनों को उठाकर भरतक्षेत्र की चम्पानगरी में लाया। वहा के इक्ष्वाकुकुल सम्राट् का निधन हो गया था अत वह 'हरि' वहा का सम्माननीय सम्राट् बना और हरिणी राजमहिषी। कुसगति से दोनों ने सप्त व्यसनों का सेवन किया। जिससे वे वहा से मरकर नरक में गए। यौगलिक व्यसनों का सेवन नहीं करते और नरक में नहीं जाते पर वे गये, अत यह आश्चर्य है।

(८) चमरेन्द्र का उत्पात—असुरराज चमरेन्द्र पूर्व भव में "पूरण" नाम का एक बाल-तपस्वी था वह छट्ठ-छट्ठ का तप करता और पारणा के दिन काष्ठ के चतुष्पुट पात्र में भिक्षा लाता। प्रथम पुट की भिक्षा पथिकों को प्रदान करता, द्वितीय पुट की भिक्षा पक्षियों को चुगाता, तृतीय पुट की भिक्षा जलचरों को देता और चतुर्थ पुट की भिक्षा समभाव से स्वयं ग्रहण करता। द्वादश वर्ष तक इस प्रकार घोर तप किया और एक मास के अनशन के पश्चात आयु पूर्णकर चमरचंचा राजधानी में इन्द्र बना।

इन्द्र बनते ही उसने अवधिज्ञान से अपने ऊपर सौधर्मावतंसक विमान में शक्र नामक सिंहासन पर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते हुए देखा। तत्काल मन में विचार किया—"यह मृत्यु को चाहने वाला, अशुभ लक्षणोंवाला, लज्जा

उदर मे रख देती है। तब पुरवासी अत्यन्त दु ख के साथ कहने लगते है 'हाय बेचारी देवकी का यह गर्भ नष्ट हो गया।[१२५]

आज का युग वैज्ञानिक युग है। वैज्ञानिको ने अनेक स्थलो पर यह परीक्षण कर प्रमाणित कर दिया है कि गर्भ-परिवर्तन असम्भव नही है। इस सम्बन्ध मे 'गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी' द्वारा प्रकाशित 'जीवन-विज्ञान' (पृष्ठ ४३) मे एक वर्णन प्रकाशित हुआ है, वह द्रष्टव्य है।

'एक अमरीकन डाक्टर को एक भाटिया स्त्री के पेट का आपरेशन करना था। समस्या यह थी कि स्त्री गर्भवती थी। अत. डाक्टर ने एक गर्भिणी बकरी का पेट चीरकर उसके पेट का बच्चा बिजली-चालित एक डिब्बे मे रखा और उस स्त्री के पेट का बच्चा बकरी के पेट मे। आपरेशन कर चुकने के बाद डाक्टर ने पुन स्त्री का बच्चा स्त्री के पेट मे और बकरी का बच्चा बकरी के पेट मे रख दिया। कालान्तर मे स्त्री और बकरी ने जिन बच्चो को जन्म दिया वे स्वस्थ और स्वाभाविक रहे।'

(३) **स्त्रीतीर्थ**—तीर्थङ्कर पुरुष ही होते हैं,[१२६] स्त्री नही, परन्तु प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में उन्नीसवे तीर्थङ्कर मल्लि भगवती स्त्री हुई हैं।[१२७] मल्लि भगवती का जीव पूर्व भव मे अपर विदेह के सलिलावती विजय मे महाबल राजा था।[१२८] उन्होने अपने छह मित्रो सहित दीक्षा ग्रहण की। महाबल मुनि के अन्तर्मानस मे यह विचार उद्‌बुद्ध हुआ कि यहाँ मैं अपने छहो साथियो का नेता हूँ। यदि मैं इनके साथ ही समान जप-तप करता रहूँगा तो भविष्य मे इनसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ नही बन सकूगा। इस प्रकार विचार कर महाबल मुनि पारणा के समय बहानाबाजी कर उग्र तप करने लगे। तपादि के प्रभाव से तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया।[१२९] और माया के कारण सम्यक्त्व से च्युत होकर स्त्री वेद का।[१३०] जिससे वे स्त्री तीर्थङ्कर हुए।[१३१] यह भी एक आश्चर्य है।

(४) **अभावित परिषद्**—तीर्थङ्कर का प्रथम प्रवचन इतना प्रभाव पूर्ण

होता है कि उसे श्रवणकर भौतिकता में निमग्न मानव भी त्याग मार्ग को स्वीकार कर लेते हैं। भगवान् श्री महावीर को जृम्भिका गाँव के बाहर ऋजुबालिका नदी के किनारे शाल-वृक्ष के नीचे केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। देवों ने केवलज्ञान महोत्सव किया। समवसरण की रचना हुई भगवान् ने यह जान कर कि यहां कोई भी चारित्र धर्म अंगीकार करने वाला नहीं है, अत एक क्षण तक प्रवचन किया।[132] पर किसीने भी चारित्र स्वीकार नहीं किया।[133] एतदर्थ ही प्रथमपरिषद् को अभावित कहा है। तीर्थंकर का प्रवचन पात्र की अपेक्षा से निष्फल गया, यह भी एक आश्चर्य है।[134]

(५) कृष्ण का अपरकंका गमन--सतीशिरोमणि द्रौपदी के रूप-लावण्य की प्रशंसा सर्वत्र फैल चुकी थी। नारद ऋषि ने भी सुनी और वह उसे निहारने के लिये राजप्रासाद में पहुँचे। दृढधर्मा द्रौपदी ने गुरु बुद्धि से नारद को नमस्कार नहीं किया। नारद ऋषि ने अपना अपमान समझा और वे कुपित हो गए। द्रौपदी को इस अपमान का फल चखाने के लिए नारद ने उपाय सोचा। धातकीखण्ड द्वीप के अपरकंकाधीश पद्मनाभ को जो परदार-लुब्ध था, द्रौपदी का रूप वर्णन करते हुए कहा—पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी इतनी सुन्दर है, मानो चांद का टुकड़ा हो। यदि तुम उसे प्राप्तकर सको तो तुम्हारे रणवास में चार-चांद लग जाएँगे।"

पद्मनाभ ने अपने मित्र देव की सहायता से सोई हुई द्रौपदी को अपने राजप्रासाद में मंगवा लिया। द्रौपदी से भोग की भाषा में अभ्यर्थना की, पर पतिव्रता द्रौपदी ने उसे विवेकपूर्वक समझाकर रोका।

द्रौपदी को राजप्रासाद में न पाकर पाण्डव चिन्तित हुए। यत्र-तत्र सर्वत्र खोज की, परन्तु द्रौपदी का कहीं अता-पता न लगा। द्वारिकाधीश श्री कृष्ण से निवेदन किया। कृष्ण ने उपहास करते हुए कहा—"खेद है तुम पाँच पति होते हुए भी द्रौपदी की रक्षा नहीं कर सके।" फिर श्रीकृष्ण ने नारद ऋषि से पता पा लिया कि वह अपरकंका में है। पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे। नृसिंह रूप बना श्रीकृष्ण ने पद्मनाभ को पराजित किया और [illegible]

लौटते हुए विजय शख बजाया,जिसका गंभीर रव तीर्थंकर मुनिसुव्रत के पीयूष-वर्षी प्रवचनो का पान करते हुए धातकीखण्डस्थ भरत क्षेत्र के वासुदेव श्री कपिल ने सुना। श्रीकृष्ण से मिलने के लिये वे द्रुतगति से चले, पर श्रीकृष्ण तो पूर्व ही वहा से प्रस्थान कर चुके थे। दूर से ही रथ की ध्वजा को निहार कर कपिल वासुदेव ने शखनाद किया और उसके प्रत्युत्तर मे श्रीकृष्ण ने भी।

यह नियम है कि वासुदेव व चक्रवर्ती सम्राट् अपनी सीमा से वाहर अन्य सीमा मे नही जाते, पर श्री कृष्ण गए, यह एक आश्चर्य है।[१३५]

(६) चन्द्र सूर्य का आकाश से उतरना—एक समय श्रमण भगवान् श्री महावीर छद्मस्थावस्था मे कौशाम्वी मे विराज रहे थे। उस समय भगवान् के दर्शन हेतु सूर्य और चन्द्र दोनो अपने शाश्वत विमानो के साथ उपस्थित हुए।[१३६] सूर्य और चन्द्र तीर्थंकरो के दर्शनहेतु आते हैं, पर शाश्वत विमानो मे नही। फिर भी आये, यह आश्चर्य है। इस सम्वन्ध मे एक भिन्न मान्यता यह भी है—चन्द्र सूर्य का आगमन महावीर के समवसरण मे हुआ। उस समय सती मृगावती भी वही वैठी थी, रात होने पर भी अधकार न हुआ। चन्द्र सूर्य गए, अंधकार हुआ। मृगावती अपने स्थान पर गई, अग्रणी सती चन्दनवाला ने अकाल-वेला करने पर उलाहना दिया तब आत्मालोचन करते करते मृगावती को केवलज्ञान होगया।[१३७] यह घटना महावोर के २४वे वर्षावास की है।

(७) हरिवंश कुल की उत्पत्ति—कौशाम्वी के 'सम्मुख' नामक सम्राट् ने एक बार वीरक की पत्नी वनमाला को देखा। यौवन के मद मे मदमाती वनमाला के सौन्दर्य ने सम्राट् को उन्मत्त वना दिया। सम्राट् के अनुनय-विनय से वह भी अपने धर्म से च्युत हो वीरक की झोपडी छोडकर वह गगन चुम्वी राजप्रासाद मे पहुँची। वीरक उसके वियोग से व्यथित होकर पागल हो गया वर्षा की सुहावनी वेला थी। आकाश मे उमड-घुमडकर घनघोर घटाएँ आ रही थी। चारु-चपला चमक रही थी। वनमाला के साथ सम्राट् आमोद-प्रमोद मे तल्लीन था। पीक थूकने के लिये गवाक्ष से ज्योही मुंह निकाला

त्योंही नीचे खड़े वीरक की दयनीय दशा देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया। सोचा—'धिक्कार है हमें! हम वासना के कीड़े हैं।' यह विवेक का प्रकाश जगा ही था कि आकाश से बिजली गिरी और देखते-ही-देखते दोनों के प्राण-पखेरू उड़ गये। वीरक ने जब यह सुना तो उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो गया और संसार के विनश्वर स्वभाव को समझ कर वह एक एकान्त शान्त कानन में तप करने लगा। प्रशस्त भावना से सम्मुख और वनमाला वहां से हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिये बने और वीरक भी तप के प्रभाव से आयु पूर्णकर सौधर्म कल्प में त्रिपल्योपम की स्थितिवाला किल्बिषिक देव हुआ।[१३८] उन युगल को क्रीड़ा में निमग्न देखकर उस देव का पूर्व वैर उद्बुद्ध हो गया। उसने सोचा—यहाँ भी ये सुख के सागर पर तैर रहे हैं और यहां से देवलोक में जायेंगे, वहां भी इसी तरह आनन्द करेंगे। अतः ऐसा प्रयत्न करूँ जिससे इनका भावी जीवन दुःखमय बने। देव-शक्ति से दो कोस की ऊँचाई को सौ धनुष्य की करदी।[१३९] वहां से दोनों को उठाकर भरतक्षेत्र की चम्पानगरी में लाया। वहां के इक्ष्वाकुकुल सम्राट् का निधन हो गया था अतः वह 'हरि' वहां का सम्माननीय सम्राट् बना और हरिणी राजमहिषी। कुसंगति से दोनों ने सप्त व्यसनों का सेवन किया। जिससे वे वहां से मरकर नरक में गए। यौगलिक व्यसनों का सेवन नहीं करते और नरक में नहीं जाते पर वे गये, अतः यह आश्चर्य है।

(८) चमरेन्द्र का उत्पात—असुरराज चमरेन्द्र पूर्व भव में "पूरण" नाम का एक बाल-तपस्वी था वह छट्ठ-छट्ठ का तप करता और पारणा के दिन काष्ठ के चतुष्पुट पात्र में भिक्षा लाता। प्रथम पुट की भिक्षा पथिकों को प्रदान करता, द्वितीय पुट की भिक्षा पक्षियों को चुगाता, तृतीय पुट की भिक्षा जलचरों को देता और चतुर्थ पुट की भिक्षा समभाव से स्वयं ग्रहण करता। द्वादश वर्ष तक इस प्रकार घोर तप किया और एक मास के अनशन से पश्चात् आयु पूर्णकर चमरचंचा राजधानी में इन्द्र बना।

इन्द्र बनते ही उसने अवधिज्ञान से अपने ऊपर सौधर्मावतंसक विमान में शक्र नामक सिंहासन पर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते हुए देखा। अन्तर्मानस में विचार किया—"यह मृत्यु को चाहने वाला, अशुभ लक्षणोंवाला, लज्जा

और शोभा रहित चतुर्दशी को जन्म लेने वाला, हीन पुण्य कौन है ? मैं इसकी शोभा को नष्ट करदू । पर मुझमे इतनी शक्ति कहा हैं?" वह असुरराज सुसुमार-पुर नगर के सन्निकटवर्ती उपवन मे अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था के बारहवे वर्ष मे ध्यानस्थ खड़े थे, वहाँ आया । उसने भगवान् महावीर की शरण ग्रहणकर शक्रेन्द्र और उनके देवोको त्रास देनेके लिए विराट् एव विद्रूप का विकुर्वणा की और सीधा सुधर्मासभा के द्वार पर पहुँचकर डराने धमकाने लगा । शकेन्द्र ने भी कोप करके अपना वज्रायुध उसकी तरफ फेका । आग की चिनगारियाँ उगलते हुए वज्र को देखकर चमरेन्द्र जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से पुनः लौट गया । शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा तो पता चला कि यह श्रमण भगवान् महावीर की शरण लेकर यहाँ आया है और पुनः वही भागा जा रहा है । कही यह वज्र भगवान् महावीर को कष्ट न दे ! तदर्थ वह शीघ्र ही उसे लेने के लिए दौडा । चमरेन्द्र ने अपना सूक्ष्म रूप बनाया और महावीर के चरणारविन्दो मे आकर छिप गया । वज्र महावीर के निकट तक पहुँचने से पूर्व ही इन्द्र ने वज्र को पकड लिया और चमरेन्द्र को महावीर का शरणागत होने से क्षमा कर दिया । असुरराज सौधर्मसभा मे कभी जाते नही हैं किन्तु अनन्तकाल के पश्चात् वे अरिहंत की शरण लेकर गये, यह भी एक आश्चर्य है ।[१४०]

(६) **उत्कृष्ट अवगाहना के एक सौ आठ सिद्ध**—भगवान् श्री ऋषभदेव व उनके निन्यानवें पुत्र (भरत को छोडकर) और भरत के आठ पुत्र इस प्रकार पाच सौ धनुष्य की उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक सौ आठ सिद्ध एक ही समय मे हुए ।[१४१] उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक साथ दो सिद्ध होते हैं, एक सौ आठ सिद्ध एक साथ नही होते, ऐसा शाश्वत नियम है[१४२] पर वे हुए, अत. आश्चर्य हुआ । आवश्यकनिर्युक्ति[१४३] आदि मे दस सहस्र मुनियो के साथ भगवान् श्री ऋषभदेव की निर्वाणप्राप्ति का उल्लेख है । वह पृथक्-पृथक् समय और न्यूनाधिक अवगाहना की दृष्टि से है । एक समय मे एक सौ आठ से अधिक सिद्ध नही होते ।[१४४]

(१०) असंयत पूजा—संयत सदा पूजनीय और वन्दनीय होते हैं। किन्तु संयत की तरह असयत की पूजा होना एक महान् आश्चर्य है। प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में भगवान् सुविधिनाथ के तीर्थ मे ऐसा समय आया जिस समय श्रमण व श्रमणियाँ नही रही और असयतियो की ही पूजा हुई। यह भी आश्चर्य माना गया।[१४]

ये दस आश्चर्य निम्न तीर्थंकरो के समय मे हुए हैं—(१) भगवान् ऋषभ के समय उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक सौ आठ मुनि मोक्ष गये। (२) भगवान् शीतलनाथ के समय हरिवश की उत्पत्ति हुई। (३) भगवान् अरिष्टनेमि के समय श्रीकृष्ण अपरकंका गये। (४) मल्लि भगवती स्वय स्त्री तीर्थंकर हुई। (५) भगवान् सुविधिनाथ के तीर्थकाल मे असयत की पूजा हुई। शेष पाँच आश्चर्य (६) गर्भापहरण। (७) चमरेन्द्र का उत्पात (८) अभावित परिषद् (९) सूर्य चद्र का आकाश से उतरना (१०) और अरिहंत को उपसर्ग ये भगवान् श्री महावीर के समय मे हुए।[१४६]

मूल :—

अयं चं णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१६॥

अर्थ—(शक्रेन्द्र विचार करता है) ये श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष में, ब्राह्मण कुण्डग्राम नामक नगर मे कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप मे आये हैं।

——● हरिणैगमेषी को आह्वान

मूल :—

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं

देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो वा पंत० तुच्छ० दरिद्द० भिक्खाग० किविणकुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्ग-कुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्नकुलेसु वा नाय० खत्तिय० हरिवंस० अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु वा साहरावित्तए। तं सेयं खलु मम वि समणं भगवं महावीरं चरिमतित्थयरं पुव्वति-त्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठ-सगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरावित्तए, जे वि य णं से तिस लाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए, जालं-धरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहराविताए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ, हरिणेगमेसि० देवं सद्दावित्ता एवं वयासी ॥२०॥

अर्थ–अतीतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत्काल के देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र का यह जीताचार है कि अरिहत भगवान् को तथा प्रकार के अन्तकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिक्षुककुल, कृपणकुल, मे से लेकर उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, ज्ञातकुल, क्षत्रियकुल, हरिवशकुल एव तथाप्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति कुल वशो मे सहरित करना। तो मेरे लिये श्रेयस्कर है कि श्रमण भगवान् महावीर चरम तीर्थंकर को, पूर्व-तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर से कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के ज्ञातवंशीय क्षत्रियो मे से काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वासिष्ठगोत्रीय त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ रूप मे

परिवर्तन करना, और जो उस त्रिशला क्षत्रियाणी का गर्भ है, व उस जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे गर्भरूप मे स्थापित करना। शक्रेन्द्र ने इस प्रकार विचार किया और विचार करके पदातिसेना के अधिपति हरिणैगमेषी[147] देव को बुलाता है और बुलाकर हरिणैगमेषी देव से इस प्रकार आदेश करता है।

मूल :—

एवं खलु देवाणुप्पिया! न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जन्नं अरहंता वा चक्कवट्टी वा, वलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा पंत० किविण० दरिद्द० तुच्छ० भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा३ एवं खलु अरहंता वा चक्क० वल० वासुदेवा वा उग्ग कुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्न० नाय० खत्तिय० इक्खाग० हरिवंस-कुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा३ ॥२१॥

अर्थ—हे देवानुप्रिय। इस प्रकार निश्चय ही अतीतकाल मे न ऐसा हुआ, न वर्तमान काल मे ऐसा होता है और न भविष्य काल मे ऐसा होगा ही कि अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अन्तकुल, प्रान्तकुल, कृपणकुल, दरिद्रकुल, तुच्छकुल, भिक्षुककुल- आदि मे अतीतकाल मे आये थे, वर्तमान मे आते है अथवा भविष्य मे आवेंगे ही। निश्चय ही इस प्रकार अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उग्रकुल मे, भोगकुल मे, राजन्यकुल में, ज्ञातृकुल में, क्षत्रियकुल मे, इक्ष्वाकुकुल मे हरिवंशकुल मे तथाप्रकार के विशुद्ध जाति कुल वंशो मे अतीतकाल मे आये थे, वर्तमान मे आते है और भविष्य मे आवेंगे।

मूल :—

अत्थि पुण एस भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसप्पि-णि उस्सप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्म-

स्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिन्नस्स उदएणं जन्नं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा किविणकुलेसु वा दरिद्द० भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा३, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा ३ ॥२२॥

अर्थ—किन्तु यह भाव भी लोग मे आश्चर्यभूत है। ऐसी घटना अनन्त अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी व्यतीत होने पर होती है जब नाम गोत्र कर्म क्षीण नही होता, उसका पूर्ण वेदन नही होता, पूर्ण निर्जीर्ण नही होता, प्रत्युत जिसके उदय मे आ गया है वे अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव, अन्तकुल मे, प्रात कुल मे, भिक्षुककुल मे अतीत मे आये थे, वर्तमान में आते हैं और भविष्य मे आयेगे। किन्तु उन्होने वहां पर अतीतकाल मे जन्म नही लिया, वर्तमान में वे जन्म नही लेते और भविष्य मे जन्म नही लेंगे।

मूल :—

अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२३॥

अर्थ—(किन्तु) ये श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष क्षेत्र मे ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नामक नगर मे कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भरूप मे उत्पन्न हुए हैं।

मूल :—

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं

देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो वा अंत० पंत० तुच्छ० किविण० दरिद्द० वणीमग०जाव माहणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु वा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्न० नाय० खत्तिय० इक्खाग० हरिवंस० अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाति कुलवंसेसु साहरावित्तए ॥२४॥

अर्थ—तो अतीतकाल के, वर्तमानकाल के और भविष्यकाल के देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र का यह कर्तव्य (कुलपरम्परा-कुलाचार) होता है कि वे अरिहंत भगवन को तथाप्रकार के अंतकुल, प्रांतकुल, तुच्छकुल कृपणकुल, दरिद्रकुल भिक्षुककुल यावत् ब्राह्मणकुलो मे से उन उग्रवंश के कुलो मे भोगवंश के कुलो मे राजन्यवंश के कुलो मे ज्ञातृवंश के कुलो में क्षत्रियवंश के कुलो मे इक्ष्वाकु वंश के कुलो मे हरिवंश के कुलो मे तथाप्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति कुल वाले वंशो मे परिवर्तित कर देते है।

मूल :—

तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठ सगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि. साहरित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पमेव पच्चप्पिणाहि ॥२५॥

अर्थ—(हरिणैगमैषी को आदेश देते हुए) हे देवानुप्रिय ! तो तुम जाओ, श्रमण भगवान महावीर को ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर से कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में से क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के ज्ञातवंशीय क्षत्रियों में काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ

क्षत्रिय की वासिष्ठगोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे गर्भरूप मे स्थापित करो, और गर्भरूप मे स्थापित करके पुन. मेरी आज्ञा मुझे अर्पित करो अर्थात् मुझे सूचित करो ।

मूल :—

तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठे जाव हयहियए करयल जाव त्ति कट्टु एवं जं देवो आणवेइ त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, वयणं पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरात्थिमदिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइत्ता, संखेज्जाइं जोयणाइं दंडंनिसिरइ । तंजहा—रयणाणं वयराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोइरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं रययाणं जायरूवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरेपोग्गले परिसाडेइ, २ त्ता अहासुहुमे पोग्गले परियादियति ॥२६॥

अर्थ—उसके पश्चात् पादति सेना का सेनापति हरिणगमेषी देव देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की आज्ञा श्रवणकर प्रसन्न हुआ । यावत् हर्षित हृदय से दोनो हाथों को सम्मिलित कर अंजलिबद्ध हो, "देव की जिस प्रकार की आज्ञा है" इस प्रकार वह आज्ञा-वचन को विनय पूर्वक स्वीकार करता है और स्वीकार करके देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र के पास से निकलता है, निकलकर के उत्तर पूर्व दिशा की ओर अर्थात् ईशानकोण मे जाता है । वहाँ जाकर के वैक्रियसमुद्घात से स्वशरीर में स्थित आत्म-प्रदेशो के व कर्म पुद्लों के समूह को संख्यात योजन विस्तृत लम्बे दण्डे के आकार का बाहर निकालता है । भगवान् को एक

गर्भ से दूसरे गर्भ में स्थापित करने के लिए, अपने शरीर को अत्यन्त निर्मल बनाने के लिए, शरीरस्थ स्थूल पुद्गल-परमाणुओ को बाहर निकालता है जैसे कि रत्न के, वज्र के, वैडूर्य के, लोहिताक्ष के, मसारगल्ल के, हंसगर्भ के, पुलक के, सौगन्धिक के, ज्योतिरस के, अंजन के, अञ्जन-पुलक के, रजत के, जातरूप के, सुभग के, अङ्क के, स्फटिक के, और अरिष्ट आदि सभी जाति के, रत्नो के, स्थूल पुद्गल होते हैं वैसे ही अपने शरीर मे जो स्थूल पुद्गल हैं उनको निकालता है और उनके बदले मे सूक्ष्म और सार रूप पुद्गलो को ग्रहण करता है ।

मूल :—

परियादित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीयीवयमाणे वीती २ तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, करित्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ, ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पोग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ, सुहे पोग्गले पक्खिवइत्ता 'अणुजाणउ मे भगवं !' त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं० २ त्ता जेणेव खत्तिय-कुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए

खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवर्णि दलयइ, ओसोवर्णि दलयित्ता असुहेपोग्गले अवहरइ, असुहेपोग्गले अवहरित्ता सुहेपोग्गले पक्खिवइ, सुहेपोग्गले पक्खिवइत्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ। जे वि य णं ते तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥२७॥

अर्थ--इस प्रकार वह (हरिणैगमेषी) भगवान् के पास मे जाने के लिए अपने शरीर को श्रेप्ठ बनाने हेतु सूक्ष्म और शुभ पुद्‌गलो को ग्रहणकर पुन दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्‌घात करता है। अपने मूल शरीर से पृथक् द्वितीय उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है। बनाकर उस उत्कृष्ट त्वरायुक्त चपल, अत्यन्त तीव्र गतिवाली प्रचण्ड, अत्यन्त वेगवाली प्रचण्ड-पवन-प्रताड़ित धूम्र की तरह तेज वेगवाली, शीघ्र दिव्य देवगति से चलता है। चलकर तिरछे असख्य द्वीप समुद्रो के मध्य मे होता हुआ जहाँ जम्बूद्वीप है, जहाँ भारतवर्ष है, जहाँ ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर है, जहाँ पर ऋषभदत्त ब्राह्मण का घर है, जहाँ पर देवानन्दा ब्राह्मणी है, वहा आता है। आकर के श्रमण भगवान् महावीर को (गर्भस्थ) देखते ही प्रणाम करता है। प्रणाम करके देवानन्दा ब्राह्मणी-को और सब परिजनो को अवस्वापिनी निद्रा (बेसुध करने वाली निद्रा) दिलाता है अर्थात् सुला देता है। अवस्वापिनी निद्रा देकर के अशुभ पुदगलो को दूर हटाता है, दूर हटाकर शुभ पुद्‌गलो को प्रक्षिप्त करता है। शुभ पुद्‌गलो को प्रक्षिप्त करके 'हे भगवन्। आपकी आज्ञा हो" इस प्रकार कहकर श्रमण भगवान् महावीर को किञ्चित् भी कष्ट न हो, इस तरह अजलि (दोनो हाथो) मे ग्रहण करता है। श्रमण भगवान् महावीर को ग्रहण करके जहां क्षत्रियकुण्ड-ग्राम नगर है, जहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय का घर हैं, जहा त्रिशला क्षत्रियाणी हैं, वहाँ आता है। वहां आकर के त्रिशला क्षत्रियाणी को सपरिवार अवस्वापिनी निद्रा दिलाता है। अवस्वापिनी निद्रा मे सुलाकर अशुभ व अस्वच्छ

पुद्गलो को दूर करता है और शुभ पुद्गलो को प्रक्षिप्त करता है। शुभ पुद्गलो को प्रक्षिप्त करके श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक बाधारहित त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे गर्भरूप मे प्रस्थापित करता है।' और जो त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे गर्भ था उसे जालधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे गर्भरूप मे स्थापित करता है। स्थापित करके जिस दशा से वह आया था उसी दिशा मे पुन. चला गया।[५८]

मूल :—

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जइणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोयणसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मेकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देवराया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ॥२८॥

अर्थ—(तब वह) उत्कृष्ट, त्वरित (शीघ्रतायुक्त) चपल, (स्फूर्तियुक्त) वेगयुक्त ऊपर की ओर जाने वाली शीघ्र दिव्य देवगति से तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रो के बीचो-बीच होकर और हजार-हजार योजन के विराट पदन्यास (कदम) भरता हुआ ऊपर चढता है, ऊपर चढकर के जिस ओर सौधर्म नामक कल्प मे, सौधर्मावतसक विमान मे, शक्र नामक सिंहासन पर देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र बैठा है वहा आता है। आकर के देवेन्द्र देवराज शक्र को उनकी आज्ञा शीघ्र ही समर्पित करता है अर्थात् आज्ञानुसार कार्य कर देने की सूचना देता है।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था. साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिए मि त्ति जाणइ ॥२९॥

अर्थ—उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे। मुझे यहाँ से सहरण किया जाएगा, यह वे जानते थे, सहरण करते हुए नही जानते थे, किन्तु 'सहरण' हो गया, यह जानते थे।[१४९]

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले तस्स णं आसोय बहुलस्स तेरसीपक्खेणं बासीइराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगणेसिणा सक्कवयणसंदिट्ठे णं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधर-सगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि साहरिए ॥३०॥

अर्थ--उस काल उस समय जब बर्षाऋतु चलती थी और बर्षाऋतु का वह प्रसिद्ध तृतीय मास और पाँचवा पक्ष चलता था अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन भगवान को स्वर्ग से च्युत हुए और देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ मे आये हुए बयासी रात्रि दिन व्यतीत हो गये थे, और तिरासीवा दिन चल रहा था, तब त्रयोदशी के दिन मध्यरात्रि के समय, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आते ही हितानुकम्पी हरिणैगमेषी देव ने शक्र की आज्ञा से माहणकुण्ड ग्राम नगर मे से कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालधर गोत्रीया देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि मे क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के ज्ञातृक्षत्रिय, काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वासिष्ठगोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे अपने दिव्य प्रभाव से सुख पूर्वक सस्थापित किया।

मूल :—

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए आवि होत्था, साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिए-मित्ति जाणइ ॥३१॥

अर्थ—श्रमण भगवान महावीर (उस समय) तीन ज्ञान से युक्त थे, "मेरा यहा से सहरण होगा" यह जानते थे, 'सहरण हो रहा है' यह नही जानते थे, 'सहरण हो गया है' यह जानते थे।

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगो-त्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए हडे त्ति पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं जहा-गयउसह० गाहा ॥३२॥

अर्थ--जिस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर जालंधर गोत्रीया देवा-नंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में से वासिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में संस्थापित किए गए उस रात्रि में वह देवानंदा ब्राह्मणी अपनी शय्या में अर्ध निद्रावस्था में थी, उस समय उसने स्वप्न देखा कि मेरे उदार, कल्याण-रूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप श्रीयुक्त चौदह महास्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी ने हर लिए हैं। ऐसा देखकर वह जागृत हुई। वे चौदह महास्वप्न हैं हाथी वृषभ आदि।

——• त्रिशला का स्वप्न-दर्शन

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए

जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगो-त्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा तिसला खत्तियाणी तंसितारिसगंसि वासघरंसि अब्भितरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमियघट्टमट्ठे विचित्तउल्लोयतले मणिरयणपणासियंधयारे बहुसमसुविभत्तभूमिभागे पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयार-कलिए कालागरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधगंधिए गंधवट्टिभूए तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणे उभओ उन्नये मज्झे णयगंभीरे गंगापुलिणवालुउद्दालसालिसए तोयवियखोमियदुगुल्लपट्टपडिच्छन्ने सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आयीणगरूयबूरनवणीयतूल फासे सुगंधवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए पुव्वरत्तावरत्तकालस-मयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा।३३।

अर्थ--जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर जालधरगोत्रीया देवानदा ब्राह्मणी की कुक्षि से वासिष्ठगोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे गर्भरुप मे संस्थापित किए गए, उस रात्रि मे वह त्रिशला क्षत्रियाणी भव्य भवन मे प्रचला निद्रा ले रही थी। उस वासगृह का आभ्यतरीय भाग चित्रो से चित्रित था, वाह्यभाग चूने से पोता हुआ था और घिसकर चिकना व चमकदार बनाया हुआ था। ऊपर छत मे विविध प्रकार के चित्र वनाए हुए थे। मणि-रत्नो की जगमगाहट ज्योति से वहा का अन्धकार नष्ट हो गया था, तल-भाग (भूमि भाग-फर्श) सम और सुरचित था, उस पर पाँच वर्णो के सरस-सुरभित-सुमन यत्र तत्र विखरे हुए थे। वह वासगृह काले अगर, उत्तम कुन्दरु, लोमान, आदि विविधि प्रकार की धूप से महक रहा था। अन्य भी सुगन्धित पदार्थो के सौरभ से वह सुरभित था। गध द्रव्य की गुटिका की तरह वह सुगन्धित था। ऐसे श्रेष्ठ वासगृह मे वह उस प्रकार के पलग पर प्रसुप्त थी जिस पर प्रमाण-

युवन उपधान (तकिया) था, सिर और पैर के दोनो ओर उपधान रखे हुए थे। वह शय्या दोनो ओर से उन्नत और मध्य मे नीची थी। गंगा नदी के तट की रेती के समान वह मुलायम थी। स्वच्छ अलसी के वस्त्र मे वेष्टित थी। रजस्त्राण से आच्छादित थी। उस पर रक्तवस्त्र की मच्छरदानी लगी हुई थी। वह मृगचर्म, बढ़ियारुई, बूर वनस्पति, मक्खन, आक की रुई, आदि कोमल वस्तुओं की तरह मुलायम थी। तथा शय्या सजाने की कला के अनुसार वह सजाई हुई थी, उसके सन्निकट सुगन्धित पुष्प और सुगन्धित चूर्ण बिखरा हुआ था। उस शय्या पर अर्धनिद्रावस्था मे प्रसुप्त (त्रिशला क्षत्रियाणी ने), पश्चिम रात्रि मे इस प्रकार के उदार चौदह महास्वप्नो को देखा और देख कर जागृत हुई।"

मूल :—

तं जहा—

गय वसह सीह अभिसेय, दाम ससि दिणयरं झय कुंभं।
पउमसर सागर विमाण भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥१॥

अर्थ—वे चौदह महास्वप्न ये हैं,—

(१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ, (१०) पद्मसरोवर, (११) समुद्र, (१२) विमान, (१३) रत्न-राशि, (१४) निर्धूम अग्नि।

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए तओयचउद्दंतमूसियगलियविपुलजलहरहारनिकरखीरसागरससंककिरणदगरयरययमहासेलपंडरतरं समागयमहुयरसुगंधदाणवासियकवोलमूलं देवरायकुंजरंवरप्पमाणं पेच्छइ, सजलघणविपुलजलहरगज्जियगंभीरचारुघोसं इभं सुभं सव्वलक्खणकयंबियं वरोरुं १ ॥३४॥

अर्थ–वह त्रिशला क्षत्रियाणी सर्वं प्रथम स्वप्न मे हाथी को देखती है। वह हाथी चार दाँत वाला और ऊचा था, तथा वह बरसे हुए मेघ की तरह श्वेत, सम्मिलित मुक्ताहार की तरह उज्ज्वल, क्षीरसमुद्र की तरह धवल, चन्द्र किरणो की तरह चमकदार, पानी की बूद की तरह निर्मल, और चाँदी के पर्वत की तरह श्वेत था। उसके गडस्थल से मद चू रहा था। सौरभ लेने के लिए भ्रमर मडरा रहे थे। वह हाथी शक्रेन्द्र के ऐरावत हाथी को तरह उन्नत था, सजल व सघन मेघ की तरह गम्भीर गर्जना करने वाला था, वह अत्यन्त शुभ तथा शुभ लक्षणो से युक्त था। उसका उरु भाग विशाल था। ऐसे हाथी को त्रिशला प्रथम स्वप्न मे देखती है।[१५१]

मूल :–

तओ पुणो धवलकमलपत्तपयराइरेगरूवप्पभं पहासमुद-ओवहारेहिं सव्वओ चेव दीवयंतं अइसिरिभरपिल्लणाविसप्पंत-कंतसोहंतचारुककुहं तणुसुइसुकुमाललोमनिद्धच्छविं थिरसुबद्धमंस-लोवचियलट्ठसुविभत्तसुंदरंगं पेच्छइ, घणवट्टलट्ठउक्किट्ठविसिट्ठतुप्प-ग्गतिक्खसिंगं दंतं सिवं समाणसोभंतसुद्धदंतं वसभं अमियगुण-मंगलमुहं २ ॥३५॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशला माता वृषभ को देखती है। वह वृषभ श्वेत कमल की पखुंडियो के समूह से भी अधिक रूप की प्रभावाला था। कातिपुञ्ज की दिव्य प्रभा से सर्वत्र प्रदीप्त था। उसका विराट् स्कध अत्यन्त उभरा हुआ व मनोहर था, उसके रोम सूक्ष्म व अति सुन्दर थे, व सुकोमल थे। उसके अंग स्थिर, सुगठित, मांसल व पुष्ट थे। उसके शृग वर्तुलाकार, सुन्दर घी जैसे चिकने व तीक्ष्ण थे। उसके दांत अक्रूर, उपद्रव रहित, एक सदृश, कान्तिवाले, प्रमाणोपेत तथा श्वेत थे। वह वृषभ अगणित गुणों वाला और मांगलिक मुखवाला था।

मूल :—

तओ पुणो हारनिकरखीरसागरससंककिरणदगरयरयय-महासेलपंडरगोरं रमणिज्जपेच्छणिज्जं थिरलट्ठपउट्ठं वट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंवियमुहं परिकम्मियजच्चकमलकोमल-भाइयसोभंतलट्ठउट्ठं रत्तोप्पलपतमउयसुकुमालतालुनिल्लालियग्ग-जीहं मूसागयपवरकणगतावियआवत्तायंतवट्टविमलतडिसरिसनयणं विसालपीवरवरोरुं पडिपुन्नविमलखंधं मिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थविच्छिन्नकेसराडोवसोहियं ऊसियसुनिम्मियसुजायअप्फोडियनंगूलं सोम्मं सोम्माकारं लीलायंतं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवयणमइवयंतं पेच्छइ सा गाढतिक्खनहं सीहं वयणसिरीपल्लवपत्तचारुजीहं ३ ॥२६॥

अर्थ--उसके पश्चात् त्रिशला क्षत्रियाणी स्वप्न में सिंह देखती है। वह सिंह हार-समूह, क्षीर सागर, चन्द्र किरणें, जल-कण एवं रजत-पर्वत के समान अत्यन्त उज्ज्वल था, रमणीय था, दर्शनीय था, स्थिर और दृढ़ पंजों वाला था। उसकी दाढ़ें गोल, अतीव पुष्ट एवं अन्तर-रहित, श्रेष्ठ व तीक्ष्ण थी, जिन से उसका मुंह सुशोभित हो रहा था। उसके दोनों ओष्ठ स्वच्छ, उत्तम कमल की तरह कोमल, प्रमाणोपेत व सुन्दर थे। उसका तालु रक्तकमल की तरह लाल व सुकोमल था। उसकी अग्र-जिह्वा लपलपा रही थी। उसके दोनों नेत्र सुवर्णकार के पात्र में रखे हुए तप्त और स्वर्ण के समान चमकदार और विद्युत की तरह चमकीले थे। उसकी विशाल जंघाएँ अत्यन्त पुष्ट व उत्तम थीं। उसके स्कंध परिपूर्ण और निर्मल थे। उसकी [illegible] केसर (अयाल) कोमल, सूक्ष्म, उज्ज्वल, श्रेष्ठ लक्षणयुक्त व विस्तृत थी। उसकी उन्नत पूंछ कुण्डलाकार एवं शोभायुक्त थी। उसके नाखून अतीव तीक्ष्ण थे, उसकी आकृति बड़ी ही सौम्य थी और नवीन पल्लव की तरह फैली हुई मनोहर जिह्वा थी। ऐसे सिंह को आकाश से लीला पूर्वक, नीचे उतरते और मुंह में प्रवेश करते देखती है।

मूल :—

तओ पुणो पुण्णचंदवयणा उच्चागयठाणलट्ठसंठियं पसत्थ-रूवं सुपइट्ठियकणगकुम्भसरिसोवमाणचलणं अच्चुन्नयपीणरइयमंस-लउन्नयतणुतंवनिद्धनहं कमलपलाससुकुमालकरचरणकोमलवरंगुलिं कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघं निगूढजाणुं गयवरकरसरिसपी-वरोरुं चामीकररइयमेहलाजुत्तकंतविच्छिन्नसोणिचक्कं जच्चंजणभम-रजलयपकरउज्जुयसमसंहियतणुयआदेज्जलडहसुकुमालमउयरमणि-ज्जरोमराइं नाभीमंडलविसालसुंदरपसत्थजघणं करयलमाइयपस-त्थतिवलीयमज्झं नाणामणिरयणकणगविमलमहातवणिज्जाहारण-भूसणविराइयंगमंगिं हारविरायंतकुंदमालपरिणद्धजलजलिंतथण-जुयलविमलकलसं आइयपत्तियविभूसिएण य सुभगजालुज्जलेण मुत्ताकलावएणं उरत्थदीणारमालियविरइएणं कंठमणिसुत्तएण य कुंडलजुयलुल्लसंतअंसोवसत्तसोभंतसप्पभेणं सोभागुणसमुदएण आणणकुडुंविएण कमलामलविसालरमणिज्जलोयणं कमलपज्जलं-तकरगहियमुक्कतोयं लीलावायकयपक्खएणं सुविसयकसिणघणस-ण्हलंवंतकेसहत्थं पउमद्दहकमलवासिणिं सिरिं भगवइं पिच्छइ हिमवंतसेलसिहरे दिसागइंदोरुपीवरकराभिसिच्चमाणिं ४ ॥३७॥

अर्थ—उसके पश्चात् पूर्ण चन्द्रवदना त्रिशला क्षत्रियाणी स्वप्न मे लक्ष्मी देवी को देखती है। वह लक्ष्मी समुन्नत हिमवान् पर्वत पर उत्पन्न हुए श्रेष्ठ कमल के आसन पर सस्थित थी। प्रशस्त रुपवती थी, उसके चरण-युगल सम्यक् प्रकार से रक्खे हुए सुवर्णमय कच्छप के समान उन्नत थे। उसके अगुष्ठ उभरे हुए और पुष्ट थे। उसके नाखून रग से रजित न होने पर भी रजित प्रतीत हो रहे थे, तथा मास-युक्त, उभरे हुए, पतले ताम्र की तरह रक्त

और स्निग्ध थे। उसके हाथ और पैर कमल-दल के समान कोमल थे। उसकी अंगुलियां भी सुकोमल व श्रेष्ठ थी। पिंडलियाँ-जंघाएँ कुरुवृन्द (नागरमोथा) के आवर्त के समान अनुक्रम गोल थी। उसके दोनो घुटने शरीर पुष्ट होने से बाहर दिखलाई नही दे रहे थे। उसकी जंघाएँ उत्तम हाथी की सूंड की तरह परिपुष्ट थी। उसका कटि तट कान्त और सुविस्तृत कनकमय कटि-सूत्र से युक्त था। उसकी रोमराजि श्रेष्ठ अञ्जन, भ्रमर व मेघ समूह के समान श्याम वर्णवाली तथा सरल सीधी, क्रमबद्ध, अत्यन्त पतली, मनोहर, पुष्पादि की तरह मृदु और रमणीय थी। नाभिमण्डल के कारण उसकी जघाए सरस, सुन्दर और विशाल थी। उसकी कमर मुट्ठी मे आ जाय इतनी पतली और सुन्दर त्रिवली से युक्त थी। उसके अङ्गोपाङ्ग अनेक विध मणियो, रत्नो, स्वर्ण तथा विमल-लाल सुवर्ण के आभूषणो से सुशोभित थे। उसके स्तनयुगल सुवर्ण कलश की तरह गोल व कठिन थे तथा वक्षस्थल मोतियो के हार से और कुन्द पुष्पमाला से देदीप्यमान था। उसके गले मे नेत्रो को प्रिय लगे इस प्रकार के हार थे, जिनमे मोतियो के झूमके लटक रहे थे। सुवर्णमाला भी विराज रही थी और मणिसूत्र भी। उसके दोनो कानो मे चमकदार कुण्डल पहने हुए थे और वे स्कन्ध तक लटक रहे थे। मुख से अभिन्न शोभा गुण के कारण वह अतीव सुशोभित थी। उसके विशाल लोचन कमल के समान निर्मल एव मनोहर थे। उसके दोनो करो मे देदीप्यमान कमल थे। जिनमे से मकरन्द की बूँदे टपक रही थी। वह आनन्द के लिए (गर्मी के अभाव मे भी) वीजे जाते पंखे से सुशोभित थी। उसका केशपाश पृथक्-पृथक् व गुच्छे रहित तथा काला, सघन, सुचिक्कण और कमर तक लम्बायमान था। उसका निवास पद्मद्रह के कमल पर था। उसका अभिषेक हिमवन्त पर्वत के शिखर पर स्थित दिग्गजो की विशाल और पुष्ट सूण्ड से निकलती हुई जलधारा से हो रहा था। ऐसी भगवती लक्ष्मी देवी को त्रिशला माता ने स्वप्न मे देखा।

मूल :—

तओ पुणो सरसकुसुममंदारदामरमणिज्जभूयं चंपगासोग-

पुण्णागनागपियंगुसिरीसमोग्गरगमल्लियाजाइजूहियंकोल्लकोज्ज-कोरिंटपत्तदमणयणवमालियवउलतिलयवासंतियपउमुप्पलपाडलकुं-दाइमुत्तसहकारसुरभिगंधिं अणुवममणोहरेणं गंधेणं दस दिसाओ वि वासयंतं सव्वोउयसुरभिकुसुममल्लधवलविलसंतकंतबहुवन्नभत्ति-चित्तं छप्पयमहुयरिभमरगणगुमुगुमायंतमिलंतगुंजंतदेसभागं दामं पेच्छइ नभंगणतलाओ ओवयंतं ५ ॥३८॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्वप्न मे आकाश मे से नीचे उतरती हुई सुन्दर पुप्पो की माला देखी। वह माला मन्दार के ताजा फूलो मे गुंथी हुई बड़ी रमणीय थी। उस माला मे चम्पक, अशोक, पुन्नाग, नागकेसर, प्रियगु, शिरीप, मोगरा, मल्लिका, जाई, जूही, अकोल, कोज्ज, कोरट, दमनकपत्र नवमल्लिका, वकुल, तिलक, वासन्ती, सूर्य विकासी और चन्द्र विकासी कमल, पाटल, (गुलाव) कुन्द, अतिमुक्तक, और सहकार के फूल गुथे हुए थे, जिससे उसकी मधुर सौरभ से दशो दिशाएँ महक रही थी। सर्व ऋतुओ मे खिलने वाले पुष्पो से वह निर्मित थी। उस माला का रग मुख्यत श्वेत था और यत्र-तत्र विविध रंगो के पुष्प भी गुंथे हुए थे, जिससे वह बहुत ही मनोहर और रमणीय प्रतीत हो रही थी। विविध रगो के कारण वह आश्चर्य उत्पन्न करती थी। उसके ऊपर-मध्य और नीचे सर्वत्र भोरे गुञ्जार करते हुए मडरा रहे थे। ऐसी माला को त्रिशला माता ने देखा।

मूल :—

ससिं च गोखीरफेणदगरयरययकलसपंडरं सुभं हिययन-यणकंतं पडिपुन्नं तिमिरनिकरघणगहिरवितिमिरकरं पमाणपक्खं-तरायलेहं कुमुदवणविबोहयं निसासोभगं सुपरिमट्ठदप्पणतलोवमं हंसपडुवन्नं जोइसमुहमंडगं तमरिपुं मयणसरापूरं समुद्ददगपूरगं दुम्मणं जणं दतियवज्जियं पायएहिं सोसयंतं पुणो सोम्मचारुरूवं

पेच्छइ सा गगणमंडलविसालसोम्मचंकम्ममाणतिलगं रोहिणिमणहिययवल्लहं देवी पुन्नचंदं समुल्लसंतं ६ ॥३९॥

अर्थ—उसके पश्चात् छट्ठे स्वप्न मे त्रिशला माता चन्द्र को देखती है। वह चन्द्र गोदुग्ध, पानी के झाग, जलकण, एव रजत-घट की तरह शुभ्र था, शुभ था, और हृदय व नयनो को अत्यन्त प्रिय था, परिपूर्ण था, गहनतम अन्धकार को नष्ट करने वाला था। पूर्णिमा के चन्द्र की तरह पूर्णकला युक्त था। कुमुद-वनो को विकसित करने वाला था, रात्रि की शोभा को बढाने वाला था। वह स्वच्छ किए हुए दर्पण के समान चमक रहा था। हस के समान श्वेत था। वह तारागण और नक्षत्रो मे प्रधान था। उनकी श्री की अभिवृद्धि करने वाला था। वह अन्धकार का शत्रु था। अनङ्गदेव के बाणो को भरने वाला तरकस था, समुद्र के पानी को उछालने वाला था, विरहिणियो को व्यथित करने वाला था, वह सौम्य और सुन्दर था, विराट् गगन मण्डल मे अच्छी तरह से परिभ्रमण करने वाला था, मानो वह आकाश मण्डल का चलता फिरता तिलक हो। वह रोहिणी के मन को आन्हादित करने वाला उसका पति था। इस प्रकार समुल्लसित पूर्णचन्द्र को त्रिशला माता देखती है।

मूल :—

तओ पुणो तमपडलपरिप्फुडं चेव तेयसा पज्जलंतरूवं रत्तासोगपगासकिंसुयसुगमुहगुंजद्धरागसरिसं कमलवणालंकरणं अंकणं जोइसस्स अंबरतलपईवं हिमपडलगलग्गहं गहगणोरुनायगं रत्तिविणासं उदयत्थमणेसु मुहुत्तसुहदंसणं दुन्निरिक्खरूवं रत्तिमुद्धंतदुप्पयारप्पमद्दणं सीयवेगमहणं पेच्छइ मेरुगिरिसययपरियट्टयं विसालं सूरं रस्सीसहस्सपयलियदित्तसोहं ७ ॥४०॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशलामाता स्वप्न मे सूर्य को देखती है। वह सूर्य अन्धकार के समूह को नष्ट करने वाला और तेज से जाज्वल्यमान था। रक्त अशोक, विकसित किंशुक, तोते की चोंच, चिरमी के अर्ध भाग के

समान वह रक्त वर्ण वाला था। कमल वनो को सुशोभित करने वाला, ज्योतिष-चक्र पर सक्रमण करने के कारण उसके लक्षणो को वताने वाला था। वह आकाश का प्रदीप, हिम को नष्ट करने वाला, ग्रहमण्डल का मुख्य नायक, रात्रि को नष्ट करने वाला, उदय और अस्त के समय ही थोड़ी देर सुखपूर्वक देखा जा सकने योग्य, अन्य समयमे नही देखने योग्य, निशा मे विचरण करने वाले जारों व तस्करो का प्रमर्दक, शीत-हर्ता, मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करने वाला, अपनी सहस्र किरणो से चमकते हुए चाँद और तारागणो की शोभा को नष्ट करने वाला था। ऐसे सूर्य को त्रिशलामाता देखती है।

मूल :—

तओ पुणो जच्चकणगलट्ठिपइट्ठियं समूहनीलरत्तपीय-सुक्किल्लसुकुमालुल्लसियमोरपिंछकयमुद्धयं फालियसंखंककुंददगर-यरययकलसपंडरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणेणं रायमाणं भेत्तुं गगणतलमंडलं चेव ववसिएणं पेच्छइ सिवमउयमारुयलयाहयपकं-पमाणं अतिप्पमाणं जणपिच्छणिज्जरूवं ८ ॥४१॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशलामाता स्वप्न मे ध्वजा देखती है। वह ध्वजा-श्रेष्ठ सुवर्ण की यष्टि पर प्रतिष्ठित थी। वह नील, रक्त, पीत, श्वेत आदि विविध रगो के वस्त्रो से निर्मित थी। हवा से लहराती हुई वह ध्वजा मयूरपख के समान शोभित हो रही थी। वह ध्वजा अत्यधिक शोभा-सुन्दरता युक्त थी। उस ध्वजा के ऊर्ध्व भाग मे श्वेत वर्ण का सिंह चित्रित था जो स्फटिक, टूटे शंख, अक-रत्न, मोगरा, जल-कण एव रजत-कलश के समान उज्ज्वल था। पवन-प्रताडित ध्वजा इधर-उधर डोलायमान हो रही थी। जिससे यह प्रतीत होता था कि सिंह आकाशमण्डल को भेदन करने का उद्यम कर रहा हैं। वह ध्वजा सुखकारी मन्द-मन्द पवन से लहरा रही थी, वह अतिशय उन्नत थी, मनुष्यो के लिए दर्शनीय थी, ऐसी ध्वजा त्रिशलामाता देखती है।

मूल :—

तओ पुणो जच्चकंचणुज्जलंतरूवं निम्मलजलपुन्नमुत्तमं

दिप्पमाणसोहं कमलकलावपरिरायमाणं पडिपुण्णसव्वमंगलभेयस-मागमं पवररयणपरायंतकमलट्ठियं नयणभूसणकरं पभासमाणं सव्वओ चेव दीवयंतं सोमलच्छीनिभेलणं सव्वपावपरिवज्जियं सुभं भासुरं सिरिवरं सव्वोउयसुरभिकुसुमआसत्तमल्लदामं पेच्छइ सा रययपुन्नकलसं ६ ॥४२॥

अर्थ—उसके पश्चात त्रिशलामाता कलश का स्वप्न देखती है। वह कलश विशुद्ध सुवर्ण की तरह चमक रहा था। निर्मल नीर से परिपूर्ण था, देदीप्यमान था, चारो ओर कमलोंसे परिवेष्टित था, सभी प्रकार के मंगल-चिन्ह उस पर चित्रित होने से वह सर्व मंगलमय था। श्रेष्ठ रत्नो से निर्मित कमल पर वह कलश सुशोभित था जिसे निहारते ही नेत्र आनन्द विभोर हो जाते थे। उसकी प्रभा चारो दिशाओ मे फैल रही थी। जिससे सभी दिशाए आलोकित थी। लक्ष्मी देवी का वह प्रशस्त घर था। सभी प्रकार के दूषणों से रहित, शुभ और चमकदार व उत्तम था। सर्व ऋतुओ के सुगन्धित सुमनो की मालाए कलश के कंठ पर रखी हुई थी, ऐसे चाँदी के पूर्ण कलश को त्रिशला माता स्वप्न मे देखती है।

मूल :—

तओ पुणो रविकिरणतरुणबोहियसहस्सपत्तसुरहितरपिंजर-रजलं जलचरपहगरपरिहत्थगमच्छपरिभुज्जमाणजलसंचयं महंतं जलंतमिव कमलकुवलयउप्पलतामरसपुंडरीयउरुसप्पमाणसिरि-समुदएहिं रमणिज्जरूवसोभं पमुइयंतभमरगणमत्तमहुकरिगणोक्क-रोलिज्जमाणकमलं कादंबगबलाहगचक्ककलहंससारसगव्वियस-उणगणमिहुणसेविज्जमाणसलिलं पउमिणिपत्तोवलग्गजलबिंदुमु-त्तचित्तं च पेच्छइ सा हिययणयणकंतं पउमसरं नाम सरं सररु-हाभिरामं १० ॥४३॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशलामाता स्वप्न मे पद्मसरोवर को देखती है। वह पद्मसरोवर प्रात कालीन सूर्य रश्मियो से विकसित सहस्र पखुडियों वाले कमल के सौरभ से सुगन्धित था। उसका पानी कमल पराग के गिरने से रक्त और पीतवर्ण का दृष्टिगोचर हो रहा था। उसमे जलचर जीवो का समूह इतस्तत परिभ्रमण कर रहा था। मत्स्यादि उसके मधुर जल का पान कर रहे थे। वह सरोवर अत्यन्त गहरा और लम्बा चौडा था। सूर्य विकासी कमल, चन्द्र विकासी कमल, रक्त कमल, बडे कमल, श्वेत कमल, इन सभी प्रकार के कमलो से वह शोभायुक्त था। वह अतीव रमणीय था। प्रमोद युक्त भ्रमर और मत्त मधुमक्षिकाए कमलो पर बैठकर उनका रसपान कर रही थी। उस सरोवर पर मधुर कलरव करने वाले कलहस, बगुले, चक्रवाक, राजहस, सारस, आदि विविध पक्षियो के युगल जल-क्रीड़ा कर रहे थे। उसमे कमलिनी दल पर गिरे हुए जल-कण सूर्य की किरणो से मुक्ता की तरह चमक रहे थे। वह सरोवर हृदय और नेत्रो को परम शान्ति प्रदाता था और कमलो से रमणीय था। ऐसे सरोवर को त्रिशला माता स्वप्न मे देखती है।

मूल :—

तओ पुणो चंदकिरणरासिसरिससिरिवच्छसोहं चउगमणपवड्ढमाणजलसंचयं चवलचंचलुच्चायप्पमाणकल्लोललोलंतोयपडुपवणाहयचालियचवलपागडतरंगरंगंतभंगखोखुब्भमाणसोभंतनिम्मलउक्कडउम्मीसहसंबंधधावमाणोनियत्तभासुरतराभिरामं महामगरमच्छतिमितिमिंगिलनिरुद्धतिलितिलियाभिघायकप्पूरफेणपसरमहानईतुरियवेगसमागयभमगंगावत्तगुप्पमाणुच्चलंतपच्चोनियत्तभममाणलोलसलिलं पेच्छइ खीरोयसागारं सरयरयणिकरसोम्मवयणा ११ ॥४४॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला माता स्वप्न मे क्षीर सागर को देखती है। उस क्षीर सागर का मध्य भाग चन्द्र किरणो के समूह की तरह शोभायमान

था और अत्यन्त उज्ज्वल था। चारों ओर प्रवर्धमान पानी से अत्यन्त गहरा था, उसकी लहरें चचल थी। वे अधिक उछल रही थी, जिससे उसका पानी तरगित था। पवन से प्रताडित होने पर वह बार-बार शीघ्र तरगित ही नही हो रहा था अपितु ऐसा लग रहा था कि तट से टकराकर दौड़ रहा हो। उस समय वे लहरें नृत्य करती हुई-सी और भय-विह्वल हुई-सी अतिशय क्षुब्ध प्रतीत हो रही थी। वे उद्धत एव सुहावनी उर्मियाँ कभी इस प्रकार ज्ञात होती थी मानो अभी-अभी तट को उल्लघन कर जायेंगी और कभी पुन लौटती हुई ज्ञात होती थी। उसमे स्थित विराट् मकरमच्छ, तिमिमच्छ, तिमिङ्गलमच्छ, निरुद्ध, तिलतिलय आदि जलचर अपनी पूंछ को जब पानी पर फटकारते थे तब उनके चारो ओर कपूर जैसे उज्ज्वल फेन फैल जाते थे। महा नदियों के प्रबल प्रवाह गिरने से उसमे गगावर्त नामक भंवर (चक्र) उत्पन्न होते थे। उन भवरों में पानी उछलता, पुनः वही गिरता तथा चारो ओर चक्कर लगाता हुआ चचल प्रतीत होता था। ऐसे क्षीर समुद्र को शरदृऋतु के चन्द्र समान सौम्य मुख वाली त्रिशला माता ने देखा।

मूल :—

तओ पुणो तरुणसूरमंडलसमप्पभं उत्तमकंचणमहामणिसमूहपवरतेयअट्ठसहस्सदिप्पंतनभप्पईवं कणगपयरपलंबमाणमुत्तासमुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहामिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरसंसत्तकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं गंधव्वोपवज्जमाणसंपुण्णघोसं निच्चं सजलघणविउलजलहरगज्जियसद्दाणुणादिणा देवदुंदुहिमहारवेणं सयलमवि जीवलोयं पपूरयंतं कालागरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघितगंधुद्धुयाभिरामं निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पिच्छइ सा सातोवभोगं विमाणवरपुंडरीयं। १२ ॥४५॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशलामाता स्वप्न मे देवलोक विमान देखती है।

वह देवविमान नवोदित सूर्य-बिम्ब के सदृश प्रभा वाला-देदीप्यमान था। उसमे स्वर्ण निर्मित और महामणियो से जटित एक सहस्र अष्ट स्तम्भ थे, जो अपने अलौकिक आलोक से आकाश मण्डल को आलोकित कर रहे थे। उसमे स्वर्ण पत्रों पर जडे हुए मुक्ताओ के गुच्छे लटक रहे थे। इस कारण उसमें आकाश अधिक चमकीला लग रहा था। दिव्य मालाएँ भी लटक रही थी। उस विमान पर वृक, वृषभ, अश्व, नर, मकर, विहग, सर्प, किन्नर, रुरुमृग, शरभ, (अष्टापद) चमरीगाय, तथा विशेष प्रकार के जगली पशु, हस्ती, वनलता, पद्मलता, आदि के विविध प्रकार के चित्र चित्रित थे। उसमे गन्धर्व मधुर गीत गा रहे थे, वाद्य बज रहे थे जिससे वह गर्जता हुआ प्रतीत हो रहा था। उसमे देव-दुन्दुभि का घोष हो रहा था जिससे वह विपुल मेघ की गम्भीर गर्जना की तरह सम्पूर्ण देवलोक को शब्दायमान करता हुआ-सा लगता था। कालागरु, श्रेष्ठकुन्दरुक, तुरुष्क (लोमान) तथा जलती हुई धूप से वह महक रहा था और मनोहर लग रहा था। उस विमान मे नित्य प्रकाश रहता था, वह श्वेत और उज्ज्वल प्रभा वाला था। देवो से सुशोभित सुखोपभोग रूप श्रेष्ठ पुण्डरीक के सदृश विमान को माता त्रिशला देखती है।[१५२]

मूल :—

तओ पुणो पुलगवेरिंदनीलसासगकक्केयणलोहियक्खमरगयमसारगल्लपवालफलिहसोगंधियहंसगब्भअंजणचंदप्पभवररयणमहियलपइट्ठियं गगणमंडलंतं पभासयंतं तुंगं मेरुगिरिसन्निगासं पिच्छइ सा रयणनियररासिं। १३ ॥४६॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशलामाता ने स्वप्न मे रत्नराशि देखी। वह रत्नराशि भूमि पर रखी हुई थी, पर उसकी चमक-दमक गगन मण्डल के अन्तिम छोर तक परिव्याप्त थी, उसमे पुलक, वज्र, इन्द्रनील, सासक, कर्केतन, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, प्रवाल, स्फटिक, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अजन, चन्द्रप्रभ, प्रभृति श्रेष्ठ रत्न प्रभास्वर हो रहे थे। वह रत्नो का समूह मेरुपर्वत के समान उच्च प्रतीत हो रहा था। ऐसी रत्न राशि माता ने स्वप्न मे देखी।

मूल :—

सिहिं च सा विउलुज्जलपिंगलमहुघयपरिसिच्चमाणनिद्धू-
मधगधगाइयजलंतजालुज्जलाभिरामं तरतमजोगेहिं जालपयरेहिं
अण्णमण्णमिव अणुपइण्णं पेच्छइ जालुज्जलणग अंबरं व कत्थइ-
पयंतं अइवेगचंचल सिहिं। १४ ॥४७॥

अर्थ – उसके पश्चात् त्रिशला माता स्वप्न मे निर्धूम अग्नि देखती है। उस अग्नि की शिखाएं ऊपर की ओर उठ रही थी। वह उज्ज्वल घृत और पीत मधु से परिसिंचित होने के कारण निर्धूम देदीप्यमान उज्ज्वल ज्वालाओ से मनोहर थी। वे ज्वालाए एक दूसरे से मिली हुई प्रतीत होती थी। उनमे कुछ ज्वालाएँ छोटी थी और कुछ ज्वालाएँ बडी थी, वे इस प्रकार ज्ञात हो रही थी कि मानो आकाश को पकड रही है। वे ज्वालाएँ अतिशय वेग के कारण अत्यधिक चंचल थी। इस प्रकार चौदहवें स्वप्न में त्रिशला माता निर्धूम प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा देखती है।

मूल :—

एमेते एयारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुरूवे सुविणे दट्ठूण
सयणमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयणा हरिसपुलइयंगी।

एए चोद्दस सुमिणे सव्वा पासेइ तित्थयरमाया।
जं रयणिं वक्कमई, कुच्छिंसि महायसो अरहा। १ ॥४८॥

अर्थ–इस प्रकार के इन शुभ, सौम्य प्रियदर्शन एवं सुरूप स्वप्नो को निहारकर अरविन्द के समान विकसित नयन वाली माता त्रिशला के शरीर के रोम-रोम प्रसन्नता से पुलकित हो गए। वह अपनी शय्या पर जागृत हुई।

जिस रात्रि को महायशस्वी तीर्थंकर माता की कुक्षि मे आते हैं, उस रात्रि मे प्रत्येक तीर्थंकर की माताएं इन चौदह स्वप्नों को देखती है।

—— ● सिद्धार्थ से स्वप्न-चर्चा

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठ जाव हयहियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढातो पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अतुरियं अचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मियमहुरमंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ ॥४६॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी इस प्रकार पूर्वोक्त चौदह महास्वप्नो को देखकर जागृत हुई। हर्षित और सन्तुष्ट हुई यावत् मेघधारा से आहत कदम्ब पुष्प के समान उसके रोम-रोम पुलकित हो गए। वह स्वप्नो को स्मरण करती है, स्मरण करके शय्या से उठती है और उठकर पादपीठ पर उतरती है और उतरकर अ-त्वरित, (धीमे-धीमे) अचपल, असभ्रान्त, (धैर्यपूर्वक) अविलम्ब राजहसी-सी मन्द-मन्द गति से चलकर जहां पर सिद्धार्थ क्षत्रिय का शयन कक्ष है और जहा पर सिद्धार्थ क्षत्रिय सुखपूर्वक सोया है, वहाँ आती है। आकर सिद्धार्थ क्षत्रिय को इष्ट, कान्त, प्रिय मनोज्ञ, मनोहर, उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य, मगलकारी, शोभायुक्त हृदय को रुचिकर और हृदय को आल्हादकारी मित, मधुर एव मञ्जुल शब्दो से जगाती है।

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी ॥५०॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा की आज्ञा प्राप्त कर विविध मणि-रत्नों से रचित भद्रासन पर बैठती है। बैठकर चलने के श्रम को दूर कर, क्षोभ रहित होकर सिद्धार्थ क्षत्रिय को इष्ट यावत् हृदय को आह्लादित करने वाली वाणी से सल्लाप करती-करती वह इस प्रकार बोली.—

मूल :—

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि तारिसयंसि सयणिज्जंसि वन्नओ जाव पडिबुद्धा। तं जहा—गयवसह० गाहा। तं एतेसिं सामी ! ओरालाणं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥५१॥

अर्थ—इस प्रकार हे स्वामिन् ! मैं आज उस रमणीय शयनीय रूप में शय्या पर सोई हुई थी (जिसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है) यावत् प्रतिबुद्ध हुई। वे चौदह महास्वप्न गज, वृषभ, आदि जो मैंने देखे। हे स्वामिन् ! उन उदार चौदह महास्वप्नों का क्या कल्याण-रूप फल विशेष होगा ?

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरहिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हति, ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं

अणुपविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, अत्थोग्गहं करित्ता तिसलाखत्तियाणीं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुरंसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी ॥५२॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा त्रिशला क्षत्रियाणी से इस अर्थ को श्रवण कर और हृदय मे विचारकर हर्षित और सन्तुष्ट चित्तवाला हुआ। आनन्दित हुआ। मन मे प्रीति समुत्पन्न हुई। उसका मन अत्यधिक आह्लादित हुआ। हर्ष से उसका हृदय फूलने लगा। मेघ की धारा से आहत कदम्ब पुष्प की तरह उसके रोम-रोम उल्लसित हो गए। वह उन स्वप्नो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके उन पर सामान्य विचार करता है और सामान्य विचार करने के पश्चात् पुन उन स्वप्नो का पृथक पृथक रूप से विशिष्ट विचार करता है। विशिष्ट विचार करके अपनी स्वाभाविक प्रज्ञा सहित बुद्धि विज्ञान से उन स्वप्नो का विशेष फल पृथक्-पृथक् रूप से निश्चय करता है। विशेष प्रकार से निश्चय करके इष्ट यावत् मगलरूप परिमित मधुर एवं शोभायुक्त वाणी से त्रिशला क्षत्रियाणी को इस प्रकार बोलाः—

मूल :—

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग्गतुट्ठिदीहाउयकल्लाणमंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा ! तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्ह मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं अम्हं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवर्डिसयं कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं

कुलदिणयरं कुलआहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणसंपुन्नपंचेंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियं सुदंसणं दारयं पयाहिसि ॥५३॥

अर्थ—हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार, कल्याणकारी, शिवरूप, मंगलकारी, शोभायुक्त, अरोग्यप्रद[?] तुष्टिप्रद, दीर्घायुप्रद, कल्याणप्रद स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिये ! तुमने जो स्वप्न देखे हैं उनसे अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ, सुखलाभ, और राज्यलाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! तुम परिपूर्ण नो मास और साढे सात अहोरात्रि के व्यतीत होने पर हमारे कुलमे केतु रूप (ध्वजा के समान) कुलप्रदीप, कुलपर्वत, (कुल मे पर्वत के समान उच्च) कुलावतंसक, (मुकुट के समान) कुलतिलक, कुलकीर्तिकर, कुलवृत्तिकर, कुल दिनकर, कुलाधार, कुल मे आनन्द करने वाला, कुल यशस्कर, कुल पादप (वृक्ष के समान सब को आश्रय दाता) कुल विवर्धक, सुकोमल हाथ पैर वाले, सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाले, लक्षणों (स्वस्तिक आदि चिन्ह) व्यजनो (मस तिल आदि) एवं गुणो से युक्त[?] मान, उन्मान, प्रमाण[?] से परिपूर्ण, शोभायुक्त, सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले, चन्द्र के समान सौम्याकार कान्त, प्रियदर्शी एवं सुरूप बालक को जन्म दोगी।

मूल :—

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणायमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्नविउलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ. तं जहा ओराला णं तुमे जाव दोच्चं पि तच्चं पि अणुवूहइ ॥५४॥

अर्थ—और वह बालक बालभाव (बचपन) से उन्मुक्त होकर समझदार तथा कलादि में कुशल बनकर युवावस्था को प्राप्त करने पर दान में शूर, संग्राम

में वीर-पराक्रमी होगा। उसके पास विपुल बल, वाहन (सेना आदि) होंगे। वह राज्य का अधिपति राजा होगा। हे देवानुप्रिये! तुमने जो महास्वप्न देखे हैं, वे उत्तम है", इस प्रकार सिद्धार्थ राजा त्रिशला रानी से दूसरी और तीसरी वार कहकर उसके चित्त को बढ़ावा देकर प्रफुल्लित करता है।

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥५५॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा से इस प्रकार स्वप्न का अर्थ श्रवणकर हृदय मे धारण कर हर्षित सन्तुष्ट यावत् प्रसन्न चित्तवाली होती हुई दोनो हाथ जोड कर, दस नख सम्मिलित करके मस्तिष्क पर शिरसावर्त युक्त अजलि करके इस प्रकार बोली—

मूल :—

एवमेयं सामी! तहमेयं सामी! अवितहमेयं सामी! असंदिद्धमेयं सामी! इच्छियमेयं सामी! पडिच्छियमेयं सामी! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नायासमाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए, जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता एवं वयासी ॥५६॥

अर्थ—'हे स्वामिन्! यह ऐसा ही है। जैसा आपने कहा है वैसा ही है। आपका कथन सत्य है। यह सन्देह रहित है। यह इष्ट है। यह पुनः पुनः इष्ट है। हे स्वामिन्! यह इष्ट और अत्यधिक इष्ट है। आपने स्वप्नो का जो फल

बताया है वह सत्य है।' इस प्रकार कहकर वह स्वप्नो के अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है तथा सिद्धार्थ राजा की आज्ञा प्राप्त करके विविध प्रकार के रत्नादि से जडे हुए भद्रासन से खडी होती है। खडी होकर शनै. शनैः, अचपल, शीघ्रता रहित, अविलम्ब, राजहंसी के समान मद गति से चल कर जहाँ पर अपनी शय्या है, वहाँ आती है। वहाँ आकर इस प्रकार मन-ही-मन बोली अर्थात् मन मे विचार करने लगी।

मूल :—

मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला महासुमिणा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्संति त्ति कट्टु देवयगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ॥५७॥

अर्थ—मेरे वे उत्तम, प्रधान, मगल रूप, महास्वप्न अन्य स्वप्नो से प्रतिहत निष्फल न हो जाएँ, एतदर्थ मुझे जागृत रहना चाहिए। ऐसा विचार करके देव-गुरुजन सम्बन्धी प्रशस्त, मांगलिक, धार्मिक रसप्रद कथाओ के अनुचिन्तन से अपने महास्वप्नो की रक्षा के लिए अच्छी तरह जागृत रहने लगी।

मूल :—

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ कोडुंबियपुरिसे सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरिज्जं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्तसम्मज्जिओवलित्तं सुगंधवरपंचवन्नपुप्फोवयारकलियं कालागरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता य सीहासणं रयावेह, सीहासणं रयावित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ॥५८॥

अर्थ—अनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय प्रभात काल होने पर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाता है। बुलवाकर के इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आज बाहर की उपस्थानशाला (राज-सभा भवन) को विशेष रूप से सुगन्धित जल से सिंचन करो। साफ करके उसका (गोबर आदि से) लेपन करो, स्थान-स्थान पर श्रेष्ठ सुगन्धित पञ्चवर्णों के पुष्प समूह से सुशोभित करो। काले अगर, उत्तम-कुन्दरु तुर्की धूप से सुगन्धित बनाओ। यत्र-तत्र सुगन्धित चूर्णों को छिटककर सुगन्धित गुटिका के समान बनाओ। स्वय करो, दूसरो से करवाओ, और करके तथा करवाकरके, वहाँ पर एक सिंहासन रक्खो, सिहासन रखकर (कार्य सम्पन्न करके) मुझे मेरी आज्ञा पुन शीघ्र ही लौटाओ अर्थात् सूचित करो।

मूल :—

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, एवं सामि ! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्त जाव सीहासणं रयावेंति, सीहासणं रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥५६॥

अर्थ—अनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थ राजा के द्वारा इस प्रकार आदेश देने पर अत्यन्त प्रसन्न हुए, यावत् उल्लसित हृदय से पूर्व की भाति मस्तिष्क पर अञ्जलि करके "हे स्वामिन् जैसी आपकी आज्ञा है" इस प्रकार कहकर आज्ञा को विनयपूर्वक वचन से स्वीकारते हैं। विनयपूर्वक स्वीकार

करके सिद्धार्थ क्षत्रिय के पास से बाहर निकलते है। बाहर निकल करके जहाँ पर बाह्य उपस्थानशाला है, वहाँ आते है। आकर के शीघ्र ही उपस्थानशाला को सुगन्धित जल से सिंचन कर यावत् सिंहासन सजाते हैं। सिंहासन सजा कर जहा पर सिद्धार्थ क्षत्रिय है वहा पर आते है। आ करके करतल परिगृहीत दश नखों से मस्तिष्क पर शिरसावर्त के साथ अंजलिबद्ध होकर सिद्धार्थ क्षत्रिय की आज्ञा को पुनः समर्पित करते है।

मूल :—

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिल्लियम्मि अह पंडरे पहाए रत्तासोयपगासकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागसरिसे कमलायरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते य सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ ॥६०॥

अर्थ—अनन्तर वह सिद्धार्थ क्षत्रिय प्रातःकाल के समय (उषःकाल में) जब उत्पल कमल-विकसित होने लगे है, हरिणों के कोमल नेत्र खुलने लगे हैं, उज्ज्वल प्रभात होने लगा है, और रक्त अशोक के प्रभा-पुञ्ज सदृश, किंशुक के रंग के समान, तोते की चोंच और चिरमी के अर्ध-लाल रंग के समान आरक्त बड़े बड़े जलाशयों में समुत्पन्न कमलों को विकसित करने वाला, सहस्ररश्मि, तेज से प्रदीप्त दिनकर उदित हुआ, तब शयनासन से उठते हैं अर्थात् शयनकक्ष से बाहर आते हैं।

मूल :—

सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पायपीढाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अट्टणसालं अणुपविसित्ता अणेगवायामजोगवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते

सयपाग सहस्सपागेहिं सुगंधवरतेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं जिंघ-णिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगिए समाणे तेल्लचम्मंसि णिउणेहिं पडिपुन्नपाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं अब्भंग-णपरिमद्दणुव्वलणकरणगुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेधावीहिं जियपरिस्समेहिं अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सुहपरिकम्मणाए संवाहिए समाणे अवगय-परिस्समे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ ॥६१॥

अर्थ—महाराज सिद्धार्थ शयन आसन से उठते हैं, पादपीठिका से नीचे उतरते है, पादपीठिका से उतरकर जहा व्यायामशाला थी वहाँ आते है, वहा आकर के व्यायामशाला मे प्रवेश करते है। प्रवेश करके व्यायाम करने के लिए श्रम करते हैं (१) योग्या (शस्त्रो का अभ्यास), (२) वल्गन-कूदना, (३) व्यामर्दन-एक दूसरे की भुजा, आदि अगो को मरोडना, (४) मल्लयुद्ध-कुश्ती करना, (५) करण-पद्मासन आदि विविध आसन करना। इन व्यायामो को करने से जव वे परिश्रान्त हो गये तव थकान को दूर करने के लिए विविध औषधियो के सम्मिश्रण से सौ बार पकाये गये अथवा सौ मुद्राओ के व्यय से बने हुए ऐसे शतपाकतैल से, एव जो हजार बार पकाया गया हो, या जिसको पकाने मे हजार मोहरे लगी हो ऐसे सहस्रपाक आदि सुगन्धित तैलो से मर्दन किया।[१०७] वे तैल अत्यन्त गुणकारी रसरुधिर आदि धातुओ की वृद्धि करने वाले, क्षुधा को दीप्त करने वाले, बल, मास और तेजस् को बढाने वाले, कामोद्दीपक, पुष्टिकारक और सब इन्द्रियो को सुखदायक थे। अगमर्दन करने वाले भी सम्पूर्ण उँगलियो सहित सुकुमार हाथ पैर वाले, मर्दन करने मे प्रवीण, स्फूर्ति से मर्दन करने वाले, मर्दन कला के विशेषज्ञ, बोलने मे चतुर, शरीर के सकेत समझने मे कुशल, बुद्धिमान तथा परिश्रम से हार नही मानने वाले थे। ऐसे मालिश करने वाले पुरुषो ने अस्थि के सुख के लिए, मास के सुख के लिए, त्वचा के सुख के लिए, रोमराजि के सुख के लिए, इस प्रकार चार प्रकार की सुखदायक

अंगशुश्रूषा वाली मालिश की। मालिश से जब थकान नष्ट हो गई, तब क्षत्रिय सिद्धार्थ व्यायामशाला से बाहर निकला।

मूल :—

अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ. तेणेव उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुप्पविसित्ता समुत्तजालकलावाभिरामे विचित्तमणिरयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसन्ने पुप्फोदएहि य गंधोदएहि य उण्होदएहि य सुहोदएहि य सुद्धोदएहि य कल्लाणकरणपवरमज्जणविहीए मज्जिए. तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावन्नगविलेवणे आविद्धमणिसुवन्ने कप्पियहारद्धहारतिसरयपालंबपलंबमाणकडिसुत्तयकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अंगुलिज्जगललियकयाभरणे वरकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलउज्जोइयाणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे मुद्दियापिंगलंगुलीए पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोवियमिसिमिसिंतविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठआविद्धवीरवलए। किं बहुणा? कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं मंगलजयसद्दकयालोए अणेगगणनायगदंडनायगराईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियमंतिमहामंतिगणगदोवारियअमच्चचेडपीढमद्दण-

गरनिगमसेट्ठिसेणावइसत्थवाहदूयसंधिपालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए इव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाणमज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ॥६२॥

अर्थ–(सिद्धार्थ) व्यायामशाला से बाहर निकल कर जहां पर मज्जनगृह (स्नानगृह) है वहा पर आते है। वहा आकर के मज्जनगृह मे प्रवेश करते हैं। प्रवेश करके मुक्ताओ के समूह से रमणीय, विविध मणियो तथा रत्नो से जटित भाग वाले सुन्दर स्नान-मण्डप मे विविध मणि रत्नादि की कलापूर्ण कारीगरी से निर्मित अद्‌भुत स्नान-पीठ पर सुखपूर्वक बैठते है। वहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय को पुष्पोदक, गधोदक, उष्णोदक, शुभोदक, शुद्धोदक से कल्याणकारक विधि से स्नान विधि विशेषज्ञो द्वारा स्नान कराया गया। तथा स्नान करते समय बहुत प्रकार के सैकडो कौतुक उनके शरीर पर किए गये। कल्याणप्रद श्रेष्ठ स्नानविधि पूर्ण होने पर रोएँदार,[१५८] मुलायम, सुगन्धित रक्त वस्त्र (अगोछा) से शरीर को पोछा गया। अनन्तर श्रेष्ठ नवीन एव बहुमूल्य वस्त्र धारण किये।[१५९] शरीर पर सरस सुगधित गोशीर्ष चन्दन से लेप किया। पवित्र माला पहनी। शरीर पर केसर मिश्रित सुगधित चूर्ण का छिटकाव किया। मणियो से जडे हुए स्वर्ण आभूषण पहने। अठारह, नौ, तीन, और एक लडी के हार गले मे धारण किए। लम्बा लटकता हुआ कटिसूत्र (करधनी) धारण कर सुशोभित लगने लगे। और कठ को शोभित करने वाले विविध प्रकार के भूषण धारण किए। अँगुलियो मे अगूठिया पहनी। रत्न-जटित स्वर्ण के कडे से और भुजबध से राजा सिद्धार्थ की दोनो भुजाएँ प्रभास्वर हो उठी। इस प्रकार वह सिद्धार्थ राजा शरीर सौन्दर्य की अद्‌भुत प्रभा से दिव्य लगने लगा। कुण्डल पहनने से उसका मुख चमक रहा था, और मुकुट धारण करने से मस्तक आलोक से जगमगाने लगा था। हृदय हारो से आच्छन्न होने पर दर्शनीय बन गया। अगूठियो से अगुलियों की आभा दमक उठी। अनन्तर लम्बे लटकते हुए बहुमूल्य वस्त्र का उत्तरासन धारण किया। निपुण कलाकारो द्वारा निर्मित विविध मणि-रत्नों से जटित श्रेष्ठ बहुमूल्य प्रभासमान सुन्दर वीर-वलय पहने। अधिक वर्णन क्या किया जाए! मानो वह सिद्धार्थ क्षत्रिय साक्षात् कल्पवृक्ष ही हो, इस प्रकार अलकृत

और विभूषित हुआ। ऐसे सिद्धार्थ राजा के सिर पर छत्र धारकों ने कोरंट के पुष्पों की मालाएँ जिसमें लटक रही थी, ऐसा छत्र धारण किया। श्वेत व उत्तम चामरों से वीजन किया गया। उन्हें निहारते ही जनता के मुख से 'जय हो, जय हो, इस प्रकार का मंगलनाद भंकृत होने लगा।

इस प्रकार अलंकृत होकर अनेक गणनायकों, (गण के स्वामियों) दण्ड-नायकों (तन्त्र का पालन करने वालों और अपने राष्ट्र की चिन्ता करने वालों) राइसरों (युवराज) तलवरों (प्रसन्न होकर राजा ने जिन्हें पट्टबंध से विभूषित किया हो) माडम्बिकों (जिसके चारों ओर आधे योजन तक गाम न हो उसे मडम्ब कहते हैं। और मडम्ब के स्वामी माडम्बिक कहलाते हैं) कौटुम्बिकों (कतिपय कुटुम्बों के स्वामी) मन्त्रियों (राज्य के अधिष्ठायक सचिव) महा-मन्त्रियों (मन्त्रिमण्डल के प्रधान) गणकों (ज्योतिषी) दौवारिकों (द्वारपाल) अमात्यों (प्रधान) तथा चेट (दास) पीठमर्दक (निकट में रहकर सेवा करने वाले) नागर (नगर निवासी) निगम (व्यापार करने वाले) श्रेष्ठी (नगर के मुख्य व्यवसायी) सेनापति (चतुरंग सेनाधिपति) सार्थवाह (सार्थ का मुखिया) दूत (दूसरों को राज्यादेश का निवेदन करने वाले) सन्धिपाल (सन्धि की रक्षा करने वाले) आदि से घिरा हुआ सिद्धार्थ जैसे श्वेत महामेघ से चन्द्र निकलता है, वैसे ही निकला। जैसे ग्रह, नक्षत्र, और तारागणों के मध्य चन्द्र शोभता है, वैसे ही वह शोभायमान हो रहा था। चन्द्र की तरह वह प्रियदर्शी नरपति मज्जन गृह से बाहर निकला।

मूल :—

मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठा-णसाला तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठभद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थयकयमंगलोवयाराइं रयावेइ, रयावित्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणामणिरयणमंडियं

अहियपेच्छणिज्जं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसतचित्तमाणं ईहामियउसहतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं अब्भितरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणामणिरयणभत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगोत्थयं सेयवत्थपच्चत्थुयं सुमउयं अंगसुहफरिसगं विसिट्ठं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेइ ॥६३॥

अर्थ—मज्जनगृह से बाहर निकलकर (सिद्धार्थ) जहां बाह्य उपस्थान शाला है, वहा पर आते हैं। वहा आकर के सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर बैठते है। बैठकर अपने से उत्तर पूर्व दिशा मे (ईशान कोण मे) श्वेत वस्त्र से आच्छादित और जिन पर सरसो आदि से मागलिक उपचार किए गये है ऐसे आठ भद्रासन लगवाए। लगवाकर के अपने पास से न अतिसन्निकट और न अतिदूर विविध मणिरत्नो से मण्डित, बहुत दर्शनीय, व महामूल्यवाली, बडे और प्रतिष्ठित नगर मे निर्मित पारदर्शक पट्टसूत्र पर सैकड़ो चित्रो से चित्रित की हुई, ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी सर्प, किन्नर, रुरु (मृग विशेष), अष्टापद, चमरीगाय, हस्ती, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र खिंचे हुए ऐसी अन्त पुर मे लगाने योग्य यवनिका (पर्दा) लगवाता है। यवनिका के अन्दर के भाग मे विविध मणि-रत्नो से जटित, चित्रविचित्र, तकियेवाला, मुलायम गद्दीवाला, श्वेत वस्त्र से आच्छादित, अत्यधिक मृदु, शरीर के लिए सुखकारी स्पर्शवाला विशिष्ट प्रकार का भद्रासन त्रिशला क्षत्रियाणी के लिए लगवाता है।

——● स्वप्न-पाठक को बुलाना

मूल :—

भद्दासणं रयावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थपारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह ॥६४॥

अर्थ—सिंहासन लगवा करके राजा सिद्धार्थ कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है। बुलाकर उन्हे इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही अष्टाङ्गमहानिमित्त के सूत्र व अर्थ के पारगामी, विविधशास्त्रों मे कुशल ऐसे स्वप्न-लक्षण-पाठकों-स्वप्नशास्त्रियों को बुलाके लाओ!

मूल :—

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठा जाव हयहियया करयल जाव पडिसुणेंति पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता कुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुमिणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सुमिणलक्खणपाढए सद्दाविंति ॥६५॥

अर्थ—अनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थराजा के द्वारा इस प्रकार कहने पर प्रसन्न हुए, यावत् उनका हृदय आनन्दित हुआ। वे दोनों हाथों को जोड़कर राजाज्ञा को विनययुक्त वचन से स्वीकार करते है। स्वीकार करके सिद्धार्थ क्षत्रिय के पास से निकलते है। निकल करके वे कुण्डग्राम नगर के बीचोबीच होकर जहाँ स्वप्न-लक्षण-पाठकों के गृह हैं, वहा आते है। वहाँ आकर के स्वप्न-लक्षण पाठकों को बुलाते है।

मूल :—

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सिद्धत्थक-हरियालियकयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निगच्छंति।६६॥

अर्थ–तदनन्तर सिद्धार्थक्षत्रिय के कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाये गये वे स्वप्नलक्षण पाठक हर्षित एव तुष्ट हुए, यावत् प्रसन्नचित्त हुए। उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (कपाल मे तिलक आदि) तथा सरसो, दही, अक्षत, दूर्वादि मगलो से माँगलिक कृत्य (दुष्टस्वप्न आदि के फल को निष्फल करने के लिए प्रायश्चित्त रूप कृत्य) किया।[१६०] राज्य सभा मे जाने योग्य शुद्ध मगलरूप उत्तम वस्त्रो को धारण किया। अल्प (भार) किंतु बहुमूल्य आभरणो से शरीर को अलकृत किया, मस्तिष्क पर श्वेतसरसो और और अक्षत आदि मगल हेतु लगाये, और वे अपने-अपने गृह से निकले।

मूल :—

निग्गच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सिद्धत्थस्स रन्नो भवणवरवडिंसगपडिदुवारे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भवणवरवडिंसगपडिदुवारे एगयओ मिलंति, एगयओ मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करतलपरिग्गहियं जाव कट्टु सिद्धत्थं खत्तियं जएण विजएणं वद्धाविंति ॥६७॥

अर्थ–बाहर निकलकर क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के मध्य मे होते हुए जहा सिद्धार्थराजा के उत्तम भवन का प्रधान प्रवेशद्वार है, वहा आते है। वहा आकरके इकट्ठे होते हैं। इकट्ठे होकर जहा बाह्य उपस्थापनशाला है और जहा सिद्धार्थ क्षत्रिय है, वहा आते हैं। वहाँ आकरके हाथ जोडकर मस्तिष्क पर अजलि कर 'जय हो, विजय हो' इस प्रकार आशीर्वाद वचनो से बधाते है।

मूल :—

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थेणं रन्ना वंदियपूइयसक्कारियसम्माणिया समाणा पत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ॥६८॥

अर्थ—अनन्तर सिद्धार्थराजा ने स्वप्न-लक्षण पाठकों को वन्दन किया, उनकी अर्चना की, सत्कार और सम्मान किया। फिर वे (स्वप्न पाठक) पृथक्-पृथक् पूर्व स्थापित भद्रासनों पर बैठ जाते हैं।

मूल :—

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलं खत्तियाणिं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावित्ता पुप्फफलपडिपुन्नहत्थे परेणं विणएणं ते सुमिणलक्खणपाढए एवं वयासि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले जाव चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तं जहा—गय उसभ० गाहा। तं एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥६६॥

अर्थ—तदनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय त्रिशला क्षत्रियाणी को यवनिका (पर्दे) के पीछे बिठाता है। बैठाकर हाथ में फल-फूल लेकर विशेष विनय के साथ स्वप्न-लक्षण पाठकों को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! निश्चय ही आज त्रिशला क्षत्रियाणी ने तथा प्रकार की उत्तम शय्या पर शयन करते हुए अर्ध-निद्रावस्था में इस प्रकार के उदार, चौदह महान् स्वप्न देखे, स्वप्न देखकर जागृत हुई। वे स्वप्न हैं—गज, वृषभ आदि। हे देवानुप्रियो ! इन उदार चौदह महास्वप्नों का क्या कल्याणकारी फल विशेष होगा ?

—— ● स्वप्न-फल कथन

मूल :—

तए णं ते सुमिणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव हियया ते सुमिणे ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति, ईहं २ त्ता अन्नमन्नेणं

सद्धिं संलाविंति, संलावित्ता तेसिं सुमिणाणं लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रन्नो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी ॥७०॥

अर्थ—उसके पश्चात् वे स्वप्न-लक्षण-पाठक सिद्धार्थ क्षत्रिय से प्रस्तुत वृत्त को जानकर एव समझकर, अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। उन्होंने प्रथम उन स्वप्नो पर सामान्य रूप से विचार किया। उसके पश्चात् स्वप्नो के अर्थ पर विशेष रूप से चिन्तन करने लगे। उस सम्बन्ध मे वे एक दूसरे से परस्पर संलाप-विचार-विनिमय करने लगे। इस प्रकार वे स्वय चिन्तन एव विचार-विनिमय के द्वारा स्वप्नो के अर्थ को जान पाये। उन्होने उस विषय मे परस्पर एक दूसरे का अभिप्राय पूछा और तदनन्तर निश्चितमत निर्धारण किया। जव वे सभी एकमत हो गये तव सिद्धार्थराजा के समक्ष स्वप्न शास्त्रों के अनुसार वचन वोलते हुए इस प्रकार कहने लगे।

विवेचन—भारतीय साहित्य मे स्वप्न के सम्वन्ध मे गहराई से चिन्तन किया गया है। वहाँ स्वप्न आने के नौ निमित्त वताये गए है। (१) जिन वस्तुओ का अनुभव किया हो (२) जिनके सम्बन्ध मे श्रवण किया हो (३) जो वस्तु देखी हो (४) वात, पित्त अथवा कफ की विकृति के कारण (५) स्वप्निल प्रकृति के कारण (६) चित्त-चिन्ता युक्त होने के कारण (७) देवता आदि का सान्निध्य होने पर (८) धार्मिक-स्वभाव होने पर (६) अतिशय पाप का उदय होने पर। स्वप्न आने के इन नौ प्रकारो मे से प्रथम छह प्रकार के स्वप्न शुभ और अशुभ दोनो होते है, पर उनका कोई फल नही होता। तीन प्रकार के अन्तिम स्वप्न सत्य होते है और उनका शुभ एव अशुभ फल निश्चित मिलता है।[१६१]

स्वप्न-शास्त्र की एक यह भी धारणा है कि रात्रि के प्रथम पहर मे जो स्वप्न दीखता है उसका फल वारह मास में प्राप्त होता है। द्वितीय पहर मे जो स्वप्न देखे जाते हैं, उनका फल छह मास मे प्राप्त होता है। तृतीय प्रहर मे

देखे गए स्वप्न का फल तीन मास में प्राप्त होता है और चतुर्थ पहर में जो स्वप्न दीखते हैं उनका फल एक मास में प्राप्त होता है। सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व जो स्वप्न देखे जाते हैं उनका फल दस दिन में प्राप्त होता है और सूर्योदय के समय देखे जाने वाले स्वप्न का फल शीघ्र ही प्राप्त होता है।[१८२]

भारत की प्राचीन स्वप्न-शास्त्र सम्बन्धी मान्यता का कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है—जो व्यक्ति एक स्वप्न के पश्चात् दूसरा स्वप्न देखता हो, मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि से ग्रसित होकर स्वप्न देखता हो, मल-मूत्र की रुकावट के कारण स्वप्न देखता हो उसका स्वप्न निरर्थक होता है।[१८३]

जो व्यक्ति धर्मनिष्ठ है, जिसके शरीर की धातुएँ सम हैं, चित्त स्थिर है जो इन्द्रिय विजेता है, संयमी और दयालु है, उसका स्वप्न यथेष्ट फल प्रदाता होता है। यदि किसी को किसी प्रकार का दुःस्वप्न आ जाए तो, उसे किसी भी अन्य व्यक्ति के सामने नहीं कहना चाहिए। न कहने से वह स्वप्न फल नहीं देता। यदि दुःस्वप्न आने के पश्चात नींद आ जाय तो दुःस्वप्न का फल भी नष्ट हो जाता है।

किसी ने उत्तम स्वप्न देखा हो तो उस स्वप्न को गुरु या योग्य व्यक्ति के सामने कहना चाहिए। यदि योग्य व्यक्ति का अभाव हो तो गाय के कान में ही कह देना चाहिए। उत्तम स्वप्न देखकर पुनः नहीं सोना चाहिए, क्योंकि सोने से उसका फल नष्ट हो जाता है। अतः शेष रात्रि धर्म ध्यान व भगवत्-स्मरण में ही व्यतीत करनी चाहिए।

जो मानव प्रथम अशुभ-स्वप्न देखता है और उसके पश्चात् शुभ-स्वप्न देखता है, उसको शुभ स्वप्न का ही फल प्राप्त होता है। जो प्रथम शुभ स्वप्न देखता है और पश्चात् अशुभ-स्वप्न देखता है उसको अशुभ-स्वप्न का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य स्वप्न में सिंह, तुरङ्ग, हाथी, वृषभ और गाय से जुते (जुते हुए) रथ पर स्वयं को आरूढ़ देखता है, वह राजा बनता है। जो स्वप्न में हाथी, वाहन, आसन, गृह या वस्त्र आदि का अपहरण होना देखता है उस पर राजा की शंका होती है। बन्धुओं से विरोध, और धन की हानि होती है।

जो स्वप्न मे सूर्य, चन्द्र को निगलता है, वह दरिद्र होने पर भी राजा बनता है। जो स्वप्न मे शस्त्र, मणि-मुक्ता, स्वर्ण, रजत आदि का अपहरण होते देखता है, उसके धन की हानि होती है, अपमान होता है, और वह मृत्यु को प्राप्त करता है। जो मानव स्वप्न मे गजारूढ होता है, सरिता के सुन्दर तट पर चावल का भोजन करता है, वह धर्मनिष्ठ और धनवान होता है। जो स्वप्न में दाहिनी भुजा को श्वेत सर्प से दसित देखता है, उसको पाँच ही रात्रि मे एक हजार स्वर्ण मुद्राए प्राप्त होती है। जो स्वप्न मे किसी मानव के मस्तिष्क का भक्षण करता हुआ देखता है उसे राज्य प्राप्त होता है। जो पैर का भक्षण करता है उसे सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। जो भुजा का भक्षण करता है उसे पाँच सौ मुद्राएँ प्राप्त होती हैं।

जो स्वप्न मे सरोवर, समुद्र, जल-परिपूरित सरिता, और मित्र मरण देखता है, वह अकस्मात् ही अत्यधिक धन प्राप्त करता है।

जो स्वप्न मे हँसता है वह शोकाकुल होकर रोता है, जो स्वप्न मे नृत्य करता है, वह वध और बन्धन को प्राप्त करता है।

स्वप्न मे गाय, वृषभ, तुरङ्ग, राजा और हस्ती के अतिरिक्त कोई काली वस्तु देखना अशुभ है। कपास और नमक के अतिरिक्त अन्य श्वेत वस्तु देखना शुभ है।

जो मानव स्वप्न मे स्वय से सम्बन्धित कोई वस्तु देखता है उसका शुभाशुभ उसे ही मिलता है, यदि दूसरे के लिए देखता है तो उसे मिलता है।

जो स्वप्न मे घृत, मधु, और पय-कुम्भ को सिर पर लेता है वह उसी भव मे मोक्ष प्राप्त करता है। जो स्वप्न मे स्वर्ण राशि, रत्न-राशि, रजत-राशि, तथा सीशे की राशि पर बैठता है वह सम्यक्त्व को प्राप्त कर मोक्ष जाता है।

मूल :—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुमिणसत्थे बायालीसं सुविणा तीसं महासुमिणा बाहत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा, तत्थ णं

देवाणुप्पिया ! अरहंतमातरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि वा चक्कहरंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एतेसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा-गय गाहा ॥७१॥

अर्थ—हे देवानुप्रिय ! निश्चित रूप से हमारे स्वप्न-शास्त्र मे बयालीस स्वप्न (सामान्य फल वाले) कहे हैं, और तीस महास्वप्न (विशेष फल वाले) बताए हैं। इस प्रकार बयालीस और तीस कुल मिलाकर बहत्तर स्वप्न बतलाए गए है। उनमे से हे देवानुप्रिय ! अरिहन्त की माता, और चक्रवर्ती की माता जब अरिहन्त या चक्रवर्ती गर्भ मे आते हैं तब वह तीस महास्वप्नो मे से इन चौदह महास्वप्नो को देखकर जागृत होती है। जैसे कि हाथी, वृषभ आदि।[११]

मूल :—

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अण्णतरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७२॥

अर्थ—वासुदेव की माताए वासुदेव के गर्भ मे आने पर इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई सात महास्वप्नो को देखकर जागृत होती है।

मूल :—

बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७३॥

अर्थ—बलदेव की माताएँ, जब बलदेव गर्भ मे आते है तब इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई भी चार महास्वप्नो को देखकर जागृत होती है।

मूल :—

मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कंते समाणे एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७४॥

अर्थ—माण्डलिकराजा की माताएँ जब माण्डलिक गर्भ मे आते हैं, तब इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है।

मूल :—

इमे य णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिया! भोगलाभो देवाणुप्पिया! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया! सुक्खलाभो देवाणुप्पिया! रज्जलाभो देवाणुप्पिया!, एवं खलु देवाणुप्पिया! तिसला खत्तियाणीया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलकं कुलकित्तिकरं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविविद्धिकरं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणप्पमा-णपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिइ ॥७५॥

अर्थ—हे देवानुप्रिय! त्रिशला क्षत्रियाणी ने जो ये चौदह महास्वप्न देखे हैं। वे मगलकारी हैं। हे देवानुप्रिय! त्रिशला क्षत्रियाणी ने ये जो स्वप्न

देते है, वे अर्थ का लाभ करने वाले हैं। भोग का लाभ करने वाले है। पुत्र का लाभ करने वाले है, सुख का लाभ करने वाले हैं, राज्य का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! निश्चित ही त्रिशला क्षत्रियाणी नौ मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर, तुम्हारे कुल मे ध्वजा के समान, कुल मे दीपक के समान, कुल मे पर्वत के समान, कुल मे मुकुट के समान, कुल मे तिलक के समान और कुल की कीर्ति बढानेवाला, कुल की समृद्धि करने वाला, कुल के यश का विस्तार करनेवाला, कुल के आधार के समान, कुल मे वृक्ष के समान, कुल की विशेष वृद्धि करनेवाला, हाथ पैर से सुकुमार, हीनता रहित, पाच इन्द्रियो वाला, लक्षणो, व्यजनो और गुणो से युक्त, मान, उन्मान, प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वाङ्ग-सुन्दर चन्द्र के समान, सौम्य आकृतिवाला, कान्त प्रियदर्शी और सुरूप पुत्र को जन्म देगी।

विवेचन—स्वप्न पाठको ने स्वप्न-शास्त्र के अनुसार व्याख्या करके चौदह महास्वप्नो का पृथक्-पृथक् अर्थ भी बतलाया।

१ चार दात वाले हाथी को देखने से वह चार प्रकार के धर्म (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप) को कहने वाला होगा।

२ वृषभ को देखने से भरत क्षेत्र मे बोधि-बीज का वपन करेगा।

३ सिंह को देखने से कामदेव आदि विकार रूप उन्मत्त हाथियो से नष्ट होते भव्यजीव रूप वन का सरक्षण करेगा।

४ लक्ष्मी को देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थंकर पद के अपार ऐश्वर्य का उपभोग करेगा।

५ माला को देखने से तीन भुवन के मस्तक पर धारण करने योग्य अर्थात् त्रिलोकपूज्य होगा।

६ चन्द्र को देखने से भव्य जीवरूप चन्द्रविकासी कमलो को विकसित करने वाला होगा, अथवा चन्द्रमा के समान शान्ति वाले क्षमाधर्म का उपदेश करेगा।

७ सूर्य को देखने से अज्ञानरूप अन्धकार नाश करके ज्ञान का उद्योत फैलाएगा।

८ ध्वजा-दर्शन से अर्थ है धर्म रूप-ध्वजा को विश्व क्षितिज पर लहरायेगा, या ज्ञात-कुल में ध्वजा रूप होगा।

९ कलश देखने से कुल या धर्म रूपी प्रासाद के शिखर पर यह कलश-रूप होगा।

१० पद्मसरोवर को देखने से देव-निर्मित स्वर्णकमल पर उनका आसन लगेगा।

११ समुद्र को देखने से समुद्र की तरह अनन्त ज्ञान-दर्शन रूप मणिरत्नों का धारक होगा।

१२ विमान को देखने से वैमानिक देवताओं का पूज्य होगा।

१३ रत्नराशि को देखने से मणि-रत्नो से विभूषित होगा।

१४ निर्धूम अग्नि को देखने से धर्मरूप सुवर्ण को विशुद्ध व निर्मल करने वाला होगा।

मूल :—

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिण्णविपुलबलवाहणे चाउरंतचक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ जिणे वा तिलोक्कनायए धम्मवरचक्कवट्टी, तं ओराला णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा जाव आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगलकारगा णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा ॥७६॥

अर्थ—और वह पुत्र भी बाल्यावस्था पूर्णकर, पढ लिखकर जब पूर्ण ज्ञान वाला होगा, यौवन को प्राप्त करेगा तब वह शूर, वीर और अत्यन्त परा-

स्वामी होगा। उसके पास विराट् सेना व वाहन होंगे। चतुर्दिक समुद्र के अन्त पर्यन्त भूमण्डल का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट् होगा। अथवा तीन लोक का नेता धर्म चक्रवर्ती, धर्मचक्र प्रवर्तन करने वाला जिन तीर्थंकर बनेगा। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! त्रिशला क्षत्रियाणी ने उदार स्वप्न देखे है, यावत् हे देवानुप्रिय! त्रिशला क्षत्रियाणी ने जो स्वप्न देखे है वे आरोग्य करने वाले, तुष्टि करने वाले, दीर्घ आयुष्य के सूचक, कल्याण और मंगल करने वाले हैं।

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे राया तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए करयल जाव ते सुमिणलक्खणपाढगे एवं वयासी ॥७७॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा स्वप्न-लक्षणपाठकों से यह वृत्त सुनकर, समझकर, अत्यन्त प्रसन्न हुआ, अत्यधिक तुष्ट हुआ। प्रसन्नता से उसका हृदय फूलने लगा। उसने हाथ जोड़कर स्वप्नलक्षणपाठकों से इस प्रकार कहा —

मूल :—

एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे २ त्ता ते सुमिणलक्खणपाढए णं विउलेणं पुप्फगंधवत्थ-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयति, विपुलं जीवयारिहं पीइदाणं दलइत्ता पडिविसज्जेइ ॥७८॥

अर्थ—हे देवानुप्रियो! आपने जो कहा है वह इसी प्रकार है। हे देवा-

नुप्रियो ! आपने जो कहा है वह अन्यथा नही है। आपका कथन यथार्थ है। आपका यह कथन हमे इष्ट है, स्वीकृत है, मन को पसन्द है। हे देवानुप्रियो ! यह कथन सत्य है जो आपने कहा है। इस प्रकार वे उन स्वप्नो को विनय के साथ स्वीकार करते है। स्वीकार कर स्वप्नलक्षणपाठको को विपुल पुष्प-सुगन्धित चूर्ण, वस्त्र, मालाए, आभूषण आदि प्रदान कर उनका अत्यन्त सत्कार सम्मान करते है। सत्कार-सम्मानकर उनके सम्पूर्ण जीवन के योग्य प्रीतिदान देते हैं। इस प्रकार प्रीतिदान देकर उन्होने स्वप्नलक्षण-पाठको को सम्मान पूर्वक विदा किया।

विवेचन—प्रीतिदान का भावात्मक अर्थ है—दाता प्रसन्न होकर अपनी इच्छा से जो दान देता है। जिस दान मे अर्थी की ओर से याचना या प्रस्ताव रखा जाता है और उस पर मन नही होते हुए भी दाता को देना पडता है वह प्रीतिदान नही हैं।

प्रीतिदान का व्यावहारिक अर्थ है—इनाम या पुरस्कार, पारितोषिक।[१६४]

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणियंतरिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलं खत्तियाणिं एवं वयासी ॥७६॥

अर्थ—उसके पश्चात् सिद्धार्थ क्षत्रिय अपने सिंहासन से उठते है। सिंहासन से उठकर जहा त्रिशला क्षत्रियाणी पर्दे के पीछे थी वहाँ आते है, वहाँ आकर त्रिशला क्षत्रियाणी को इस प्रकार कहते हैं—

मूल :—

एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुविणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा जाव एगं महासुमिणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥८०॥

अर्थ--हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार निश्चय ही स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न कहे हैं—'तीर्थंकर, चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा आदि जब गर्भ में आते हैं तब उनकी माता तीस महास्वप्नों में से कोई भी एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है, वहां तक सम्पूर्ण वृत्त, जो स्वप्नलक्षणपाठकों ने कहा था, त्रिशला क्षत्रियाणी को सुनाते हैं।

मूल :—

इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए ! चोद्दस महासुमिणा दिट्ठा, तं० ओराला णं तुमे जाव जिणे वा तेलोक्कनायए धम्मवरचक्कवट्टी ॥८१॥

अर्थ—हे देवानुप्रिये ! तुमने जो ये चौदह महास्वप्न देखे हैं, वे सभी बहुत ही श्रेष्ठ हैं, यहां से लेकर तुम तीन लोक के नायक, धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले, जिन बनने वाले पुत्र को जन्म प्रदान करोगी, यहां तक का सम्पूर्ण वृत्त त्रिशला क्षत्रियाणी को सुनाते हैं।

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया करयल जाव ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ ॥८२॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ से यह वृत्त सुनकर, समझकर बहुत प्रसन्न हुई, अत्यधिक सन्तोष को प्राप्त हुई। अत्यन्त प्रसन्न होने से उसका हृदय विकसित हुआ। वह दोनों हाथ जोड़कर स्वप्नों के अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है।

मूल :—

सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता

अतुरियं अचवलं असंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सते भवणे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा ॥८३॥

अर्थ—स्वप्नो के अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करने के पश्चात् सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर वह विविध मणि-रत्नो की रचना से चमचमाते हुए भद्रासन से खडी होती है। खडी होकर शीघ्रता रहित, चपलता रहित, वेगरहित, अविलम्ब राजहसी जैसी गति से चलकर जहाँ अपना भवन है, वहा आकर अपने भवन मे प्रविष्ट हुई।

मूल :—

जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तं नायकुलं साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तं जहा—पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगोत्तागाराइं उच्छन्नसामियाइं उच्छन्नसेउकाइं उच्छन्नगोत्तागाराइं गामाऽऽगर-नगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु सिंघाडएसु वा तिएसु वा चउक्केसु वा चच्चरेसु वा चउम्मुहेसु वा महापहेसु वा गामट्ठाणेसु वा नगरट्ठाणेसु वा गामनिद्धमणेसु वा नगर-निद्धमणेस वा आवणेसु वा देवकुलेसु वा सभासु वा पवासु वा आरामेसु वा उज्जाणेसु वा वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाणसुन्नागा-रगिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ॥८४॥

अर्थ—जब से श्रमण भगवान् महावीर ज्ञातकुल मे सहरित हुए तब से वैश्रमण (कुबेर) के अधीनस्थ, तिर्यक् लोक मे निवास करने वाले, बहुत से जृम्भकदेव इन्द्र की आज्ञा से जो अत्यन्त प्राचीन महानिधान थे उन्हे लाकर

सिद्धार्थ राजा के भवन मे एकत्रित करने लगे। प्राप्त होने वाले उन प्राचीन महानिधानो (धन भण्डारो) का परिचय इस प्रकार है—

उन धन भण्डारो का वर्तमान मे कोई भी अधिकृत अधिकारी नहीं रहा, उसमे कोई भी वृद्धि करने वाला नही रहा, उन धन भण्डारो के जो स्वामी थे उनके गोत्र मे भी कोई नही रहा। उन धन भण्डारो के अधिकारियो का भी उच्छेद हो गया, और अधिकारियो के गोत्रस्थ व्यक्तियो का भी उच्छेद हो गया, उन घरो का नाम निशान भी अवशेष नही रहा। ऐसे धन-भण्डार जहां कही भी ग्रामो मे, (जहा पर कर आदि नही लगता) आगर—खदानो मे, नगरो मे, खेटको मे (धूली मे निर्मित गढवाले ग्रामो मे) नगर की पंक्ति मे न शोभित हो ऐसे ग्रामो मे, जिन ग्रामो के सन्निकट चारो तरफ दो-दो कोस तक ग्राम न हो, ऐसे मडम्बों मे, जल और स्थल इन दोनो मार्गों से जहां जाया जा सके ऐसे द्रोणमुखो मे, जल और स्थल मार्ग मे से जहां केवल एक मार्ग से जाया जाए ऐसे पत्तनो मे, तीर्थस्थल या तापसो के निवासस्थल आश्रमो मे, सम-भूमि मे जहां किसान कृषि करके धान्य की रक्षा हेतु धान्य रखता है ऐसे संवाहो मे, सेनाएँ, सार्थवाह और पथिक जहा ठहरते है ऐसे सन्निवेशों में अर्थात् पडावो मे, या सिंघाडे की तरह तीन मार्ग एकत्रित होते हैं वहा तिराहे, पर, चारमार्ग एकत्रित होते है वहा चौराहे पर, या अनेक मार्ग एकत्रित होते है वहा पर, राजपथ मे, देवालयो मे, ग्राम अथवा नगर के उच्च स्थानो मे निर्जन गांव और नगर के स्थलो मे, नालियो में, बाजार और दुकाने जहां हो, ऐसे स्थलो मे, देवगृह, चौराहा, प्याऊ और उद्यानो मे, उद्यापन (गोठ) करने के स्थलो मे, वन मे, वन खण्डो मे, श्मशान मे, शून्यगृहो मे, पर्वत की गुफाओं मे, शान्तिगृहो मे, (जहा पर बैठकर शान्ति कर्म किया जाता है) पर्वत को खोद कर बनाए गए गृहो मे, सभास्थलो मे, किसान जहा रहते हो ऐसे घरो मे, भूमि मे, जहां पर गुप्त रूप से रखे हुए धन भण्डार है, उन्हे लाकर वे जृम्भकदेव सिद्धार्थ राजा के भवन मे स्थापित करते हैं।

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि

साहरिए तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था सुवण्णेणं वड्ढित्था धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढित्था, विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव अईव अभिवड्ढित्था ॥८५॥

अर्थ–जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर ज्ञातृकुल मे लाये गये उस रात्रि से ही सम्पूर्ण ज्ञातृकुल चाँदी से, स्वर्ण से, धन-धान्य से, राज्य से, राष्ट्र (जनपद) से, सेना से, वाहन से, कोश से, कोष्ठागार (धान्यगृह) से, नगर से, अन्त पुर से, जनपद से, यश और कीर्ति से वृद्धि प्राप्त करने लगा।

उसी प्रकार विपुल धन (गोकुल), स्वर्ण, रत्न, मणि, मुक्ता, दक्षिणावर्त शंख, राजपट्ट, प्रवाल, पद्मराग, माणिक, आदि सारभूत सम्पत्ति से भी ज्ञातृकुल की वृद्धि होने लगी। ज्ञातृकुल के लोगो मे परस्पर प्रीति, आदर और सत्कार-सद्भाव बढने लगा।

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र मे जो धन शब्द व्यवहृत हुआ है, उस धन के चार प्रकार हैं (१) गणिम—जो वस्तु गिनकर दी जाए, जैसे फल-फूल आदि। (२) धरिम—जो वस्तु तोलकर दी जाए–जैसे शक्कर गुड आदि। (३) मेय—जो वस्तु माप करदी जाए जैसे कपडा आदि। (४) परिच्छेद्य–जो वस्तु परख कर दी जाए जैसे हीरा पन्ना आदि जवाहरात।

धान्य शब्द के अन्तर्गत चौबीस प्रकार के धान्यो को लिया गया है, वे धान्य यो है:—

(१) गेहू, (२) जौ, (३) जुवार, (४) वाजरी, (५) डांगर (शाल) (६) वरी, (७) बटी (वरटी), (८) वावटी, (९) कागनी, (१०) चिण्योभिण्यो, (११) कोदरा, (१२) मक्का। इन बारह की दाल न बनने के कारण ये 'लहा' धान्य कहलाते हैं।

(१३) मूग, (१४) मोठ, (१५) उडद, (१६) तुवर, (१७) झालर कावली चने, (१८) मटर, (१९) चवले, (२०) चने, (२१) कुलत्थी, (२२) काग, (राजगरे के समान एक जाति का अन्न), (२३) मसुर, (२४) अलसी इन बारह की दाल बन सकने के कारण ये 'कठोल' कहे जाते है।

मूल :—

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवन्नेणं वड्ढामो, धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं दलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढामो, विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पिइसक्कारसमुदएणं अतीव अतीव अभिवड्ढामो तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो 'वद्धमाणो' त्ति ॥८६॥

अर्थ—उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता के मानस मे इस प्रकार चिन्तन, अभिलाषा रूप मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि—जब से यह हमारा पुत्र कुक्षि मे, गर्भ रूप मे आया है तब से हमारी हिरण्य से, सुवर्ण से, धन से, धान्य से, राज्य से, राष्ट्र से, सेना से, वाहनो से, धन-भण्डार से, पुर से, अन्तःपुर से, जनपद से, यशःकीर्ति से वृद्धि हो रही है। तथा धन, कनक, रत्न, मणि, मुक्ता, शंख, शिला, प्रवाल और माणिक आदि निधान भी हमारे यहां अत्यधिक रूप से बढने लगे हैं तथा हमारे सम्पूर्ण ज्ञातृकुल मे परस्पर अत्यन्त प्रीति बढने लगी है, एव अत्यधिक आदर-सत्कार भी बढने

लगा है, अतएव जब हमारा यह पुत्र जन्म लेगा तब हम इस पुत्र का इसके अनुरूप गुणो का अनुसरण करने वाला, गुण निष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम रखेंगे ।

——● गर्भ की स्थिरता पर शोक

मूल :—

तए णं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते या वि होत्था ॥८७॥

अर्थ—उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर माता के प्रति अनुकम्पा करने के लिए अर्थात् 'गर्भ मे हलन-चलन करूँगा तो माता को कष्ट होगा' यह सोचकर निश्चल हो गये, उन्होने हिलना-डुलना बन्द कर दिया, अकम्प बन गये, अपने अङ्गोपाङ्ग को सिकोड लिए, इस प्रकार माता की कुक्षि मे हलन-चलन रहित हो गए ।

मूल :—

तए णं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'हडे मे से गब्भे, मडे मे से गब्भे, चुए मे से गब्भे, गलिए मे से गब्भे एस मे गब्भे पुव्विं एयति इयाणिं नो एयति त्ति कट्टु ओहतमणसंकप्पा चिंतासोगसायरं संपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियायइ । तं पि य सिद्धत्थरायभवणं उवरयमुइंगतंतीतलतालनाडइज्जजणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ॥८८॥

अर्थ—तब त्रिशला क्षत्रियाणी के मन मे इस प्रकार का यह विचार आया कि—मेरा यह गर्भ हरण कर लिया गया है, मेरा गर्भ मर गया है, मेरा यह गर्भ च्युत हो गया है, मेरा गर्भ पहले हिलता-डुलता था, अब हिलता-डुलता नही है । इस प्रकार विचार कर वह खिन्न मन वाली होकर चिन्ता और शोक के सागर मे निमग्न हो गई । हथेली पर मुँह रखकर आर्तध्यान

करने लगी। भूमि की ओर दृष्टि केन्द्रित कर चिन्ता करने लगी। उस समय सिद्धार्थ राजा का सम्पूर्ण घर शोकाकुल हो गया। जहाँ पर पहले मृदङ्ग, वीणा आदि वाद्य बजते थे, रास क्रीडाएँ होती थी, नाटक होते थे जय-जयकार होता था, वहाँ सर्वत्र शून्यता व्याप्त हो गई, उदासी छा गई।

विवेचन—माँ वात्सल्य की अमरमूर्ति है। उसकी ममता निराली है। ससार की कोई भी शक्ति उस ममता की होड नही कर सकती। पुत्र, माँ की ममता का मेरु है, हृदय है, प्राण है! उसके लिए वह स्वय कष्ट की धधकती ज्वालाओ मे झुलसती है, पर प्यारे लाल को तनिक भी कष्ट मे देखना नही चाहती। उसका तनिक कष्ट भी उसके लिए असह्य है।

भगवान् महावीर ने मातृस्नेह के कारण ज्योही हिलना-डुलना बन्द किया, त्योंही माता त्रिशला अकल्पनीय कल्पना के प्रवाह मे बहकर फूट-फूटकर रोने लगी। दारुण-विलाप करने लगी।

"हाय! यह क्या हो गया। मेरा गर्भस्थ बालक हिलता-डुलता क्यों नहीं है? क्या उसका अपहरण हो गया है? क्या वह नष्ट हो गया है? क्या किसी ने मेरे पुत्र-रत्न को छीन लिया है?"

"हे भगवन्! ऐसा मैंने कौन-सा भयकर पाप किया था जिसके कारण ऐसा अनर्थ हुआ है। हे भगवन्! क्या मैंने पूर्वभव मे किसी का गर्भ गिराया? क्या मैंने किसी माँ से प्यारे लाल का विछोह कराया? क्या मैंने किन्ही पक्षियो के अण्डे नष्ट किये? क्या मैंने चूहो के बिलो मे गर्म पानी डालकर उनके बच्चो का घात किया? हाय प्रभो! अब यह करुण कहानी किसे सुनाऊँ? हे भगवन्! मैं वस्तुत पापिनी हूँ! अभागिनी हूँ!"

महारानी त्रिशला के करुण-क्रन्दन को सुनकर दासियाँ दौड आयी। वाणी मे मिश्री घोलती हुई बोली—"रानीजी! आप क्यो रो रही है? आपका मुख कमल क्यों मुरझा गया है? आपका देह तो स्वस्थ है न? आपका गर्भस्थ बालक तो सकुशल है न?

रानी ने निश्वास डालते हुए कहा—"क्या कहूँ! हृदय फट रहा है, मन

वेदना से विदीर्ण हो रहा है। प्यारा लाल". कहते कहते गला रुध गया। आँखो से आँसुओ की वर्षा होने लगी, रानी मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडी। महारानी की यह अवस्था देखकर दासियाँ घबरा गई, वे पखे से हवा करने लगी, सारे अन्तःपुर में शोक की लहर व्याप्त हो गई।

महाराज सिद्धार्थ ने सुना, वह भी दौडकर महल मे आये। महारानी की यह दयनीय दशा देखकर उनके आँखो से भी आँसू छलक पडे। तथापि धैर्य बटोर कहा—"रानी! घबराओ मत, धैर्य रखो। सब कुछ ठीक हो जायेगा, अधीर मत बनो।"

मूल :—

तए णं समणे भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अज्झत्थियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं विजाणित्ता एगदेसेणं एयइ ॥८६॥

अर्थ—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर माता के मन मे उत्पन्न हुए इस प्रकार के विचार, चिन्तन अभिलाषा रूप मनोगत सकल्प को जानकर अपने शरीर के एक भाग को हिलाते हैं।

विवेचन—भगवान् ने अवधिज्ञान से माता पिता और परिजनो को शोक विह्वल देखा। सोचा—

> किं कुर्म ? कस्य वा ब्रूमो ?, मोहस्य गतिरीदृशी !
> दुषेर्धातोरिवास्माक, दोषनिष्पत्तये गुण ॥

'अरे! यह क्या हो रहा। मैंने तो माता के सुख के लिए यह कार्य किया था पर यह तो उलटा उनके दुःख का कारण बन गया। मोह की गति बडी विचित्र है। जैसे दुष् धातु से गुण करने से 'दोष' की निष्पत्ति होती है वैसे ही मैंने सुख के लिए जो कार्य किया उससे उलटा दुःख ही निष्पन्न हुआ।' ऐसा विचार कर उन्होने अपने शरीर के एक भाग को हिलाया।

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया एवं वयासि—नो खलु मे गब्भे हडे जाव नो गलिए, मे गब्भे पुव्विं नो एयइ इयाणिं एयइ त्ति कट्टु हट्ठतुट्ठ जाव एवं वा विहरइ ॥९०॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी परम प्रसन्न हुई, तुष्ट हुई। प्रसन्नता से उसका हृदय विकसित हुआ। प्रसन्न होकर वह इस प्रकार सोचने लगी—"निश्चय ही मेरे गर्भ का हरण नहीं हुआ है और न मेरा गर्भ गला ही है। मेरा गर्भ पहले हिलता नहीं था, अब हिलने लगा है।" इस प्रकार सोचकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई, सन्तोष को प्राप्त हुई और अतीव आह्लाद पूर्वक रहने लगी।

——● अभिग्रह

मूल :—

तए णं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ नो खलु मे कप्पइ अम्मापिऊहिं जीवंतेहिं मुंडे भवित्ता अगारवासाओ अणगारियं पव्वइत्तए ॥९१॥

अर्थ—उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने गर्भ में रहते ही इस प्रकार अभिग्रह (नियम संकल्प) स्वीकार किया—"जब तक मेरे माता पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर दीक्षा अंगीकार नहीं करूंगा।"

विवेचन—श्रमण भगवान् महावीर ने सोचा "अभी तो मैं गर्भ में हूँ, मां ने मेरा मुंह भी नहीं देखा है तथापि माता का इतना मोह है, तो जन्म के पश्चात् कितना मोह होगा? माता पिता की विद्यमानता में यदि मैं संयम लूंगा तो उन्हें बहुत ही कष्ट होगा, अतः मातृस्नेह से गर्भ के सातवें महीने में उन्होंने उपर्युक्त प्रतिज्ञा ग्रहण की।"

——● गर्भ परिपालना

मूल :—

तए णं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउयमंगलपायच्छित्ता सव्वालंकारभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं नाइ उण्हेहिं नाइतित्तेहिं नाइकडुएहिं नाइकसाइएहिं नाइअंबिलेहिं नाइमहुरेहिं नातिनिद्धेहिं नातिलुक्खेहिं नातिउल्लेहिं नातिसुक्केहिं उडुभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायणगंधमल्लेहिं ववगयरोगसोगमोहभयपरित्तासा जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणाणुकूलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला संपुन्नदोहला सम्माणियदोहला अविमाणियदोहला वुच्छिन्नदोहला विणीयदोहला सुहं सुहेणं आसयइ सयति चिट्ठइ निसीयइ तुयट्टइ सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥९२॥

अर्थ—उसके पश्चात् त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्नान किया, बलिकर्म किया कौतुक मगल और प्रायश्चित्त किया। सम्पूर्ण अलकारो से भूषित हुई। वह गर्भ का पोषण करने लगी। उमने अत्यन्त शीत, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त कटुक, अत्यन्त कसैले, अत्यन्त खट्टे, अत्यन्त मीठे, अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूक्ष, अत्यन्त आर्द्र ऋतु से प्रतिकूल भोजन, वस्त्र, गध और मालाओ का त्याग कर दिया। ऋतु के अनुकूल सुखकारी भोजन, वस्त्र, गंध और मालाओ को धारण किया। वह रोगरहित, शोकरहित, मोहरहित, भयरहित, त्रास रहित, रहने लगी। तथा उस गर्भ के लिए हितकर, परिमित पथ्य और गर्भ का पोषण करने वाला आहार-विहार करती हुई उपयोग पूर्वक रहनेलगी। वह देश और काल के अनुसार आहार करती। दोष रहित, मुलायम आसनपर बैठती, एकान्त शान्त-विहारभूमि मे रहने लगी।

उसको गर्भ के प्रभाव से प्रशस्त दोहद उत्पन्न हुए। उन दोहदो को

सम्मान पूर्वक पूर्ण किया। दोहदो का तनिकमात्र भी अपमान (उपेक्षा) नही किया। उसके मनोवाञ्छित दोहद पूर्ण होने से हृदय शान्त हो गया। अब उसे दोहद उत्पन्न नही होते, वह सुखपूर्वक सहारा लेकर बैठती है, सोती है, खडी रहती है, आसन पर बैठती है, शय्या पर सोती है और सुख पूर्वक गर्भ को धारण करती है।

विवेचन—भारतीय आयुर्वेद साहित्य मे जो जैन दृष्टि से प्राणावाय पूर्व का ही एक अङ्ग है, गर्भवती माता का आहार, विहार और चर्या कैसी होनी चाहिए इस पर गहराई से विचार किया गया है। यहा पर हम विस्तार मे न जाकर संक्षेप मे ही उसका सारांश सूचित कर रहे हैं।

गर्भवती माता को किस ऋतु मे कौन-सा पदार्थ अधिक लाभप्रद होता है? इस पर चर्चा करते हुए बताया है कि वर्षा ऋतु मे नमक, शरद् ऋतु मे पानी, हेमन्त ऋतु मे गोदुग्ध, शिशिरऋतु मे आम्ल रस, वसन्त ऋतु मे घृत और ग्रीष्मऋतु मे गुड़ का सेवन हितकारी है।[१०]

वाग्भट्ट ने कहा है—'यदि गर्भवती माता वात-प्रधान आहार करती है तो गर्भस्थ बालक कुब्ज, अंध, मूर्ख और वामन होता है। यदि पित्त-प्रधान आहार करती है तो गर्भस्थ बालक के सिर मे टाट, व शरीर पीतवर्ण वाला होता है। यदि कफप्रधान आहार करती है तो गर्भस्थ बालक श्वेत-कुष्ठी होता है।

'अत्यन्त उष्ण आहार करने से गर्भस्थ बालक का बल नष्ट होता है। अत्यन्त शीत आहार करने से गर्भस्थ बालक को वायु-प्रकोप होता है। अत्यन्त नमक प्रधान आहार करने से गर्भस्थ बालक के नेत्र नष्ट होते है। अत्यन्त घृत प्रधान स्निग्ध आहार करने से पाचनक्रिया विकृत होती है।'

सुश्रुत मे कहा है– यदि गर्भवती महिला दिन मे सोती है, तो उसकी सन्तान आलसी व निद्रालु होती है। यदि नेत्रो मे अञ्जन आंजती है तो सन्तान अंधी होती है। यदि वह रोती है तो सन्तान की दृष्टि विकृत होती है। यदि वह अधिक स्नान और विलेपन करती है तो सन्तान दुराचारिणी होती है। शरीर पर तेल आदि का मर्दन करती है तो संतान कुष्ठ रोगी होती है। वार-

वार नाखून काटती है, तो सन्तान के नाखून असुन्दर होते हैं। दौड़ती है तो संतान की प्रकृति चचल होती है। जोर से अट्टहास करती हैं तो सतान के दाँत ओष्ठ, तालु और जीभ श्याम होते है। यदि वह वहुत वोलती है, तो सन्तान भी अधिक वकवास करने वाली होती है। अधिक गाती या वीणा आदि वाद्य अधिक बजाती है तो सतान वहरी होती है। यदि वह अधिक भूमि को खोदती है तो सतान के सिर मे केश विरल होते है अर्थात् कही-कही पर टाँट निकल जाती हैं। यदि वह पंखे आदि की हवा करती है तो सन्तान उन्मत्त प्रकृति की होती है। गर्भवती माता के चिन्तन, आचरण व्यवहार, वातावरण आदि का सन्तान के निर्माण मे, उसके चरित्र एव शरीर सघटना पर वहुत असर होता है। यह तथ्य प्राचीन आयुर्वेद से ही सम्मत नही, वल्कि आधुनिक शरीर-विज्ञान एव मनोविज्ञान के परीक्षणो से भी सम्पुष्ट है।

हा, तो महारानी त्रिशला की प्रतिभा-सम्पन्न विलक्षण सहेलियाँ समय समय पर महारानी को इस वात का ध्यान दिलाती रहती थी कि आप "शनै. शनैः चले। शनै शनैः वोले, क्रोध न करे, हितमित और पथ्य भोजन करे। पेट को अधिक न कसें, अधिक चिन्ता व अधिक हास-परिहास न करें। अधिक चढने उतरने का श्रम भी न करें।"

महारानी त्रिशला भी सहेलियो की वात को ध्यान मे सुनती और विवेकपूर्वक गर्भ का पालन करती।

गर्भ के प्रभाव से माता त्रिशला को दिव्य दोहद उत्पन्न हुए। मैं अपने हाथो से दान दू, सद्गुरुओं को आहार आदि प्रदान करूं, देश मे अमारी पटह वजवाऊँ, कैदियो को कारागृह से मुक्त कराऊ समुद्र, चन्द्र और पीयूष का पान करूँ, उत्तम प्रकार के भोजन, आभूषण धारण करु, सिंहासन पर वैठकर शासन का सँचालन करुँ और हस्ती पर वैठकर उद्यान मे आमोद-प्रमोद करुँ। राजा सिद्धार्थ ने रानी के समस्त दोहद पूर्ण किये।

कहा जाता है कि एक वार रानी त्रिशला को एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ। मैं इन्द्राणी के कानो से कुण्डल-युगल छीनकर पहनू। दोहद पूर्ण

होना असंभव था। उसी समय इन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा, रानी के दोहद को पूर्ण करने के लिए वह भूमण्डल पर आया। किले का निर्माण कर सिद्धार्थ को युद्ध के लिए आह्वान किया। स्वय युद्ध में पराजित हुआ, किले पर सिद्धार्थ ने अधिकार किया, इंद्राणी के कानो से कुण्डल छीनकर त्रिशला रानी को पहनाये, दोहद पूर्ण होने से त्रिशला अत्यन्त प्रमुदित हुई। इस प्रकार के दोहदो द्वारा गर्भस्थ शिशु के दया, शौर्य, वीरता आदि गुणो का माता के मन पर स्पष्ट प्रतिबिम्बित होना दृष्टिगोचर होता है।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसीदिवसेण नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइं-दियाणं विइक्कंताणं उच्चट्ठाणगतेसु गहेसु पढमे चंदजोगे सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जतिएसु सव्वसउणेसु पयाहिणाणु-कूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवातंसि निप्फण्णमेदिणीयंसि कालंसि पमुदितपक्कीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोगं दारयं पयाया ॥९३॥

अर्थ—उस काल उस समय मे (श्रमण भगवान् महावीर) जब ग्रीष्म ऋतु चल रही थी, ग्रीष्म का प्रथम मास-चैत्र मास और उसका द्वितीय पक्ष (शुक्ल पक्ष) चल रहा था, चैत्र मास के शुक्ल पक्ष का तेरहवा दिन था अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, नव मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर जब सभी ग्रह उच्च स्थान मे आये हुए थे, चन्द्र का प्रथम योग चल रहा था दिशाएँ सभी सौम्य, अधकार रहित और विशुद्ध थी, जय-विजय के सूचक सभी प्रकार के शकुन थे, दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशिका) शीतल-मन्द सुगधित पवन प्रवाहित था, पृथ्वी धान्य से सुसमृद्ध थी, देश के सभी जनो के मन में प्रमोद भावनाएं अठखेलिया कर रही थी, तब मध्यरात्रि के समय हस्तोत्तरा नक्षत्र

अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग मे त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्य पूर्वक और नीरोग, स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया।

विवेचन—आचार्यों ने सभी तीर्थंकरो के गर्भकाल का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि कौन तीर्थंकर कितने काल तक माता के गर्भ मे रहे। भगवान् ऋषभदेव नव मास और चार दिन गर्भ मे रहे। श्री अजितनाथ आठ मास और पच्चीस दिन, श्री सभवनाथ नौ मास और छह दिन श्री अभिनन्दन आठ मास और अट्ठाईस दिन, श्री सुमितनाथ नौ मास और छह दिन, श्री पद्म प्रभ नौ मास और छह दिन, श्री सुपार्श्वनाथ नौ मास और उन्नीस दिन, श्री चन्द्रप्रभ नौ मास और सात दिन, श्री सुविधिनाथ आठ मास और छब्बीस दिन, श्री शीतलनाथ नौ मास और छह दिन, श्री श्रेयाँसनाथ नौ मास और छह दिन, श्री वासुपूज्य आठ माह और बीस दिन, श्री विमलनाथ आठ माह और इक्कीस दिन, श्री अनन्तनाथ नौ माह और छह दिन, श्री धर्मनाथ आठ माह और छब्बीस दिन, श्री शान्तिनाथ नौ माह और छह दिन, श्री कुथुनाथ नौ माह और पाँच दिन, श्री अरनाथ नौ माह और आठ दिन, श्री मल्लिनाथ नौ माह और सात दिन, श्री मुनिसुव्रत स्वामी नौ माह और आठ दिन, श्री नमिनाथ नौ माह और आठ दिन, श्री नेमिनाथ नौ माह और आठ दिन, श्री पार्श्वनाथ नौ माह और छह दिन, श्री महावीर नौ माह और सात दिन गर्भ मे रहे।[१६८]

भगवान महावीर के जन्म के समय सभी ग्रह उच्च स्थान मे थे। जैसे

जन्म कुण्डली
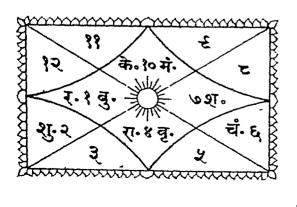
राशि	ग्रह	अंश
मेष	सूर्य	१०
वृषभ	चन्द्र	३
मकर	मंगल	२८
कन्या	बुध	१५
कर्क	गुरु	५
मीन	शुक्र	२७
तुला	शनि	२०

प्राचीन ज्योतिष सम्बन्धी मान्यता के अनुसार जिसके जन्म समय मे तीन ग्रह उच्च होते है वह राजा होता है। पांच ग्रह उच्च होने पर अर्ध चक्रवर्ती होता है, छह ग्रह उच्च स्थान मे हो तो चक्रवर्ती होता है और सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर बनता है।

भगवान् महावीर के जन्म लेने से केवल क्षत्रियकुण्डपुर ही नही, अपितु क्षण भर के लिए समस्त संसार लोकोत्तर प्रकाश से प्रकाशित हो गया। राजा सिद्धार्थ ने ही नही, संसार भर के प्राणिगण ने अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया।

तीर्थंकर का धरा पर जन्म धारण करना अध्यात्म, धर्म और ज्ञान के महाप्रकाश का साक्षात् रूप मे अवतरण है। उनके उपदेश व ज्ञान से सिर्फ मनुष्यलोक ही नही, बल्कि तीनो लोक प्रकाशमान हो जाते है। इसी दृष्टि से तीर्थंकर के जन्म समय मे, दीक्षा एव केवल ज्ञानोत्पत्ति के समय मे तीनों लोक मे अपूर्व उद्योत होने की बात आगम मे आई है।[१६०]

——● जन्म महोत्सव

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए सा णं रयणी बहूहिं देवेहि य देवीहि य उवयंतेहि य उप्पयंतेहि य उप्पिंजलमाण-भूया कहकहभूया यावि होत्था ॥६४॥

अर्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर ने जन्म ग्रहण किया उस रात्रि मे बहुत से देव और देवियो के ऊपर-नीचे आवागमन से लोक में एक हलचल मच गई और सर्वत्र कल-कलनाद व्याप्त हो गया।

विवेचन—भगवान् का जन्मोत्सव करने के लिए छप्पन दिक्कुमारिकाएं आई। दिक्कुमारिकाओ के नाम इस प्रकार हैं—

(१) भोगंकरा, (२) भोगवती, (३) सुभोगा, (४) भोगमालिनी, (५) सुवत्सा, (६) वत्समित्रा, (७) पुष्पमाला, (८) अनिन्दिता। ये आठो दिक्कुमारियां अधोलोक में रहती हैं। इन्होंने आकर नमस्कार कर

ईशान दिशा मे सूतिका गृह का निर्माण किया (९) मेघकरा, (१०) मेघवती, (११) सुमेघा, (१२) मेघमालिनी, (१३) तोयधारा, (१४) विचित्रा,(१५) वारिषेणा, (१६) बलाहिका । ये आठो दिक्कुमारियाँ ऊर्ध्वलोक मे रहती है। उन्होने आकर नमस्कार किया, सुगन्धित जल और पुष्पो की वृष्टि की । (१७) नंदा, (१८) उत्तरानन्दा, (१९) आनन्दा, (२०) नदिवर्धना, (२१) विजया, (२२) वैजयन्ती, (२३) जयती, (२४) अपराजिता । ये आठो दिक्कुमारियाँ पूर्व दिशा के रुचक पर्वत मे रहती है । मुखदिखाने हेतु दर्पण सामने करती हैं। (२५) समाहारा, (२६) सुप्रदत्ता, (२७) सुप्रबुद्धा, (२८) यशोधरा, (२९) लक्ष्मीवती, (३०) शेषवती, (३१) चित्रगुप्ता, (३२) वसुन्धरा । ये आठो दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशा के रुचक पर्वत मे रहती है, स्नान हेतु जल सम्पूरित कलश लाती हैं । (३३) इलादेवी, (३४) सुरादेवी, (३५) पृथिवी, (३६) पद्मवती, (३७) एकनासा, (३८) नवमिका, (३९) भद्रा और (४०) शीता, ये आठो दिक्कुमारियाँ पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत पर रहती है। ये पवन करने के लिए पखा लेकर आती है। (४१) अलवुसा, (४२) मितकेशी, (४३) पुडरीका, (४४) वारुणी, (४५) हासा, (४६) सर्वप्रभा, (४७) श्री और (४८) ह्री ये आठो दिक्कुमारियाँ उत्तर दिशा के रूचक पर्वत पर रहती है। ये चामर वीजती है। (४९) चित्रा, (५०) चित्रकनका, (५१) शतोरा, (५२) वसुदामिनी, ये चारो दिक्कुमारियाँ रूचक पर्वत की विदिशाओ मे से आती है। दीपक लेकर विदिशाओ मे खडी रहती हैं। (५३) रूपा, (५४) रूपासिका, (५५) सुरूपा और (५६) रूपकावती ये चारो दिक्कुमारियाँ रुचक द्वीप मे रहती है। ये भगवान् के नाल का छेदन करती है। तेल का मर्दन कर स्नान कराती है।

विभिन्न दिशाओ मे रहने वाली ये दिक्कुमारियाँ आई और भगवान का सूतिका कर्म करके, जन्मोत्सव मनाया और अपने स्थान को चली गई।

भगवान् का जन्म होते ही शक्रेन्द्र का सिहासन कम्पित हुआ। वह अवधिज्ञान से भगवान् का जन्म जानकर आह्लादित हुआ। अनेक देव-देवियो के परिवार के साथ कुण्डपुर आया। साथ ही, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवनिकाय के इन्द्र और देवगण भी आये।[१७०] उन्होने भगवान्

को और माता त्रिशला को तीन बार प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया। मां को अवस्वापिनी निद्रा देकर और भगवान का प्रतिबिम्ब वहां रखकर भगवान् को मेरुशिखर पर ले गये। स्नात्राभिषेक करने के लिए जब सब देव जलकलश लेकर खड़े हुए तो सौधर्मेन्द्र के मानस में शंका हुई कि यह नवजात बालक इतने जल प्रवाह को कैसे सहन करेगा? अवधिज्ञान से इन्द्र की शंका को जानकर भगवान् ने बाएँ पांव के अंगूठे से मेरु पर्वत को दबाया जिससे सम्पूर्ण पर्वत कम्पायमान हो गया।[१७१] इन्द्र को प्रथम क्रोध आया, किंतु जब इसे नवजात बालक रूप में अनन्तशक्ति संपन्न भगवान् का ही कृत्य समझा तो, उसे भगवान् की अनन्त शक्ति का परिज्ञान हुआ, उसने क्षमा याचना की। जन्मोत्सव मनाने के पश्चात् पुन: इन्द्र ने भगवान् को माता के पास रख दिया। एवं नन्दीश्वर द्वीप में अष्टाह्निक महोत्सव कर स्वस्थान गये।

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सिद्धत्थरायभवणंसि हिरन्नवासं च सुवन्नवासं च रयणवासं च वयरवासं च वत्थवासं च आहरणवासं च पत्तवासं च पुप्फवासं च फलवासं च बीयवासं च मल्लवासं च गंधवासं च वण्णवासं च चुण्णवासं च वसुहारवासं च वासिंसु ॥६५॥

अर्थ—जिस रात्रि को श्रमण भगवान् महावीर ने जन्म ग्रहण किया उस रात्रि में कुबेर की आज्ञा में रहे हुए, तिर्यक् लोक में रहने वाले अनेक जृम्भक देवों ने सिद्धार्थ राजा के भवन में चांदी की, स्वर्ण की, रत्नों की, वज्र रत्नों की, वस्त्रों की, आभूषणों की, (नागर) पत्रों की, पुष्पों की, फलों की, बीजों की, मालाओं की, सुगन्धित पदार्थों की, विविध प्रकार के रंगों की, सुगन्धित चूर्णों की और स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि की।

विवेचन—त्रिशला रानी ने जब पुत्ररत्न को जन्म दिया तब सर्वप्रथम प्रियंवदा नाम की दासी ने राजा सिद्धार्थ के पास जाकर पुत्र जन्म की शुभ

सूचना दी। यह शुभ सूचना सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ। और इस प्रसन्नता के उपलक्ष मे राजा ने मुकुट के सिवाय अपने समस्त आभूषण उतार कर दासी को पुरस्कार मे दे डाले और उसे दासी कर्म से मुक्त करके उचित सन्मानार्ह पद दिया।

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइवाणमन्तरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ नगरगुत्तिए सद्दावित्ता एवं वयासी ॥९६॥

अर्थ—उसके पश्चात् सिद्धार्थ क्षत्रिय, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो द्वारा तीर्थंकर जन्माभिषेक-महिमा सपन्नकर चुकने के पश्चात् प्रातः नगररक्षक को बुलाता है, नगर रक्षक को बुलाकर इस प्रकार कहता है—

मूल :—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कुंडपुरे नगरे चारगसोहणं करेह, चारगसोहणं करित्ता, माणुम्माणवद्धणं करेह, माणुम्माणवद्धणं करित्ता कुंडपुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसियसम्मज्जियोवलेवियं सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवोहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियज्झयपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं पंचवन्नसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरुपवरकुंदरु-

क्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघितगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगपवगकहगपढकलासकआइंखगलंखमंखतूणइल्लतुंबवीणियअणेगतालायराणुचरियं करेह कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता य जूयसहस्सं च मुसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह ॥६७॥

अर्थ–हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही कुण्डपुर नगर के कारागृह को खाली करदो अर्थात् सब बन्दियो को मुक्त करदो । तोल-माप को बढाओ, (अर्थात् व्यापारियों से कहो कि घृत अन्नादि पदार्थ सस्ते बेचो, (सस्ते बेचने से जो नुकसान होगा उसकी पूर्ति राज्यकोष से की जायेगी) तोल माप को बढाने के पश्चात् कुण्डपुर नगर के अन्दर और बाहर सुगन्धित पानी का छिडकाव कराओ, साफ कराओ, लेपन कराओ, कुण्डपुर नगर के त्रिको मे, चतुष्को मे, चत्वरो (जहां बहुत से रास्ते मिलते हो) मे, राजमार्ग या सामान्य सभी मार्गों मे पानी का छिडकाव कराओ, उन्हे पवित्र बनाओ, जहां तहाँ सभी गलियों मे और सभी बाजारो मे पानी का छिडकाव और स्वच्छ कर उन स्थानो पर देखने हेतु आने वाले दर्शको के बैठने के लिए मच बनाओ, विविध रंगो से सुशोभित ध्वजा और पताकाएँ बंधाओ, सारे नगर को लिपा-पुताकर स्वच्छ बनाओ, नगर के भवनो की भीतो पर गोशीर्ष चन्दन के, सरस रक्त चन्दन के, दर्दर (मलय) चन्दन के, पाचो अंगुलिया उभरी हुई दृष्टिगोचर हो इस प्रकार थापे लगाओ । घरो के भीतर चौक मे चन्दन-कलश रखाओ, द्वार-द्वार पर-चन्दन घटो के सुन्दर तोरण बंधाओ, जहा तहा सुन्दर प्रतीत होने वाली एव पृथ्वी को स्पर्श करती लम्बी गोल मालाएँ लटकवाओ, पञ्चवर्ण के सुन्दर सुगन्धित सुमनो के ढेर लगाओ, पुष्पो को इधर-उधर विकीर्ण करवाओ, स्थान-स्थान पर गुलदस्ते रखाओ, जगह-जगह-सर्वत्र प्रज्वलित काला अगर, उत्तम कुन्दरु, लोभान तथा धूप की सुगन्ध से सम्पूर्ण नगर को सुगंधित करो । सुगन्ध से सारा नगर महक उठे ऐसा करो । सुगन्ध की सर्वोत्कृष्टता के कारण सारा नगर गंध गुटिका के समान प्रतीत हो ऐसा बनाओ ।

जन-रञ्जन के लिए स्थान-स्थान पर नट नाटक करे, नृत्य करने वाले नृत्य करें, रस्सी पर खेल बताने वाले खेल वताएँ, मल्ल कुश्ती करे, मुष्टि से कुश्ती करने वाले मुष्टि से कुश्ती करे, विदूषक लोगो को हँसावे, कूदने वाले कूदकर अपने खेल वताएँ, कथावाचक कथा कर जन-मन को प्रसन्न करे, सुभाषित वोलने वाले पाठक सुभाषित वोले। रास क्रीडा करने वाले रास की क्रीडा करे, भविष्य कहने वाले भविष्य कहे, लम्वे वास पर खेलने वाले वास पर खेल करे, मंखलोग—हाथ मे चित्र रखकर चित्र वताए, तूणी लोग तूण नामक वाद्य वजावे। वीणा वजाने वाले वीणा वजावे, ताल देकर नाटक करने वाले नाटक दिखाये, इस प्रकार जन रञ्जन हेतु नगर मे यह सव व्यवस्था करो, और दूसरो से कराओ, और ऐसा करवा के हजारो गाड़ियो के जूए और हजारो मूसल ऊचे स्थान पर खडे करवाओ अर्थात् जूए मे जुड़े हुए बैलो को वधन मुक्त करके आराम पाने दो, और मूशल आदि से होने वाली हिंसा को रोको यह सव उपक्रम करके मेरी आज्ञा पुनः अर्पित करो, अर्थात् जो मैंने कहा है वह सभी कार्य करके मुझे सूचित करो।

मूल :—

तए णं ते णगरगुत्तिया सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव कुंडपुरे नगरे चारगसोहणं जाव उस्सवेत्ता जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु सिद्धत्थस्स रन्नो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥६८॥

अर्थ—उसके पश्चात् सिद्धार्थ राजा ने जिनको आज्ञा प्रदान की उन नगरगुप्तिक को (नगर के रक्षक, कोतवाल)[१७२] को अपार आनन्द हुआ-सन्तोष हुआ, यावत् प्रसन्न होने से उनका हृदय प्रफुल्लित हुआ। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकार की। अव वे शीघ्र ही कुण्डपुर नगर मे सर्व प्रथम कारागृह को खोलकर वन्दियो को मुक्त करते हैं और मूसल उठवाकर रखने तक के पूर्वोक्त सभी कार्य करते हैं। कार्य करने

के पश्चात् वे जहाँ सिद्धार्थ राजा है, वहाँ आते हैं, आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तिष्क पर अंजलि करके सिद्धार्थ राजा को उनका वह आदेश पुनः अर्पित करते हैं अर्थात् "आपने जो आदेश प्रदान किया था उसके अनुसार सभी कार्य हम कर आए हैं" यह सूचना देते हैं।

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता जाव सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फगंधवत्थमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडियसद्दनिनाएण महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरवमुइंगदुंदुहिनिग्घोसणादितरवेणं उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं अडंडकोडंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदामं पमुइयपक्कीलियसपुरजणजाणवयं दसदिवसट्ठिइपडियं करेइ ॥९९॥

अर्थ—उसके पश्चात् सिद्धार्थ राजा जहाँ अट्टशाला अर्थात् जहाँ सार्वजनिक उत्सव करने का स्थान है वहाँ आता है. आकर के यावत् अपने अन्तःपुर के साथ सभी प्रकार के पुष्प, गंध, वस्त्र, मालाएँ आदि अलंकारों से अलंकृत होकर, सभी प्रकार के वाद्यों को बजवा करके, बड़े वैभव के साथ, महती द्युति के साथ, महान् लश्कर के साथ, बहुत से वाहनों के साथ, बृहत् समुदाय के साथ और एक साथ बजते हुए अनेक वाद्यों की ध्वनि के साथ अर्थात् शंख, पणव, भेरी, झल्लरी, खरमुखी हुडुक, ढोल, मृदंग और दुंदुभी आदि वाद्यों की ध्वनि के साथ दस दिन तक अपनी कुलमर्यादा के अनुसार उत्सव करता है। इस उत्सव में समग्र नगर के [illegible] (नगर) [illegible] कर दिया

गया। जिसको किसी वस्तु की आवश्यकता है वह बिना मूल्य दिये दुकानो से प्राप्त कर सकता है, इस प्रकार की व्यवस्था की गई। खरीदना और बेचना बन्द कर दिया गया। किसी भी स्थान पर जप्ती करने वाले राजपुरुषो का प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। जिस किसी पर ऋण है उसे स्वय राजा चुकाएगा, जिससे किसी को भी ऋण चुकाने की आवश्यकता न रहे, ऐसी व्यवस्था की गई। उस उत्सव मे अनेक प्रकार के अपरिमित पदार्थ एकत्रित किये गये। उत्सव मे सभी को अदण्डनीय कर दिया गया। उत्तम गणिकाओ और नाटक करने वालो के नृत्य प्रारम्भ किये गये। उत्सव मे निरन्तर मृदग बजते रहे, ताजा मालाएँ लटकाई गईं, नगर के तथा देश के सभी मानव प्रमुदित क्रीडा परायण हुए, दस दिन तक इस प्रकार का उत्सव मनाते रहे।

मूल :—

तए णं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइपडियाते वट्टमाणीए सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य लंभे पडिच्छेमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं वा विहरइ ॥१००॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा दस दिन तक जो उत्सव चला उसमे सैकडो हजारो और लाखो प्रकार के यागो (पूजा सामग्रियाँ) को, दानो और भोगो (विशेष देय हिस्सा) को देता और दिलवाता तथा सैकडो- हजारो और लाखो प्रकार की भेंट स्वीकार करना और करवाता रहा।

मूल :—

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइपडियं करेंति, तइए दिवसे चंदसूरस्स दंसणियं करिंति, छट्ठे दिवसे जागरियं करेंति, एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्व-

त्तिए असुतिजातकम्मकरणे संपत्ते वारसाहदिवसे विउलं असण-पाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति, उवक्खडावित्ता मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए य खत्तिए य आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिते भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगया तेणं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणेणं नायएहि य सद्धिं तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा विहरंति ॥१०१॥

अर्थ--उसके पश्चात श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता प्रथम दिन कुल परम्परा के अनुसार पुत्र जन्म निमित्त करने योग्य अनुष्ठान करते हैं। तृतीय दिन चन्द्र और सूर्य के दर्शन का उत्सव करते हैं। छट्ठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव करते हैं। ग्यारहवा दिन व्यतीत होने के पश्चात सर्वप्रकार की अशुचि निवारण होने पर जब बारहवा दिन आया तब विपुल प्रमाण में भोजन पानी विविध स्वादिम और खादिम पदार्थ तैय्यार कराते हैं, तैय्यार कराके अपने मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो और अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले परिवारवालो को तथा ज्ञातृवंश के क्षत्रियो को आमंत्रण देते हैं। पुत्र जन्म-समारोह मे आने के लिए निमंत्रित करते हैं। फिर स्नान किए हुए, बलिकर्म किए हुए टीले-टपके और दोष निवारण हेतु मंगलरूप प्रायश्चित्त किए हुए, श्रेष्ठ और उत्सव मे जाने योग्य मंगलमय वस्त्रो को धारण किए हुए, भोजन का समय होने पर भोजन मण्डप मे आते हैं। भोजन मण्डप मे आकर उत्तम सुखासन पर बैठते हैं और मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो व ज्ञातृवंश के क्षत्रियो के साथ विविध प्रकार के भोजन पान खाद्य और स्वाद्य का आस्वादन करते हैं—स्वयं भोजन करते हैं और दूसरो को करवाते हैं।

मूल :—

जिमियभुत्तोत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा

परमसुईभूया तं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए य खत्तिए य विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणस्स नायाण य खत्तियाण य पुरओ एवं वयासी ॥१०२॥

अर्थ–भोजन करने के पश्चात् विशुद्ध जल से कुल्ले करते है, दात और मुख को स्वच्छ करते है। इस प्रकार परम विशुद्ध स्वच्छ बने हुए, माता-पिता, आए हुए उन मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो और ज्ञातृवश के क्षत्रियो को वहुत से पुष्प, वस्त्र, सुगधित मालाए और आभूषण प्रदान कर उनका स्वागत करते है। सत्कार और सम्मान करते है। सत्कार और सम्मान करके इन मित्रो, ज्ञातिजनो, स्वजनो, परिजनो और ज्ञातृवशीय क्षत्रियो के समक्ष भगवान् के माता-पिता इस प्रकार वोले —

मूल :—

पुव्विं पि य णं देवाणुप्पिया! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरन्नेणं वड्ढामो सुवन्नेणं धणेणं धन्नेणं जाव सावएज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो सामंतरायाणो वसमागया य तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणु त्ति, तं होउ णं कुमारे वद्धमाणे वद्धमाणे नामेणं ॥१०३॥

अर्थ–हे देवानुप्रियो! जव यह पुत्र गर्भ मे आया तव (उस समय) हमारे मन मे इस प्रकार का विचार चिन्तन यावत् सकल्प उत्पन्न हुआ कि

जब से हमारा यह पुत्र गर्भ में आया तब से लेकर हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य की दृष्टि से व प्रीति और सत्कार की दृष्टि से हमारी अभिवृद्धि होने लगी है, सामन्त राजा लोग भी हमारे वश में हुए हैं, इस कारण जब हमारा पुत्र जन्म लेगा तब हम उसके अनुरूप उसके गुणों का अनुसरण करने वाला, गुण निष्पन्न और यथार्थनाम 'वर्द्धमान' रखेंगे। तो अब इस कुमार का नाम 'वर्द्धमान' हो अर्थात् यह कुमार वर्द्धमान के नाम से प्रसिद्ध हो (ऐसा हमारा विचार है)।

——● बाल्य काल एवं यौवन

मूल :—

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते णं. तस्स णं तओ नामधेज्जा एवमाहिज्जंति. तं जहा—अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे१, सहसम्मुइयाते समणे२. अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे पडिमाणं पालए धीमं अरतिरतिसहे दविए वीरियसंपन्ने देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे३ ॥१०४॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं—उनके माता-पिता ने उनका प्रथम नाम 'वर्द्धमान' रखा। स्वाभाविक स्मरण शक्ति के कारण (सहज सद्बुद्धि के कारण भी) उनका द्वितीय नाम 'श्रमण' हुआ अर्थात् सहज शारीरिक एवं बौद्धिक स्फूर्ति व शक्ति से उन्होंने तप आदि आध्यात्मिक साधना के मार्ग में कठिन परिश्रम किया एतदर्थ वे श्रमण कहलाये। किसी भी प्रकार का भय, (देव, दानव, मानव और तिर्यंच सम्बन्धी) उत्पन्न होने पर भी अचल रहने वाले, अपने सत्त्व से तनिक मात्र भी विचलित नहीं होने वाले निष्कम्प किसी भी प्रकार के परीषह—क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण आदि के कष्ट आए या उपसर्ग उपस्थित हों तथापि चलित नहीं होते। उन परीषहों और उपसर्गों को शान्त भाव से सहन करने में समर्थ भिक्षु प्रतिमाओं का पालन करने वाले धीमान् शूर और हर्ष में समभावी, सद्गुणों के आगार अनुभवी होने के कारण देवताओं ने उनका तृतीय नाम 'महावीर' रखा।

विवेचन—भगवान् महावीर का लालन पालन उच्च एवं पवित्र सस्कारो के भव्य वातावरण में हुआ। उनके सभी लक्षण होनहार के थे। मुकुमार सुमन की तरह उनका वचपन नई अगडाई ले रहा था। उनका इठलाता हुआ तन सुगठित, वलिष्ठ और स्वर्ण प्रभा-सा कान्तिमान् था और मुखमण्डल सूर्य-सा तेजस्वितापूर्ण। उनका हृदय मखमल-सा कोमल और भावनाएँ ममुद्र-सी विराट् थी। बालक होने पर भी वे वीर, साहमी और धैर्यशाली थे।

शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह वे बढ रहे थे। उनके मन मे सहज शौर्य और पराक्रम की लहरे उठ रही थी। एक बार वे अपने हमजोले सगी साथियो के साथ गृहोद्यान (प्रमदवन) मे क्रीडा कर रहे थे। इम क्रीडा मे सभी वालक किसी एक वृक्ष को लक्ष्य करके दौडते, जो बालक सबसे पहले वृक्ष पर चढकर नीचे उतर आता वह जीत जाता। विजयी बालक पराजित वच्चो के कधो पर चढकर उस स्थान पर जाता जहाँ से दौड शुरु की थी। इसे सुंकली या आमलकी क्रीडा कहा जाता था।[१७३] उस समय देवराज देवेन्द्र ने बालक वर्धमान के वीरत्व एव पराक्रम की प्रशंसा की। एक अभिमानी देव शक्र की प्रशसा की चुनौती देता हुआ उनके साहस की परीक्षा लेने के लिए भयकर सर्प का रूप धारण कर उस वृक्ष पर लिपट गया। अन्य सभी वालक फुंकार करते हुए नागराज को निहार कर भयभीत होकर वहाँ से भाग गये, पर किशोर वर्धमान ने बिना डरे और बिना झिझके उस मर्प को पकड एक तरफ रख दिया।[१७४]

वालक पुन एकत्र हुए और खेल फिर प्रारम्भ हुआ, इस बार वे 'तिंदुषक क्रीडा' खेलने लगे। जिसमे किसी एक वृक्ष को अनुलक्ष कर सभी बालक दौडते। जो सर्वप्रथम वृक्ष को छू लेता, वह विजयी होता और जो पराजित होता उसकी पीठ पर विजयी वालक आरूढ होता। इस बार वह देव भी किशोर का रूप धारण कर उस क्रीडादल मे सम्मिलित हो गया। खेल मे वर्धमान के साथ हार जाने पर नियमानुसार उसे वर्धमान को पीठ पर बैठा-कर दौडना पडा। किशोर रूप धारी देव दौडता-दौडता बहुत आगे निकल गया। और उसने अपना विकराल रूप बना वर्धमान को डराना चाहा। देखते ही देखते किशोर ने लम्बा ताड-मा भयकर पिशाच रूप बना लिया।[१७५] किन्तु

वर्धमान उसकी यह करतूत देखकर के भी घबराये नही। वे अविचलित रहे और साहस के साथ उसकी पीठ पर ऐसा मुष्टि प्रहार किया कि देवता वेदना से चीख उठा। शीघ्र ही विकराल पिशाच का रूप सिमट कर नन्हा-सा किशोर बन गया। उसका गर्व खण्डित हो गया। उसने बालक वर्धमान के पराक्रम का लोहा माना और वन्दन करते हुए कहा—"प्रभो! आप मे इन्द्र के द्वारा प्रशंसित व वर्णित शक्ति से भी अधिक शक्ति है, आप वीर ही नही अपितु महावीर है।'' मैं परीक्षक बनकर आया था, मगर प्रशंसक बनकर जा रहा हूँ।

महावीर बाल्यकाल से ही विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। उनकी वीरता, धीरता, योग्यता और ज्ञान-गरिमा अपूर्व तथा अनूठी थी। सागर की तरह गंभीर प्रकृति होने के कारण उनकी कुशाग्र बुद्धि, एवं चमत्कारपूर्ण प्रतिभा का परिज्ञान माता पिता को भी न हो सका। आठ वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने बालक महावीर को लेखशाला मे विद्याध्ययन के लिए भेजा।

महावीर के बुद्धि वैभव तथा सहज प्रतिभा का परिचय विद्यागुरु तथा जनता को कराने की दृष्टि से देवराज इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर लेखशाला मे आये। उसने बालक महावीर से व्याकरण सम्बन्धी अनेक जटिल जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की। उनका तर्क पूर्ण और अस्खलित उत्तर सुनकर अध्यापक अवाक् और हतप्रभ रह गया। उसने भी अपने मन की कुछ पुरानी शंकाएँ निवेदन की, भगवान से समाधान पाकर वह आश्चर्य मुद्रा मे महावीर को देखने लगा। तब उस वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—'पण्डित! आप इन्हे साधारण बालक न समझे। यह विद्या का सागर और ज्ञान का निधि है। सकल शास्त्र मे पारंगत है, यह महान आत्मा भविष्य मे धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कर संसार का उद्धार करेगा। बालक महावीर के उत्तरों को सुनकर ब्राह्मण ने उसे 'ऐन्द्र व्याकरण' के रूप मे संकलित किया।'' उसी समय इन्द्र ने अपना असली रूप प्रकट किया और भगवान को वन्दन कर अन्तर्धान हो गया।

महावीर की नव नव उन्मेषशालिनी प्रतिभा से माता-पिता परिजन-पुरजन सभी चकित हुए, सभी का मन अत्यन्त प्रमुदित हो उठा।

जीवन के उप.काल से ही महावीर चिन्तनशील थे। उनका उर्वर मस्तिष्क सदा-सर्वदा अध्यात्म सागर की गहराई मे डुबकियाँ लगाता रहता था। वे संसार मे थे, किन्तु जल मे कमल की तरह उससे मदा निर्लिप्त रहते। वाहर मे सव कुछ था पर अन्तर मे वे सदा अपने को एकाकी आत्मरूप, देखते थे। वचपन से जव यौवन के मधुर उद्यान मे प्रवेश किया तव भी वे उमी प्रकार अनासक्त एव उदासीन थे। उनकी यह उदासीनता देखकर माता-पिता के मन मे चिंता भरे विकल्प उठे कि—कही पुत्र श्रमण न वन जाय। तदर्थ उन्होने महावीर को ससार की मोहमाया मे वाधने हेतु विवाह का प्रस्ताव किया। उधर वसन्तपुर के महासामन्त समरवीर ने भी लावण्य व रूप में अद्वितीय सुन्दरी अपनी पुत्री यशोदा के साथ वर्धमान के पाणिग्रहण का प्रस्ताव सिद्धार्थ राजा के पास भेजा।[१७८] महावीर की अन्तरात्मा उसे स्वीकार करना नही चाहती, किन्तु माता के प्रेम भरे आग्रह को और पिता के हठ को उनका भावुक हृदय टाल नही सका। उन्होने विवाह का वन्धन स्वीकार किया[१७९] किन्तु विषय-वासना की कर्दम से वे कमल की भाँति सदा ऊपर उठे रहे। यशोदा की कुक्षि से एक पुत्री भी हुई, जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया।[१८०] उसका पाणिग्रहण भगवान् की भगिनी सुदर्शना के पुत्र जमालि के साथ हुआ।[१८१]

मूल :—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिया कासवे गोत्तेणं, तस्स णं तओ नामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—सिद्धत्थे इ वा सेज्जंसे इ वा जसंसे इ वा ॥१०५॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर के पिता काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार हैं यथा—सिद्धार्थ, श्रेयास और यशस्वी।

मूल :—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठा गोत्तेणं

तीसेणं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–तिसला इ वा विदेहदिण्णा इ वा पियकारिणी इ वा ॥१०६॥

अर्थ–श्रमण भगवान् महावीर की माता वासिष्ठ गोत्र की थी। उनके तीन नाम इस प्रकार कहने मे आते है। यथा–(१) त्रिशला, (२) विदेह दिण्णा और (३) प्रियकारिणी।

मूल :–

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पित्तिज्जे सुपासे जेट्ठे भाया नंदिवद्धणे, भगिणी सुदंसणा, भारिया जसोया कोंडिन्ना गोत्तेणं ॥१०७॥

अर्थ–श्रमण भगवान् महावीर के चाचा का नाम सुपार्श्व था। बडे भ्राता का नाम नन्दिवर्धन था, बहिन का नाम सुदर्शना था, पत्नी का नाम यशोदा था और उनका गोत्र कौडिन्य था।

विवेचन––भगवान महावीर के विवाह के प्रश्न पर श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा मे गहरा मतभेद है। भगवान के विवाह के सम्बन्ध मे श्वेताम्बर आम्नाय के मूल आगमो आचारांग आदि मे तथा निर्युक्ति, भाष्य एव चूर्णि साहित्य मे पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते है। दिगम्बर ग्रन्थो मे महावीर के लिए 'कुमार' शब्द का प्रयोग हुआ है।[illegible] और सभवत इसी शब्द के कारण उन्हे अविवाहित मानने की भ्रान्ति हुई है। वस्तुतः 'कुमार' का अर्थ 'कुंआरा' अविवाहित ही नही होता है, बल्कि कुमार का अर्थ 'युवराज'[illegible] 'राजकुमार'[illegible] आदि भी होता है और इसी अर्थ को व्यक्त करते हुए श्वेताम्बर ग्रन्थो ने भी वीर, अरिष्टनेमि, पार्श्व, मल्लि और वासुपूज्य के लिए 'कुमार वासमज्झवसित्ता'[illegible] कहकर 'कुमार' शब्द का प्रयोग किया है।

मूल :–

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स णं धूया कासवी गोत्तेणं,

तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—अणोज्जा इ वा पियदंसणा इ वा ॥१०८॥

अर्थ—श्रमण भगवान महावीर की पुत्री काश्यप गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार कहे जाते हैं। अणोज्जा (अनवद्या) एव प्रियदर्शना।

मूल :—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स नत्तुई कासवी गोत्तेणं तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—सेसवई इ वा जस्सवई इ वा ॥१०६॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर की दौहित्री (पुत्री की पुत्री) काश्यप गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार कहने मे आते है—शेषवती और यशस्वती।

—— ● अभिनिष्क्रमण

मूल :—

समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं गंभीराहिं अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी जय जय नंदा! जय जय भद्दा! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा! बुज्झाहि

भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सइ त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ॥११०॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर दक्ष थे। उनकी प्रतिज्ञा भी दक्ष (विवेक युक्त) थी। वे अत्यन्त रूपवान् थे, आलीन (कूर्म की तरह इन्द्रियों को गोपन करने वाले) थे। भद्र, विनीत और ज्ञात (सुप्रसिद्ध) थे अथवा ज्ञात वंश के थे। ज्ञातृवंश के पुत्र थे, अर्थात् ज्ञातृवंशीय राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे, ज्ञातृवंश के कुल में चन्द्र के समान थे, विदेह थे अर्थात् उनका देह दूसरों के देह की अपेक्षा विलक्षण था। विदेहदिन्न-या विदेहदिन्ना—त्रिशला माता के पुत्र थे। विदेहजच्च अर्थात् त्रिशला माता के शरीर से जन्म ग्रहण किया हुआ था।'' अथवा विदेहवासियों में श्रेष्ठ (विदेह जात्य) थे, 'विदेह सुकुमाल' थे अर्थात् वे 'अत्यन्त सुकुमाल थे। तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर अपने माता पिता के स्वर्गस्थ होने पर अपने से ज्येष्ठ पुरुषों की अनुज्ञा प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर तथा लोकान्तिक जीतकल्पी देवों ने उस प्रकार की इष्ट, मनोहर, प्रिय, मनोज्ञ, मन को आह्लाद करने वाली उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, परिमित, मधुर-शोभायुक्त, हृदय को रुचिकर लगने वाली, हृदय को प्रसन्न करने वाली गंभीर, पुनरुक्ति आदि से रहित वाणी से भगवान् को निरन्तर अभिनन्दन अर्पित करते भगवान् की स्तुति करते हुए वे देव इस प्रकार बोले—हे नन्द ! (आनन्द रूप) तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, भद्र हो ! हे उत्तमोत्तम क्षत्रिय ! हे क्षत्रियनरपुङ्गव ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भगवन् ! लोकनाथ ! बोध प्राप्त करो ! सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों का हित, सुख और निःश्रेयस् करने वाला धर्म-तीर्थ, धर्मचक्र प्रवर्तन करो ! यह धर्मचक्र सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों के हितकर, सुखकर और निःश्रेयस को करने वाला होगा। इस प्रकार कहकर वे सब 'जय-जय' का नाद करने लगते हैं।

विवेचन—अट्ठाईस वर्ष की उम्र में माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर भगवान के [illegible] और [illegible] का प्रेम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

को सुशोभित करे, परन्तु भगवान् महावीर ने स्पष्ट रूप से निषेध करते हुए सयम ग्रहण की अत्युत्कट भावना अभिव्यक्त की।[१८६] ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन ने स्नेह-विह्वल होकर कहा—बन्धुवर! इस समय आपका गृह त्याग का कथन घाव पर नमक छिडकने जैसा है, कुछ समय तक आप घर मे और ठहरे।[१८७] ज्येष्ठ भ्राता के आग्रह से वे दो वर्ष गृहस्थाश्रम मे रहे। पर उस समय उन्होने सचित्त जल का उपयोग नही किया। रात्रि भोजन नही किया, सर्वस्नान नही किया। वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निर्लेप रहे।[१८८]

उदारमना महावीर ने उनतीसवाँ वर्ष दीन दुखियो के उद्धार मे लगाया। वे प्रतिदिन प्रातः एक प्रहर दिन चढे तक १ करोड़ ८ लाख स्वर्ण[१८९] (सिक्का विशेष) का दान करते थे। उन्होने एक वर्ष मे तीन अरब अठासी करोड अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएँ दान मे दी।

अभिनिष्क्रमण का सकल्प करते ही नौ लोकान्तिक देव वहाँ उपस्थित हुए। उन्होने भगवान् के निश्चय का अनुमोदन करते हुए कहा—'हे भगवन् आपकी जय हो! अब आप शीघ्र ही धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करे जिससे सभी जीवो का कल्याण हो।

मूल :—

पुव्विं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाणदंसणे होत्था। तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आहोहिएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ, अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चेच्चा हिरण्णं चेच्चा सुवन्नं चेच्चा धणं चेच्चा रज्जं चेच्चा रट्ठं एवं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं चेच्चा पुरं चेच्चा अंतेउरं चेच्चा जणवयं चेच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता विगो-

वइत्ता दाणं दायारेहिं परिभाएत्ता दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखियचक्कियनंगलियमुहमंगलियवद्धमाणगपूसमाणगघंटियगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिसंथुवमाणा य एवं वयासी ॥१११॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर को प्रथम गृहस्थधर्म मे प्रवेश करने के पूर्व भी उत्तम, आभोगिक—जो कभी भी नष्ट न हो ऐसा अवधि ज्ञान व अवधि दर्शन प्राप्त था। उससे श्रमण भगवान 'अभिनिष्क्रमण के योग्य काल आ गया है' ऐसा देखते हैं। उस प्रकार देखकर जानकर, हिरण्य को त्यागकर, सुवर्ण को त्याग कर, धन को त्यागकर, राज्य को त्याग कर, राष्ट्र को त्यागकर, इसी प्रकार सेना, वाहन, धन-भण्डार, कोष्ठागार को त्याग कर, नगर, अन्तःपुर, जनपद को त्यागकर, विशाल धन, कनक, रत्न, मणि मुक्ता, शंख, राजपट्ट, राजावर्त, प्रवाल, माणिक आदि सत्वयुक्त, सारयुक्त सभी द्रव्यों को छोड़कर, अपने द्वारा नियुक्त देने वालो से वह सम्पूर्ण धन सुला करके उनको दान रूप मे देने का विचार करके अपने गोत्र के लोगो मे सम्पूर्ण धन-धान्य, हिरण्य, रत्न, आदि को प्रदान करके, हेमन्त ऋतु का प्रथम मास और प्रथम पक्ष अर्थात् मृगसर कृष्णा दसमी का दिन आने पर जब छाया पूर्व दिशा की ओर ढल रही थी, प्रमाणयुक्त पौरसी आई थी, उस समय सुव्रत नामक दिन मे, विजय नामक मुहूर्त मे भगवान चन्द्रप्रभा नामक पालकी मे (पूर्व दिशा की ओर मुख करके) बैठे। पालकी के पीछे देव, दानव और मानवों के समूह चल रहे थे। उन समूह मे कितने ही देव और नर चल रहे थे, कितने ही देव और नाग

धारी चल रहे थे। कितने ही हलधारी चल रहे थे। कितने ही गले मे स्वर्ण का हल लटकाने वाले विशेष प्रकार के भाट लोग चल रहे थे। कितने ही मुंह से मीठा शब्द बोलने वाले थे। कितने ही वर्धमानक अर्थात् अपने कधो पर दूसरो को बैठाए हुए थे। कितने ही चारण थे, कितने ही घण्टे बजाने वाले घाटिक थे। इन सभी से घिरे हुए, भगवान् को पालकी मे बैठे हुए देखकर भगवान् के कुल महत्तर (कुल के वृद्ध पुरुष) इष्ट प्रकार की मनोहर, कर्ण-प्रिय, मन को प्रमुदित करने वाली उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य मगलरूप परिमित, मधुर, और शोभायुक्त वाणी से भगवान् का अभिनन्दन करते है, वे भगवान् की स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे —

मूल :—

जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दंते अभग्गेहिं णाण-दंसणचरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समण-धम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलो-क्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं, जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं बहूइं पक्खाइं बहूइं मासाइं बहूइं उऊइं बहूइं अयणाइं बहूइं संवच्छराइं अभीए परीस-होवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ॥११२॥

अर्थ—हे नन्द ! आपकी जय हो ! विजय हो ! हे भद्र ! आपकी जय हो ! जय हो ! आपका भद्र (कल्याण) हो ! निरतिचार ज्ञान दर्शन और चारित्र से तुम नही जीती हुई इन्द्रियो को जीतो, जीते हुए श्रमण धर्म का पालन करो।

विघ्नों को जीतकर हे देव ! तुम अपने साध्य की सिद्धि में रहो। तप से तुम राग द्वेष रूपी मल्लों का हनन करो। धैर्य रूप मजबूत कच्छ बांधकर उत्तम शुक्ल ध्यान से अष्ट कर्म शत्रुओं को मसल दो। हे वीर ! अप्रमत्त बनकर तीन लोक के रंग मण्डप में विजय पताका फहरा दो, अन्धकार रहित उत्तम प्रकाशरूप केवल ज्ञान प्राप्त करो। जिनेश्वरों द्वारा उपदिष्ट सरल मार्ग का अनुसरण कर तुम परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। परीषहों की सेना को पराजित करो। हे उत्तम क्षत्रिय ! हे क्षत्रिय नरपुङ्गव ! तुम्हारी जय हो ! विजय हो ! बहुत दिनों तक, बहुत पक्षों तक, बहुत महीनों तक, बहुत वर्षों तक, परीषहों और उपसर्गों से निर्भय होकर, भयंकर और अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले प्रसंगों में क्षमाप्रधान होकर तुम विचरण करो। तुम्हारी धर्म साधना में विघ्न न हो" इस प्रकार कहकर वे लोग भगवान् का जय जयकार करने लगे।

मूल :—

तए णं समणे भगवं महावीरे नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे हिययमालासहस्सेहिं ओनंदिज्जमाणे ओनंदिज्जमाणे मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे कंतिरूवगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे भवणपंतिसहस्साइं समतिच्छमाणे समतिच्छमाणे तंतीतलतालतुडियगीयवाइयरवेणं महुरेण य मणहरेणं जयजयसद्दघोससीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं

सव्वसंगमेणं सव्वपगतीहिं सव्वणाडएहिं सव्वतालायरेहिं सव्वो-रोहेणं सव्वपुप्फवत्थगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडियसद्दसण्णि-णादेणं महता इड्ढीए महताजुतीए महता वलेणं महता वाहणेणं-महता समुदएणं महत्ता वरतुडितजमगसमगप्पवादितेणं संखपणव-पडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कदुंदुभिनिग्घोसनादियरवेणं कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ॥११३॥

अर्थ–उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर हजारो नेत्रो से देखे जाते हुए, हजारो मुखो से प्रशसा किए जाते हुए, हजारो हृदयो से अभिनन्दन प्राप्त करते हुए चले। भगवान् को निहारकर लोग हजारो प्रकार के मनोरथ (सकल्प) करने लगे। भगवान् की मनोहर काति और रूप को देखकर लोग वैसे ही काति व रूप की चाहना करने लगे। वे हजारो अगुलियो से दिखलाए जा रहे थे। भगवान् अपने दाहिने हाथ से हजारो नर-नारियो के प्रणाम को स्वीकार करते हुए, हजारो गृहो की पक्तियो को पार करते हुए, वीणा, हस्तताल, वादित्र, गाने और वजाने के मधुर व सुन्दर जय-जयनाद के साथ, मधुर मधुर जयनाद के घोष को सुनकर सावधान वनते वनते, छत्र, चामर आदि सभी वैभव से युक्त, अग-अङ्ग मे पहिने हुए समस्त आभूषणो की कांति से मण्डित, सम्पूर्ण सेना से परिवृत, हस्ती, अश्व, ऊँट, खच्चर, पालखी, म्याना आदि सभी वाहनो से परिवृत, सम्पूर्ण जन समुदाय के साथ, पूर्ण आदर अर्थात् औचित्य पूर्वक, अपनी सम्पत्ति व सम्पूर्ण शोभा के साथ, सम्पूर्ण प्रकार की उत्कण्ठा के साथ, समस्त प्रजा अर्थात् वणिक्, चडाल, भिल्ल आदि अठारह वर्णो के साथ, सभी प्रकार के नाटक करने वाले व सभी प्रकार के ताल वजाने वाले से सवृत सभी प्रकार के अन्त पुर तथा फूल गध, माला और अलकारो की शोभा के साथ सभी प्रकार के वाद्यो के शब्दो के साथ, इस प्रकार महान् ऋद्धि, महान् द्युति, विराट् सेना, विशाल वाहन, वृहद् समुदाय और एक साथ वजते हुए वाद्यो की प्रतिध्वनि के साथ, अर्थात् शंख, मिट्टी के ढोल, काष्ठ के ढोल, भेरी, झालर, खरमुखी,

हुहुवक, दुन्दुभि आदि वाद्यो के निनाद के साथ, भगवान् कुण्डपुर नगर के मध्य-मध्य मे होकर निकले। निकलकर जहाँ पर ज्ञातखण्डवन नामक उद्यान है और जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष है, वहाँ आते है।

मूल :—

जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ. अहे सीयं ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आहरणमल्लालंकारं ओमुयइ. आहरणमल्लालंकारं ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ. सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगे अबीए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥११४॥

अर्थ—जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष है वहाँ पहुँच कर उस अशोक वृक्ष के नीचे भगवान् की पालकी रखी जाती है। भगवान पालकी से नीचे उतरते है, उतरकर अपने हाथ से हार आदि आभूषण, पुष्पो की मालाएँ, अँगूठियाँ आदि अलंकार उतारते है, उतारकर स्वयं ही पञ्चमुष्टि लोच करते है अर्थात् चार मुष्टि सिर के और एक मुष्टि से दाढ़ी के बाल निकालते है। इस प्रकार केश लुंचन करके निर्जल षष्ठ भक्त (बेला) किए हुए, हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग (उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र) आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर अकेले ही मुण्डित होकर आगारवास को त्यागकर अनगार धर्म को स्वीकार करते हैं।

विवेचन—तीस वर्ष के कुसुमित यौवन मे राज्य-वैभव को ठुकराकर, भोग विलास को तिलाञ्जलि देकर मृगसर कृष्ण दशमी के दिन विजय मुहूर्त मे राजकुमार महावीर आत्म-ज्योति को प्रज्ज्वलित करने के लिए, [illegible] भ्राता नन्दिवर्धन की [illegible] स्वयं आभरणों को खोलते है, स्वयं सिर का लुंचन करते है [illegible] और सिद्धो को नमस्कार करके यह प्रतिज्ञा ग्रहण करते

हैं—[१०२] "मै समभाव को स्वीकार करता हूँ, सर्व सावद्ययोग का त्याग करता हूँ। आज से जीवन पर्यन्त मानसिक, वाचिक और कायिक सावद्य योगमय आचरण न मैं करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए का अनुमोदन करूँगा। पूर्व-कृत सावद्य आचरण से निवृत्त होता हूँ उसकी गर्हा करता हूँ, और अपने पूर्वकालिक सावद्य जीवन का त्याग करता हूँ।"

उक्त प्रतिज्ञा पूर्वक सर्वविरति चारित्र को स्वीकार करते ही भगवान् को मन पर्यवज्ञान की उपलब्धि हुई।[१०३] उस समय भगवान ने यह दृढ निश्चय किया कि 'जब तक मुझे केवल ज्ञान प्राप्त नही होगा तब तक मैं इस शरीर की सेवा-शुश्रूषा व सार-सभाल नही करूँगा। देव मानव और तिर्यच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आएँगे उन्हे समभाव मे सहन करूँगा और मन मे किमी भी प्रकार का किञ्चित् भी उद्वेग नही आने दूँगा।[१०४]

भगवान् श्री महावीर ने जिस समय दीक्षा ग्रहण की, उनके साथ दूसरा कोई भी दीक्षित नही हुआ। जबकि पूर्ववर्ती तीर्थंकरो के साथ अनेक पुरुष दीक्षित हुए। जैसे कि—भगवान् ऋपभदेव ने चार हजार पुरुषो के साथ, भगवती मल्ली और भगवान् पार्श्वनाथ ने तीन-तीन सौ पुरुपो के साथ, भगवान् वासुपूज्य ने छह सौ पुरुपो के साथ और अवशेष उन्नीस तीर्थंकरो ने हजार-हजार पुरुपो के साथ दीक्षा ग्रहण की थी।[१०५]

—— ● **साधना काल**

मूल :—

समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं जाव चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेले पाणिपडिग्गहए ॥११५॥

अर्थ—श्रमण भगवान महावीर एक वर्ष से अधिक एक महीने तक यावत् चीवरधारी अर्थात् वस्त्र को धारण करने वाले थे, उसके पश्चात् अचेल--वस्त्र रहित हुए, तथा पाणि-पात्र हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे एव आचाराग[१०६] के मूल मे दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्र देने का उल्लेख नही है। परन्तु आवश्यकचूर्णि, नियुक्ति, वृत्ति, चउप्प-

महापुरुषचरिय, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओं में यह वर्णन आया है जो इस प्रकार है—

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् भगवान वहाँ से प्रस्थान करते हैं। जन-जन के नयन तब तक टकटकी लगाकर निहारते रहे जब तक भगवान नजर से ओझल न हो गए। ओझल होते ही नेत्रों से आँसुओं के मोती बरस पड़े और उनके हृत्तन्त्री के सुकुमार तार झनझना उठे।

● दरिद्र ब्राह्मण का उद्धार

समभाव में निमग्न महावीर अकिंचन भिक्षु बनकर बढ़े जा रहे थे। उन्हें मार्ग में सिद्धार्थ का परिचित मित्र सोम नामक वृद्ध ब्राह्मण मिला। महावीर से नम्र निवेदन करता हुआ कहने लगा—भगवन् ! मैं दीन और दरिद्र हूँ, न खाने को अन्न है, न पहनने को पूरे वस्त्र हैं और न रहने को अच्छा झोंपड़ा ही है। भगवन् ! जिस समय आपने सांवत्सरिक दान किया था उस समय मैं भूख से बिलखते परिवार को छोड़कर धन की आशा से दूरस्थ प्रदेश में भीख मांगने गया हुआ था। मुझ अभागे को यह पता ही न चला कि आप धन की वर्षा कर रहे हैं। हताश और निराश होकर खाली हाथ घर लौटा। पत्नी ने भाग्य की भर्त्सना करते हुए कहा—पतिदेव ! यहाँ सोने का मेह उमड़-घुमड़कर बरस रहा था, उस समय आप कहाँ भटकते रहे ? अब भी शीघ्र जाओ और महावीर से याचना करो। वे दीनबन्धु आपको निहाल कर देंगे। भगवन् ! कृपा कीजिए, यह दीन ब्राह्मण आपके सामने भीख मांग रहा है।

महावीर—भद्र ! इस समय मैं एक अकिंचन भिक्षु हूँ।

ब्राह्मण—भगवन् ! क्या कल्पवृक्ष के पास जाकर के भी मेरी मनोवाञ्छित कामना पूर्ण नहीं होगी? यह कहते-कहते उसका गला रुंध गया। आँखें आँसुओं से छलछला आईं। वह महावीर के चरणारविन्दों से लिपट गया।

ब्राह्मण की दयनीय दशा को देखकर महावीर का दयालु हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने उसी क्षण स्कन्ध पर पड़ा देवदूष्य चीवर का अर्ध भाग उसे प्रदान कर दिया। ब्राह्मण अपने भाग्य को सराहता हुआ चल दिया।

ब्राह्मणी उसे देखकर परम सन्तुष्ट हुई। उसके छोर को ठीक करने के लिए उसने रफूगर को वह चीवर दिया।[२०२] रफूगर उस अमूल्य चीवर की चमक-दमक देखकर चौक उठा। ब्राह्मण ने उसके आश्चर्य का समाधान करते हुए सारी कहानी सुना दी। रफूगर की प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर वह पुनः अर्ध चीवर को लेने गया। एक वर्ष और एक मास के पश्चात् वह चीवर महावीर के स्कध से नीचे गिर पडा।[२०३] ब्राह्मण ने लेकर उस रफूगर को दिया, उसने उसे ठीक कर दिया और एक लाख दीनार मे नन्दीवर्धन को बेच दिया।[२०४] ब्राह्मण जीवन भर के लिए परम सुखी बन गया।

——— क्षमामूर्ति महावीर

क्षमामूर्ति महावीर उस दिन एक मुहूर्त दिन अवशेष रहने पर कुर्मार-ग्राम मे[२०५] जिसका नाम वर्तमान मे 'कामन छपरा' है[२०६] वहाँ पधारे। गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित कर स्थाणु की तरह ध्यान मे स्थिर हो गये।

उस समय एक ग्वाला वहाँ आया। वह भगवान् के पास बैलो को छोडकर गायो को दोहने के लिए गाँव मे चला गया। क्षुधा और पिपासा से पीडित वे बैल चरते-चरते अटवी मे दूर तक चले गये। कुछ समय के पश्चात् वह ग्वाला लौटा, पर बैलो को वहाँ नही देखा, तब उसने महावीर से पूछा—बतलाओ! मेरे बैल कहाँ गए? महावीर ध्यानस्थ थे। कुछ उत्तर नही पाकर वह आगे बढ गया और रात भर बैलो को जगल मे खोजबीन करता रहा। प्रात निराश होकर पुन लौटा और इधर वे बैल भी अटवी मे से फिरते-फिरते महावीर के पास आकर बैठ गये। ग्वाले ने महावीर के पास बैलो को बैठे हुए देखा तो वह आपे से बाहर हो गया। वह रात भर घूमने से थका हुआ तो था ही, महावीर को उसने चोर समझकर मन का सारा क्रोध और कुढन उन पर निकालने के लिए बैलो को बाँधने की रस्सी से महावीर को मारने दौडा।

उस समय सभा मे बैठे हुए देवराज इन्द्र ने विचार किया कि देखू इस समय भगवान महावीर क्या कर रहे है? अवधिज्ञान से ग्वाले को इस प्रकार

मारने को सन्नद्ध देखकर इन्द्र ने उसे वहीं स्तम्भित कर दिया और साक्षात प्रकट होकर कहा—"अरे दुष्ट! क्या कर रहा है? तुझे पता नहीं है ये सिद्धार्थ नन्दन वर्धमान है।" ग्वाला हक्का-बक्का रह गया, फिर क्षमा मांगी और भगवान को तथा इन्द्र को वन्दन कर चला गया।[207]

● स्वावलम्बी महावीर

महावीर की साधना पूर्ण स्वावलम्बी थी। अपनी सहायता के लिए किसी के सामने हाथ पसारना तो दूर रहा, भक्ति-भावना से विभोर होकर अभ्यर्थना करने वालो का सहयोग भी उन्होंने कभी नही चाहा। ग्वाले की मूढता को देखकर देवराज के मन में आया और प्रभु से प्रार्थना की—भगवन्! वर्तमान में मानव अज्ञानी व मूढ हैं। वह आप जैसे घोर तपस्वियो को भी प्रताडित करने पर उतारू हो जाता है, आने वाले बारह वर्ष तक आपको विविध कष्टो का सामना करना पडेगा, अत आज्ञा प्रदान कीजिए कि तब तक मैं आपकी सेवा में रहकर कष्ट-निवारण किया करूँ।[208]

उत्तर देते हुए महावीर ने कहा— देवराज! न अतीत में कभी ऐसा हुआ है, न वर्तमान में हो सकता है और न भविष्य में होगा कि "देवेन्द्र या असुरेन्द्र की सहायता से अर्हन् केवल ज्ञान और सिद्धि प्राप्त करें। अर्हन् तो अपने ही बल और पुरुषार्थ से केवल ज्ञान और सिद्धि प्राप्त करते है।[209]

● प्रथम पारणा

द्वितीय दिन वहाँ से विहार कर भगवान वर्धमान कोल्लाग सन्निवेश मे पहुँचे। वहाँ बहुल नामक ब्राह्मण के घर पधारे और उसके मिश्रित परमान्न (खीर) की भिक्षा प्राप्त कर षष्ठभक्त का पारणा किया।[210] समवायाङ्ग में कहा है—"ऋषभदेव के अतिरिक्त शेष तेईस तीर्थंकरों ने दूसरे दिन पारणा किया और पारणा में अमृत सदृश मधुर खीर उन्हें प्राप्त हुई।"[211]

वहाँ से विहार कर भगवान मोराकसन्निवेश में दूइज्जन्तक नामक तापसों (पाषण्डस्थों) के आश्रम में पधारे। वहाँ का कुलपति भगवान के पिता सिद्धार्थ का परम मित्र था।[212] भगवान को आते देखकर वह स्वागतार्थ सामने

हुआ। भगवान् ने भी पूर्व के अभ्यासवश उनसे मिलने हेतु दोनो बाहे पसारी[२१३] और उनके मधुर आग्रह को सम्मान देकर वे एक दिन वहाँ विराजे। प्रस्थान करते समय कुलपति ने निवेदन किया–"कुमार वर ! प्रस्तुत आश्रम आपका ही है। आप इसे दूसरे का न समझे। कुछ समय यहाँ पर स्थिति रखे व एकान्त शान्त स्थान मे वर्षावास की इच्छा हो तो यहाँ अवश्य पधारें। मैं अनुग्रहीत होऊँगा।[२१४] भगवान् ने वहाँ से विहार किया, सन्निकटस्थ क्षेत्रो मे परिभ्रमण कर पुनः वर्षावास हेतु वहाँ पधारे। कुलपति ने एक पर्णकुटी प्रदान की। भगवान् वहाँ हिमालय की तरह अचल, निष्कंप, ध्यान-योग मे स्थिर हो गये। वर्षा विलम्ब से होने के कारण अभी तक घास नही उगी थी, अतः क्षुधा से पीडित गाये आदि पशु पर्णकुटियो का घास खाने को मुँह मारती थी, अन्य तापसगण उन्हे भगाकर कुटियो की रक्षा करते पर, महावीर तो ध्यान मे तल्लीन थे। वे गायो को रोकते भी कैसे ? तापसो ने कुलपति से कहा—तुम्हारा यह मेहमान कैसा आलसी है, अपनी कुटिया की भी रक्षा नही कर सकता ? दूसरी कुटी कौन छाकर देगा ?[२१५] कुलपति ने भी महावीर से निवेदन किया—कुमारवर ! पक्षिगण भी अपने घोसले की रक्षा करते हैं, पर आप राजकुमार होकर भी इतनी उपेक्षा क्यो रखते हैं ? दुष्टो को दण्ड देना आपका कर्तव्य है। फिर कर्तव्य विमुख क्यो हो रहे हैं ?[२१६] इस प्रकार संकेत कर कुलपति अपने स्थान चला गया। महावीर ने विचार किया मेरे कारण आश्रमस्थ व्यक्तियो का मानस व्यथित हो रहा है अतः मेरा यहाँ रहना उचित नही है।" वर्षावास के पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर भी उन्होने वहाँ से विहार किया।[२१७] उस समय भगवान् महावीर ने पाँच प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की।

(१) अप्रीतिकारक स्थान मे नही रहूँगा।
(२) सदा ध्यानस्थ रहूँगा।
(३) मौन रखूँगा।
(४) हाथ मे भोजन करूँगा।
(५) गृहस्थो का विनय नही करूँगा।[२१८]

स्मरण रखना चाहिए कि आचाराग[२१९] के अनुसार महावीर ने कभी

भी दूसरे के पात्र मे भोजन नहीं किया। पर आचार्य मलयगिरि के अभिमतानुसार प्रस्तुत प्रतिज्ञा ग्रहण करने के पूर्व भगवान् ने गृहस्थ के पात्र का उपयोग किया था[२०] और केवल ज्ञान होने के पश्चात् प्रवचन लाघव के कारण वे स्वयं भिक्षा हेतु नहीं पधारते थे। उस समय शिष्यो के द्वारा पात्र मे लाई गई भिक्षा का उपयोग करते थे।[२१] एतदर्थ ही वह लोहार्य अनगार धन्य माना गया जिसने भगवान् को केवल ज्ञान होने पर भिक्षा लाकर प्रदान की।[२२]

शूलपाणि यक्ष का उपद्रव

भगवान् श्री महावीर आश्रम से विहार कर अस्थिग्राम की ओर चल पडे। संध्या के धुंधलके (गोधूलिवेला) मे वहां पहुँचे। गांव मे एकान्त स्थान की याचना करते हुए नगर के बाहर यक्षायतन मे ठहरने की आज्ञा ली, तब गांव वासियो ने कहा—"भगवन्! यहां एक यक्ष रहता है, उसका स्वभाव बडा ही क्रूर है, वह रात्रि मे किसी को रहने नहीं देता है। अत: आप यहां न ठहर कर अन्य स्थान मे ठहरें।"[२३] पर, भगवान् ने यक्ष को प्रतिबोध देने हेतु उसी स्थान की पुनः याचना की, ग्राम निवासियों ने आज्ञा प्रदान की। भगवान् एक कोने मे ध्यानस्थ हो गये। सांध्य अर्चना हेतु इन्द्रशर्मा नाम का पुजारी आया, अर्चना के पश्चात् सभी यात्रियों को यक्षायतन से बाहर निकाला। भगवान् से उसने कहा—परन्तु वे मौन थे, ध्यानस्थ थे, इन्द्रशर्मा ने पुन: यक्ष के भयंकर उत्पात का रोमांचक वर्णन किया, फिर भी भगवान् विचलित नहीं हुए और वे वहीं स्थिर रहे, इन्द्रशर्मा चला गया।[२४]

सन्ध्या की सुहावनी वेला समाप्त हुई। कुछ अन्धकार होने पर शूलपाणि यक्ष प्रकट हुआ। भगवान् को वहां देखकर उसने कहा—मृत्यु को चाहने वाला यह गांव निवासियों व देवार्य द्वारा निषेध करने पर भी न माना। ज्ञात होता है इसे अभी तक मेरे प्रबल पराक्रम का परिचय नहीं है।" पराक्रम का परिचय देने के लिए उसने भयंकर अट्टहास किया,[२५] जिससे सारा वन-प्रान्त कांप उठा। पर महावीर तो मेरु की तरह अडोल व अकम्प खडे रहे। उसने हाथी का रूप बनाया, दन्त प्रहार करने और पांव से रौंदने पर भी वे अचल रहे। यक्ष ने पिशाच का विकराल रूप बनाकर तीक्ष्ण नाखून व दांतों

से महावीर के अङ्गो को नौंचा तो भी उनके मन मे रोप नही आया। मुँह से 'सी' नही निकला। उसने सर्प बनकर जोर से काटा तो भी महावीर का ध्यान भङ्ग नही हुआ। अन्त मे उसने अपनी दिव्य देव शक्ति से उनके आँख, कान, नाक, सिर, दाँत, नख और पीठ मे भयकर वेदना उत्पन्न की। इस प्रकार की एक वेदना से भी साधारण प्राणी छटपटाता हुआ तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है[२२६] पर महावीर तो उन सभी प्रकार की वेदनाओ को शान्त भाव से सहन कर गये। राक्षसी-बल महावीर के आत्मबल से परास्त हो गया। उसका धैर्य ध्वस्त हो गया। प्रभु की अद्भुत तितिक्षा देखकर वह चकित व स्तभित-सा रह गया, अन्त मे हारकर महावीर के चरणो मे गिर पडा। "भगवन्! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। मैंने आपको पहचाना नही!" इस प्रकार वह विनम्र होकर प्रभु की स्तुति करने लग गया।

भगवान् के स्वप्न

एक मुहूर्त रात्रि अवशेष रहने पर भगवान् को उस रात मे निद्रा आ गई।[२२७] उस समय उन्होने दस स्वप्न देखे।[२२८]

(१) मैं एक भयकर ताड-सदृश पिशाच को मार रहा हूँ।

(२) मेरे सामने एक श्वेत पुंस्कोकिल उपस्थित है।

(३) मेरे सामने एक रग-विरगा पुस्कोकिल उपस्थित है।

(४) दो रत्न मालाएँ मेरे सम्मुख हैं।

(५) एक श्वेत गोकुल मेरे सम्मुख है।

(६) एक विकसित पद्मसरोवर मेरे सामने स्थित है।

(७) मैं तरगाकुल महासमुद्र को अपने हाथो से तैर कर पार कर चुका हूँ।

(८) जाज्वल्यमान सूर्य सारे विश्व को आलोकित कर रहा है।

(९) मैं अपनी वैडूर्य वर्ण आतो से मानुषोत्तर पर्वत को आवेष्टित कर रहा हूँ।

(१०) मैं मेरु पर्वत पर चढ रहा हूँ।

स्वप्नानन्तर भगवान् की नींद खुल गई। साधना काल मे भगवान् को इसी रात्रि मे कुछ नीद आई थी और वह भी सोये-सोये नही, अपितु खडे-खडे ही।[२२९]

रात्रि मे शूलपाणि के भयंकर अट्टहास को श्रवण कर ग्रामवासियों ने उसी समय अनुमान लगा लिया था कि मंदिर में स्थित वह साधु सदा के लिए नष्ट बना है। और प्रातःकाल के पूर्व जब संगीत की सुमधुर स्वर लहरियां सुनी तो उनका अनुमान और अधिक दृढ़ हो गया कि साधु की मृत्यु से ही यक्ष अपने हृदय की प्रसन्नता संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है।[२३०]

उत्पल नामक एक निमित्तज्ञ अस्थिक ग्राम में रहता था। पहले वह भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा मे श्रमण बना था। पर कुछ कारणो से श्रमणत्व से भ्रष्ट हो गया था। जब उसे भगवान् महावीर के यक्षायतन मे ठहरने के समाचार ज्ञात हुए तो अनिष्ट की कल्पना से उसका हृदय धड़क उठा।[२३१] प्रातः इन्द्रशर्मा पुजारी के साथ वह यक्षायतन पहुँचा, पर अपनी कल्पना से विपरीत यक्ष के द्वारा भगवान् महावीर को अर्चित देखकर उनके आश्चर्य का आर-पार नही रहा। वे दोनो ही प्रभु के चरणो मे नमस्कार करने लगे—"प्रभो, आपका आत्म-तेज अपूर्व है। आपने यक्षप्रकोप को शान्त कर दिया है।"

निमित्तज्ञ ने निवेदन किया—"प्रभो, आपने जो रात्रि के पश्चिम प्रहर मे दस स्वप्न देखे हैं उनका फल इस प्रकार होगा—

(१) आप मोहनीय कर्म को नष्ट करेंगे।
(२) सदा-सर्वदा आप शुक्ल ध्यान मे रहेंगे।
(३) विविध ज्ञानमय द्वादशाङ्ग श्रुत की प्ररूपणा करेंगे।
(४) ?
(५) चतुर्विध संघ आपकी सेवा मे संलग्न रहेगा।
(६) चतुर्विध देव भी आपकी सेवा मे रहेंगे।
(७) संसार सागर को आप पार करेंगे।
(८) केवल ज्ञान और केवल दर्शन को आप प्राप्त करेंगे।
(९) सब तरफ सर्वत्र आपकी कीर्ति-कौमुदी चमकेगी।
(१०) समवसरण में सिंहासन पर विराजकर आप धर्म की संस्थापना करेंगे।[२३२]

इस प्रकार इन नौ स्वप्नो का फल मुझे ज्ञात हो गया, पर चतुर्थ स्वप्न का फल मेरी समझ में नही आया। भगवान् ने चतुर्थ स्वप्न का फल वताते हुए कहा—उत्पल, मैं सर्वविरति व देश-विरति रूप दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करूँगा।[२३३]

प्रस्तुत वर्षावास मे भगवान् ने पन्द्रह-पन्दह दिन के आठ अर्धमास उपवास किये।[२३४]

वहाँ से वर्षावास के पश्चात् विहार कर भगवान् मोराकसन्निवेश पधारे और उद्यान मे विराजे।[२३५] वहाँ भगवान् के तप पूत जीवन और ज्ञान की तेजस्विता से जन-जन के मन मे श्रद्धा के दीप प्रज्वलित हो उठे। ध्यान परा-यण महावीर के चारो ओर जनता श्रद्धा पूर्वक आकर जमने लगी।

प्रस्तुत सन्निवेश मे अच्छन्दक पाषण्डस्थ रहते थे जो अपनी जीविका ज्योतिष आदि मे चलाते थे। महावीर की तेजस्वी प्रतिभा से उनकी प्रतिभा प्रभाहीन हो गई। उन्होने भगवान् से निवेदन किया—"भगवन् ! आपका व्यक्तित्त्व अपूर्व है। आप अन्यत्र पधारे, क्योकि आपके यहाँ विराजने से हमारी जीविका नही चलती, हम अन्यत्र जायें तो परिचय और प्रतिभा के अभाव मे हमे कोई भी पूछेगा नही। करुणावतार महावीर ने वहाँ से विहार कर दिया।[२३६]

—— ● चण्ड कौशिक को प्रतिवोध

दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला जाने के दो मार्ग थे। एक कनखल आश्रम से होकर और दूसरा वाहर से। आश्रम का मार्ग सीधा होने पर भी निर्जन, भयानक व विकट सकट से युक्त था। वाहर का पथ केशराशि की तरह कुटिल व दीर्घ था, पर सुगम और विपदा से मुक्त था। आत्मा की मस्ती मे गजराज की तरह झूमते हुए महावीर सीधे पथ पर ही अपने कदम बढाते हुए चले जा रहे थे।[२३७]

ग्वालो ने टोकते हुए कहा—"देवार्य ! इधर न पधारिये ! इस पथ में एक भयकर दृष्टि विष सर्प रहता है जिसकी विषैली फुंकार से मानव तो क्या, पशु-पक्षी गण भी सदा के लिए आँख मूंद लेते हैं। वह इतना भयंकर है कि

जिधर देखता है, जहर बरसने लगता है, आग की लपटें उठने लगती हैं। उसके कारण आस-पास के वृक्ष भी सूख गये हैं। चारों ओर सुनसान हो गया है। अतः श्रेयस्कर यही है कि आप बाहर के मार्ग से पधारें।

पर महावीर मौन थे। वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे थे। पथ से विचलित होना उन्होंने सीखा ही न था।

ग्वालों ने पुनर्वार रोकने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सके। भगवान् आगे बढ़ गये। चण्डकौशिक के स्थान पर जाकर ध्यान लगाकर खड़े हो गये।[२३८] उनके मन में प्रेम का पयोधि उच्छ्वलित हो रहा था। भयंकर फुंकार करता हुआ नागराज बाहर निकला। बाँबी के पास भगवान् को देखकर वह सहम गया। उसने क्षुब्ध होकर फुंकार मारी। किन्तु भगवान् पर कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने अनेक बार दंश प्रहार किया, तथापि भगवान् को शान्त-प्रशान्त देखकर वह स्तब्ध हो गया।[२३९]

आश्चर्य में निमग्न विषधर महावीर की मुख-मुद्रा को एकटक देख रहा था। उसमें कहीं पर भी रोष और क्रोध की रेखाएँ नहीं थीं, अपितु मधुर मुस्कान खिल रही थी। अन्त में अमृत ने विष को परास्त कर दिया।

महावीर ने नागराज को शान्त देखकर ध्यान से निवृत्त होकर कहा—"चण्डकौशिक! शान्त होओ! उवसम भो चण्डकोसिया! जागृत होओ! अज्ञानान्धकार में कहाँ भटक रहे हो, पूर्व जन्म के दुष्कर्मों के कारण तुम्हें सर्प बनना पड़ा है, यदि अब भी तुम न सँभले तो भविष्य तिमिराच्छन्न है।[२४०]

भगवान् के सुधा-सिक्त वचनों ने नागराज के अन्तर्मानस में विचार ज्योति प्रज्वलित कर दी। चिन्तन करते-करते पूर्व जन्म का चलचित्र नेत्रों के सामने नाचने लगा।[२४१] "मैं पूर्व जन्म में श्रमण था, [illegible] भिक्षा के लिए जाते समय पैर के नीचे मण्डूकी आ गई। शिष्य के द्वारा प्रेरणा देने पर भी मैंने आलोचना नहीं की और अस्मिता के वश शिष्य को मारने दौड़ा। अन्धकार में स्तम्भ से सिर टकराया, आयु पूर्ण कर ज्योतिष्क देव बना और वहाँ से [illegible] आश्रम में कौशिक तापस बना। मेरी क्रूर प्रकृति से सभी काँपते थे।

एक बार श्वेताम्वी के राजकुमारो ने आश्रम के फल-फूल तोड़े। मैं तीक्ष्ण कुल्हाडी से उन्हे मारने दौडा पर पाँव फिसल गया और उस तीक्ष्ण कुल्हाड़ी से मैं स्वय कट गया, वहाँ से आयु पूर्ण कर सर्प बना।" इस प्रकार पूर्व-पापो की सस्मृति से हृदय विकल व विह्वल हो उठा। आत्म-भान होते ही वह अपनी की हुई भूलो पर पश्चात्ताप करने लगा। भगवान् के चरणारविन्दो मे आकर झुक गया। उसका प्रस्तर हृदय पिघल गया। भगवान् के पावन प्रवचन से वह पवित्र हो गया। उसने दृढ प्रतिज्ञा ग्रहण की कि 'आज से मैं किसी को न सताऊँगा। उसने आजीवन अनशन कर लिया।[२४२] भगवान को वहाँ खडा देखकर लोग आने लगे। नागराज मे यह अद्भुत परिवर्तन देखकर जनता चकित थी। जिसे मारने के लिए एकदिन जनता उन्मत्त थी, आज वही उसकी अर्चना कर आनन्द-विभोर हो रही थी।

वहाँ से भगवान् उत्तर वाचाला पधारे। 'नागसेन' के यहाँ पन्द्रह दिन के उपवास का पारणा कर श्वेताम्वी पधारे। सम्राट् प्रदेशी ने भाव-भीना स्वागत किया, वहाँ से सुरभिपुर पधार रहे थे कि मार्ग मे सम्राट् प्रदेशी के पास जाते हुए पाँच नैयिक राजाओ ने भगवान् की वन्दना-नन्दना की।[२४३]

——● नाव किनारे लग गई

सुरभिपुर पधारते समय गगा को पार करने हेतु भगवान् सिद्धदत्त की नौका में आरूढ हुए। नौका ने ज्यो ही प्रस्थान किया, त्योही दाहिनी ओर से उल्लूक के कर्ण कटु शब्दो को श्रवण कर खेमिल निमित्तज्ञ ने यात्रियो से कहा—बडा अपशकुन हुआ है, पर प्रस्तुत महापुरुष की प्रबल पुण्यवानी से हम बच जायेंगे।[२४४] आगे बढते ही आँधी और तूफान से नौका आवर्त मे फँस गई। कहते हैं कि त्रिपृष्ट वासुदेव के भव मे जिस सिंह को मारा था वह सुदष्ट्र नाम का देव हुआ और पूर्व वैर के कारण उसने गंगा मे तूफान खड़ा कर दिया। अन्य यात्रीगण भय से काँप उठे, पर, महावीर निष्कम्प थे। अन्त में महावीर के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से नौका किनारे लग गई।

——● धर्म चक्रवर्ती

नाव से उतरकर भगवान् गगा के किनारे स्थित थूणाक सन्निवेश के

बाहर ध्यान मुद्रा लेकर खड़े हो गए। भगवान् के चरण-चिह्नों को देखकर पुष्य नामक एक निमित्तज्ञ के मानस में विचार उठा कि ये चरण-चिह्न तो अवश्य ही किसी चक्रवर्ती सम्राट् के हैं जो अभी किसी विपदा से ग्रसित होकर अकेला घूम रहा है। मैं जाकर उसकी सेवा करूँ। चक्रवर्ती सम्राट् बनने पर वह प्रसन्न होकर मुझे निहाल कर देगा।[२४५] वह चरण-चिह्नों को देखता हुआ भगवान् के पास पहुँचा, किन्तु भिक्षुक के वेष में भगवान् को देखकर उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह यह नहीं समझ सका कि चक्रवर्ती सम्राट् के सम्पूर्ण लक्षण शरीर पर विद्यमान होते हुए भी यह भिक्षुक कैसे? उसे ज्योतिष शास्त्र का कथन मिथ्या प्रतीत हुआ। वह ज्योतिष शास्त्र को गंगा में बहाने के लिए तैयार हो ही रहा था कि देवेन्द्र ने प्रकट होकर कहा—"पुष्य! यह कोई साधारण भिक्षुक नहीं है। धर्म-चक्रवर्ती हैं। चक्रवर्ती सम्राट् से भी बढ़कर हैं। देवों व इन्द्रों के द्वारा भी वन्दनीय और अर्चनीय है।[२४६] पुष्य भगवान् को वन्दना करके चल दिया।

● गोशालक की भेंट

भगवान् महावीर ने द्वितीय वर्षावास राजगृह के उपनगर नालन्दा की तन्तुवायशाला (बुनकर की उद्योगशाला) में किया। वहाँ मंखलि पुत्र गोशालक[२४७] भी वर्षावास हेतु आया हुआ था। वह भगवान् के तप और त्याग से आकर्षित हुआ। वास्तव में उसने भगवान के मासक्षपण के पारणे में पांच दिव्य प्रकट हुए देखे, आकाश में देव-दुन्दुभि सुनी तो वह उनके चामत्कारिक तप से आकृष्ट होकर उनका शिष्य बनने के लिए उन्मुख हो गया। वह भगवान से शिष्य बनाने की प्रार्थना करने लगा, प्रभु मौन रहे।[२४८] उस वर्षावास में भगवान् ने एक-एक मास का दीर्घ-तप किया। वर्षावास की पूर्णाहुति के दिन गोशालक भिक्षा के लिए निकला तो उसने प्रभु से जिज्ञासा की—तपस्वी! "आज मुझे भिक्षा में क्या प्राप्त होगा?" उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा—"कोदों का बासी भात, खट्टी छाछ और खोटा रुपया।" भगवान् की भविष्यवाणी को मिथ्या करने हेतु वह श्रेष्ठियों के गगनचुम्बी भव्य भवनों में पहुँचा, पर हताश और निराश होकर पुनः खाली लौट आया। फिर कोदों

की झोपड़ियो की ओर बढा। एक लुहार के घर पर उसे खट्टी छाछ, वासी भात, व दक्षिणा मे एक रुपया प्राप्त हुआ। बस, इस घटना ने उसे नियतिवाद की ओर आर्कषित किया। वह सोचने लगा–जो होना होता है, वह होकर रहता है और वह सब कुछ पहले से ही निश्चित रहता है।

भगवान् महावीर नालदा से विहार कर कोल्लागसन्निवेश पधारे और वहाँ एक ब्राह्मण के घर पर चतुर्मासिक्षपण का पारणा किया। इधर गोशालक भिक्षा से लौटा। भगवान् को वहाँ नही पाकर ढूँढता हुआ कोल्लाग-सन्निवेश मे आ पहुचा। भगवान् से शिष्य वना लेने की पुनः पुनः अभ्यर्थना की, किन्तु भगवान् ने स्वीकार नही की।[२४९]

गोशालक प्रकृति से चचल, उद्धत व लोलुप था। वह भगवान् के साथ ही कोल्लाग सन्निवेश से सुवर्णखल जा रहा था। मार्ग मे एक ग्वाल मण्डली खीर पका रही थी। खीर को देखकर गोशालक का मन उसे खाने के लिए मचल उठा। महावीर से निवेदन किया। महावीर ने कहा–"खीर पकने के पूर्व ही हण्डी फूटने के कारण धूल मे मिल जायेगी।" गोशालक ने ग्वालो को सचेत किया और स्वय खीर खाने की अभिलापा से वही रुक गया। भगवान् आगे बढ़ गये। ग्वालो के द्वारा हण्डी की सुरक्षा करने पर भी हण्डी फूट गई और खीर धूल मे मिल गई।[२५०] गोशालक नन्हा-सा मुह लिए महावीर के पास पहुचा। इस घटना से उसकी यह धारणा दृढ हो गई कि होनहार कभी टल नही सकती। वह 'नियतिवाद' का पक्का समर्थक बन गया।

वहाँ से विहार कर भगवान् 'ब्राह्मण गाँव' पधारे। उसके दो विभाग थे। एक 'नन्दपाटक' और द्वितीय 'उपनन्दपाटक'। भगवान् नन्दपाटक मे नन्द के घर पर भिक्षा के लिए पधारे। भगवान् को वासी भोजन प्राप्त हुआ, परतु शान्त भाव से उन्होने उसको स्वीकार किया। गोशालक उपनन्दपाटक मे उपनन्द के यहाँ भिक्षा के लिए गया, दासी वासी तन्दुलो की भिक्षा देने लगी तो गोशालक ने मुँह मचका कर उसे लेने से इन्कार कर दिया। गौशालक के अभद्र व्यवहार से उपनन्द क्रुद्ध हो गया और दासी से कहा–वह भिक्षा न ले

तो उनके सिर पर फेंक दे। दासी ने स्वामी की आज्ञा से उसी के सिर पर डाल दिया। गोशालक आपे से बाहर हो गया। शाप देकर बकता हुआ वहाँ से चल दिया।

भगवान् वहा से अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी पधारे।[२४१] गोशालक भी साथ ही था। भगवान् ने तृतीय वर्षावास वहीं व्यतीत किया। वर्षावास मे दो-दो मास के उत्कट तप के साथ विविध आसन व ध्यान-योग की साधना की। प्रथम पारणा चम्पा मे किया और द्वितीय चम्पा से बाहर।

वर्षावास के पश्चात् कालाय सन्निवेश पधारे, वहाँ से पत्तकालाय पधारे और दोनों ही स्थानो पर खण्डहरो मे स्थित होकर ध्यान किया। दोनो ही स्थानो पर गोशालक अपनी विकार युक्त एव अविवेकी प्रवृत्ति के कारण लोगो के द्वारा पीटा गया।[२४२] भगवान् तो रात-रात भर ध्यान मे लीन रहे।

वहाँ से भगवान् कुमारक सन्निवेश पधारे, वहाँ पर चम्पकरमणीय उद्यान मे कायोत्सर्ग प्रतिमा धारण करके रहे।[२४३]

भिक्षा का समय होने पर गोशालक ने भिक्षा के लिए चलने हेतु महावीर से प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—'मेरे उपवास है।'

गोशालक चला। उस समय पार्श्वापत्य मुनिचन्द्र स्थविर कुमार-सन्निवेश में कुम्हार कूपणय की शाला मे ठहरे हुए थे। गोशालक ने पार्श्वापत्य मुनियों के रंग बिरंगे वस्त्र देखकर पूछा—"तुम कौन हो?" उन्होंने उत्तर दिया—"हम निर्ग्रन्थ है और भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य है।"

गोशालक ने कहा—"तुम कैसे निर्ग्रन्थ हो? इतना सारा वस्त्र और पात्र रखा है, फिर भी अपने को निर्ग्रन्थ कहते हो। ज्ञात होता है अपनी आजीविका चलाने के लिए ही यह प्रपंच रच रखा है। देखिए—सच्चे निर्ग्रन्थ तो मेरे धर्माचार्य है, जो वस्त्र व पात्र से रहित है तथा तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति है।"

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा—"जैसा तू है, वैसे ही तेरे धर्माचार्य भी स्वयं गृहीतलिंग होंगे।"

गोशालक ने क्रुद्ध होकर कहा--"मेरे धर्माचार्य की तुम लोग निन्दा कर रहे हो। मेरे धर्माचार्य के दिव्य तपस्तेज से तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाये।"

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा--"हम तुम्हारे जैसो के शाप से भस्म होने वाले नही हैं।"

लम्बे समय तक वाद-विवाद करने के पश्चात् गोशालक लौटकर महावीर के पास आया और बोला--"आज मेरी सारम्भ और सपरिग्रह श्रमणो से भेंट हुई। मेरे शाप देने पर भी उनका तनिक भी बालबाका नही हुआ।"

भगवान् ने बताया कि वे पार्श्वापत्य अनगार है।[२५४]

वहाँ से विहार कर भगवान् चोराक सन्निवेश पधारे।[२५५] वहाँ तस्करो का अत्यधिक भय था। अत. आरक्षक (पहरेदार) सतत सावधान रहते थे। आरक्षको ने परिचय प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रश्न किया, पर भगवान् मौन रहे। आरक्षको ते गुप्तचर समझकर भगवान को अनेक यातनाएँ दी। सोमा और जयन्ती नामक परिव्राजिकाओ को जो उत्पल नैमित्तिक की बहने थी, जब वह ज्ञात हुआ तब वे शीघ्र ही वहाँ पहुँची और आरक्षको को बताया कि ये 'सिद्धार्थनन्दन महावीर है। आरक्षको ने उन्हे मुक्त कर दिया।[२५६]

वहाँ से पृष्ठ चम्पा पधारे और चतुर्थ वर्षावास वहाँ पर व्यतीत किया। प्रस्तुत वर्षावास मे चार मास के लिए आहार का परिहार कर आत्म-चिन्तन, व ध्यान मुद्रा मे खडे रहे।

वर्षावास के पश्चात् भगवान् कयगला नगरी पधारे, वहाँ दरिद्दथेर के देवल मे ध्यानस्थ हुए।[२५७] वहाँ से विहार कर श्रावरती के बाहर ध्यान किया। कडकडाती सर्दी पड रही थी, तथापि भगवान् सर्दी की बिना परवाह किये रात भर ध्यान मे रहे।[२५८] सर्दी से गोशालक बहुत परेशान हुआ। इधर देवल मे धार्मिक उत्सव होने से स्त्री-पुरुष आदि एकत्र होकर नृत्य-गाना बजाना कर रहे थे। गोशालक उनकी मजाक करने लगा—"यह कैसा धर्म है, जिसमे स्त्री-पुरुष साथ-साथ निर्लज्ज होकर नाचे जायें।" लोगो ने गोशालक को पकड-

कर बाहर धकेल दिया। वह सर्दी से ठिठुरने लगा, बोला—"इस संसार में सच बोल कर विपत्ति मोल लेना है।' लोगों ने देवार्य का शिष्य समझ कर पुनः भीतर बुलाया, मगर वह तो अपनी आदत से लाचार था, पहले युवकों ने पीटा, फिर वृद्धों ने उसकी बातें अनसुनी करके खूब जोर से बाजे बजाने के लिए कहा। प्रातः भगवान वहां से विहार कर श्रावस्ती पधारे। श्रावस्ती में शिवदत्त ब्राह्मण की पत्नी ने मृत बालक के रुधिर मांस से खीर बनाई और वह गोशालक को दी। गोशालक ने खाई, प्रभु ने रहस्योद्घाटन किया। गोशालक ने वमन किया, वही सब चीजें देखकर उसे नियतिवाद पर दृढ़ विश्वास हो गया।

श्रावस्ती से विहार कर "हलिद्दुग" गांव पधारे। गांव के समीप ही एक "हलिद्दुग" नामक विराट् वृक्ष था। भगवान् ने ध्यान हेतु उपयुक्त स्थल समझ कर वहीं अवस्थिति की। अन्य अनेक पथिकों ने भी रात्रि में वहाँ विश्राम लिया। उन्होंने सर्दी से बचने के लिए अग्नि जलाई। उन पथिकों ने सूर्योदय के पूर्व ही वहाँ से आगे प्रस्थान कर दिया। वह अग्नि धीरे-धीरे ध्यानस्थ महावीर के निकट तक आ पहुँची। गोशालक ने ज्यों ही आग की लपलपाती लपटों को अपनी ओर आते हुए देखा त्यों ही वहाँ से भाग छूटा। परन्तु महावीर अपने ध्यान में मग्न थे। ज्वाला आगे बढ़ी, महावीर के पैर उस ज्वाला की लपट से झुलस गये, तथापि वे ध्यान से विचलित नहीं हुए।[illegible] मध्याह्न में वहाँ से आगे प्रयाण किया। 'नगला' होते हुए "आवर्त" पधारे और क्रमशः वासुदेव तथा बलदेव के मन्दिरों में ध्यान किया।

इस प्रकार अन्य अनेक क्षेत्रों को पाद-पद्मों से पवित्र करते हुए भगवान् 'चोराग सन्निवेश' पधारे। वहां गोशालक को गुप्तचर समझकर बहुत पीटा गया।[illegible] वहाँ से भगवान 'कलंबुका' सन्निवेश की ओर जा रहे थे कि मार्ग में वहाँ के अधिकारी कालहस्ती तस्करों का पीछा करते हुए उधर से निकले तो मार्ग में भगवान महावीर और गोशालक मिले। उन्होंने परिचय पूछा, परन्तु महावीर मौन थे और कुतूहल देखने के लिए गोशालक भी चुप रहा। दोनों को तस्कर समझकर उन्होंने अनेक यातनाएँ दीं, तथापि मौन भंग नहीं किया। आखिर रस्सियों से बाँध कर उन्हें अपने बड़े भाई मेघ के पास भेज दिया।

मेघ ने गृहस्थाश्रम मे क्षत्रियकुण्ड मे महावीर को देखा था, अत देखते ही स्मृति जाग उठी, और पहचान लिया, शीघ्र ही बन्धनो से मुक्त कर अपने अज्ञानवश किए गए अपराध की क्षमा याचना की ।[२६१]

——● लाढ़ प्रदेश में

गभीर विचार-मथन के पश्चात् भगवान महावीर ने कर्मों की विशेष निर्जरा हेतु लाढ़ प्रदेश (सभवत बगाल मे गगा का पश्चिम किनारा) की ओर प्रस्थान किया ।[२६२] यह प्रदेश उस युग मे अनार्य माना जाता था । वहाँ विचरण करना अत्यन्त दुष्कर था ।[२६३]

उस प्रान्त के दो भाग थे। एक वज्रभूमि और द्वितीय शुभ्र भूमि ।[२६४] ये उत्तर राढ और दक्षिण राढ के नाम से भी प्रसिद्ध थे । इन दोनो के मध्य मे अजय नदी बहती थी । भगवान् ने दोनो ही स्थानो मे विचरण किया । उस क्षेत्र मे भगवान् को जो उग्र उपसर्ग उपस्थित हुए उसका रोमाचक वर्णन आर्य सुधर्मा ने आचाराग मे निम्न प्रकार से किया है—

"वहाँ रहने के लिए उन्हे अनुकूल आवास प्राप्त नही हुए । अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करने पडे । रूखा-सूखा वासी भोजन भी कठिनता से उपलब्ध होता था । कुत्ते भगवान् को दूर से देखकर ही काटने के लिए झपटते थे । वहाँ पर ऐसे बहुत कम व्यक्ति थे जो काटते और नौंचते हुए कुत्तो को हटाते, किन्तु इसके विपरीत वे कुत्तो को छुछकार कर काटने के लिए उत्प्रेरित करते । पर भगवान् महावीर उन प्राणियो पर किसी भी प्रकार का दुर्भाव नही लाते । उन्हे अपने तन पर किसी प्रकार की ममत्व बुद्धि नही थी । आत्म-विकास का हेतु समझ कर ग्राम-सकटो को सहर्ष सहन करते हुए वे सदा प्रसन्न रहते ।"[२६५]

"जैसे सग्राम मे गजराज शत्रुओ के तीखे प्रहारो की तनिक भी परवाह किये बिना आगे ही बढता जाता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर भी लाढ प्रदेश मे उपसर्गों की किंचित् परवाह किए बिना आगे बढते रहे । वहाँ उन्हे ठहरने के लिए कभी दूर-दूर तक गाँव भी उपलब्ध नही होते, तो भयकर अरण्य

मे ही रात्रिवास करते। जब वे किसी गाँव मे जाते तो गाँव के सन्निकट पहुँचते ही गाँव के लोग बाहर निकलकर उन्हे मारने-पीटने लगते और अन्य गाँव जाने को कहते। वे अनार्य लोग भगवान् पर दण्ड, मुष्टि, भाला, पत्थर व ढेलो से प्रहार करते और फिर प्रसन्न होकर चिल्लाते।[११२]

वहाँ के क्रूर मनुष्यो ने भगवान् के सुन्दर शरीर को नोंच डाला, उन पर विविध प्रकार के प्रहार किये। भयकर परीषह उनके लिए उपस्थित किये। उन पर धूल फेंकी। वे भगवान् को ऊपर उछाल-उछाल कर गेंद की तरह पटकते। आसन पर से धकेल देते, तथापि भगवान शरीर के ममत्व से रहित होकर बिना किसी प्रकार की इच्छा व आकाक्षा के सयम-साधना मे स्थिर रहकर कष्टो को शान्ति से सहन करते।"[११३]

"जैसे कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध मे अक्षत रहता है, वैसे ही अचेल भगवान् महावीर ने अत्यन्त कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपने सयम को अक्षत रखा।"[११४]

इस प्रकार समभाव पूर्वक भयंकर उपसर्गों को सहनकर भगवान् ने बहुत कर्मों की निर्जरा कर डाली। वे पुन आर्य प्रदेश की ओर कदम बढा रहे थे कि पूर्णकलश सीमा प्रान्त पर दो तस्कर मिले। वे अनार्य प्रदेश मे चोरी करने जा रहे थे। भगवान् को सामने से आते देख उन्होने अपशकुन समझा। वे तीक्ष्ण शस्त्र लेकर भगवान् को मारने के लिए लपके। उस समय इन्द्र ने प्रकट होकर तस्करो का निवारण किया।[११५]

भगवान् आर्य प्रदेश के मलय देश मे विहार करने लगे और उस वर्ष मलय की राजधानी भद्दिला नगरी मे अपना पाँचवा चातुर्मास किया, चातुर्मासिक तप और विविध आसनो के साथ ध्यान साधना करते हुए वर्षावास व्यतीत किया।[११६]

वर्षावास पूर्ण होने पर भद्दिला नगरी से बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा। तब 'कदली समागम' 'जम्बू खण्ड' होकर 'तम्बाय सन्निवेश' पधारे।

उस समय पार्श्वापत्य स्थविर नन्दिषेण वहाँ पर विराज रहे थे। गोशालक ने उनसे भी वाद-विवाद किया।

तवाय से 'कूपिय सन्निवेश' पधारे। वहाँ लोगो ने गुप्तचर समझकर भगवान को पकड लिया। अनेक यातनाएँ दी और कारागृह मे कैद कर लिया गया। 'विजया' और 'प्रगल्भा' नाम की परिव्राजिकाओ को परिज्ञात होने पर वे वहाँ पहुँची, और अधिकारियो को भगवान का परिचय दिया। अधिकारियो ने अपनी अज्ञता पर पश्चात्ताप करते हुए भगवान् को मुक्त कर दिया।[२७१]

भगवान् ने वहाँ से वैशाली की ओर विहार किया। गोशालक ने भगवान् महावीर से कहा—"मुझे आपके साथ रहते हुए अनेक दुःसह यातनाएँ भोगनी पडती है। पेट की समस्या भी हल नही हो पाती। आप इनका निवारण नही करते, अत मैं अब पृथक् विहार करूँगा।" इस बात पर भगवान् मौन रहे। गोशालक ने राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया।[२७२]

भगवान् क्रमशः विहार करते हुए वैशाली पधारे और लुहार के यन्त्रालय (कम्मारशाला) मे ध्यानस्थ स्थिर हुए। वह लुहार छह मास से अस्वस्थ था। भगवान् के आने के दूसरे ही दिन कुछ स्वस्थता अनुभव होने पर वह अपने यत्र लेकर यंत्रालय मे पहुँचा। वहाँ एकान्त मे भगवान् को ध्यान मुद्रा मे देखकर उसने अमगल रूप समझा और हथोडा लेकर महावीर पर प्रहार करने के लिए ज्यो ही वह उधर बढा त्यो ही दिव्य देव-शक्ति से सहसा वही स्तब्ध हो गया।[२७३]

वैशाली से विहार कर भगवान् ग्रामक-सन्निवेश पधारे और बिभेलक यक्ष के यक्षायतन मे ध्यान किया। भगवान् के तपोमय जीवन से यक्ष प्रभावित होकर गुणकीर्तन करने लगा।[२७४]

——— ● **कूटपूतना का उपद्रव**

भगवान् महावीर ग्रामक सन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के रमणीय उद्यान मे पधारे। माघ माह का सनसनाता समीर प्रवहमान था। साधारण मनुष्य घरो मे गर्म वस्त्रो से वेष्टित होने पर भी काँप रहे थे, किन्तु उस ठण्डी

रात में भी भगवान् वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े थे। उस समय कूटपूतना (कटपूतना) नामक व्यन्तरी देवी वहाँ आई। भगवान् को ध्यानावस्था में देखकर उसका पूर्व-वैर उद्बुद्ध हो गया। वह परिव्राजिका का रूप बना कर मेघधारा की तरह जटाओं से भीषण जल बरसाने लगी और भगवान् के कोमल स्कंधों पर खड़ी होकर तेज हवा करने लगी। बर्फ-सा शीतल वह जल और पवन तलवार के प्रहार से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीत हो रहा था, तथापि भगवान ध्यान से विचलित नहीं हुए। उस समय समभावों की उच्च श्रेणी पर चढ़ने से भगवान् को विशिष्ट अवधिज्ञान (परम अवधिज्ञान) की उपलब्धि हुई। परीषह सहन करने की अमित क्षमता को देखकर कूटपूतना अवाक् थी, विस्मित थी। प्रभु के धैर्य के समक्ष वह पराजित होकर चरणों में झुक गई और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करने लगी।[२१०]

गोशालक भी छह मास तक पृथक् भ्रमण कर अनेक कष्ट पाता हुआ आखिर पुनः महावीर के पास आ गया।

भगवान् वहाँ से परिभ्रमण करते हुए भद्दिया नगरी पधारे। चातुर्मासिक तप तथा आसन व ध्यान की साधना करते हुए छट्ठा वर्षावास वहीं पर किया। वर्षावास पूर्ण होने पर नगर के बाहर पारणा कर मगध की ओर प्रयाण किया। मगध के अनेक ग्रामों में घूमते हुए आलभिया पधारे। चातुर्मासिक तप के साथ ध्यान करते हुए सातवाँ चातुर्मास वहाँ पूर्ण किया।[२११] चातुर्मासिक तप का नगर के बाहर पारणा कर कुंडाग-सन्निवेश और फिर मद्दनसन्निवेश पधारे। दोनों ही स्थलों पर क्रमशः वासुदेव और बलदेव के आलय (मंदिर) में स्थिर होकर ध्यान किया।

वहाँ से लोहार्गला पधारे। उस समय लोहार्गला के पड़ोसी राज्यों से कुछ संघर्ष चल रहे थे, अतः वहाँ के सभी अधिकारीगण आने जाने वाले व्यक्तियों से पूर्ण सतर्क रहते थे। परिचय के बिना राजधानी में किसी का भी प्रवेश निषिद्ध था। भगवान् से भी परिचय पूछा गया, पर वे मौन थे। [illegible] से अधिकारी उन्हें निगृहीत कर राजसभा में ले गये। वहाँ अस्थिक ग्राम से उत्पल नैमित्तिक आया हुआ था। उसने ज्यों ही भगवान् को देखा त्यों ही

उठकर वन्दन किया और बोला—"ये गुप्तचर नही, अपितु सिद्धार्थ नन्दन महावीर है, धर्मचक्रवर्ती है।" परिचय प्राप्त होते ही राजा जितशत्रु ने भगवान् और गोशालक को सत्कार पूर्वक विदा किया।[२७७]

लोहार्गला से भगवान् ने पुरिमताल नगर की ओर प्रस्थान किया। नगर के बाहर कुछ समय तक शकटमुख उद्यान मे ध्यान किया। 'वग्गुर' श्रावक ने यहाँ आपका सत्कार किया। वहाँ से उन्नाग, गोभूमि को पावन करते हुए राजगृह पधारे। वहाँ चातुर्मासिक तप ग्रहण कर विविध आसनो के साथ ध्यान करते रहे।[२७८] ऊँची-नीची और तिरछी तीनो दिशाओ मे स्थित पदार्थों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए प्रभु ने वहाँ ध्यान किया,[२७९] वही पर आठवाँ वर्षावास व्यतीत किया। नगर के बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा कर विशेष कर्मनिर्जरा करने के लिए पुन अनार्यभूमि की ओर (राढ देश की ओर) प्रयाण किया। पूर्व की भाँति ही अनार्य प्रदेश मे कष्टो से क्रीडा करते हुए कर्मों की घोर निर्जरा की। योग्य आवास न मिलने के कारण वृक्षो के नीचे खण्डहरो मे तथा घूमते-घामते वर्षावास पूर्ण किया। छह मास तक अनार्य प्रदेश मे विचरण कर पुन आर्य प्रदेश मे पधारे।[२८०]

——● तिल का प्रश्न : वैश्यायन तापस

आर्य भूमि मे प्रवेश कर भगवान् सिद्धार्थपुर से कूर्मग्राम की ओर पधार रहे थे। गोशालक भी साथ ही था। पथ मे सप्त पुष्पवाले एक तिल के लहलहाते हुए पौधे को देखकर गोशालक ने जिज्ञासा की कि 'भगवन् ! क्या यह पौधा फलयुक्त होगा ?"

समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—'यह पौधा फलवान होगा और सातो ही फूलो के जीव एक फली मे उत्पन्न होगे।' भगवान् के कथन को मिथ्या करने की दृष्टि से गोशालक ने पीछे रहकर उस पौधे को उखाड़कर एक किनारे फेक दिया।[२८१] सयोगवश उसी समय थोडी वृष्टि हुई और वह तिल का पौधा पुन. जड जमाकर खडा हो गया। वे सात पुष्प भी उक्त प्रकार से तिल की फली मे सात तिल के रूप मे उत्पन्न हुए।

भगवान् कूर्मग्राम आये। कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक तापस प्राणायामा-प्रव्रज्या स्वीकार कर सूर्यमण्डल के सम्मुख दृष्टि केन्द्रित कर दोनों हाथ ऊपर उठाये आतापना ले रहा था। आतप संतप्त होकर जटा से यूकाएँ (जुएँ) पृथ्वी पर गिर रही थी और वह उन्हें उठा-उठाकर पुन: जटा में रख रहा था। गोशालक ने यह दृश्य देखा तो, कुतूहलवश भगवान् के पास से उठ कर उस तपस्वी के निकट आया और बोला—'तू कोई तपस्वी है, या जूओं का शय्यातर? तपस्वी शान्त रहा। इसी बात को गोशालक पुन: पुन: दुहराता रहा। तपस्वी क्रोध में आ गया। वह अपनी आतापना भूमि से सात-आठ पग पीछे गया और जोश में आकर उसने अपनी तपोलब्ध तेजोलब्धि गोशालक को भस्म करने के लिए छोड़ दी। गोशालक मारे डर के भागा, और प्रभु के चरणों में छुप गया, दयालु महावीर ने शीतललेश्या से उसको प्रशान्त कर दिया। गोशालक को सुरक्षित खड़ा देखकर तापस सारा रहस्य समझ गया। उसने अपनी तेजोलेश्या का प्रत्यावर्तन किया और विनम्र शब्दों में बोलता रहा—"भगवन्! मैंने आपको जाना। मैंने आपको जान लिया।" गोशालक ने इस चमत्कारी शक्ति को प्राप्त करने की विधि पूछी। भगवान् महावीर ने उसे तेजोलेश्या की उपलब्धि की विधि बतलाई।"

भगवान् ने कुछ समय के पश्चात् पुन: वहां से सिद्धार्थपुर की ओर प्रयाण किया। तिल पौधे के स्थान पर आते ही गोशालक को अतीत की घटना की स्मृति हो आई। उसने कहा—"भगवन्! आपकी वह भविष्य वाणी मिथ्या हो गई है।' महावीर ने कहा—'नहीं, वह अन्य स्थान पर लगा हुआ जो तिल का पौधा है, वही है जिसे तूने उखाड़ कर फेंका था।' गोशालक श्रद्धाहीन था, वह तिल के पौधे के पास गया और तिल की फली को तोड़कर देखा तो सात ही तिल निकले। प्रस्तुत घटना से भी गोशालक नियतिवाद की ओर आकृष्ट हुआ। उसका यह विश्वास सुदृढ़ बन गया कि सभी जीव मर मर कर अपनी ही योनि में उत्पन्न होते हैं।"

यहां से गोशालक ने भगवान का साथ छोड़ दिया। वह श्रावस्ती गया, और 'हालाहला' नाम की कुंभारिन की भाण्डशाला में ठहर कर, और आगे

वताई विधि के अनुसार तेजोलब्धि की साधना करने लगा। यथासमय सिद्धि प्राप्त हुई। उसका प्रथम परीक्षण करने के लिए कुएँ पर गया। वहा पर जल भरती हुई एक महिला के घडे पर ककड मारा। घडा टुकडे होकर गिर पडा, पानी वह गया। महिला ने क्रुद्ध होकर गाली दी, तो गोशालक ने तेजोलेश्या से उसे वही भस्म करके ढेर वना दिया।

फिर अष्टागनिमित्त के ज्ञाता शोण, कलिन्द, कार्णीकार, अछिद्र, अग्निवेशायन और अर्जुन प्रभृति से गोशालक ने निमित्त शास्त्र का अध्ययन किया। जिससे वह सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन और मरण आदि वताने लगा और लोगो मे वचनसिद्ध नैमित्तिक हो गया। इन सिद्धियो के चमत्कार से प्रसिद्धि हुई और वह अपने आपको आजीवक सम्प्रदाय का तीर्थंकर वताकर प्रख्यात हुआ।[२८४]

भगवान् सिद्धार्थपुर से वैशाली पधारे। नगर के वाहर ध्यानस्थ मुद्रा मे भगवान् को देखकर अबोध वालको ने उन्हे पिशाच समझा। वे अनेक यातनाएँ देने लगे। अकस्मात् उस पथ से राजा सिद्धार्थ के स्नेही सखा शख नृपति निकल आये। उन्होने वालको को हटाया और स्वयं भगवान् का अभिवादन कर आगे चल दिये।[२८५]

वहा से भगवान् ने वाणिज्य ग्राम की ओर विहार किया। वीच मे गडकी नदी आती थी, उसे पार करने के लिए नौका मे वैठकर परले किनारे पहुँचे, नाविक ने भाडा मागा। पर भगवान् मौन थे। उसने क्रुद्ध होकर भगवान् को किराया न देने के कारण तप्त तवे-सी रेती पर खडा कर दिया। सयोगवश उस समय शख राजा का भगिनीपुत्र 'चित्र' वहा आ पहुँचा और उसने नाविक से भगवान् को मुक्त करवा दिया।[२८६]

वहाँ से भगवान वाणिज्यग्राम पधारे। वहाँ पर आनन्द नाम के श्रमणोपासक को अवधिज्ञान की उपलब्धि हुई थी। वह महावीर के चरणो में पहुँचा और नम्र निवेदन किया—'प्रभो! आपको शीघ्र ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा।[२८७] यहाँ पर स्मरण रखना चाहिए कि उपासकदशांग सूत्र मे वर्णित गाथापति आनन्द से यह आनन्द भिन्न है।

भगवान वाणिज्यग्राम से विहार कर श्रावस्ती पधारे। विविध प्रकार के तप व योग-क्रियाओं की साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए दसवाँ वर्षावास वहां पूर्ण किया।[188]

वर्षावास के पूर्ण होने पर 'सानुलट्ठिय सन्निवेश' पधारे और वहाँ सोलह दिन का निरन्तर उपवास किया, तथा विविध प्रक्रिया के द्वारा ध्यानमग्न होकर भद्र, महाभद्र, और सर्वतोभद्र प्रतिमाओं की आराधना करते रहे।[189]

पारणा करने के लिए भगवान् परिभ्रमण करते हुए आनन्द के यहाँ पधारे। उनकी बहुला भृत्तिका (दासी) अवशेष अन्न को बाहर फेंकने के लिए ज्योंही निकली भगवान् को द्वार पर खड़ा देखा, उसने प्रभु की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा तो प्रभु ने दोनों हाथ भिक्षा के लिए फैलाए, दासी ने भक्ति-भावना से विभोर होकर वह अवशेष अन्न प्रभु को भिक्षा में प्रदान किया, और भगवान् ने उस बासी अन्न से ही पारणा किया।[190]

● संगम के उपसर्ग

भगवान् ने वहां से दृढ़भूमि की ओर प्रस्थान किया। पेढाल गांव के सन्निकट पेढाल उद्यान में अष्टमतप कर और एक अचित्त पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित कर ध्यानस्थ हो गए।[191] भगवान् की इस अपूर्व एकाग्रता, कष्ट सहिष्णुता और अचल धैर्य को देखकर देवराज इन्द्र ने भरी सभा में गद्-गद् स्वर से प्रभु को वन्दन करते हुए कहा—"प्रभो! आपका धैर्य, आपका साहस, आपका ध्यान अनूठा है! मानव तो क्या शक्तिशाली देव और दैत्य भी आपको इस साधना से विचलित नहीं कर सकते।"[192] शक्र की भावना का सारी सभा ने तुमुल जयघोष के साथ अनुमोदन किया। किन्तु संगमदेव के अन्तर्मानस में यह बात न बैठ सकी। उसे अपनी दिव्य दैवी शक्ति पर बड़ा गर्व था। उसने विरोध किया, और भगवान को साधना मार्ग से विचलित करने की दृष्टि से देवेन्द्र का वचन ठुकरा कर वहाँ पहुँचा जहाँ भगवान् ध्यानमग्न थे। उसने आते ही उपसर्गों का जाल बिछा दिया।[193] एक के पश्चात् एक भयंकर विपत्तियों का [illegible] लगाया। जितना भी वह कष्ट दे सकता था दिया। सब में [illegible]

में पीड़ा उत्पन्न की। पर, भगवान् जब प्रतिकूल उपसर्गों से तनिक भी प्रकम्पित नही हुए तब अनुकूल उपसर्ग प्रारम्भ किए। प्रलोभन के और विषय वासना के मोहक दृश्य उपस्थित किये। गगन-मण्डल से तरुण सुन्दरियाँ उतरी, हाव-भाव और कटाक्ष करती हुई प्रभु से काम-याचना करने लगी। पर महावीर तो निष्प्रकप थे, प्रस्तरमूर्ति ज्यो, उन पर कोई असर नही हुआ। वे सुमेरु की तरह ध्यान मे अडिग रहे। एक रात भर मे वीस भयकर उपसर्ग [२९४] देने पर भी उनका मुख कुन्दन-सा चमक रहा था। मानो मध्याह्न का सूर्य हो।

पौ फटी, अधेरा छट गया, धीरे-धीरे उषा की लाली चमक उठो, और सूर्य की तेजस्वी किरणे धरती पर उतरी। महावीर ने ध्यान से निवृत्त हो आगे प्रयाण किया। यद्यपि महावीर की अदम्य-शक्ति से एक रात मे ही सगम की समस्त आशाओ पर तुषारापात हो गया था, तथापि वह धीठ प्रभु का पीछा नही छोडकर साथ रहा, और 'वालुका' 'सुभोग' 'सुच्छेत्ता' 'मलय' और हस्ती-शीर्ष आदि नगरो मे जहा भी भगवान् पधारे वहाँ, अपनी काली करतूतो का परिचय देता रहा।[२९५]

जब भगवान् तोसलि गाव के उद्यान मे ध्यानस्थ थे तब वह सगम श्रमण की वेषभूषा पहनकर गाँव में गया और घरो में सेंध लगाने लगा। पकडा जाने पर वोला—"मुझे क्यो पकडते हो ?, मैंने गुरु आज्ञा का पालन किया है। यदि तुम्हे पकडना ही है तो उद्यान मे जो ध्यान किये मेरे गुरु खडे है, उन्हे पकड़ो।" उसी क्षण लोग वहाँ आये और महावीर को पकडने लगे। रस्सियो से जकडकर गाँव मे ले जाने लगे कि महाभूतिल ऐन्द्रिजालिक ने भगवान् को पहचान लिया और लोगो को डाटते हुए समझाया। लोग सगम के पीछे दौडे तो उसका कही अतापता नही लगा।[२९६]

जब भगवान् मोसलि ग्राम पधारे तब सगम ने वहाँ पर भी भगवान् पर तस्करकृत्य का आरोप लगाया। भगवान् को पकडकर राज्य परिषद् मे ले जाया गया, तब वहाँ सम्राट् सिद्धार्थ के स्नेही-साथी सुमागद्य राष्ट्रीय (प्रान्त का अधिपति-वर्तमान कमिश्नर जैसा) वैठे थे। उन्होंने भगवान् का अभिवादन किया और वन्धन मुक्त करवाया।

वहाँ से तोसलि के उद्यान में पधारकर पुनः ध्यान किया। संगम ने चोरी कर के भारी शस्त्रास्त्र महावीर के सन्निकट लाकर रखे। लोगों ने चोर समझकर महावीर को पकड़ा। परिचय पूछा गया, पर, प्रश्न का उत्तर न मिलने से तोसलि क्षत्रिय ने छद्मवेशी श्रमण समझकर फाँसी की सजा दी। फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर गर्दन में फाँसी का फन्दा डाल दिया। और नीचे से तख्ते को हटाया। पर ज्यों ही तख्ता हटा कि फन्दा टूट गया। पुनः फंदा लगाया और पुन टूट गया। इस प्रकार सात बार फंदा टूट जाने पर सभी चकित रह गये। क्षत्रिय को सूचना दी, उसने प्रभु को कोई महापुरुष समझकर मुक्त कर दिया।

भगवान् वहाँ से सिद्धार्थपुर आये, संगम जो शिकारी कुत्ते की तरह महावीर के पीछे लगा हुआ था, वहाँ भी उसने महावीर पर चोरी का आरोप लगाकर पकड़वाया, पर कौशिक नामक घोड़े के व्यापारी ने भगवान् का परिचय देकर मुक्त करवाया।[२५७]

भगवान् वहाँ से व्रजगाव पधारे। उस दिन पर्व का पुनीत दिन होने से सब घरों में खीर बनी हुई थी। भगवान् भिक्षा के लिए पधारे। पर संगम ने सर्वत्र अनेषणीय कर दिया। भगवान् भिक्षा बिना लिए ही लौट आए।[२५८]

छह मास तक अगणित कष्ट देने के पश्चात् भी महावीर साधना पथ से विचलित नहीं हुए तो संगम का धैर्य ध्वस्त हो गया। वह हताश और निराश हो गया। उसका मुख मलिन हो गया। वह हारा हुआ भगवान् के पास आकर बोला—"भगवन्! देवराज इन्द्र ने जो आपके सम्बन्ध में कहा वह पूर्ण सत्य है। मैं भग्न प्रतिज्ञ हूँ, आप सत्य प्रतिज्ञ हैं।[२५९] अब आप प्रसन्नता से भिक्षा के लिए पधारिये। मैं किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित नहीं करूँगा।[२६०] छह मास तक मैंने अनेक कष्ट दिये हैं, जिससे आप सुखपूर्वक संयम साधना नहीं कर सके हैं। अब आनन्द के साथ साधना कीजिए, मैं जा रहा हूँ। अन्य देवों को भी मैं रोक दूँगा। वे आपको कोई कष्ट नहीं देंगे।[२६१]

संगम के कथन पर भगवान् ने कहा—'संगम! मैं किसी की [illegible] से

प्रेरित होकर या किसी के कथन को सकल्प मे रखकर तप नही करता । मुझे किसी के आश्वासन वचन की अपेक्षा नही है ।[३०२]

सगम के प्रस्थान के पश्चात् द्वितीय दिन भगवान् छह मास की कठिन तपस्या पूर्णकर व्रजग्राम मे पारणा हेतु पधारे । वहाँ वत्सपालक वृद्धा ने प्रसन्नता से प्रभु को पायस की भिक्षा दी ।[३०३]

व्रजग्राम से आलभिया, श्वेताम्बिका, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि को पावन करते हुए वैशाली पधारे और नगर के वाहर समरोद्यान मे वलदेव के मन्दिर मे चातुर्मासिक तप के साथ वर्षावास व्यतीत किया ।[३०४]

● जीर्ण की भावना पूर्ण का दान

वैशाली मे एक भावुक श्रावक जिनदत्त रहता था, उसकी सपत्ति क्षीण हो जाने से लोग उसे जीर्ण सेठ कहने लग गए । वह सामुद्रिक शास्त्र का वेत्ता था ।[३०५] भगवान् की पाद-रेखाओ के अनुसधान मे वह उसी उद्यान मे गया, वहां प्रभु को ध्यानस्थ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । अब वह प्रतिदिन भगवान् को नमस्कार करने आता और आहारादि की अभ्यर्थना करता । निरन्तर चार मास तक चातक की तरह चाहने पर भी उसकी भव्य भावना पूर्ण नही हुई । चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् भगवान् भिक्षा के लिए निकले और अपने सकल्प के अनुसार भिक्षान्वेषण करते हुए अभिनव श्रेष्ठी के द्वार पर रुके, यह नया धनी था, मूलनाम 'पूर्ण' था । श्रेष्ठी ने लापरवाही से दासी को आदेश दिया, और उसने एक चम्मच-कुलत्थ (वाकुले) दिये और भगवान ने उसी से चार माह की तपस्या का पारणा किया ।[३०६] देव दुन्दुभि वजी, पच दिव्यवृष्टि हुई, किंतु इधर जीर्ण श्रेष्ठी की प्रतीक्षा, प्रतीक्षा ही रही, वह भावना के अत्यन्त उच्च व निर्मल शिखर पर पहुँच रहा था । कहते हैं यदि दो घडी देवदुन्दुभि नही सुन पाता तो केवलज्ञान हो जाता ।

वर्षावास पूर्णकर भगवान वहाँ से सु सुमरापुर पधारे ।[३०७] शक्रेन्द्र के वज्र से भयभीत हुआ चमरेन्द्र भगवान के चरणारविन्दो मे आया और शरण-ग्रहण कर मुक्त हुआ । इसका विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र मे भगवान ने स्वय श्रीमुख से किया है ।[३०८] जो पीछे दस आश्चर्य प्रकरण मे कर चुके हैं ।

वहाँ से भोगपुर, नन्दीग्राम और मेढ़ियग्राम पधारे। वहाँ ग्वालों ने उपसर्ग दिया।[१]

——● घोर अभिग्रह

मेढ़ियग्राम से भगवान कौशाम्बी पधारे और पौष-कृष्णा प्रतिपदा के दिन एक घोर अभिग्रह ग्रहण किया—

"अविवाहित कुलीन राजकन्या हो, दासी बनकर रह रही हो, उसके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ हो, सिर मुँडा हुआ हो, तीन दिन की उपवासी हो, पके हुए उड़द के बाकुले सूप के एक कोने में लेकर भिक्षा का समय व्यतीत होने के पश्चात् जो अपलक प्रतीक्षा कर रही हो, गृहद्वार के बीच बैठी हो, एक पैर बाहर, एक भीतर हो, आँखों में आँसू हो, ऐसी राजकन्या से भिक्षा प्राप्त होगी तो लूँगा अन्यथा नहीं लूँगा।"[२]

इस प्रकार कठोरतम प्रतिज्ञा को स्वीकार करके महावीर प्रतिदिन भिक्षा के लिए कौशाम्बी में पर्यटन करते। उच्च अट्टालिकाओं से लेकर गरीबों की झोंपड़ियों तक पधारते। भावुक भक्त भिक्षा देने के लिए लपकते, पर, भगवान् बिना कुछ लिए उलटे पैरों लौट जाते। जन-जन के अन्तर्मानस में एक प्रश्न कचोट रहा था कि—इन्हें क्या चाहिए। अमात्या नन्दा के यहाँ से जब बिना कुछ लिए लौटे तो उनका मन खिन्न हो गया। वह जल रहित मीन की तरह छटपटाने लगी। अपने भाग्य की भर्त्सना करने लगी। परिचारिकाओं ने कहा—आप इतनी क्यों घबराती है। देवार्य तो आज ही नहीं चार-चार मास से बिना कुछ लिए ही इसी तरह लौट जाते हैं। जब उसने यह बात सुनी तो वह और अधिक चिन्तित हो गई। उसने अमात्य सुगुप्त से नम्र निवेदन किया कि "आप कैसे प्रधान मंत्री है, कि चार मास पूर्ण हो गये हैं, भगवान् श्री महावीर को भिक्षा उपलब्ध नहीं हो रही है। उनका क्या अभिग्रह है, पता नहीं लगा पाते हैं। यह बुद्धिमानी फिर क्या काम आयेगी।"

अमात्य को अपनी भूल का अनुभव हुआ। [illegible] आश्वासन दिया। प्रस्तुत समाचार विजया प्रतिहारी ने सुन लिया, उसने महारानी

मृगावती से निवेदन किया और मृगावती ने सम्राट् शतानीक से।[311] सम्राट और सुगुप्त नामक अमात्य ने अत्यधिक प्रयास किया, तब राजा ने प्रजा को भी नियमोपनियम का परिचय कराकर प्रभु का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी, परन्तु भगवान् का अभिग्रह पूर्ण नही हुआ। पाँच मास और पच्चीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनकी मुख मुद्रा उसी प्रकार तेजोदीप्त थी।

एक दिन अपने नियमानुसार कौशाम्बी मे परिभ्रमण करते हुए भगवान् धन्नाश्रेष्ठी के द्वार पर पहुँचे। राजकुमारी चन्दना सूप मे उड़द के बाकुले लिए हुए तीन दिन की भूखी-प्यासी द्वार के बीच वही पिता के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। दूर से ही भगवान् महावीर को आते देखकर उसका मन-मयूर नाच उठा। हृदय कमल खिल उठा। हथकडियाँ और बेडियाँ झनझना उठी। वह अपलक दृष्टि मे प्रभु को निहार रही थी कि भगवान् आए और जैसे कुछ देखकर बिना कुछ लिए ही लौटने लगे। यह देख उसकी आँखे छलछला आईं। गला रुध गया, हृदय भर गया। अवरुद्ध कंठ से ही उसने पुकारा—"प्रभो! इस अभागिनी से क्या अपराध हो गया है?" बिना कुछ लिए यो ही लौटे गए? आँखो से आँसू ढुलकते हुए देखकर भगवान् पुन लौटे और चन्दना के आगे करपात्र फैला दिया। चन्दना ने भक्ति भावना से गद्गद होकर उडद के बाकुले प्रदान किये। भीष्म प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।[312] आकाश मे देवदुन्दुभि बजी, पचदिव्य प्रगट हुए, चन्दना का रूप सौन्दर्य पहले से सौ गुना चमक उठा।

भगवान् श्री महावीर वहाँ से प्रस्थान कर सुमगल, सुच्छेत्ता, पालक, प्रभृति क्षेत्रो को पावन करते हुए चम्पानगरी पधारे और चातुर्मासिक तप से आत्मा को भावित करते हुए स्वातिदत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला मे बारहवाँ वर्षावास व्यतीत किया।[313]

भगवान् के तप पूत जीवन से प्रभावित होकर पूर्णभद्र और माणिभद्र नाम के दो यक्ष सेवा करने के लिए आते। जिसे निहार कर स्वातिदत्त को भी यह दृढ विश्वास हो गया कि यह देवार्य अवश्य ही कोई विशिष्ट ज्ञानी है। उसने भगवान् श्री महावीर से जिज्ञासा की—आत्मा क्या है?

प्रभु ने समाधान दिया—"जो 'मै' शब्द का वाच्यार्थ है। वही आत्मा है।"

स्वातिदत्त ने पुनः जिज्ञासा की—आत्मा का स्वरूप और लक्षण क्या है?

प्रभु ने समाधान दिया—'वह अत्यन्त सूक्ष्म और रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि से रहित है, तथा चेतना गुण से युक्त है।'

प्रश्न उत्पन्न हुआ—"सूक्ष्म क्या है ?"

उत्तर दिया—"जो इन्द्रियो से जाना पहचाना न जाय।"

पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत हुई कि क्या आत्मा को शब्द, रूप, गंध और पवन के सदृश सूक्ष्म समझा जाय। प्रभु ने स्पष्टीकरण किया "नही, ये इन्द्रिय-ग्राह्य हैं। श्रोत्र के द्वारा शब्द, नेत्र के द्वारा रूप, घ्राण के द्वारा गंध और स्पर्श के द्वारा पवन ग्राह्य हैं, पर जो इन्द्रिय ग्राह्य नही हो वह सूक्ष्म है।"

प्रश्न—क्या ज्ञान का नाम ही आत्मा है ?

उत्तर—ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, ज्ञान का आधार आत्मा-ज्ञानी है।

इस प्रकार की जिज्ञासाओ के समाधान से उसका मन अत्यधिक आह्लादित था।[११४]

कानो मे शलाका

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् जम्भिय ग्राम 'मिढिय ग्राम' होते हुए 'छम्माणि' पधारे और गाँव के बाहर ध्यान मुद्रा मे अवस्थित हुए। सायंकाल मे एक ग्वाला बैलो को लेकर वहाँ आया। बैलो को महावीर के पास छोडकर वह गाँव मे कार्य हेतु गया। बैल चरते-चरते आसपास की झाडियो मे छिप गए। ग्वाला लौटकर आया, बैल दिखाई नही दिए तो महावीर से पूछा, भगवान् मौन थे। क्रुद्ध होकर उसने भगवान् महावीर के कानो मे कांसे की तीक्ष्ण शलाकाएँ मार दी और उन शलाकाओ को कोई न देखले अतः उनका बाहर भाग तोड दिया। भगवान् को अत्यधिक वेदना हो रही थी पर वे समाधि मे शान्त एवं प्रसन्न थे। उनके अन्तर्मानस मे किञ्चित् भी विक्षोभ नही था।

वे चिन्तन कर रहे थे कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे हँसते हुए मैंने जो शय्या-पालक के कानो मे गर्म शीशा उडेलवाया था उसी घोर कर्म का यह प्रतिफल मुझे प्राप्त हुआ है।

वहाँ से विहार कर भगवान् मध्यमपावा पधारे। भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए सिद्धार्थ श्रेष्ठी के घर पर पहुँचे। उस समय सिद्धार्थ श्रेष्ठी वैद्य-प्रवर खरक से वार्तालाप कर रहा था। प्रतिभा सम्पन्न वैद्य ने सर्व लक्षण सम्पन्न महावीर के सुन्दर व सुडौल तन को देखकर कहा कि इनके "शरीर मे शल्य है। उसे निकालना हमारा कर्तव्य है।" वैद्य और श्रेष्ठी के द्वारा अभ्यर्थना करने पर भी भगवान् वहाँ रुके नही। वे वहाँ से चल दिये और गाँव के वाहर आकर ध्यानस्थ हो गए।

खरक वैद्य और श्रेष्ठी औषधि आदि सामग्री लेकर भगवान् को देखते-देखते उद्यान मे गये। वहाँ भगवान् ध्यानस्थ थे। उन्होंने कानो मे से शलाकाएँ निकालने के पूर्व भगवान् के शरीर का तैल से मर्दन किया और सन्डासी मे पकडकर शलाकाएँ निकाली। कानो से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो गई। कहा जाता है कि उस अतीव भयकर वेदना से भगवान् के मुँह से एक चीत्कार निकल पडी जिससे सारा उद्यान व देवकुल सभ्रमित हो गया। वैद्य ने शीघ्र ही संरोहण औषधि से रक्त को वन्द कर दिया और घाव पर लगा दी। प्रभु को नमन व क्षमायाचना कर वैद्य और श्रेष्ठी अपने स्थान पर चले आये।[३१०]

इस प्रकार भगवान् को साधना काल मे अनेक रोम-हर्षक कष्टो का सामना करना पड़ा। ताडना, तर्जना, अपमान और उत्पीडन ने प्राय पद-पद पर प्रभु की कठोर परीक्षा ली। उन सभी उपसर्गों को तीन भागो मे विभक्त करे तो जघन्य उपसर्गों मे कूटपूतना का उपसर्ग महान् था। मध्यम उपसर्गो मे सगमक का कालचक्र उपसर्ग विशिष्ट था और उत्कृष्ट उपसर्गों मे कर्णों से शलाकाए निकालना अत्यन्त उत्कृष्ट था।[३११] आश्चर्य की वात है कि भगवान् का पहला उपसर्ग भी कर्मार ग्राम मे एक ग्वाले से प्रारम्भ हुआ था, यह अन्तिम उपसर्ग भी एक ग्वाले के द्वारा उपस्थित किया गया।

इव दुद्धरिसे, मंदरो इव अप्पकंपे, सागरो इव गंभीरे; चंदो इव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधरा इव सव्वफासविसहे, सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंते ॥११७॥

अर्थ—उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर अनगार हुए। ईर्यासमिति भाषा समिति, एषणा समिति, आदानभांडमात्रनिक्षेपणा समिति, उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति, मन समिति, वचन समिति, काय समिति, मनगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारी, क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित हुए। शान्त, उपशान्त, और सभी प्रकार के सताप से मुक्त हुए। वे आश्रव रहित, ममता रहित, परिग्रह रहित, अकिंचन निर्ग्रन्थ हुए। कास्य पात्र की तरह निर्लेप हुए। जैसे शख पर किसी भी प्रकार के रग का असर नही होता वैसे ही भगवान् पर राग-द्वेष के रग का असर नहीं होता था। जीव की तरह अप्रतिहत गति वाले हुए। गगन की तरह आलवन रहित हुए, वायु की तरह अप्रतिवद्ध विहारी हुए। शरद्ऋतु के पानी की तरह उनका हृदय निर्मल हुआ। कमलपत्र की तरह निर्लेप हुए। कूर्म की तरह गुप्तेन्द्रिय हुए। महावराह के मुंह पर जैसे एक ही सीग होता है, वैसे ही भगवान् एकाकी हुए। पक्षी की तरह विप्रमुक्त हुए। भारडपक्षी की तरह अप्रमत्त हुए, हाथी की तरह शूर हुए, बैल की तरह पराक्रमी हुए, सिंह की तरह विजेता हुए, सुमेरु पर्वत की तरह अडिग, सुस्थिर हुए, सागर की तरह गभीर, चन्द्र की तरह सौम्य, सूर्य की तरह तेजस्वी, स्वर्ण की तरह कान्तिमान पृथ्वी की तरह क्षमाशील और अग्नि की तरह जाज्वल्यमान तेजस्वी हुए।

मूल :—

एतेसिं पदाणं इमातो दुन्नि संघयणगाहाओः—

कंसे संखे जीवे, गगणे वायू य सरयसलिले य।
पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारंडे ॥१॥
कुंजर वसभे सीहे, णगराया चेव सागरमखोभे।
चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव हूयवहे ॥२॥

नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधो भवति । से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु । खेत्तओ णं गामे वा नगरे वा अरण्णे वा खित्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा णहे वा । कालओ णं समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा खणे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊ वा अयणे वा संवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकाल संजोगे वा । भावओ णं कोहे वा माणे वा मायाए वा लोभे वा भये वा हासे वा पेज्जे वा दोसे वा कलहे वा अब्भक्खाणे वा पेसुन्ने वा परपरिवाए वा अरतिरती वा मायामोसे वा मिच्छादंसणसल्ले वा । (ग्रं० ६००) तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ ॥११८॥

अर्थ—इन पदों की दो संग्रह गाथाएँ हैं:—कांस्य वर्तन, शंख, जीव, आकाश, वायु, शरद् ऋतु का पानी, कमल पत्र, कूर्म, पक्षी, महावराह, भारण्ड पक्षी, हस्ती, वृषभ सिंह, पर्वतराज सुमेरु, सागर, चन्द्र, सूर्य, सुवर्ण पृथ्वी, और अग्नि ।

उन भगवान् को कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था, वे अप्रतिबद्ध विहारी थे । प्रतिबंध चार प्रकार का होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से । द्रव्य से—सचित्त, अचित्त और मिश्र । क्षेत्र से—गाम, नगर, अरण्य, खेत, खलिहान गृह, आंगन और आकाश । काल से—समय, आवलिका, आन प्राण, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, महिना ऋतु, अयन, वर्ष, अथवा दूसरा कोई भी दीर्घ काल का संयोग, ऐसा किसी भी प्रकार का सूक्ष्म या स्थूल, लघु या दीर्घ काल का बंधन नहीं होना । भाव से—क्रोध मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति, माया मृषावाद मिथ्यादर्शन शल्य । वे इन सभी प्रकार के प्रति बन्धनों से मुक्त हुए ।

मूल :—

से णं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे गामे

नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधो भवति । से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ । दव्वओ णं सच्चित्ताचित्तमीसिएसु दव्वेसु । खेत्तओ णं गामे वा नगरे वा अरण्णे वा खित्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा णहे वा । कालओ णं समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा खणे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊ वा अयणे वा संवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकाल संजोगे वा । भावओ णं कोहे वा माणे वा मायाए वा लोभे वा भये वा हासे वा पेज्जे वा दोसे वा कलहे वा अब्भक्खाणे वा पेसुन्ने वा परपरिवाए वा अरतिरती वा मायामोसे वा मिच्छादंसणसल्ले वा । (ग्रं० ६००) तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ ॥११८॥

अर्थ—इन पदों की दो संग्रह गाथाएं हैं.—कांस्य वर्तन, शंख, जीव, आकाश, वायु, शरद् ऋतु का पानी, कमल पत्र, कूर्म, पक्षी, महावराह, भारण्ड पक्षी, हस्ती, वृषभ सिंह, पर्वतराज सुमेरु, सागर, चन्द्र, सूर्य, सुवर्ण पृथ्वी, और अग्नि ।

उन भगवान् को कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था, वे अप्रतिबद्ध विहारी थे । प्रतिबंध चार प्रकार का होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से । द्रव्य से—सचित्त, अचित्त और मिश्र । क्षेत्र से—गांव, नगर, अरण्य, खेत, खलि-हान गृह, आंगन और आकाश । काल से—समय, आवलिका, श्वास प्राण, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, महीना ऋतु, अयन, वर्ष, अथवा दूसरा कोई भी दीर्घ काल का संयोग, ऐसा किसी भी प्रकार का सूक्ष्म या स्थूल, लघु या दीर्घकाल का बंधन नहीं होता । भाव से—क्रोध मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरती, माया मृषावाद मिथ्यादर्शन शल्य । वे इन सभी प्रकार के प्रतिबन्धों से मुक्त थे ।

मूल :—

से णं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे गामे

एगराईए नगरे पंचराईए वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिलेट्ठुकंचणे समदुक्खसुहे इहलोगपरलोगअपडिबद्धे जीवियमरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंगनिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरइ ॥११९॥

अर्थ–भगवान् वर्षावास के समय के अतिरिक्त ग्रीष्म और हेमन्त ऋतु मे आठ मास तक विचरण करते थे। गांव मे एक रात्रि और नगर मे पाच रात्रि से अधिक नही रहते थे। बसूला और चन्दन के स्पर्श मे भी समान सकल्प वाले, तृण एव मणि मे लोष्ट और सुवर्ण इन सभी के प्रति समान वृत्ति वाले, दु:ख और सुख को एक भाव से सहन करने वाले, इहलोक और परलोक के प्रतिबध से रहित, जीवन और मरण की आकांक्षा से मुक्त हो ससार को पार करने वाले, कर्म और सग को नाश करने वाले सम्यक् प्रकार से उद्यमवत बने, तत्पर हुए इस प्रकार विहार करते हैं।

विवेचन—उपर्युक्त चार सूत्रो मे भगवान महावीर के साधक जीवन की आँतरिक मन स्थिति का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्होने वज्र सकल्प किया—कि भविष्य मे मुझे जो भी घोरातिघोर उपसर्ग उपस्थित होगे, उन्हे अविचल धैर्य एव मनोवल के साथ विजय करूँगा—वज्र सकल्प ही साधक जीवन का विजय सकल्प है।

हाथी, सिह, वृषभ, सुमेरु एव पृथ्वी की उपमा के द्वारा उनके अनन्त पराक्रम एव मनोवल का परिचय कराया गया है तथा शख, शरद् सलिल कमल पत्र, महावराह, वायु आदि की उपमा से भगवान की आंतरिक पवित्रता, नि:संगता तथा अप्रतिवद्धता का दिग्दर्शन हुआ है। वस्तुत: उनका मनोवल एवं जीवन की उज्ज्वलता तो अनुपमेय थी।

श्रमण भगवान् महावीर पक्के घुमक्कड थे। एक स्थान पर दीर्घकाल तक स्थिर होकर रहना उन्हे पसन्द नही था। वर्षावास में जीवो की रक्षा के लिए चार मास तक एक स्थान पर रुकते थे और आठ मास तक घूमते हुए साधना करते थे। भगवान् को साधना काल मे अनेक उपसर्ग आये।

परन्तु भगवान् उपसर्गों में सर्वदा शान्त रहे, कभी भी उन्होंने रोष और द्वेष नही किया, विरोधियों के प्रति भी उनके हृदय मे स्नेह का सागर उमड़ता रहा। वर्षा मे, सर्दी मे, धूप मे, छाया मे, आँधी और तूफानों मे भी उनका साधना-दीप जगमगाता रहा। देव-दानव-मानव और पशुओ के द्वारा भीषण कष्ट देने पर भी अदीनभाव से, अव्यथित मन से, अम्लान चित्त से, मन वचन और काया को वश मे रखते हुए सब कुछ सहन किया। वे वीर सेनानी की भाँति निरन्तर आगे बढ़ते रहे, कभी पीछे कदम नही रखा।[११७]

निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु का मन्तव्य है कि अन्य तीर्थंकरो की अपेक्षा महावीर का तपः कर्म अधिक उग्र था। 'जैसे समुद्रो मे स्वयभूरमण श्रेष्ठ है, रसो मे इक्षुरस श्रेष्ठ है, उसी प्रकार तप उपधान मे मुनि वर्धमान जयवन्त श्रेष्ठ हैं।'[११८]

भगवान ने बारह वर्ष और तेरह पक्ष की लम्बी अवधि मे केवल तीन सौ उनपचास दिन आहार ग्रहण किया। शेष दिन निर्जल और निराहार रहे।[११९]

सक्षेप मे भगवान का छद्मस्थकाल का तप इस प्रकार है—[१२०]

एक छः मासी तप,
एक पाँच दिन न्यून छ मासी
नौ चातुर्मासिक
दो त्रिमासिक
दो सार्ध द्विमासिक
छह द्विमासिक
दो सार्ध मासिक
बारह मासिक
बहत्तर पाक्षिक
एक भद्र प्रतिमा, (दो दिन)
एक महाभद्र प्रतिमा (चार दिन)
एक सर्वतोभद्र प्रतिमा (दस दिन)

दो सौ उनतीस छट्ठभक्त

बारह अष्टमभक्त

तीन सौ उन पच्चास दिन पारणे के ।

एक दिन दीक्षा का ।

आचारांग के अनुसार दशमभक्त आदि तपस्याएँ भी भगवान ने की थी ।[३२१]

——• केवल ज्ञानोत्पत्ति

मूल :—

तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं अणुत्तरेणं वीरिएणं अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए गुत्तीए अणुत्तराए तुट्ठीए अणुत्तरेणं सच्चसंजमतवसुचरिय सोवचइयफल-परिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं। तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीए पक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उज्जुवालियाए नईए तीरे वियावत्तस्स चेईयस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालापायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुयनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१२०॥

अर्थ—इस प्रकार विचरण करते-करते अनुपम उत्तम ज्ञान, अनुपम दर्शन, अनुपम संयम, अनुपम निर्दोष वसति, अनुपम विहार, अनुपम वीर्य, अनुपम सरलता, अनुपम कोमलता, (नम्रता) अनुपम अपरिग्रह भाव, अनुपम क्षमा अनुपम अलोभ, अनुपम गुप्ति, अनुपम प्रसन्नता, अनुपम सत्य, संयम, तप आदि सद्गुणों का सम्यक् आचरण करने से, जिनसे कि निर्वाण का मार्ग अर्थात् सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र पुष्ट बनते हैं तथा जिन सद्गुणों से मुक्ति का लाभ अत्यन्त सन्निकट आता है, उन सभी सद्गुणों से आत्मा को भावित करते हुए भगवान् को बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। तेरहवें वर्ष का मध्यभाग अर्थात् ग्रीष्म ऋतु का द्वितीय मास और चतुर्थ पक्ष चलता है, वह चतुर्थ पक्ष, अर्थात् वैशाख मास का शुक्ल पक्ष, उस वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन जब छाया पूर्व की ओर ढल रही थी, पिछली पौरसी पूर्ण हुई, जब सुव्रत नामक दिन था, विजय नामक मुहूर्त था, तब भगवान् जृंभिका-ग्राम के बाहर, ऋजुबालिका नदी के किनारे एक खण्डहर जैसे पुराने चैत्य [1] से न अत्यधिक सन्निकट और न अत्यधिक दूर ही श्यामाक नामक गृहपति के खेत में शाल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन से अवस्थित थे। आतापना द्वारा तप कर रहे थे। छट्ठम तप था। जिस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आया, भगवान् ध्यानान्तरिका में मग्न थे। उस समय भगवान् को अन्तरहित उत्तमोत्तम, व्याघातरहित, आवरण रहित, समग्र व परिपूर्ण ऐसा केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

मूल :—

तए णं से भगवं अरहा जाए जिणे केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणइ पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणो माणसियं भुत्तं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं अरहा-अरहस्सभागी तं तं कालं मणवयणकायजोगे वट्टमाणाणं सव्व-जीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१८१॥

अर्थ—उसके पश्चात् भगवान् अर्हत् हुए, जिन केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। अब भगवान् देव मानव और असुर सहित लोक मे सम्पूर्ण पर्याय जानते हैं, देखते हैं। सम्पूर्ण लोक मे सभी जीवों के आगमन, गमन, स्थिति, च्यवन, उपघात, उनका मानसिक सकल्प, भोजन, प्रभृति सभी श्रेष्ठ और कनिष्ठ प्रवृत्तियाँ, चाहे वे (आवीकम्म) प्रकट हैं, या (रहोकम्म) अप्रकट हैं—उन्हे भगवान् जानते हैं। भगवान् अर्हत् हुए अतः उनसे अब कोई भी रहस्य छिपा हुआ नही है, अरहस्य के भागी हुए—उनके समीप करोडों देव सेवा मे सलग्न रहने के कारण अब एकान्त मे रहने की स्थिति नही रही। इस प्रकार अर्हत् हुए, भगवान् उस काल मे मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियो मे रहते हुए समग्र लोक के, समस्त जीवो के, सम्पूर्ण भावो को जानते हुए, देखते हुए विचरते हैं।

विवेचन—मध्यम पावा से प्रस्थान कर भगवान् जभियग्राम के निकट ऋजुबालिका सरिता के उत्तर तट पर साधना मे लीन हुए। साधना मे बारह वर्ष पूर्ण हो चुके थे। तेरहवाँ वर्ष चल रहा था।[322] वैशाख मास था, शुक्ला दशमी के दिन का अन्तिम प्रहर था। भगवान् सघन शालवृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन से आतापना ले रहे थे। आत्म-मथन चरम सीमा पर पहुँच रहा था, आत्मा पर से घनघाति कर्मों का आवरण हटा। साधना सफल हुई, केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हुआ। भगवान् अब जिन और अरिहन्त बन गये। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये।

ऐसा एक शाश्वत नियम है कि जिस स्थान पर केवलज्ञान की उपलब्धि होती है वहा पर तीर्थंकर एक मुहूर्त तक ठहरते हैं। भगवान् भी एक मुहूर्त तक वहाँ ठहरे।[323]

भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देवगण आए, समवसरण की रचना की। पर, देवता सर्वविरति के योग्य न होने के कारण भगवान् ने एक क्षण ही उपदेश दिया। वहा पर मनुष्य की उपस्थिति नही थी, अत किसी ने भी विरतिरूप धर्म-चारित्र-धर्म स्वीकार नही किया। इस प्रकार की घटना जैनागमो में एक आश्चर्य के रूप मे उट्टङ्कित की गई है।

—— • इन्द्रभूति

उन दिनो मध्यमपावापुरी मे सोमिलार्य नामक धनाढ्य ब्राह्मण अपने यहा एक विराट् यज्ञ का आयोजन कर रहा था। उस यज्ञ में भाग लेने के लिए भारत के जाने-माने चोटी के क्रियाकाण्डी विद्वान् और आचार्य आए हुए थे। इनमे इंद्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन विद्वान् चौदह विद्याओ के पारंगत थे। प्रत्येक के साथ पांच-पांच सौ शिष्य (छात्र) थे। तीनो ही गौतम गोत्रीय व मगध जनपद के गोवरग्राम के निवासी थे।

व्यक्त और सुधर्मा नाम के दो विद्वान् कोल्लाग-सन्निवेश मे आये थे। व्यक्त भारद्वाज गोत्रीय थे और सुधर्मा अग्नि-वैश्यायन। इनके साथ भी पांच-पाच सौ छात्र थे।

उस यज्ञ मे मडित व मौर्यपुत्र—ये दो विद्वान मौर्य सन्निवेश मे आए थे। मडित वासिष्ठ गोत्र के एव मौर्यपुत्र काश्यप गोत्र के थे। दोनो के साथ भी ३५०-३५० शिष्य थे।

अकम्पित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास नाम के चार अन्य विद्वान भी उस सभा मे थे। जो क्रमश मिथिला के गौतम गोत्रीय, कोशल के हारित गोत्रीय, तुंगिक (कौशाम्बी) के कौडिन्य गोत्रीय एवं राजगृह के कौडिन्य गोत्रीय थे। इन सभी विद्वानो के मन मे एक-एक शंका भी छुपी हुई थी।[१२४] ये ग्यारह विद्वान् उन सभी विद्वानो मे प्रमुख थे।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने देखा मध्यम पावापुरी का प्रस्तुत प्रसंग अपूर्व लाभ का कारण है। भारत के मूर्धन्य मनीषी विज्ञगण भी अज्ञानान्धकार मे भटक रहे है, साथ ही दूसरो को भी अज्ञानान्धकार मे ढकेल रहे है। ये बोध प्राप्त करेंगे तो हजारो प्राणियो को सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकते है।

भगवान् महावीर जृम्भिक ग्राम से विहार कर मध्यम पावापुरी में पधारे। देवताओ ने समवसरण की रचना की। विशाल मानव मेदिनी एकत्रित हुई। सुर और असुर सभी उपदेश सुनने के लिए उपस्थित हुए। महावीर की मेघ-गम्भीर गर्जना सुनकर सभी के मन-मयूर नाच उठे। जन-जन की जिह्वा पर

महावीर की सर्वज्ञता की चर्चा होने लगी। आकाशमार्ग से आते हुए देवगणो को देखकर पंडितो ने सोचा-'हमारे यज्ञ से आकृष्ट हुए देवगण आरहे है।' किन्तु जब उन्हे सीधे ही आगे निकल जाते देखा और पार्श्वस्थित भगवान् महावीर के समवशरण मे उतरते देखा तो निराशा के साथ आश्चर्य हुआ। इन्द्रभूति को ज्ञात हुआ कि आज यहाँ पर सर्वज्ञ महावीर आये हैं, तो उन्हे अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य पर आच आती-सी लगी। सोचा—चलकर देखूँ महावीर कैसा ज्ञानी है? मेरे सामने वह कितने समय तक टिक सकता है। आज तक कोई भी विद्वान् मुझे पराजित नही कर सका है। भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरी कीर्ति-कौमुदी चमक रही है। आज महावीर से भी शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित करूँ।

सर्वशास्त्र पारगत इन्द्रभूति अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ शास्त्रार्थ के लिए प्रस्थित हुए। प्रभु की तेजोदीप्त मुखमुद्रा ने पहले ही क्षण इन्द्रभूति को प्रभावित कर दिया। महावीर ने ज्यो ही उन्हे 'गौतम!' कहकर सम्बोधित किया त्यो ही वह स्तम्भित-से रह गए। विचारा—"मेरी लोक व्यापिनी ख्याति के कारण ही इन्हे मेरे नाम का पता है।' पर जब तक ये मेरे अन्तर के सशयो का छेदन नही कर देते तब तक मैं इन्हे सर्वज्ञ नही मान सकता।" गौतम के मानस मे सकल्प की उधेड़बुन चल ही रही थी कि महावीर ने कहा—"गौतम! चिरकाल से आत्मा के अस्तित्त्व के सम्बन्ध मे तुम शकाशील हो?"

इन्द्रभूति अपने अन्तर्लीन प्रश्न को सुनकर चकित व प्रमुदित हुए। उन्होंने कहा—"हाँ मुझे इस विषय मे शका है, क्योकि **"विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्ति।"** प्रभृति श्रुति वाक्य भी प्रस्तुत कथन का समर्थन करते हैं। भूत समुदाय से ही चेतना की उत्पत्ति होती है और उसी मे वह पुन तिरोहित (लीन) हो जाती है। अत परलोक का अभाव है। भूत समुदाय से ही जब विज्ञानमय चैतन्य का प्रादुर्भाव होता है तो भूतसमुदाय के अतिरिक्त पुरुष का अस्तित्व कैसे सभव है?

महावीर—इन्द्रभूति ! तुम्हें यह भी तो ज्ञात है न कि वेद में पुरुष के अस्तित्व की भी सिद्धि होती है ?

इन्द्रभूति—"हाँ, "स वै अयमात्मा ज्ञानमय." प्रभृति श्रुतिवाक्य आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। इन परस्पर विरोधी विधानों के कारण ही तो यह शंका उत्पन्न होती है कि किस वाक्य को प्रामाणिक माना जाय।"

महावीर—इन्द्रभूति ! जैसा तुम "विज्ञानघन" श्रुतिवाक्य का अर्थ समझ रहे हो वस्तुतः वैसा अर्थ नहीं है। तुम विज्ञानघन का अर्थ भूत समुदायोत्पन्न 'चेतनापिण्ड' करते हो, किन्तु 'विज्ञानघन' का सही अर्थ विविध ज्ञान-पर्यायों से है। आत्मा में प्रतिपल प्रतिक्षण-नित्य-नवीन ज्ञान पर्यायों का आविर्भाव होता है और पूर्वकालीन ज्ञानपर्यायों का विनाश होता है। जब एक पुरुष घट को देख रहा है, उसका चिन्तन और मनन कर रहा है उस समय आत्मा में घटविषयक ज्ञानोपयोग समुत्पन्न होता है। उसे हम घटविषयक ज्ञानपर्याय कहते हैं। जब वही पुरुष घट के बाद पट आदि अन्य पदार्थों को निहारता है तब उसे पट आदि का ज्ञान होता है और पूर्वकालीन घट ज्ञान पर्याय विनष्ट हो जाता है। विविध पदार्थ विषयक ज्ञान के पर्याय ही विज्ञानघन (विविध पर्यायों का पिण्ड) हैं, जिनकी उत्पत्ति भूतों के निमित्त से होती है। यहाँ भूत शब्द का अर्थ पृथिव्यादि पञ्च भूत नहीं, अपितु प्रमेय है—जड़ और चेतन आदि समस्त ज्ञेय पदार्थ हैं।"

सभी ज्ञेय पदार्थ आत्मा में अपने स्व-स्वरूप से प्रतिभासित होते हैं। जैसे घट-घट रूप से और पट-पट रूप में। ये विभिन्न प्रतिभास ही ज्ञानपर्याय हैं। भिन्न-भिन्न ज्ञेयों के निमित्त से विज्ञानघन (ज्ञानपर्याय) उत्पन्न होते हैं और उस क्रम से वे पर्याय नष्ट हो जाते हैं।

'न प्रेत्यसंज्ञास्ति' वाक्य का अर्थ 'परलोक नहीं' ऐसा नहीं, अपितु पूर्व-पर्याय की सत्ता नहीं, ऐसा है। जब पुरुष में उत्तर कालिक ज्ञान पर्याय समुत्पन्न होता है तब पूर्वकालीन ज्ञानपर्याय विनष्ट हो जाता है, क्योंकि किसी भी प्रकार का हुआ भी ज्ञानपर्याय के समक्ष पूर्वपर्याय की सत्ता नहीं रह सकती। अतः 'न प्रेत्य संज्ञास्ति' कहा है।

भगवान् महावीर के तर्क प्रधान वेदवाक्यो के अर्थ–समन्वय को सुनकर गौतम के हृदय की गाठ खुल गई। मिथ्या ज्ञान का नशा उतर गया। मानसिक सदेह का निराकरण हो गया। वे श्रद्धा गद्‌गद् हो गये। प्रभु के चरणों मे झुक गये। परम सत्य का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये। पाँच सौ शिष्यो के साथ भगवान् महावीर के शिष्य वन गये।

——● अग्निभूति

इन्द्रभूति की प्रव्रज्या के समाचार सुनकर अग्निभूति अपने शिष्यों सहित शास्त्रार्थ के लिए आए। अग्निभूति के मन पर "**पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नैजति यद्दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य वाह्यतः।**[३२५] प्रभृति श्रुतिवाक्यों की छाप थी। वे पुरुषाऽद्वैतवादी थे। किन्तु "**पुण्यः पुण्येन, पापः पापेनः कर्मणा**" आदि विरोधी वचनो से पुरुषाऽद्वैतवाद मे शकाशील थे।

भगवान् महावीर ने वैदिक वाक्यो के समन्वय से द्वैत की सिद्धि कर उनके सशयो का उच्छेद किया, वे भी प्रतिबोध पाकर छात्र मडली सहित प्रव्रजित हुए।

——● वायुभूति

अग्निभूति के प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् वायुभूति शास्त्रार्थ के लिए चले। उनके दार्शनिक विचारो का झुकाव "तज्जीवतच्छरीवादी" नास्तिकमत की ओर था। '**विज्ञानघन एवैतेभ्योः** 'प्रभृति श्रुतिवाक्यो को वे अपने मत का समर्थक मानते थे। किन्तु दूसरी ओर "**सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो यं पश्यन्ति धीरा यतय संशतात्मानः**"[३२६] प्रभृति उपनिषद् वाक्यो से देहातिरिक्त आत्मा की सिद्धि होती थी। यह द्विविध वेदवाणी वायुभूति की शंका का कारण थी। भगवान् महावीर ने शरीरातिरिक्त आत्मतत्त्व का विश्लेपण कर शकाओ का समाधान किया। पाँच सौ शिष्यो के साथ उन्होने भी प्रव्रज्या ग्रहण की।

● आर्य व्यक्त

उसके पश्चात् आर्य व्यक्त आये। 'स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरञ्जसा विज्ञेय' इत्यादि श्रुतिवाक्यों में वे ब्रह्मवाद की ओर झुके हुए थे। किन्तु 'द्यावापृथिवी' तथा 'पृथिवीदेवता, आपो देवता' इत्यादि वचनों से दृश्य जगत् को भी मिथ्या नहीं मान सकते थे। इन द्विविध वेदवाणी से वे भी शंकाशील थे। भगवान् महावीर ने उनकी प्रच्छन्न शंका का वेदपदों के समन्वय पूर्वक द्वैत की सिद्धि कर समाधान किया। समाधान होते ही वे भी छात्रगण सहित प्रव्रजित हुए।

● सुधर्मा

उसके पश्चात् सुधर्मा आये। 'पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्'[32] आदि श्रुति वचनों से सुधर्मा की विचारधारा जन्मान्तरसादृश्यवाद की ओर थी, किन्तु "शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते" आदि वाक्यों से वे जन्मान्तर के वैसादृश्य का खण्डन नहीं कर सकते थे। इन विविध वेद वचनों में वे शंका-ग्रस्त थे। भगवान् महावीर ने प्रस्तुत वेदवाक्यों का सुन्दर समन्वय कर सुधर्मा की शंकाओं का निराकरण किया। समाधान होते ही वे भी प्रव्रजित हुए।

● मण्डित

उनके पश्चात् मण्डित शास्त्रार्थ के लिए आये। वे सांख्यदर्शन के समर्थक थे। "स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष बाह्यमभ्यंतरं वा वेद" आदि श्रुतिवाक्य उनके मन्तव्य की पुष्टि के लिए थे। परन्तु इसके विपरीत 'न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसन्तं प्रियाऽप्रिये न स्पृशत'[33] इन श्रुतिवाक्य से वे बन्ध और मोक्ष के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी विचार करने लगते थे। किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहे थे। भगवान् ने वेद वाक्यों का समन्वय कर आत्मा का [illegible] सिद्ध किया। समाधान होने पर साढ़े तीन सौ छात्रों के साथ प्रव्रज्या ली।

● मौर्यपुत्र

उसके पश्चात् मौर्यपुत्र आये। "को जानाति मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्र-

यमवरुणकुवेरादीन्" इत्यादि श्रुति वाक्यो से देवताओ व स्वर्गलोक के अस्तित्व के सम्बन्ध मे शङ्का थी और इधर "**स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति**" व '**अपाम सोममृता अभूम अगमन् । ज्योतिः अविदाम देवान्, किं नूनमस्मांस्तृणवदराति , किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य**'[329] इन वेद वाक्यो से स्वर्ग और देवताओ का अस्तित्व सिद्ध होता था । भगवान् महावीर ने देवो का अस्तित्व सिद्ध कर मौर्यपुत्र के सशय का समाधान किया । समाधान होते ही तीन सौ पचास छात्रो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की ।

——● **अकम्पित**

उसके पश्चात् अकम्पित आये । उन्हे "**न ह वै प्रेत्य नरके नारका सन्ति**" इस श्रुति वाक्य से नरक और नारकजीवो के अस्तित्व के सम्बन्ध मे शका हुई । पर "**नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति,** इस वाक्य से नारको का अस्तित्व भी सिद्ध होता था । इन द्विविध वेद वचनो से वह शंकाग्रस्त थे । भगवान् महावीर ने वेद वाक्यो का समन्वय कर उनकी शका का समाधान किया । तीन सौ छात्रो के साथ उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की ।

——● **अचलभ्राता**

उसके पश्चात् अचलभ्राता आये, उन्हे "**पुरुष एवेदं ग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य उतामृतत्वस्येशानो**' आदि श्रुतिवाक्यो से केवल पुरुप का अस्तित्व ही सिद्ध होता है, पुण्य पाप का अस्तित्व नही । किन्तु दूसरी तरफ '**पुण्यः पुण्येन, पाप. पापेन कर्मणा**'[330] आदि वचन पुण्य पाप के अस्तित्व को भी सिद्ध करते है । इस सम्वन्ध मे शका थी । भगवान् ने पुण्य पाप का अस्तित्व सिद्धकर शका का समाधान किया । तीन सौ छात्रो के साथ उन्होने भी प्रव्रज्या ग्रहण की ।

——● **मेतार्य**

उमके पश्चात् शास्त्रार्थ के लिए मैतार्य आए । उन्हे '**विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य**' आदि वेदवाणी से पुनर्जन्म के सम्वन्ध मे शका थी । पर साथ ही '**नित्यं ज्योतिर्मयं** ' आदि से आत्मा की समिद्धि ओर '**शृगालो वै एष जायते**'

आदि से पुनर्जन्म ध्वनित होने से वे दृढ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। भगवान् ने वेद वाक्यों का सही अर्थ समझाते हुए पुनर्जन्म की सत्ता प्रमाणित की। समाधान होते ही तीन सौ छात्रों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की।

प्रभास

उसके पश्चात् प्रभास आए। उन्हें आत्मा की मुक्ति के सम्बन्ध में संशय था। और उसे बल मिला था 'जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम्' उस वाक्य से। किन्तु 'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च, तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस वाक्य से आत्मा की बद्ध और मुक्त दोनों अवस्थाओं का प्रतिपादन होता था। जिससे आत्म-निर्वाण के सम्बन्ध में प्रभास शंकाशील थे। भगवान् महावीर ने उन वेद वाक्यों का सही अर्थ समझाया। समाधान होते ही वे भी अपने तीन सौ छात्रों के साथ प्रव्रजित हो गए।

तीर्थ स्थापना

इस प्रकार मध्यमपावापुरी के एक ही प्रवचन में ४४११ वेदविज्ञ ब्राह्मणों ने भगवान् महावीर के पास श्रमण धर्म को स्वीकार किया।

इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् भगवान् के प्रमुख शिष्य बने और वे गणधर के महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुए।

आर्या चन्दनबाला, जिनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है, उस समय कौशाम्बी में थी। देवगणों को गगन मार्ग से जाते हुए देखकर वह समझ गई कि भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। उनके हृदय में दीक्षा ग्रहण करने की अत्युत्कट भावना उद्बुद्ध हुई। देवगण उनके दीक्षा लेने के दृढ संकल्प को देखकर वहाँ से भगवान् के समवसरण में लाये। भगवान् को वन्दन कर दीक्षा की भावना अभिव्यक्त की। भगवान् ने दीक्षा देकर उन्हें साध्वी-समुदाय की प्रमुखा बनाई।

सैकड़ों नर-नारियों ने भगवान् के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचन को सुनकर श्रमण धर्म स्वीकार किया और जो उस [illegible] पर

बढने मे असमर्थ थे उन्होने श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका के व्रत ग्रहण किये। ये सभी सघ मे सम्मिलित हुए।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन मध्यम पावापुरी के महासेन नामक उद्यान मे श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ—तीर्थ की सस्थापना की। तीर्थ की स्थापना करने से तीर्थंकर नाम की भाव रूप से सार्थकता हुई।[३३५]

भगवान् ने '**उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा**' की त्रिपदी के माध्यम से द्वादशाङ्गी के गहन ज्ञान की कुञ्जी इन्द्रभूति प्रभृति गणधरो को सोंपी। गणधरो ने उस त्रिपदी के आधार पर द्वादशाङ्गी की रचना की। सात गणधरो की वाचना पृथक्-पृथक् थी, अकम्पित और अचलभ्राता की एक तथा मेतार्य एव प्रभास गणधर की एक थी। इसलिए गणधर ग्यारह होते भी गण नौ कहलाए।[३३६]

भगवान् ने वहाँ से फिर राजगृह आदि की ओर विहार किया।

● पार्श्वनाथ परम्परा का मिलन

भगवान् के प्रभावशाली प्रवचनो से प्रभावित होकर भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणोपासक एव श्रमण भी भगवान् महावीर की ओर आकर्षित हुए। उत्तराध्ययन सूत्र मे पार्श्वापत्य केशीकुमार और गणधर गौतम का बोधप्रद सवाद है। राजगृह मे केशीकुमार श्रमण एव गणधर गौतम का ऐतिहासिक सवाद और फिर उनका पारस्परिक समाधान एव मिलन वस्तुत निर्ग्रन्थ परम्परा मे एक नया मोड था। केशीकुमार पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म के स्थान पर पचमहाव्रत रूप धर्म को स्वीकार करते है।[३३७]

वाणिज्यग्राम मे भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी गागेय अनगार और भगवान् महावीर के बीच महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हुए। भगवान् महावीर को सर्वज्ञ सर्वदर्शी समझ संघ मे सम्मिलित हुए।[३३८] निर्ग्रन्थ उढक पेढालपुत्र का गौतम के साथ संवाद हुआ और वह भी महावीर के सघ मे सम्मिलित हुए।[३३९]

स्थविरों ने कालस्यवेषि को महावीर के दर्शन का परिचय दिया, परिचय प्राप्त कर वे भी महावीर के शासन में आए।[३८]

भगवान् महावीर की परिषद् में अन्यतीर्थिक सन्यासी भी उपस्थित होते थे। आर्य स्कन्दक[३९], अम्बड[A], पुद्गल[B] और शिव[C] आदि परिव्राजकों ने भगवान् से अनेक प्रश्न किये और समाधान पाकर भगवान के शिष्य बने।

भगवान् महावीर गहन से गहन प्रश्नों को भी अनेकान्त दृष्टि से शीघ्र ही सुलझा देते थे। सोमिल ब्राह्मण[D], तुंगियानगरी के श्रमणोपासक[E] राजकुमारी जयन्ती[F], माकन्दी[G] रोह[H] पिङ्गल आदि के प्रश्नों के उत्तर इस बात के स्पष्ट प्रतीक है।

भगवान् के उपदेश से आठ राजाओं ने राज्यश्री को छोड़कर संयम ग्रहण किया था। (१) वीरांगक, (२) वीरयश, (३) संजय,[४०] (४) एणेयक (५) सेय[A], (६) शिव[B], (७) उदयन, (८) शंख[C] काशीवर्धन[४१]।

मगधाधीश सम्राट् श्रेणिक के अभयकुमार आदि अनेक पुत्रों ने भगवान् के पास संयम लिया[४२]। श्रेणिक की सुकाली, महाकाली, कृष्णा आदि दस रानियों ने भी प्रव्रज्या ली।[४३]

धन्ना[४४] और शालिभद्र[४५] जैसे धनकुबेरों ने भी संयम मार्ग स्वीकार किया। आर्द्रकुमार[४६] जैसे आर्येतर जाति के युवकों ने और हरिकेशी[४७] जैसे चाण्डाल जातीय मुमुक्षुओं ने और अर्जुनमालाकार[४८] जैसे हत्यारों ने भी अपनी वृत्तियों में उत्क्रान्ति करके भगवान् के श्रमण संघ में स्थान पाया था।

वैशाली गणराज्य के प्रमुख महाराजा चेटक महावीर के मुख्य श्रावक थे।[४९] उनके छहों जामाता[५०] उदायन, दधिवाहन, शतानीक, चन्द्रप्रद्योत, नन्दिवर्धन तथा श्रेणिक और नौ मल्लवी और नौ लिच्छवी ये अठारह गणनरेश भी भगवान के परम भक्त थे।[५१] भगवान ने स्त्री पुरुष, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, आर्य-अनार्य आदि सभी को बिना किसी भेद भाव के अपने धर्म-तीर्थ में स्थान दिया और [illegible] [illegible] से सभी मुमुक्षुओं के लिए धर्म-साधना का समान द्वार खोल दिया।

——● भगवान के वर्षावास

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए ! चंपं च पिट्ठिचंपं च निस्साए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए। वेसालिं नगरिं वाणियगामं च निस्साए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए। रायगिहं नगरं नालंदं च बाहरियं निस्साए चोद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए। छ म्मिहिलाए दो भद्दियाए एगं आलंभियाए एगं सावत्थीए एगं पणीयभूमिए एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसहाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए।१२२।

अर्थ—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने अस्थिक ग्राम की निश्राय (आश्रय लेकर) मे वर्षावास किया। अर्थात् भगवान् का प्रथम वर्षावास अस्थिक ग्राम मे हुआ। चम्पानगरी मे और पृष्ठचम्पा मे भगवान् ने तीन चातुर्मास किये। वैशाली नगरी मे और वाणिया ग्राम मे भगवान् बारह बार चातुर्मास्य करने के लिए आये थे। राजगृह मे और उसके बाहर नालदापाडा मे भगवान् चौदह बार चातुर्मास करने के लिए आये थे। मिथिला नगरी मे भगवान् छह बार चातुर्मास करने के लिए आये थे। भद्दिया नगरी मे दो बार श्रावस्ती मे एक बार, प्रणीत भूमि अर्थात् वज्रभूमि नामक अनार्य देश मे एक बार भगवान् वर्षावास करने के लिए पधारे थे और अन्तिम चातुर्मास करने के लिए भगवान् मध्यम पावा[३५४] के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा मे पधारे।

——● चातुर्मास सूची

श्रमण भगवान महावीर ने ३० वर्ष की आयु मे सर्वविरतिरूप श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। और ७२ वर्ष की आयु मे भौतिक देह का त्यागकर

अनन्त अव्याबाध अक्षय सुखमय मोक्षगति प्राप्त की। इस ४२ वर्ष की अवधि मे भगवान् ने जहा जहां पर अपने जितने-जितने चातुर्मास व्यतीत किये उनकी, सूची इस प्रकार है —

१ अस्थिकग्राम (प्रथम) १
२ चम्पानगरी ३
३ वैशाली-वाणियाग्राम १२
४ राजगृह-नालंदापाडा १४
५ मिथिला नगरी ६
६ भद्दिया नगरी २
७ आलभिका १
८ श्रावस्ती नगरी १
९ वज्रभूमि (अनार्य) १
१० पावापुरी (अन्तिम) १

इनमें बारह चातुर्मास छद्मस्थ काल मे व्यतीत किये, एवं ३० चातुर्मास तीर्थंकर काल मे। तीर्थंकर काल का प्रथम चातुर्मास राजगृह मे व्यतीत किया जहा पर मेघकुमार की दीक्षा हुई।

——● परिनिर्वाण

मूल :—

तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए, तस्स णं अंतरावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमा रयणिं तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्व-

दुक्खपहीणे चंदे नामं से दोच्चे संवच्छरे पीतिवद्धणे पक्खे सुव्वयग्गी नामं से दिवसे उवसमि त्ति पवुच्चइ देवाणंदा नामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१२३॥

अर्थ—भगवान् अन्तिम वर्षावास करने के लिए मध्यमपावा नगरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा मे रहे हुए थे, चातुर्मास का चतुर्थ मास और वर्षाऋतु का सातवा पक्ष चल रहा था अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या आई। अन्तिम रात्रि का समय था। उस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर काल-धर्म को प्राप्त हुए। ससार को त्यागकर चले गये। जन्म ग्रहण की परम्परा का उच्छेद कर चले गये। उनके जन्म, जरा और मरण के सभी वन्धन नष्ट हो गए। भगवान सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, सब दुःखो का अन्त कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

श्रमण भगवान महावीर जिस समय काल धर्म को प्राप्त हुए उस समय चन्द्र नामक द्वितीय सवत्सर चल रहा था, प्रीतिवर्धन नामक मास था। नन्दि-वर्धन नामक पक्ष था। अग्गिवेश–(अग्निवेश्म) नामक दिन था जिसका द्वितीय नाम 'उवसम' भी कहा जाता है। देवानदा नामक रात्रि थी जिसका द्वितीय नाम "निरइ" कहा जाता है। उस रात्रि को अर्थ नामक लव था, मुहूर्त नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था, नाग नामक करण था, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त था, और वरावर स्वाति नक्षत्र का योग आया हुआ था, ऐसे समय मे भगवान् काल धर्म को प्राप्त हुए, ससार छोडकर चले गए। उनके सम्पूर्ण दु ख नष्ट हो गये।[३५५]

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहि य देवेहि य ओवय-

माणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि होत्था ॥१२४॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगमाणभूया कहकहगभूया या वि होत्था ॥१२५॥

अर्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत उनके सम्पूर्ण दु.ख पूर्ण रूप से नष्ट हो गये, उस रात्रि मे बहुत-से देव और देवियाँ नीचे आ रही थी और ऊपर जा रही थी जिनसे वह रात्रि खूब उद्योतमयी हो गयी थी ॥१२४॥ जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दु:ख पूर्णरूप से नष्ट हो गये, उस रात्रि मे बहुत-से देव व देवियां आ-जा रही थी, जिससे अत्यधिक कोलाहल और शब्द हो रहा था।

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पेज्जबंधणे वोच्छिन्ने अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१२६॥

अर्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दु:ख नष्ट हो गये, उस रात्रि मे उनके पट्टधर शिष्य गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति अनगार का भगवान् महावीर से जो प्रेम बन्धन था, वह विच्छिन्न हो गया, और इन्द्रभूति अनगार को अनन्त अनुत्तर यावत् केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

विवेचन—इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के ग्यारह गणधरों में प्रमुख थे। वे प्रकाण्ड पण्डित, चौदह पूर्व के ज्ञाता, चतुर्ज्ञानी, सर्वाक्षर सन्निपाती, तेजो-लब्धि के धारक और [illegible] थे। [illegible] आगम साहित्य का अधिकांश भाग

गौतम की ही जिज्ञासा का समाधान है। वे ही ज्ञान–गगा के मूल उद्गम स्रोत कहे जा सकते है।

भगवान् महावीर के प्रति गौतम का अत्यधिक अनुराग था। एक बार वे अपने से लघु-श्रमणो को केवलज्ञान की उपलब्धि होते देखकर चिन्तित हो उठे कि 'अभी तक मुझे केवलज्ञान क्यो नही हुआ ?' इस पर भगवान् ने केवलज्ञान की अनुपलब्धि का कारण बताते हुए कहा—गौतम ! चिरकाल से तू मेरे स्नेह मे बधा हुआ है। चिरकाल से तू मेरी प्रशसा करता रहा है, सेवा करता रहा है, मेरे साथ चिरकाल से परिचय रखता रहा है, मेरा अनुसरण करनेवाला रहा है। अनेक देव और मनुष्य भव मे हम साथ-साथ रहे है और यहाँ से आयु पूर्ण करके भी दोनो एक ही स्थान पर पहुँचेगे।'[३५७]

प्रभु का समाधान पाकर गौतम अत्यधिक आह्लादित हुए।

परिनिर्वाण के पूर्व भगवान ने गौतम को सन्निकटवर्ती ग्राम मे देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया था। वे पुन लौटकर महावीर के चरणो मे पहुचना चाहते थे, पर सन्ध्या हो जाने से वही रुक गये। रात्रि मे भगवान के निर्वाण के समाचार को सुनकर गौतम भाव-विह्वल होकर विचारो के सागर मे डुबकियाँ लगाने लगे—"हे प्रभो ! निर्वाण के दिन किस कारण से आपने मुझे दूर भेजा ! हे प्रभो ! इतने समय तक मैं आपकी सेवा करता रहा, अन्त समय मे मुझे दर्शन से क्यो वंचित रखा।" कुछ क्षण तक इस प्रकार भाव-प्रवाह मे बहने के बाद विचारो का प्रवाह बदल गया। 'अरे, मैं यह क्या सोच रहा हू।' भगवान वीतराग थे। वे राग और द्वेष से मुक्त थे। मैं उन पर मोह रख रहा था, पर वे मोहमुक्त थे।" इस प्रकार विचार आते ही वे शुक्लध्यान ध्याते हुए घातिकर्मो को नष्ट करने लगे। अनुराग की कडी को तोड डाली और उसी रात के अन्त मे केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक बन गए।

कार्तिक अमावस्या की मध्यरात्रि मे भगवान महावीर का परिनिर्वाण हुआ और अन्तिम रात्रि मे गौतमस्वामी ने भी चार कर्मो का क्षय करके केवल ज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। इसी कारण कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा 'गौतम

प्रतिपदा' के नाम से विश्रुत है। इसी दिन अरुणोदय के प्रारम्भ से ही अभिनव वर्ष का आरम्भ होता है।[308]

उनके पश्चात् बारह वर्षों तक केवलज्ञानी गौतम भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देते हुए विचरते हैं। गौतम को केवलज्ञान होने पर समग्र संघ के संचालन का नायकत्व आर्य सुधर्मा पर आया। ग्यारह गणधरों में से अग्निभूति आदि नव गणधर तो भगवान् के सामने ही निर्वाण को प्राप्त हो चुके थे, अतः सुधर्मा ने ही गण का नेतृत्व किया। गौतम के मोक्ष पधारने पर आर्य सुधर्मा को केवलज्ञान हुआ, और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे। सुधर्मा को केवलज्ञान होने पर आर्य जम्बूस्वामी ने संघ का संचालन किया।[309]

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं नव मल्लई नव लिच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोवं करिस्सामो ॥१२७॥

अर्थ—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गए, उस रात्रि में काशी देश के, मल्लवी वंशीय नौ गणराजा और कोशल देश के, लिच्छवी वंशीय दूसरे नौ गणराजा—इस प्रकार अठारह गण राजा अमावस्या के दिन, आठ प्रहर का पौषधोपवास करके वहाँ रहे हुए थे, उन्होंने यह विचार किया कि भावोद्योत अर्थात् ज्ञानरूपी प्रकाश चला गया है अतः अब हम द्रव्योद्योत करेंगे।

विवेचन—कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में भगवान् महावीर मोक्ष पधारे। वह रात्रि देवों के आवागमन से प्रकाशमय हो गई। अठारह गणराजाओं ने उस समय पौषधोपवास किया हुआ था, उन्होंने देखा ज्ञानरूपी का दिव्य प्रकाश चला गया है, समस्त संसार अन्धकाराच्छन्न हो गया है। इसलिए देवों ने द्रव्योद्योत किया है। अब हम भगवान् महावीर के ज्ञान के प्रतीक के रूप में

प्रतिवर्ष इस दिन दीप जलाकर प्रकाश करेंगे।' उस दिन दीप जलाकर प्रकाश करने से दीपावली पर्व प्रारम्भ हुआ।[३६०]

भगवान् के निर्वाण का दु.खद वृत्तान्त सुनकर भगवान् के ज्येष्ठ भ्राता महाराज नन्दिवर्धन शोक-विह्वल हो गए। उनके नेत्रो से आँसुओ की वेगवती धारा प्रवाहित होने लगी। मन खिन्न हो गया। बहिन सुदर्शना ने उनको अपने यहा पर बुलवाया और सान्त्वना दी। तभी से भैयादूज के रूप मे यह पर्व स्मरण किया जाता है।[३६१]

—— • भस्मग्रह शक्र की प्रार्थना

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च च णं खुद्दाए भासरासी महग्गहे दोवाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते ॥१२८॥

अर्थ—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये, उस रात्रि मे भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर क्षुद्र क्रूर स्वभाव का दो हजार वर्ष तक रहने वाला भस्मराशि नामक महाग्रह आया था।

मूल :—

जप्पभिइं च णं से खुड्डाए भासरासी महग्गहे दो वाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तति ॥१२९॥

अर्थ—जब से क्षुद्र क्रूर स्वभाव वाला, दो हजार वर्ष तक रहने वाला भस्म राशि नामक महाग्रह भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर आया तब से

श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियों के सत्कार और सम्मान में उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं होती है।

विवेचन—कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण का समय सन्निकट जानकर शक्रेन्द्र आए और हाथ जोड़कर निवेदन किया—"हे नाथ! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान के समय में हस्तोत्तरा नक्षत्र था और इस समय उसमें भस्मक-ग्रह संक्रान्त होने वाला है। आप श्री के जन्म-नक्षत्र में संक्रान्त वह ग्रह दो हजार वर्ष तक आपके श्रमण-श्रमणियों की अभिवृद्धि को कम करता रहेगा। अतः कृपा कर भस्मक-ग्रह जब तक आपके जन्म-नक्षत्र से संक्रमण करे, तब तक आपश्री प्रतीक्षा करें, क्योंकि वह आपकी विद्यमानता में संक्रमण कर जायेगा तो आपके प्रबल प्रभाव से स्वतः निष्फल हो जायेगा, अतः एक क्षण तक अपनी जीवन घड़ी को दीर्घ कर रखें जिससे उस दुष्ट ग्रह का उपशम हो जाए।"

इन्द्र की अभ्यर्थना पर भगवान् ने कहा—हे इन्द्र! तुम यह जानते हो कि आयु को एक क्षण भर भी न्यूनाधिक करने की शक्ति किसी में नहीं है। फिर भी तुम शासन प्रेम में मुग्ध होकर इस प्रकार अनहोनी बात कह रहे हो? आगामी दुषमा काल के प्रभाव से तीर्थ को हानि पहुँचने वाली है। उसमें भावी के अनुसार यह भस्मक-ग्रह भी अपना फल दिखायेगा।"

मूल :—

जया णं से खुड्डाए जाव जम्मनक्खत्ताओ वीतिक्कंते भविस्सइ तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तिस्सति ॥१३०॥

अर्थ—जब वह क्षुद्र स्वभाव वाला भस्म-राशि ग्रह भगवान् के जन्म नक्षत्र से हट जायेगा तब श्रमण निर्ग्रन्थ व निर्ग्रन्थिनियों का उत्तरोत्तर सत्कार सम्मान दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि को प्राप्त होगा।

मूल :—

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफास हव्वमागच्छइ, जा अठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जं पासित्ता वहूहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहि य भत्ताइं पच्चक्खायाइं ॥१३१॥

अर्थ—जिस रात्रि को श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् उनके सम्पूर्ण दु ख नष्ट हो गये, उस रात्रि को वचाई न जा सके ऐसी कुन्थवा[३६४] नामक सूक्ष्म जीवराशि उत्पन्न हो गई। यदि वे जीव स्थिर हो, हलन-चलन न करते हो तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियो को दृष्टि गोचर नही होते थे। जव वे जीव चलते-फिरते तव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियो को दिखलाई देते थे। इस प्रकार जीवो की उत्पत्ति को देखकर वहुत से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियो ने अनशन स्वीकार कर लिया था।

मूल :—

से किमाहु भंते! अज्जप्पभिइं दुराराहए संजमे भविस्सइ।१३२।

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन्! यह किस प्रकार हुआ? अर्थात् जीवो को निहार कर जो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनियो ने अनशन किया, वह अनशन क्या सूचित करता है?

उत्तर—आज से सयम का पालन करना अत्यन्त कठिन होगा, वह अनशन यह सूचित करता है।

——● भगवान की शिष्य-संपदा

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

इंदभूइपामोक्खाओ चोद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया होत्था ॥१३३॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंद-णापामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया-संपया होत्था ॥१३४॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स संखसयग-पामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयाणं संपया होत्था ॥१३५॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसारेवईपामोक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णिसयसा-हस्सीओ अट्ठारस य सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था ॥१३६॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्नि सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था ॥१३७॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया होत्था ॥१३८॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया केवलनाणीणं संभिन्नवरनाणदंसणधराणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया होत्था ॥१३९॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था ॥१४०॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं जीवाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमईसंपया होत्था ॥१४१॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसं-पया होत्था ॥१४२॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त

अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं, चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥१४३॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था।१४४॥

अर्थ--उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के इन्द्रभूति आदि चौदह हजार श्रमणो की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी ॥१३३॥ श्रमण भगवान् महावीर की आर्याचन्दना आदि छत्तीस हजार आर्यिकाओ की उत्कृष्ट श्रमणी सम्पदा थी ॥१३४॥ श्रमण भगवान् महावीर के शख शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावको की उत्कृष्ट श्रमणोपासक-सम्पदा थी ॥१३५॥ श्रमण भगवान् महावीर की सुलसा रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपासिकाओ की उत्कृष्ट श्राविका सम्पदा थी, ॥१३६॥ श्रमण भगवान् महावीर की जिन नही तथापि जिन के समान, सर्वाक्षर सन्निपाती, 'जिन के समान सत्य-तथ्य का स्पष्टीकरण करने वाले, तीन सौ चतुर्दश पूर्वधरो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१३७॥ श्रमण भगवान् महावीर के विशेष प्रकार की लब्धिवाले तेरहसौ अवधिज्ञानियो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१३८॥ श्रमण भगवान् महावीर की सम्पूर्ण उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त ऐसे सात सौ केवलज्ञानियो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१३९॥ श्रमण भगवान् महावीर की देव नही, किन्तु देवो की ऋद्धि को प्राप्त ऐसे सात सौ वैक्रियलब्धि वाले श्रमणो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१४०॥ श्रमण भगवान् महावीर की अढाई द्वीप मे, और दो समुद्रो मे रहने वाले, मन वाले, पर्याप्त पंचेन्द्रिय प्राणियो के मन के भावो को जानने वाले, पाँच सौ विपुलमति मन पर्यवज्ञानी श्रमणो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१४१॥ श्रमण भगवान महावीर की देव, मानव और असुरो वाली सभाओ मे वाद करते हुए, पराजित न होवे, ऐसे चारसौ वादियो की अर्थात् शास्त्रार्थ करने वालो की उत्कृष्ट सम्पदा थी ॥१४२॥ श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ शिष्य सिद्ध हुए, यावत् उनके सपूर्ण दुख नष्ट हो गये। निर्वाण को प्राप्त हुए और श्रमण भगवान् महावीर की चौदह सौ शिष्याएँ सिद्ध हुई। निर्वाण को प्राप्त हुई ॥१४३॥

श्रमण भगवान् महावीर के भविष्य गति में कल्याण प्राप्त करने वाले, वर्तमान स्थिति में कल्याण अनुभव करने वाले, और भविष्य में भद्र प्राप्त करने वाले ऐसे आठ-आठ सौ अनुत्तरोपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। अर्थात् ऐसे आठ सौ श्रमण थे जो अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले थे ॥१४४॥

मूल :—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य। जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ॥१४५॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर के समय में मोक्ष प्राप्त करने वाले साधकों की दो प्रकार की भूमिका थी,—युगान्तकृत भूमिका और पर्यायान्तकृत भूमिका। युगान्तकृत भूमिका—अर्थात् जो साधक अनुक्रम से मुक्ति प्राप्त करे, जैसे प्रथम गुरु मुक्ति प्राप्त करे, उसके पश्चात् उनका शिष्य मुक्ति प्राप्त करे और उसके पश्चात् उनका प्रशिष्य मुक्ति प्राप्त करे। इस प्रकार जो अनुक्रम से मुक्ति प्राप्त की जाती है वह युगान्तकृत् भूमिका कहलाती है।

पर्यायान्तकृत भूमिका—अर्थात् भगवान् को केवलज्ञान होने के पश्चात् जो साधक मुक्ति प्राप्त करे, उनकी वह मोक्ष सम्बन्धी पर्यायान्तकृत भूमिका कहलाती है।

भगवान् से तीसरे पुरुष तक युगान्तकृत् भूमिका थी। अर्थात् प्रथम भगवान् मोक्ष गए, उनके पश्चात् उनके शिष्य मोक्ष गये, और उनके पश्चात् उनके प्रशिष्य जम्बूस्वामी मोक्ष गए। यह युगान्तकृत भूमिका जम्बूस्वामी तक चली, और उसके पश्चात् बंद हो गई। भगवान् को केवलज्ञान होने के चार वर्ष के बाद उनके शिष्यों का मुक्तिगमन प्रारम्भ हुआ और वह जम्बूस्वामी तक चलता रहा।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता, बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसएहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुगसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पधाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए वितिक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१४६॥

अर्थ—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृहवास मे रहकर, बारह वर्ष से भी अधिक समय तक छद्मस्थ श्रमण पर्याय मे रहकर, उसके पश्चात् तीस वर्ष से कुछ कम समय तक केवलपर्याय को प्राप्त कर, कुल बयालीस वर्ष तक श्रमण पर्याय को पालन कर, बहत्तर वर्ष का आयु पूर्ण कर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म क्षीण होने के पश्चात् इस अवसर्पिणी काल का दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरा बहुत कुछ व्यतीत होने पर तथा उस चतुर्थ आरे के तीन वर्ष और साढे आठ महीना शेप रहने पर मध्यम पावा नगरी मे हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा मे एकाकी, षष्ठम तप के साथ, स्वाति नक्षत्र का योग होते ही, प्रत्यूषकाल के समय (चार घटिका रात्रि अवशेष रहने

पर) पद्मासन से बैठे हुए भगवान् कल्याणफल-विपाक के पचपन अध्ययन, और पाप-फल विपाक के दूसरे पचपन अध्ययन, और अपृष्ठ अर्थात् किसी के द्वारा प्रश्न न किये जाने पर भी, उनके समाधान करने वाले छत्तीस अध्ययनों को कहते-कहते कालधर्म को प्राप्त हुए, संसार को त्यागकर चले गये, ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए। उनके जन्म, जरा, मरण के बंधन विच्छिन्न हो गये। वे सिद्ध हुए बुद्ध हुए, मुक्त हुए, सम्पूर्ण कर्मों का उन्होंने नाश किया, सभी प्रकार के सन्तापों से मुक्त हुए, उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये।

मूल :—

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरकाले गच्छइ। वायणंतरे पुण—अयं तेणउए संवच्छरकाले गच्छइ इति दीसइ ॥१४७॥

अर्थ—जिनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये हैं ऐसे सिद्ध बुद्ध यावत् श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण होने को आज नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये हैं। उसके उपरान्त यह हजारवें वर्ष का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है अर्थात् भगवान् महावीर को निर्वाण प्राप्त हुए आज नौ सौ अस्सी (९८०) वर्ष व्यतीत हो गये। दूसरी वाचना में कितने ही ऐसा भी कहते हैं—नौ सौ वर्ष उपरान्त हजारवें वर्ष के तेरानवें (९३) वर्ष का काल चल रहा है, ऐसा पाठ दृष्टिगोचर होता है, अर्थात् उनके मत में भगवान् महावीर को निर्वाण हुए नौ सौ तेरानवें (९९३) वर्ष हुए हैं।

कमठ की पत्नी से उनका वह असद् व्यवहार छिप न सका। उसने पति को समझाया, पर वह नही माना, तब उसने मरुभूति से कहा। मरुभूति घर से निकल गया और कुछ दिनो के पश्चात् रूप परिवर्तन कर पुन वहाँ आया। पत्नी और भ्राता के असद् व्यवहार को स्वय के नेत्रो से निहारकर उसने राजा से निवेदन किया। राजा ने क्रुद्ध होकर कमठ को देश से निष्काषित कर दिया। कमठ तापस वनकर पोतनपुर के सन्निकट पर्वत पर उग्रतप करने लगा। तप का चमत्करी प्रभाव हुआ, जन-जन की जिह्वा पर कमठ का नाम चमकने लगा। मरुभूति ने भी उसकी प्रशसा सुनी। अपने कृत्य पर उसे पश्चात्ताप होने लगा। ज्येष्ठ भ्राता से क्षमायाचना करने के लिए वह वहा पहुँचा। चरणो मे झुका, परन्तु क्रूर कमठ ने नमन करते हुए मरुभूति के शिर पर बडा-सा पत्थर दे मारा, भयकर वेदना से विकल मरुभूति का वही पर अन्त हो गया।

(२) **यूथपतिगज**—आर्तध्यानवश आयुपूर्ण करने से मरुभूति का जीव विन्ध्याचल की अटवी मे हाथियो के यूथ का स्वामी गजराज हुआ। कमठ की पत्नी वरुणा वहाँ से काल प्राप्त कर यूथपति गजराज की प्रिया हस्तिनी हुई।[२]

इधर राजा ने जब कमठ के द्वारा मरुभूति की हत्या के समाचार सुने तो राजा को भी संसार की स्वार्थपरायणता एव विषयान्धता से विरक्ति हुई। सयम ग्रहण किया। उत्कृष्ट साधना करते हुए वे एकदा उसी अटवी मे ध्यान मुद्रा मे खडे थे कि मरुभूति का जीव, जो हाथी बना था, उधर आ निकला। मुनिको ध्यानमुद्रा मे निहार कर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व जन्म का स्मरण करके गजराज ने मुनि से श्रावक धर्म स्वीकार किया।

एक वार वन मे भयकर अग्नि प्रकोप हुआ। सारा वन जलने लगा, तव अपने प्राण वचाने के लिए हाथी ने सरोवर मे प्रवेश किया। इधर कमठ का जीव जो कुर्कुट जाति का सर्प वना था, वह आकाश मे उडता हुआ वहाँ आया और हाथी को देखकर उसका वैर उद्‌बुद्ध हो गया। क्रोधवश हाथी के सिर पर दश मारा, जिसके जहर से गजराज का सारा शरीर विषग्रस्त हो गया

तथापि हाथी ने समभाव पूर्वक पीडा सहन की, समभाव से ही आयु पूर्ण किया।

(३) आठवें देवलोक में—आयु पूर्णकर मरुभूति का जीव आठवें सहस्रार देवलोक में उत्पन्न हुआ।

(४) किरण वेग—वहां से आयु पूर्ण होने पर मरुभूति का जीव जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में विद्युतगति विद्याधर राजा के वहां कनकवती रानी का पुत्र 'किरणवेग' हुआ। यौवनावस्था मे अपनी पत्नियों के साथ आमोद-प्रमोद कर रहा था कि-सध्या की लालिमा देखकर वैराग्य जागृत हुआ। दीक्षा ग्रहण की, मुनि बने। एक बार पुष्करवरद्वीप के वैताढ्य गिरि के हिम शैल पर्वत पर ध्यानारूढ थे। उस समय कमठ के जीव ने जो कुर्कुट सर्प का आयुपूर्ण होने पर पांचवे नरक मे गया था और वहां से निकल कर वह पुन: सर्प बना था, ध्याना रूढ मुनि को देखा तो पूर्व वैर-वश क्रुद्ध होकर मुनि को डसा, मुनि ने समभाव से आयुपूर्ण किया।

(५) अच्युत कल्प मे—वहां से मुनि बारहवें अच्युत कल्प नामक देवलोक मे देव बने।

(६) वज्रनाभ—बारहवे देवलोक से च्यवकर जम्बूद्वीप के पश्चिम महा विदेह मे शुभंकरा नगरी के अधिपति वज्रवीर्य राजा की रानी लक्ष्मीवती का पुत्र वज्रनाभ हुआ। राज्यश्री का उपभोग करते हुए, क्षेमंकर तीर्थंकर का उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। एक बार सुकच्छ विजय के मध्यवर्ती ज्वलन पर्वत पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे अवस्थित थे। उधर कमठ का जीव, जो सर्प था वह वहां से मर कर पांचवे नरक मे गया था। नरक से निकलकर अनेक भवो में परिभ्रमण करता हुआ इस प्रदेश में कुरंगक नाम का भील बना। मुनि को देखकर पूर्व वैर उद्बुद्ध हुआ। बाण मारा, आहत होकर मुनि गिर पड़े तथा समभाव से आयु पूर्ण किया।

(७) मध्यम ग्रैवेयक—मुनि वहां से मध्यम ग्रैवेयक मे देव बने। और कमठ का जीव भील, वहां से मरकर सातवें नरक में गया।

भगवान महावीर की पूर्व परम्परा

——० पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे होत्था, तं जहा—विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते१ विसाहाहिं जाए२ विसाहाहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए३ विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने४ विसाहाहिं परिनिव्वुए५ ॥१४८॥

अर्थ—उस काल उस समय पुरुषादानीय[1] अर्हन्त पार्श्व पंच विशाखा-वाले थे। अर्थात् उनके पाँचो कल्याणको मे विशाखा नक्षत्र आया हुआ था। जैसे—(१) पार्श्व अरहन्त विशाखा नक्षत्र मे च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ मे आये (२) विशाखा नक्षत्र मे जन्म ग्रहण किया (३) विशाखा नक्षत्र मे मुण्डित होकर घर से बाहर निकले अर्थात् उन्होंने अनगारत्व ग्रहण किया, (४) विशाखा नक्षत्र मे उन्हे अनन्त, उत्तमोत्तम, व्याघातरहित, आवरणरहित, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, (५) भगवान् पार्श्व विशाखा नक्षत्र मे ही निर्वाण को प्राप्त हुए।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे

से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए आससेणस्स रन्नो वम्माए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१४९॥

अर्थ—उस काल उस समय पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व, जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष था, उस चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन बीस सागरोपम की आयु वाले प्राणत नामक कल्प से आयुष्य पूर्णकर दिव्य आहार, दिव्य जन्म और दिव्य शरीर छूटते ही शीघ्र च्यवन करके इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की रानी वामादेवी की कुक्षि में, जब रात्रि का पूर्वभाग समाप्त हो रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उस सन्धिवेला में—मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र का योग होते ही गर्भ रूप में उत्पन्न हुए।

विवेचन—कोई भी जीव एकाएक तीर्थंकर नहीं बन जाता, किन्तु तीर्थंकर बनने के पूर्व उस जीव को लम्बे समय तक साधना करनी पड़ती है। जैसे भगवान् महावीर के जीव को सत्ताईस भव पूर्व सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई थी वैसे ही भगवान् पार्श्वनाथ के जीव को दस भव पूर्व सम्यक्त्व प्राप्त हुआ था।

(१) मरुभूति—एक बार भगवान् पार्श्वनाथ का जीव जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र के पोतनपुर में विश्वभूति पुरोहित का पुत्र मरुभूति बना। बड़े भ्राता का नाम कमठ था। पिता के स्वर्गस्थ हो जाने पर कमठ राजपुरोहित बना।

मरुभूति प्रकृति से सरल, विनीत और धर्मनिष्ठ था। कमठ क्रूर, अभिमानी और दुराचारी था। मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा के रूप पर वह मुग्ध हो गया। उसकी प्रार्थना पर वसुन्धरा भी उसके वश में हो गई।

कमठ की पत्नी से उनका वह असद् व्यवहार छिप न सका। उसने पति को समझाया, पर वह नही माना, तब उसने मरुभूति से कहा। मरुभूति घर से निकल गया और कुछ दिनो के पश्चात् रूप परिवर्तन कर पुन वहाँ आया। पत्नी और भ्राता के असद् व्यवहार को स्वय के नेत्रो से निहारकर उसने राजा से निवेदन किया। राजा ने क्रुद्ध होकर कमठ को देश से निष्काषित कर दिया। कमठ तापस वनकर पोतनपुर के सन्निकट पर्वत पर उग्रतप करने लगा। तप का चमत्करी प्रभाव हुआ, जन-जन की जिह्वा पर कमठ का नाम चमकने लगा। मरुभूति ने भी उसकी प्रशसा सुनी। अपने कृत्य पर उसे पश्चात्ताप होने लगा। ज्येष्ठ भ्राता से क्षमायाचना करने के लिए वह वहा पहुँचा। चरणो मे झुका, परन्तु क्रूर कमठ ने नमन करते हुए मरुभूति के शिर पर वडा-सा पत्थर दे मारा, भयकर वेदना से विकल मरुभूति का वही पर अन्त हो गया।

(२) **यूथपतिगज**—आर्तध्यानवश आयुपूर्ण करने से मरुभूति का जीव विन्ध्याचल की अटवी मे हाथियो के यूथ का स्वामी गजराज हुआ। कमठ की पत्नी वरुणा वहाँ से काल प्राप्त कर यूथपति गजराज की प्रिया हस्तिनी हुई।[२]

इधर राजा ने जब कमठ के द्वारा मरुभूति की हत्या के समाचार सुने तो राजा को भी संसार की स्वार्थपरायणता एव विषयान्धता से विरक्ति हुई। सयम ग्रहण किया। उत्कृष्ट साधना करते हुए वे एकदा उसी अटवी मे ध्यान मुद्रा मे खड़े थे कि मरुभूति का जीव, जो हाथी बना था, उधर आ निकला। मुनिको ध्यानमुद्रा मे निहार कर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व जन्म का स्मरण करके गजराज ने मुनि से श्रावक धर्म स्वीकार किया।

एक वार वन मे भयकर अग्नि प्रकोप हुआ। सारा वन जलने लगा, तव अपने प्राण वचाने के लिए हाथी ने सरोवर मे प्रवेश किया। इधर कमठ का जीव जो कुर्कुट जाति का सर्प वना था, वह आकाश मे उडता हुआ वहाँ आया और हाथी को देखकर उसका वैर उद्वुद्ध हो गया। क्रोधवश हाथी के सिर पर दश मारा, जिसके जहर से गजराज का सारा शरीर विषग्रस्त हो गया

तथापि हाथी ने समभाव पूर्वक पीडा सहन की, समभाव में ही आयु पूर्ण किया।

(३) आठवें देवलोक में—आयु पूर्णकर मरुभूति का जीव आठवें सहस्रार देवलोक में उत्पन्न हुआ।

(४) किरण वेग—वहाँ से आयु पूर्ण होने पर मरुभूति का जीव जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र मे विद्युत्गति विद्याधर राजा के वहाँ कनकवती रानी का पुत्र 'किरणवेग' हुआ। यौवनावस्था मे अपनी पत्नियों के साथ आमोद-प्रमोद कर रहा था कि-सध्या की लालिमा देखकर वैराग्य जागृत हुआ। दीक्षा ग्रहण की, मुनि बने। एक बार पुष्करवरद्वीप के वैताढ्य गिरि के हिम शैल पर्वत पर ध्यानारूढ थे। उस समय कमठ के जीव ने जो कुर्कट सर्प का आयुपूर्ण होने पर पांचवे नरक मे गया था और वहाँ से निकल कर वह पुन सर्प बना था, ध्यानारूढ मुनि को देखा तो पूर्व वैर-वश क्रुद्ध होकर मुनि को डसा, मुनि ने समभाव मे आयुपूर्ण किया।

(५) अच्युत कल्प मे—वहाँ से मुनि बारहवे अच्युत कल्प नामक देवलोक मे देव बने।

(६) वज्रनाभ—बारहवें देवलोक से च्यवकर जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह मे शुभंकरा नगरी के अधिपति वज्रवीर्य राजा की रानी लक्ष्मीवती का पुत्र वज्रनाभ हुआ। राज्यश्री का उपभोग करते हुए, क्षेमकर तीर्थंकर का उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। एक बार सुकच्छ विजय के मध्यवर्ती ज्वलन पर्वत पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे अवस्थित थे। उधर कमठ का जीव, जो सर्प था वह वहाँ से मर कर पाँचवे नरक मे गया था। नरक से निकलकर अनेक भवो मे परिभ्रमण करता हुआ उस प्रदेश मे कुरंगक नाम का भील बना। मुनि को देखकर पूर्व वैर उद्बुद्ध हुआ। बाण मारा, आहत होकर मुनि गिर पडे तथा समभाव से आयु पूर्ण किया।

(७) मध्यम ग्रैवेयक—मुनि वहाँ से मध्यम ग्रैवेयक में देव बने। और कमठ का जीव भील, वहाँ से मरकर सातवें नरक में गया।

(८) **सुवर्णवाहु चक्रवर्ती**—मध्यम ग्रैवेयक से आयु पूर्णकर मरुभूति का जीव जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह मे शुभकर विजय के पुराणपुर मे कुशलवाहु राजा की सुदर्शना रानी का पुत्र सुवर्णबाहु चक्रवर्ती बना। षट्खण्ड के राज्य का उपभोग करने के पश्चात् सयम ग्रहण किया, और उग्र तप साधना की। तीर्थकर नामगोत्रोपार्जन के योग्य वीस स्थानको का सेवन किया। एक वार निर्जन वन मे कायोत्सर्ग करके खडे थे। कमठ का जीव सातवे नरक से निकल कर इसी अरण्य मे सिह वना था। उसने ध्यानस्थ मुनि को देखा। पूर्व वैर उद्‌बुद्ध हुआ। मुनि पर झपटा। मुनि ने उस पीडा को समभाव पूर्वकर सहन कर अत्यन्त शुद्ध परिणामो के साथ आयु पूर्ण किया।

(९) **दसवें देवलोक मे**—मुनि, जो मरुभूति का जीव था, वहाँ से आयुपूर्ण कर दसवे देवलोक मे वीस सागर की आयु वाला देव वना। कमठ का जीव, जो सिह था, मरकर नरक मे गया।

(१०) **पार्श्वनाथ**—मरुभूति का जीव दसवे देवलोक से च्यवकर वाराणसी नगरी मे अश्वसेन राजा की रानी वामादेवी की कुक्षि मे भगवान् पार्श्वनाथ के रूप मे अवतरित हुआ।

——— ० जन्म

मूल :—

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिण्णाणोवगए यावि होत्था—चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुए मि त्ति जाणइ, तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं जाव नियथं गिहं अणुप्पविट्ठा जाव सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥१५०॥

अर्थ—पुरुपादानीय अर्हन् पार्श्व तीन ज्ञान से युक्त थे। 'मैं यहाँ से च्युत होऊंगा' यह जानते थे! च्युत होते हुए नही जानते थे, और 'च्युत हो गया हूं' यह जानते थे। यहा से लेकर भगवान महावीर के प्रकरण मे स्वप्न से सम्बन्धित सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् माता अपने गृह मे प्रवेश करती है और सुखपूर्वक गर्भ को धारण करती है।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया, जम्मणं सव्वं पासाभिलावेण भाणियव्वं जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं ॥१५१॥

अर्थ—उस काल उस समय हेमन्त ऋतु का द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पौष मास के कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन, नौ माह पूर्ण होने पर और साढ़े सात रात-दिन व्यतीत होने पर रात्रि का पूर्व भाग समाप्त होने जा रहा था और पिछला भाग प्रारम्भ होने जा रहा था, उस सन्धि-वेला में, अर्थात् मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र का योग होते ही, आरोग्य वाली माता ने आरोग्य पूर्वक पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व नामक पुत्र को जन्म दिया।

जिस रात्रि को पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व ने जन्म ग्रहण किया, उस रात्रि को बहुत से देव और देवियाँ जन्म कल्याणक मनाने के लिए आईं, जिससे वह रात्रि प्रकाशमान हो गई और देव देवियों के वार्तालाप से शब्दायमान भी हो गई।

स्वप्न व जन्म सम्बन्धी अन्य सारा वृत्तान्त भगवान् महावीर के वर्णन में आए हुए वृत्तान्त के समान यहाँ भी समझना चाहिए। विशेष भगवान् महावीर के स्थान पर भगवान् पार्श्व का नाम लेना चाहिए। यावत् माता-पिता ने कुमार का नाम 'पार्श्व' रखा।

विवेचन—राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े होते हैं। युवावस्था आने पर उनका पाणिग्रहण कुशस्थल (कन्नौज) में राजा प्रसेनजित् की पुत्री परम सुन्दरी प्रभावती के साथ हुआ।

——● नाग का उद्धार

एक दिन राजकुमार पार्श्व राजप्रासाद के गवाक्ष मे बैठे हुए नगरावलोकन कर रहे थे कि अर्चना की सामग्री लिए हुए जन-समूह को नगर के बाहर जाते हुए देखा। कुतूहलवश कुमार ने पूछा—'क्या आज कोई महोत्सव है, या अन्य कोई विशेष प्रसग है जिस कारण ये लोग जा रहे हैं ?'

उत्तर मिला—कुमार वर। नगर के बाहर एक कमठ नामक उग्र तपस्वी आया हुआ है, जो पचाग्नि-तप तप रहा है, वह बहुत उग्र तपस्वी है। उसकी पूजा और अर्चना करने के लिए ही ये लोग जा रहे हैं।

कुतूहलवश राजकुमार पार्श्व भी कमठ को देखने के लिए चले। यह कमठ वही था जिसका सम्बन्ध पार्श्वनाथ के जीव के साथ पिछले अनेक भवो से चला आ रहा था। वह नरक से निकलकर एक अत्यन्त गरीब कुल मे जन्मा था, भूख व दरिद्रता से व्याकुल होकर उसने तापसी-प्रव्रज्या ग्रहण की थी। बहुत उग्र तपस्या करने से जनता में उसके तप की धाक जम गई थी। राजकुमार पार्श्वनाथ ने देखा—'तपस्वी पचाग्नि तप रहा है। चारो दिशाओ मे अग्नि जल रही है, और मस्तक पर सूर्य तप रहा है, अग्निकुण्ड मे बडे-बडे लक्कड जल रहे है। उसमे एक सर्प भी जल रहा है। सर्प को देखकर पार्श्वकुमार का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। तापस के इस विवेकशून्य क्रियाकाण्ड को देखकर पार्श्वनाथ ने कहा--तपस्विन् ! यह कैसा अज्ञान तप है ! पचेन्द्रिय जीवो को भस्म कर तुम अपना कल्याण चाहते हो ?

तपस्वी—राजकुमार ! तुम धर्म के रहस्य को नही समझते। राजपुत्र तो हाथी घोडो पर क्रीडा करना और युद्ध करना जानते है, धर्म के रहस्य को तो हमारे जैसे तपस्वी समझ सकते है। तुम यहाँ से चले जाओ, अभी तो दूध मु हे-बच्चे हो। क्या तुम मेरी धूनी मे किसी जीव को जलता बता सकते हो ?

राजकुमार--तपस्वी ! इस बडे लक्कड मे सर्प जल रहा है।

तपस्वी—तुम्हारा कथन मिथ्या है। तभी राजकुमार ने अपने सेवक को आज्ञा दी, सेवक ने अग्निकुण्ड से उस लक्कड को बाहर निकाला और सावधानी से चीरा तो उस समय तिलमिलाता हुआ सर्प बाहर निकला। वह मरणा-

मग्न स्थिति में था। पार्श्वनाथ ने उसे नवकार मंत्र सुनाया। वह समाधिपूर्वक मर कर धरणेन्द्र (नागकुमार जाति के देवों का इन्द्र) देव हुआ। लोगों ने कमठ की भर्त्सना की, वे उसे धिक्कारने लगे। तापस पार्श्वकुमार पर बहुत रुष्ट हुआ। पर करता भी क्या? आखिर में अज्ञान-तप के कारण कमठ तापस वहाँ से मरकर मेघमाली नामक देव बना।

भावी तीर्थंकरों द्वारा गृहस्थावास में इस प्रकार धर्म क्रान्ति का यह अद्वितीय उदाहरण है।

मूल :—

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी—जय जय नंदा जय जय भद्दा, भद्दं ते जाव जय जय सद्दं पउंजंति ॥१५२॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञा वाले थे, उत्तम रूप वाले, सर्व गुणों से युक्त भद्र व विनीत थे। वे तीस वर्ष तक गृहवास में रहे। उसके पश्चात् अपनी परम्परा का पालन करते हुए लोकान्तिक देवों ने आकर के इष्टवाणी के द्वारा इस प्रकार कहा—"हे नन्द! (आनन्दकारी) तुम्हारी जय हो, विजय हो! हे भद्र! तुम्हारी जय हो, विजय हो! यावत् इस प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग करते हैं।

——● दीक्षा

मूल :—

पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए तं चेव सव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस-

बहुले तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकालसमयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तं चेव सव्वं नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमायाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥१५३॥

अर्थ–पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मानवीय गृहस्थ-धर्म से पहले भी उत्तम आभोगिकज्ञान (अवधिज्ञान) था। वह सारा वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन के समान यहाँ भी समझना चाहिए। अभिनिष्क्रमण के पूर्व वार्षिक दान देकर के, हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पोष मास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व भाग के समय (चढते हुए प्रहर मे) विशाला शिविका मे बैठकर देव, मानव, और असुरो के विराट् समूह के साथ (भगवान् महावीर के वर्णन के समान) वाराणसी नगरी के मध्य मे होकर निकलते है। निकलकर जिस ओर आश्रमपद नामक उद्यान है, जहाँ पर अशोक का उत्तम वृक्ष है, उसके सन्निकट जाते हैं। सन्निकट जाकर के शिविका को खडी रखवाते है। शिविका खडी रखवाकर के शिविका से नीचे उत्तरते है। नीचे उतरकर, अपने ही हाथो से आभूषण, मालाएँ और अलकार उतारते हैं। अलकार उतारकर, स्वयं के हाथ से पच-मुष्ठि लोच करते हैं। लोच करके निर्जल अष्टम भक्त करते है। विशाखा नक्षत्र का योग आते ही, एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर दूसरे तीन सौ पुरुषो के साथ मुडित होकर गृहवास से निकलकर अनगार अवस्था को स्वीकार करते हैं।

——● कमठ का उपसर्ग

मूल :—

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा—दिव्वा वा माणुस्सा वा, तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा पडिलोमा वा, ते उप्पन्ने सम्मं सहइ तितिक्खइ खमइ अहियासेइ ॥१५४॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी (८३) दिनों तक नित्य सतत शरीर की ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किए हुए थे। अर्थात् उन्होंने शरीर का ख्याल छोड़ दिया था। इस कारण अनगार दशा में उन्हें जो कोई भी उपसर्ग हुए, चाहे वे दैविक थे, मानवीय थे, या पशु-पक्षियों की ओर से उत्पन्न हुए थे, उन उपसर्गों को वे निर्भय रूप से, सम्यक् प्रकार से सहन करते थे, तनिक मात्र भी क्रोध नहीं करते, उपसर्गों की ओर उनकी सामर्थ्य युक्त तितिक्षा वृत्ति रहती और वे शरीर को पूर्ण अचल और दृढ़ रखकर उपसर्गों को सहन करते थे।

विवेचन—भगवान् पार्श्वनाथ ने पौष कृष्ण एकादशी के दिन संयम लेकर वाराणसी से प्रस्थान किया। संयम-साधना, तप-आराधना करते हुए एक ग्राम के सन्निकट तापसों के आश्रम में पधारे। कुएँ के सन्निकट वट वृक्ष के नीचे वे ध्यान लगाकर खड़े हो गये। कमठ तापस, जो मरकर मेघमाली देव बना था, अवधिज्ञान (विभंगअज्ञान) से भगवान को ध्यानस्थ देखकर वहाँ आया। पूर्व वैर को याद करके सिंह, हस्ती, रीछ, सर्प, बिच्छू, प्रभृति बनकर भगवान को नाना प्रकार से कष्ट देने लगा। तथापि भगवान सुमेरु की तरह स्थिर रहे, अपने अडिग धर्म ध्यान से विचलित नहीं हुए, तब उसने तिलमिलाकर गंभीर गर्जना करते हुए अपार जलवृष्टि की। नासाग्र तक पानी आ जाने पर भी भगवान का ध्यान भंग नहीं हुआ। उस समय अवधिज्ञान से धरणेन्द्र ने मेघमाली के उपसर्ग को देखा। तब धरणेन्द्र देव ने सात फणों से छत्र बनाकर उपसर्ग का निवारण किया। और भावना से गद्गद् होकर उसने भगवान की स्तुति की। समभाव-मग्न समदर्शी भगवान् न तो स्तुति करने वाले धरणेन्द्र देव पर तुष्ट हुए और न

दस सया केवलनाणीणं, एक्कारस सया वेउव्वियाणं, अद्धट्ठमसया विउलमईणं, छस्सया वाईणं, छ सया रिउमईणं, बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ।।१५७।।

अर्थ—पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे अज्जदिण्ण (आर्यदत्त)[७] आदि सोलह हजार साधुओ की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा थी । पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे पुष्पचूला आदि अडतीस हजार आर्यिकाओ की उत्कृष्ट आर्यिका-सम्पदा थी ।

पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे सुनन्द आदि एक लाख चौसठ हजार श्रमणोपासको की उत्कृष्ट श्रमणोपासक-सपदा थी । पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाओ की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका-सम्पदा थी ।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे साढे तीन सौ जिन नही, किन्तु जिनके सदृश सर्वाक्षर सयोगो को जानने वाले यावत् चौदह-पूर्वधारियो की सम्पदा थी । पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे चौदह सौ अवधिज्ञानियो की सम्पदा थी । पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे एक हजार केवलज्ञानियो की सम्पदा थी । ग्यारहसौ वैक्रिय लब्धिवालो की तथा छह सौ ऋजुमति ज्ञान वालो की सम्पदा थी । भगवान् पार्श्वनाथ के एक हजार श्रमण सिद्ध हुए, तथा उनकी दो हजार आर्यिकाएं सिद्ध हुई । पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे साढे सात सौ विपुलमतियो की (विपुलमति मनःपर्यव ज्ञान वालो की), छह सौ वादियो की और बारह सौ अनुत्तरौपपातिको की-अर्थात् अनुत्तर विमान मे जाने वालो की सपदा थी ।

मूल :—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा—जुयंतकडभूमी य, परियायंतकडभूमी य।

जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकडभूमि निवासपरियाए अंतमकासी ॥१५८॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समय में अन्तकृतों की भूमि अर्थात् सर्व दुःखों का अन्त करने वालों की भूमिका दो प्रकार की थी। जैसे कि एक तो युग अन्तकृत भूमि, और दूसरी पर्याय-अन्तकृतभूमि। यावत् अर्हत पार्श्व से चतुर्थ युगपुरुष तक युगान्तकृत भूमि थी अर्थात् चतुर्थ पुरुष तक मुक्ति मार्ग चला था। अर्हत् पार्श्व का केवलीपर्याय तीन वर्ष का होने पर अर्थात्-उनको केवलज्ञान हुए तीन वर्ष व्यतीत होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की। अर्थात् मुक्तिमार्ग प्रारम्भ हुआ। वह उनके समय की पर्यायान्तकृत्भूमि हुई।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, तेसीतिं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्तरिं वासाइं केवलिपरियायं पाउणित्ता, बहुपडिपुन्नाइं सत्तरिं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता, एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालित्ता खीणे वेयणिज्जाउय-नामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंमि अप्पचोत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोग-मुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१५९॥

अर्थ—उस काल उस समय पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर तिरासी रात्रि-दिन छद्मस्थ पर्याय में रह कर [illegible]

उपसर्ग करने वाले दुष्ट कमठ पर रुष्ट ही हुए। इसीलिए आचार्य हेमचन्द्र ने प्रभु पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कहा है—

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचिते कर्मकुर्वति।
प्रभोस्तुल्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथ श्रियेऽस्तु वः॥"

पराजित हो मेघमाली भी भगवान् के चरणो मे गिर गया। अपराध की क्षमा याचना करने लगा।

——● केवलज्ञान

मूल :—

तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायतिपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेण जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१५५॥

अर्थ—उसके पश्चात् भगवान् पार्श्व अनगार हुए, यावत् ईर्यासमिति से युक्त हुए और इस प्रकार आत्मा को भावित करते-करते तिरासी (८३) रात्रि दिन व्यतीत हो गये। चौरासीवाँ दिन चल रहा था। ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आया, उस चैत्र मास की चतुर्थी को, पूर्वाह्न मे आँवले (धातकी) के वृक्ष के नीचे[६] षष्ठ तप किये हुए, शुक्ल ध्यान मे लीन थे। तब विशाखा नक्षत्र का योग आया, उन्हे उत्तमोत्तम केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। यावत् वे सम्पूर्ण लोकालोक के भावो को देखते हुए विचरने लगे।

——● शिष्य-संपदा

मूल :—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा–

सुंभय अज्जघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य॥१५६॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के आठ गणधर थे। वे इस प्रकार हैं–(१) शुभ, (२) अज्जघोष-आर्यघोष, (३) वसिष्ठ, (४) ब्रह्मचारी, (५) सोम (६) श्रीधर, (७) वीरभद्र और (८) यश।

मूल :—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ सोलस्स समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपदा होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनदपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदापामोक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया चोद्दसपुव्वीण अजिणाणं जिणसंकासाण सव्वक्खर जाव चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दस सया ओहिनाणीणं,

दस सया केवलनाणीणं, एक्कारस सया वेउव्वियाणं, अद्धट्ठमसया विउलमईणं, छस्सया वाईणं, छ सया रिउमईणं, बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१५७॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे अज्जदिण्ण (आर्यदत्त)° आदि सोलह हजार साधुओ की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे पुष्पचूला आदि अडतीस हजार आर्यिकाओ की उत्कृष्ट आयिका-सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे सुनन्द आदि एक लाख चौंसठ हजार श्रमणोपासको की उत्कृष्ट श्रमणोपासक-सपदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाओ की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका-सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे साढे तीन सौ जिन नही, किन्तु जिनके सदृश सर्वाक्षर सयोगो को जानने वाले यावत् चौदह-पूर्वधारियो की सम्पदा थी। पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे चौदह सौ अवधिज्ञानियो की सम्पदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय मे एक हजार केवलज्ञानियो की सम्पदा थी। ग्यारहसौ वैक्रिय लब्धिवालो की तथा छह सौ ऋजुमति ज्ञान वालो की सम्पदा थी। भगवान् पार्श्वनाथ के एक हजार श्रमण सिद्ध हुए, तथा उनकी दो हजार आर्यिकाए सिद्ध हुई। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ मे साढे सात सौ विपुलमतियो की (विपुलमति मन पर्यव ज्ञान वालो की), छह सौ वादियो की और बारह सौ अनुत्तरौपपातिको की-अर्थात् अनुत्तर विमान मे जाने वालो की संपदा थी।

मूल :—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा—जुयंतकडभूमी य, परियायंतकडभूमी य।

जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकडभूमि निवासपरियाए अंतमकासी ॥१५८॥

अर्थ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समय में अन्तकृतों की भूमि अर्थात् सर्व दुःखों का अन्त करने वालों की भूमिका दो प्रकार की थी। जैसे कि एक तो युग अतकृत भूमि, और दूसरी पर्याय-अन्तकृतभूमि। यावत् अर्हत पार्श्व से चतुर्थ युगपुरुष तक युगान्तकृत भूमि थी अर्थात् चतुर्थ पुरुष तक मुक्ति मार्ग चला था। अर्हत् पार्श्व का केवलीपर्याय तीन वर्ष का होने पर अर्थात्-उनको केवलज्ञान हुए तीन वर्ष व्यतीत होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की। अर्थात् मुक्तिमार्ग प्रारम्भ हुआ। वह उनके समय की पर्यायान्तकृत्भूमि हुई।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, तेसीतिं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्तरिं वासाइं केवलिपरियायं पाउणित्ता, बहुपडिपुन्नाइं सत्तरिं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता, एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालित्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसूसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचोत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१५९॥

अर्थ—उस काल उस समय पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व [illegible]
[illegible]

नही, किन्तु कुछ कम सत्तर (७०) वर्ष तक केवलीपर्याय मे रह करके, इस प्रकार पूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन करके, कुल सौ वर्ष तक अपना सम्पूर्ण आयु भोगकर वेदनीय कर्म, आयुष्यकर्म, नाम कर्म, और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर दुषम-सुषम नामक अवसर्पिणी काल के बहुत व्यतीत हो जाने पर, वर्षाऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष, अर्थात् जब श्रावण-मास का शुक्ल पक्ष आया, तव श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन सम्मेद शिखर पर्वत पर अपने सहित चोतीस-पुरुषो के साथ (१ पार्श्वनाथ और दूसरे तेतीस श्रमण इस प्रकार कुल ३४) मासिक भक्त का अनशन कर पूर्वाह्न के समय, विशाखा नक्षत्र का योग आने पर दोनो हाथ लम्बे किये हुए इस प्रकार ध्यान मुद्रा मे अवस्थित रह कर काल धर्म को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दु खो से मुक्त हुए।

मूल :—

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स कालगतस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइं विइक्कंताइं तेरसमस्स य वाससयस्स अयं तीसइमे संवच्छरकाले गच्छइ ॥१६०॥

अर्थ—पुरिसादानीय अर्हत् पार्श्व को कालधर्म प्राप्त हुए, यावत् सर्व दु खो से पूर्ण तया मुक्त हुए वारह सौ वर्ष व्यतीत हो गये और यह तेरह सौ वर्ष का समय चल रहा है।

——● अर्हत् अरिष्टनेमि

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते होत्था, तं जहा—चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव चित्ताहिं परिनिव्वुए ॥१६१॥

अर्थ—उस काल उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि पाँच चित्रा युक्त थे, अर्थात्

उनके जीवन के पांच प्रसंगों में चित्रा नक्षत्र आया था। जैसे--अर्हत् अरिष्ट-नेमि चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में आये, इत्यादि सम्पूर्णवृत्त चित्रा नक्षत्र के पाठ के साथ पूर्व के समान समझना चाहिए। यावत् चित्रा नक्षत्र में वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

—— ● जन्म

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसीपक्खेणं अपराजियाओ महाविमाणाओ बत्तीसं सागरोवम-ठिईयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे सोरियपुरे नगरे समुद्दविजयस्स रन्नो भारियाए सिवाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव चित्ताहिं गब्भत्ताए वक्कंते. सव्वं तहेव सुमिणदंसणदविणसंहरणाइयं एत्थ भणियव्वं ॥१६७॥

अर्थ--उस काल उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि, जब वर्षा ऋतु का चतुर्थ मास, सातवां पक्ष अर्थात् कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष का समय आया, तब कार्तिककृष्णा द्वादशी के दिन, बत्तीस सागरोपम की आयुष्य मर्यादा वाले अपराजित नामक महाविमान से च्यवकर इसी जम्बूद्वीप में, भारतवर्ष के सोरियपुर नामक नगर में समुद्रविजय राजा की पत्नी शिवादेवी की कुक्षि में, रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धि-वेला में, अर्थात् मध्यरात्रि में चित्रा नक्षत्र का योग होने पर गर्भ रूप में उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् का सभी वर्णन भगवान् महावीर के प्रकरण में आये हुए स्वप्न-दर्शन, धन-धान्य की वृद्धि इत्यादि के समान यहां पर भी कहना चाहिए।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिट्ठनेमी जे से

वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया। जम्मणं समुद्दविजयाभिवेणं नेतव्वं जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥१६३॥

अर्थ–उस काल उस समय वर्षाऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, उस समय श्रावण शुक्ला पचमी के दिन नौ मास और साढे सात दिन परिपूर्ण हुए, यावत् मध्यरात्रि को चित्रा नक्षत्र का योग होते ही, आरोग्य-युक्त (स्वस्थ) माता ने आरोग्य पूर्वक अर्हत् अरिष्ट नेमि को जन्म दिया। जन्म का इतिवृत्त 'पिता समुद्रविजय' इस पाठ के साथ पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत् इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि कुमार हो इत्यादि सभी कह लेना चाहिए।

विवेचन–अर्हत् अरिप्टनेमि बाईसवे तीर्थंकर थे।[९] उनके पिता का नाम समुद्र विजय और माता का नाम शिवा था।[१०] उनके तीन भ्राता और थे जिनके नाम इस प्रकार हैं - रथनेमि[११], सत्यनेमि और दृढनेमि[१२] उनका गोत्र गौतम था[१३] और कुल वृष्णि था,[१४] उनका शरीर श्यामवर्ण था। किन्तु मुखाकृति अत्यधिक मनमोहक थी। वे एक हजार आठ शुभ लक्षणो के धारक थे,[१५] वज्र ऋषभ नाराचसहनन और समचतुरस्र सस्थान वाले थे। मत्स्य के आकार का उनका उदर था,[१६] वे अतुल बली थे। उनके पराक्रम दर्शन का एक मधुर प्रसग है।

● पराक्रम दर्शन

एक बार घूमते-घामते अर्हत् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की आयुधशाला मे पहुँचे। स्नेही साथियो की प्रेरणा से प्रेरित हो वासुदेव श्री कृष्ण के सुदर्शन चक्र को अगुली पर रखकर कुम्भकार के चक्र के समान फिरा दिया। शारग धनुष को कमल की नाल की तरह मोड दिया। कौमुदी गदा सहज रूप से उठाकर स्कध पर रख ली और पाँचजन्य शख को इस प्रकार बजाया कि सारी द्वारिका भय से काँप उठी। उस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण का हृदय भी धडकने लगा।[१७] शत्रु के भय से भयभीत बने श्रीकृष्ण आयुधशाला मे आये। अरिष्टनेमि द्वारा

शख बजाये जाने की बात जानकर चकित हुए। फिर भी शक्ति परीक्षण के लिए श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा—चलिए व्यायामशाला में जहाँ अपने बाहु-बल की परीक्षा करें। क्योंकि पाचजन्य शख को फूकने की शक्ति मेरे अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है।

अरिष्टनेमि ने स्वीकृति दी, दोनों ही व्यायामशाला में पहुँचे। कृष्ण ने भुजा लम्बी की और कहा—जरा इसे झुका तो दो। अरिष्टनेमि ने उस भुजा को ऐसे झुका दिया जैसे वृक्ष की डाली को झुका दिया हो। जब अरिष्टनेमि ने भुजा लम्बी की तो कृष्ण, अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी उसे नहीं झुका सके, यह घटना-चित्र उनके महान् धैर्य, शौर्य और प्रबल पराक्रम के भाव को उजागर कर रहा है।

श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के अतुल बल को देखकर चकित हो गये, साथ ही चिन्तामग्न भी। तभी आकाशवाणी हुई कि—अरिष्टनेमि कुमारावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।

● राजुल की मंगनी

श्रीकृष्ण ने कुमार नेमिनाथ को विवाह के लिए प्रेम पूर्वक आग्रह किया, पर वे स्वीकार नहीं हुए। वे चाहते थे कि नेमिकुमार विवाहित हो जायें तो इनका अतुलनीय पराक्रम क्षीण हो जायेगा और फिर मुझे कभी भी इनसे भय व शंका नहीं होगी। इसके लिए सत्यभामा आदि को श्रीकृष्ण ने संकेत किया। श्रीकृष्ण के संकेतानुसार सत्यभामा आदि रानियों ने वसन्त ऋतु में रैवताचल पर वसन्त क्रीड़ा करते हुए हाव-भाव-कटाक्षादि के द्वारा नेमिकुमार के अन्तर्हृदय में वासना जागृत करने का प्रयास किया, किन्तु सफल न हो सकी। तब रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, पद्मावती, गान्धारी, लक्ष्मणा आदि ने स्त्री के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा—स्त्री के बिना मानव अपूर्ण है, स्त्री अमृत है, नारी ही नारायणी है, आदि। इनकी भाभियों के मोह भरे वचनों से कुमार नेमिकुमार मौन रहे और उनकी अज्ञता पर मन ही मन मुस्कराने लगे। कुमार को मौन देखकर, 'अनिषिद्धम् अनुमतम्' के अनुसार सभी रानियाँ आनन्द से नाच उठीं और सर्वत्र समाचार प्रसारित कर दिया कि अरिष्टनेमि विवाह के लिए प्रस्तुत हो गए हैं।

वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया। जम्मणं समुद्दविजयाभिवेणं नेतव्वं जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥१६३॥

अर्थ—उस काल उस समय वर्षाऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, उस समय श्रावण शुक्ला पचमी के दिन नौ मास और साढे सात दिन परिपूर्ण हुए, यावत् मध्यरात्रि को चित्रा नक्षत्र का योग होते ही, आरोग्य-युक्त (स्वस्थ) माता ने आरोग्य पूर्वक अर्हत् अरिष्ट नेमि को जन्म दिया। जन्म का इतिवृत्त 'पिता समुद्रविजय' इस पाठ के साथ पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत् इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि कुमार हो इत्यादि सभी कह लेना चाहिए।

विवेचन—अर्हत् अरिप्टनेमि बाईसवे तीर्थंकर थे।[९] उनके पिता का नाम समुद्र विजय और माता का नाम शिवा था।[१०] उनके तीन भ्राता और थे जिनके नाम इस प्रकार हैं - रथनेमि[११], सत्यनेमि और दृढनेमि[१२] उनका गोत्र गौतम था[१३] और कुल वृष्णि था,[१४] उनका शरीर श्यामवर्ण था। किन्तु मुखाकृति अत्यधिक मनमोहक थी। वे एक हजार आठ शुभ लक्षणो के धारक थे,[१५] वज्र ऋषभ नाराचसहनन और समचतुरस्र सस्थान वाले थे। मत्स्य के आकार का उनका उदर था,[१६] वे अतुल बली थे। उनके पराक्रम दर्शन का एक मधुर प्रसग है।

● पराक्रम दर्शन

एक बार घूमते-घामते अर्हत् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की आयुधशाला मे पहुँचे। स्नेही साथियो की प्रेरणा से प्रेरित हो वासुदेव श्री कृष्ण के सुदर्शन चक्र को अगुली पर रखकर कुम्भकार के चक्र के समान फिरा दिया। शारग धनुष को कमल की नाल की तरह मोड दिया। कौमुदी गदा सहज रूप से उठाकर स्कध पर रख ली और पाँचजन्य शख को इस प्रकार बजाया कि सारी द्वारिका भय से काँप उठी। उस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण का हृदय भी धडकने लगा।[१७] शत्रु के भय से भयभीत बने श्रीकृष्ण आयुधशाला मे आये। अरिष्टनेमि द्वारा

शंख बजाये जाने की बात जानकर चकित हुए। फिर भी शक्ति परीक्षण के लिए श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा—चलिए व्यायामशाला में जहाँ अपने बाहु-बल की परीक्षा करें। क्योंकि पाञ्चजन्य शंख को फूंकने की शक्ति मेरे अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है।

अरिष्टनेमि ने स्वीकृति दी, दोनों ही व्यायामशाला में पहुँचे। कृष्ण ने भुजा लम्बी की और कहा—जरा इसे झुका तो दो। अरिष्टनेमि ने उस भुजा को ऐसे झुका दिया जैसे वृक्ष की डाली को झुका दिया हो। जब अरिष्टनेमि ने भुजा लम्बी की तो कृष्ण, अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी उसे नहीं झुका सके", यह घटना-चित्र उनके महान् धैर्य, शौर्य और प्रबल पराक्रम के भाव को उजागर कर रहा है।

श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के अतुल बल को देखकर चकित हो गये, साथ ही चिन्तामग्न भी। तभी आकाशवाणी हुई कि—अरिष्टनेमि कुमारावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे।"

——— ● राजुल की मगनी

श्रीकृष्ण ने कुमार नेमिनाथ को विवाह के लिए प्रेम पूर्वक आग्रह किया, पर वे स्वीकार नहीं हुए। वे चाहते थे कि नेमिकुमार विवाहित हो जायें तो इनका अतुलनीय पराक्रम क्षीण हो जायेगा और फिर मुझे कभी भी इनसे भय व शंका नहीं होगी। इसके लिए सत्यभामा आदि को श्रीकृष्ण ने संकेत किया। श्रीकृष्ण के संकेतानुसार सत्यभामा आदि रानियों ने वसन्त ऋतु में रैवताचल पर वसन्त क्रीड़ा करते हुए हाव भाव-कटाक्षादि के द्वारा नेमिकुमार के अन्तर्हृदय में वासना जागृत करने का प्रयास किया, किन्तु सफल न हो सकी। तब रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, पद्मावती, गांधारी, लक्ष्मणा आदि ने स्त्री के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा—स्त्री के बिना मानव अपूर्ण है, स्त्री अमृत है, नारी ही नारायणी है, आदि। इन भाभियों के मोह भरे वचनों को सुनकर नेमिकुमार मौन रहे और उनकी अज्ञता पर मन ही मन मुस्कराने लगे। कुमार को मौन देखकर, 'अनिषिद्धम् अनुमतम्' के अनुसार सभी रानियाँ आनन्द से नाच उठीं और सर्वत्र समाचार प्रसारित कर दिया कि अरिष्टनेमि विवाह के लिए प्रस्तुत हो गए हैं।"

श्रीकृष्ण ने महाराजा उग्रसेन की रूपवती कन्या राजीमती की याचना की। राजीमती सर्वलक्षणो से सम्पन्न, विद्युत् और सौदामिनी के समान प्रभावाली राजकन्या थी।[२१] राजीमती के पिता उग्रसेन ने कृष्ण से कहा—"कुमार, यहाँ आएँ तो मैं उन्हे अपनी राजकन्या दूँ।" श्री कृष्ण ने स्वीकृति प्रदान की।

दोनो ओर विवाह की तैयारियाँ होने लगी। मगलगीत गाये जाने लगे। अरिष्टनेमि को सर्व औषधियों के जल से स्नान कराया गया, कौतुक-मगल किये गये, दिव्य वस्त्र और आभूषण पहिनाये गये। वासुदेव श्रीकृष्ण के मदोन्मत्त गधहस्ती पर वे आरूढ हुए। उस समय वे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो मस्तक पर चूडामणि हो।[२२] सिर पर छत्र सुशोभित हो रहा था। दोनो और चमर वीजे जा रहे थे। दशार्ह चक्र से वे चारो ओर से घिरे हुए थे। वाद्यो से नभ गूंज रहा था। चतुरगिनी सेना के साथ उनकी वरात आगे वढी चली जा रही थी। सभी का हृदय खुशी से उछालें मार रहा था।

——— • तोरण से लौट गए

उस युग मे मासाहार का वहुत अधिक प्रचार था। राजा उग्रसेन ने वरातियो के भोजन के लिए सैकडो पशु और पक्षी एकत्रित किये। वर के रूप मे जब अरिष्टनेमि वहाँ पहुँचे, तो उन्हे एक वाड़े मे वद किए हुए पशुओ का करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। उनका हृदय दया से द्रवित हो गया।[२३]

भगवान् ने सारथी से पूछा--'हे महाभाग ! ये मव सुखार्थी जीव वाड़ो और पिंजरों मे किसलिए डाले गये है ? सारथी ने कहा—"ये समस्त भद्र प्राणी आपके विवाह-कार्य मे आये हुए व्यक्तियो के भोजन के लिए है।[२४]

करुणामूर्ति अरिष्टनेमि ने सोचा—'मेरे कारण से ये वहुत से जीव मारे जाते हैं, तो मेरे लिए यह भविष्य मे कल्याणप्रद नही होगा। यह कहकर उन्होने अपने कुण्डल, कटिसूत्र आदि आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये और रथ को मोडने के लिए कहा—"सारथि ! वापस चलो ! मुझे इस प्रकार का हिंसा-कारी विवाह नही करना है।' श्रीकृष्ण आदि वहुतो के समझाने पर भी वे नही माने और द्वारिका की ओर विना व्याहे ही लौट चले।

राजीमती के चेहरे पर जो गुलाबी खुशियाँ छाई हुई थी, वह प्रभु के वापस लौट जाने पर गायब हो गई। वह अपने भाग्य को कोसने लगी। उसे बहुत ही दुःख हुआ, अरिष्टनेमि उसके हृदय मे बसे हुए थे। माता, पिता और सखियों ने समझाया 'अरिष्टनेमि चले गए तो क्या हुआ बहुत से अच्छे वर प्राप्त हो जायगे।' उसने दृढता से कहा—"विवाह का बाह्य रीतिरस्म (वरण) भले ही न हुआ हो किन्तु अन्तरग हृदय से मैंने वरण कर लिया है, अब मैं आजन्म उसी प्रभु की उपासना करूँगी।

——● दीक्षा

मूल :—

अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे जाव तिन्नि वाससयाइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि उत्तरकुराए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जावबारवईए नगरीए मज्झं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवय उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, सीयं ठावित्ता सीयाए पच्चोरुहइ, सीयाए पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरण मल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठे णं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥१६४॥

अर्थ—अर्हत् अरिष्टनेमि दक्ष थे, ... से तीन सौ वर्ष तक कुमार

अवस्था मे गृहवास मे रहे। उसके पश्चात् जिनके कहने का आचार है ऐसे लोकान्तिक देवो ने आकरके उनसे प्रार्थना की, ससार का कल्याण करने के लिए इत्यादि कथन जो पूर्व आ गया है वैसा ही यहाँ पर भी कहना। यावत् अभिनिष्क्रमण के पूर्व एक वर्ष तक दान दिया।

जब वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष, अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया, उस श्रावण शुक्ला छट्ठ के दिन, पूर्वाह्न के समय जिनके पीछे देव, मानव और असुरो की मण्डली चल रही है, ऐसे अरिष्टनेमि उत्तरकुरा नामक शिविका मे बैठकर यावत् द्वारिका नगरी के मध्य-मध्य मे होकर निकलते है। निकलकर जिस तरफ रैवत नामक उद्यान है,[२६] वहाँ आते है, आकर के उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे, शिविका को खडी रखते है, खडी रखकर शिविका से उतरते है, उतरकर अपने ही हाथो से आभरण, मालाएँ और अलकारो को नीचे उतारते हैं। उतार कर अपने ही हाथो से पचमुष्टि लोच करते है, लोच करके, पानी रहित, षष्ठभक्त करके, चित्रा नक्षत्र का योग आते ही, एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर हजार पुरुषो के साथ, मुंडित होकर गृहवास को त्यागकर अनगारत्व को स्वीकार करते है।

विवेचन—हिंसा को रोकने के लिए भगवान् विना विवाह किये ही लौटे, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि लौटकर सीधे ही शिविका मे बैठकर प्रव्रज्या के लिए प्रस्थित नहीं हुए। यदि सीधे ही प्रस्थित होते है तो प्रश्न यह है कि उन्होने वर्षीदान कब दिया ? क्या दूल्हा बनकर आने के पूर्व ही वर्षीदान दे चुके थे ? नही। वे वहाँ से लौटकर घर पर आते है, एक वर्ष तक वर्षीदान देते है। उसके पश्चात् एक हजार पुरुषो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण करत हैं। सामायिक चरित्र ग्रहण करते हुए प्रभु को मन. पर्यव ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

इस बीच प्रेममूर्ति राजीमती अरिष्टनेमि की अपलक प्रतीक्षा करती रही। वह निरन्तर यह सोचती रही कि भगवान् मेरी अवश्य ही सुध लेगे। पर उसकी वह भावना पूर्ण नही हो सकी। बारह मास तक उसके अन्तर्हृदय मे विविध सकल्प विकल्प उद्‌बुद्ध होते रहे, जिन्हे कवियो ने बारह मासा के के रूप मे चित्रित किया है।

——● केवल ज्ञान

मूल :—

अरहा णं अरिट्ठनेमी चउप्पन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे तं चेव सव्वं जाव पणपन्नइमस्स राइंदियस्स अंतरावट्टमाणे, जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले तस्स णं आसोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे उप्पिं उज्जिंतसेलसिहरे वेडसपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स जाव अणंते अणुत्तरे जाव सव्वलोए सव्वजीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१६५॥

अर्थ—अर्हत अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिन ध्यान में रहे। उन्होंने शरीर के लक्ष्य को छोड़ दिया। शारीरिक वासना छोड़ दी थी। इत्यादि सभी जो पूर्व आ चुका है, यहाँ भी समझ लेना चाहिए। अर्हत् अरिष्टनेमि को इस प्रकार ध्यान में रहते हुए पचपनवाँ रात्रि-दिन आ गया। जब वे पचपनवें रात्रि-दिन में सञ्चरण कर रहे थे तब वर्षाऋतु का तृतीय मास, पाँचवाँ पक्ष, अर्थात् आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन अपराह्न में उज्जयन्त शैल शिखर (गिरनार पर्वत) पर बेंत (वेतस) के वृक्ष के नीचे पानी रहित, अष्टम भक्त का तप किए हुए थे, उसी समय चित्रा नक्षत्र का योग आने पर ध्यान में रहते हुए उन्हें अनन्त यावत् उत्तम केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। अब वे समस्त लोक और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को जानते हुए देखते हुए विचरने लगे।

विवेचन—भगवान् नेमिनाथ के दीक्षा ग्रहण करने के बाद राजीमती के [illegible] पर भगवान् नेमिनाथ का [illegible] रथनेमि मुग्ध हो गया था। [illegible] राजीमती को [illegible] में करने के लिए [illegible] उपहार भेजता। भोली-भाली राजीमती [illegible] अरिष्टनेमि [illegible] प्रकार समझाकर प्रेमपूर्वक [illegible]।

एक दिन एकान्त मे राजीमती को देख, रथनेमि ने अपने हृदय की इच्छा अभिव्यक्त की। राजीमती ने जब वह बात सुनी तो सारा रहस्य समझ गई। दूसरे दिन जव रथनेमि आया तब उसे समझाने के लिए उसने सुगधित पय-पान किया, और उसके पश्चात् वमन की दवा (मदनफल) ली। जब दवा के प्रभाव से वमन हुआ तो उसे एक स्वर्णपात्र मे ग्रहण कर लिया, और रथ नेमि से बोली—'जरा इसका पान करिये।'

रथनेमि ने नाक भौं सिकोडते हुए कहा—'क्या मैं श्वान हूँ, जो इसका पान करूँ ?' वमन का पान तो श्वान करता है, इन्सान नही।'

राजोमती ने कहा—"बहुत अच्छा ! तो मैं भी अरिष्टनेमि के द्वारा वमन की हुई हूँ, फिर मुझ पर मुग्ध होकर मेरी इच्छा क्यों कर रहे हो ? तुम्हारा विवेक क्यो नष्ट हो गया है ? क्या यह भी वमनपान नही है ?"

राजीमती की फटकार से रथनेमि लज्जित होकर नीचा शिर किये अपने घर को चला आया।[२७]

भगवान् के केवलज्ञान की सूचना प्राप्त होते ही श्रीकृष्ण आदि पहुचे। भगवान् के उपदेश से वरदत्त आदि दो हजार राजाओ ने प्रवज्या ग्रहण की। प्रभु ने चतुर्विध सघ की स्थापना की।

श्री कृष्ण ने भगवान् से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि—भगवन् ! राजीमती का आप पर इतना अपार स्नेह क्यो है ?

समाधान करते हुई भगवान् ने कहा—आज से नौवें भव मे मैं 'धन' नामक राजपुत्र था और यह राजीमती का जीव धनवती नाम की मेरी पत्नी थी। वहाँ से मैं प्रथम देवलोक मे देव बना और यह देवी बनी। वहा से च्युत होकर मेरा जीव चित्रगनि नामक विद्याधर हुआ, और यह मेरी रत्नवती नामक पत्नी हुई। वहाँ से हम दोनों चतुर्थदेव लोक मे उत्पन्न हुए। वहाँ से च्युत होकर मैं अपराजित नामक राजा हुआ, और यह प्रियतमा नामक रानी हुई। वहाँ से हम दोनो ग्यारहवे देवलोक मे देव हुए,। तत्पश्चात् मैं शख नामक राजा हुआ, और यह यशोमती नामक रानी हुई। वहाँ से हम दोनो अपराजित

देवलोक में देव हुए और वहाँ से च्युत होकर मैं अरिष्टनेमि हुआ और यह राजीमती हुई है। पूर्वभवों का स्नेह सम्बन्ध होने के कारण ही इसका अत्यधिक अनुराग मेरे प्रति है।[28]

• राजीमती की दीक्षा : रथनेमि को प्रतिबोध

भगवान् वहाँ से विहार करके रैवतक पर्वत पर पधारे। समवसरण की रचना हुई। राजीमती विचारने लगी—भगवान् को धन्य है, जिन्होंने मोह को जीत लिया है। धिक्कार है मुझे जो मैं मोह के दल-दल में फंसी हूँ। मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं दीक्षा ले लूँ।[29]

ऐसा दृढ संकल्प करके राजीमती ने कांगसी-कंघी से संवारे हुए भंवर सदृश काले केशों को उखाड डाला। सर्व इन्द्रियों को जीतकर दीक्षा के लिए तैयार हुई। श्री कृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्या! इस भयंकर संसार-सागर से तू शीघ्र ही तर।" राजीमती ने दीक्षा ग्रहण की।[30]

दीक्षा लेने के पश्चात् एक बार राजीमती रैवतक पर्वत की ओर जा रही थी कि मूसलाधार वर्षा होने से उसके वस्त्र भीग गये। साथ की अन्य साध्वियाँ भी इधर-उधर हो गईं। राजीमती ने वर्षा से बचने के लिए एक अंधेरी गुफा का आश्रय लिया। एकान्त स्थान समझकर समस्त गीले वस्त्र उतारकर सूखने के लिए फैला दिये।

राजीमती की फटकार से प्रतिबुद्ध होकर रथनेमि प्रव्रजित हो गए थे। और वह उसी गुफा में ध्यान मग्न थे। आज बिजली की चमक में राजीमती को अकेली और निर्वस्त्र देखकर उनका मन पुनः चलित हो गया। इतने में अकस्मात् राजीमती की भी दृष्टि उन पर पड़ी। उन्हें देखते ही वह सहम गई, भयभीत बनी, अपने अंगों का गोपन कर जमीन पर बैठ गई।[31]

काम-विह्वल रथनेमि ने राजीमती से कहा, हे सुरूपे! मैं रथनेमि हूँ। तू मुझे अंगीकार कर। तनिक मात्र भी संकोच न कर। आओ! इस एकान्त स्थान में हम भोग भोगें और मानुषिक भोगों का आनन्द लेने के पश्चात् फिर संयम ले लेंगे।

राजीमती ने देखा—रथनेमि का मनोवल टूट गया है। वे वासना-विह्वल होकर सयम से भ्रष्ट हो रहे हैं। उसने धैर्य के साथ कहा—भले ही तुम रूप मे वैश्रमण के सदृश हो, भोग-लीला मे नल-कुबेर या साक्षात् इन्द्र के समान हो, तो भी मैं तुम्हारी इच्छा नही करती।' "अगधनकुल मे उत्पन्न हुए सर्प प्रज्वलित अग्नि मे जलकर मरना पसद करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विप को पुनः पीने की इच्छा नही करते। हे कामी! वमन की हुई वस्तु को खाकर तू जीवित रहना चाहता है। इससे तो मरना श्रेयस्कर है।"[३२]

साध्वी राजीमती के सुभापित वचन सुनकर जैसे हस्ती अकुश से वश मे आता है वैसे ही रथनेमि का मन स्थिर हो गया।

रथनेमि ने भगवान् के पास जाकर आलोचना की। वे उत्कृष्ट तप तपकर मोक्ष गये।

राजीमती चार सौ वर्प तक गृहस्थाश्रम मे रही, एक वर्ष छद्मावस्था मे रही और पाँचसौ वर्ष केवली पर्याय मे रहकर मुक्त हुई।

———● शिष्य-सपदा

मूल :—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा गणहरा होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स वरदत्तपामोक्खाओ अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अज्जजक्खिणिपामोक्खाओ चत्तालीसं अज्जिया-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था। अरहओ अरिट्ठनेमिस्स नंदपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणत्तरिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था। अरहओ अरिट्ठनेमिस्स महासुव्वयापामोक्खाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ छत्तीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। अरहओ अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणं

अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव होत्था। पण्णरस सया ओहिनाणीणं, पन्नरस सया केवलनाणीणं, पन्नरस सया वेउव्वियाणं, दस सया विउलमतीणं, अट्ठ सया वाईणं, सोलस सया अणुत्तरोववाइयाणं, पन्नरससमणसया सिद्धा, तीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥१६६॥

अर्थ—अर्हत् अरिष्टनेमि के तीर्थ में अठारह गण, और अठारह गणधर थे। अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में वरदत्त आदि अठारह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी। अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में आर्य-यक्षिणी आदि चालीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका-सम्पदा थी। अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में 'नन्द' आदि एक लाख उनहत्तर हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी। अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में महा-सुव्रता आदि तीन लाख छत्तीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणसंपदा थी। अर्हत् अरिष्टनेमि के संघ में जिन नहीं, किन्तु जिन के समान, तथा सभी अक्षरों के संयोग को यथार्थ जानने वाले ऐसे चारसौ चौदह पूर्वधारियों की सम्पदा थी।

इसी प्रकार पन्द्रहसौ अवधिज्ञानियों की, पन्द्रहसौ केवलज्ञानियों की, पन्द्रहसौ वैक्रियलब्धि धारियों की, एक हजार विपुलमति मनःपर्यवज्ञानियों की, आठसौ वादियों की, और सोलहसौ अनुत्तरोपपातिकों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

उनके श्रमण समुदाय में पन्द्रहसौ श्रमण सिद्ध हुए, और तीन हजार श्रमणियां सिद्ध हुईं। यह उनके सिद्धों की सम्पदा थी।

मूल :—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तं जहा जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी दुवासपरियाए अंतमकासी ॥१६७॥

अर्थ—अर्हत् अरिष्टनेमि के समय में अन्तकृतों की अर्थात् निर्वाण प्राप्त

करने वालो की भूमिका दो प्रकार की थी। जैसे—युग अन्तकृत्भूमि और पर्याय अतकृत्भूमि। यावत् अर्हत् अरिष्टनेमि के पीछे आठवे युगपुरुष तक निर्वाण का मार्ग चलता रहा, वह उनकी युग-अतकृत् भूमि थी। अर्हत् अरिष्ट-नेमि को केवलज्ञान होने के दो वर्ष पश्चात् किसी श्रमण ने सर्व दुखो का अन्त कर निर्वाण प्राप्त किया, अर्थात् भगवान को केवलज्ञान होने के पश्चात् दो वर्ष के बाद निर्वाण मार्ग प्रारम्भ हुआ।

——— परिनिर्वाण

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिट्ठनेमी तिन्नि वास-सयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, चउप्पन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरि-यागं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्त वाससयाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, पडिपुन्नाइं सत्त वाससयाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता, एगं वास-सहस्स सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं उज्जिंतसेलसिहरंसि पंचहिं छत्तीसेहिं अणगा-रसएहिं सद्धिं मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोग-मुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि नेसज्जिए कालगए जाव सव्व-दुक्खप्पहीणे ॥१६८॥

अर्थ—उस काल उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक कुमार अवस्था मे रहे। चौपन रात्रि दिन छद्मस्थ पर्याय मे रहे। कुछ कम सात सौ वर्ष तक केवलज्ञानी अवस्था मे रहे। यो पूर्ण सात सौ वर्ष तक श्रमण पर्याय को पालन करके, और कुल एक हजार वर्ष का आयुष्य भोग करके, वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म, और गोत्र कर्म इन चारो अघाती कर्मो को पूर्णतया क्षीण करके, दुषमा-सुषमा नामक अवसर्पिणी काल के बहुत व्यतीत हो

जाने पर, जब ग्रीष्मऋतु के चतुर्थमास का आठवां पक्ष, अर्थात् आषाढ़ मास का शुक्ल पक्ष आया, तब आषाढ शुक्ला अष्टमी के दिन उज्जित [उज्जयन्त] शैल शिखर पर दूसरे पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ उन्होंने निर्जल मासिक तप किया। उस समय चित्रा नक्षत्र का योग आने पर रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धिवेला में, अर्थात् मध्यरात्रि को निषद्या में रहे हुए, [बैठे बैठे] अर्हत्-अरिष्टनेमि कालगत हुए। यावत् सभी दुखों से पूर्णतया मुक्त हुए।

मूल :—

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं, पंचासीइमस्स य वाससहस्सस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१६९॥

अर्थ—अर्हत् अरिष्टनेमि को कालगत हुए, यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए, चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये। और उस पर पचासीवें हजार वर्ष के नौ सौ वर्ष भी व्यतीत हो गये। उस पर दसवीं शताब्दी का यह अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है। अर्थात् अर्हत् अरिष्टनेमि को कालगत हुए चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष व्यतीत हो गए।

—— ● अर्हत् नमि से अर्हत् अजित

मूल :—

नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव प्पहीणस्स पंच वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१७०॥

अर्थ—अर्हत् नमि को कालगत हुए यावत् सर्वदु:खो से पूर्णतया मुक्त हुए पाँच लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर दशमी शताब्दी का यह अस्सीवे वर्ष का समय चल रहा है।

मूल :—

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव प्पहीणस्स एक्कारस वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे गच्छइ ॥१७१॥

अर्थ—अर्हत् मुनिसुव्रत को यावत् सर्वदु खो से मुक्त हुए ग्यारह लाख चौरासी हजार और नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गए, उस पर यह दशवी शताब्दी का अस्सीवाँ वर्ष का समय चल रहा है।

विवेचन—अर्हत् मुनिसुव्रत जैन परम्परा के वीसवे तीर्थंकर हुए। उनका समय वर्तमान भारतीय कालगणना के साथ कुछ मेल नही खाता है, इसके कई कारण हो सकते हैं। किंतु उनकी ऐतिहासिकता तो इसी बात से सिद्ध है कि महापद्म चक्रवर्ती उन्ही के समय मे हुए जिनका प्रधान नमुचि हुआ, जिससे विष्णुकुमार मुनि ने तीन चरण भूमि मागकर श्रमणो का संकट मिटाया।[33] नौवे बलदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम, वासुदेव लक्ष्मण एव प्रति वासुदेव रावण भी अर्हत् मुनिसुव्रत स्वामी के समय मे हुए, ऐसा जैन इतिहासकारो का सुदृढ मत है।[34]

मूल :—

मल्लिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स पन्नट्ठिं वाससयसहस्साइं चउरासीइं वाससहस्साइं नव य वास सयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१७२॥

अर्थ—अर्हत् मल्लि को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये। अब उन पर दशवीं शताब्दी का अस्सीवें वर्ष का समय चल रहा है।"

मूल :—

अरस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे वासकोडिसहस्से वितिक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स। तं च एयं—पंचसट्ठि लक्खा चउरासीइसहस्सा विइक्कंता तम्मि समए महावीरो निव्वुओ, ततो परं नव सया विइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे गच्छइ। एवं अग्गओ जाव सेयंसो ताव दट्ठव्वं ॥१७३॥

अर्थ—अर्हत् अर को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके। यहां सम्पूर्ण वृत्त श्री मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा वैसा ही जानना। वह इस प्रकार कहा है—"अर्हत् 'अर' के निर्वाण गमन के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष में श्री मल्लि अर्हत् का निर्वाण हुआ, और अर्हत् मल्लि के निर्वाण के बाद, पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये उस समय महावीर निर्वाण प्राप्त हुए। उनके निर्वाण के बाद नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उस पर यह दशवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष चल रहा है। इसी प्रकार आगे श्रेयांसनाथ का इतिवृत्त आता है वहां तक समझना चाहिए।

मूल :—

कुंथुस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे चउभागपलिओवमे विइक्कंते पंचसट्ठिं च सयसहस्सा सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७४॥

अर्थ—अर्हत् कुन्थु को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक पल्यो-पम का चतुर्थ भाग जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख,

वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि जो कथन भगवती मल्लि के सम्वन्ध मे कहा है वैसा ही सब समझना चाहिए ।

मूल :—

संतिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे चउभागूणे पलितोवमे विइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७५॥

अर्थ—अर्हत् शान्ति को यावत् सर्व दुःखोसे पूर्णतया मुक्त हुए चार भाग कम एक पल्योपम अर्थात् अर्धपल्योपम जितना समय व्यतीत हो गया, उसके पश्चात् पैसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि सभी वृत्त जैसा भगवती मल्लि के सम्बन्ध मे कहा है वैसा ही समझना चाहिए ।[३६]

मूल :—

धम्मस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स तिन्नि सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७६॥

अर्थ—अर्हत् धर्म को यावत् सर्व दुःखो से पूर्णतया मुक्त हुए तीन सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ, उसके पश्चात् पैसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे भगवती मल्लि के सम्वन्ध मे जैसा कहा है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिए।

मूल :—

अणंतस्स णं जाव प्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७७॥

अर्थ—अर्हत् अनन्त को यावत् सर्व दुःखोसे पूर्णतया मुक्त हुए सातसागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, उसके पश्चात् पैसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे भगवती मल्लि के सम्बन्ध में कहा है, वैसे ही जानना चाहिए ।

मूल :—

विमलस्स णं जाव प्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं विइ-क्कंताइं पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस ॥१७८॥

अर्थ—अर्हत् विमल को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए सोलह सागरोपम व्यतीत हो गये, और उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए इत्यादि सभी जैसा मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा वैसा ही जानना।

मूल :—

वासुपुज्जस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं विइक्कंताइं सेसं जहा मल्लिस ॥१७९॥

अर्थ—अर्हत् वासुपूज्य को यावत् सर्व दुःखोंसे पूर्णतया मुक्त हुए छियालीस सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ, और उनके बाद पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर, इत्यादि सभी वृत्त जैसे मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा वैसे ही जानना।

मूल :—

सेज्जंसस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवम-सए विइक्कंते पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स ॥१८०॥

अर्थ—अर्हत् श्रेयांस को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक सौ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उनके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत होने पर इत्यादि सभी जैसे मल्लि भगवती के सम्बन्ध में कहा, वैसे ही जानना।

मूल :—

सीयलस्स णं जाव प्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी तिवासअड्ढनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता

एयम्मि समए वीरे निव्वुए, तओ वि य णं परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१८१॥

अर्थ—अर्हत् शीतल को यावत् सर्वदु खो से पूर्णतया मुक्त हुए बयालीस हजार तीन वर्ष और साढे आठ मास न्यून एक करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, और उसके पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये, उसके उपरान्त यह दशवी शताब्दी का अस्सीवा वर्ष चल रहा है।

मूल :—

सुविहिस्स णं अरहओ पुप्फदंतस्स काल जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीओ विइक्कंताओ, सेसं जहा सीअलस्स, तं च इमं–तिवासअद्धनवमासाहिअबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिआ विइक्कंता इच्चाइ ॥१८२॥

अर्थ—अर्हत् सुविधि को यावत् सर्व दुःखो से पूर्णतया मुक्त हुए दस करोड सागरोपम का समय व्यतीत हो गया, अन्य सभी वृत्तान्त जैसा शीतल अर्हत् के सम्बन्ध मे कहा है वैसा जानना। वह इस प्रकार है–अर्थात् दस करोड सागरोपम मे से बयालीस हजार और तीन वर्ष, तथा सार्ध अष्टमास कम करके जो समय आता है उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उसके पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि सभी पूर्ववत् कहना।

मूल :—

चंदप्पहस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंतं सेसं जहा सीतलस्स, तं च इमं–तिवासअद्धनवमासाहिय बायालीस (वास) सहस्सेहिं ऊणिगामिच्चाइ ॥१८३॥

अर्थ—अर्हत् चन्द्रप्रभ को यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए एक सौ करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी जैसे शीतल अर्हत् के विषय मे कहा वैसे जानना। वह इस प्रकार है—इन सौ करोड़ सागरोपम मे से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर जो समय आता है, उस समय महावीर निर्वाण प्राप्त हुए, और उसके पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गए, इत्यादि पूर्ववत् समान समझना।

मूल :—

सुपासस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडी सहस्से विइक्कंते, सेसं जहा—सीयलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता इच्चाइ ॥१८४॥

अर्थ—अर्हत् सुपार्श्व को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए एक हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी जैसे शीतल के विषय मे कहा है वैसे जानना। वह इस प्रकार है—एक हजार करोड़ सागरोपम मे से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। इत्यादि सभी पूर्ववत् ही कहना चाहिए।

मूल :—

पउमप्पभस्स णं जाव प्पहीणस्स दससागरोवमकोडिसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा-सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता इच्चाइयं ॥१८५॥

अर्थ—अर्हत् पद्मप्रभ को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दस हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष सारा वृत्त जैसे शीतल के सम्बन्ध मे कहा है वैसा जानना। वह इस प्रकार है—इन दस हजार करोड़ सागरोपम जितने समय मे से बयालीस हजार, तीन वर्ष और साढ़े आठ

मास कम करके जो समय आता है उस समय महावीर का निर्वाण हुआ। इत्यादि सभी पूर्ववत् कहना चाहिए।

मूल :—

सुमइस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडी सयसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८६॥

अर्थ—अर्हत् सुमति को यावत् सर्व दुःखोसे पूर्णतया मुक्त हुए एक लाख करोड सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया, शेष सभी शीतल के सम्बन्ध मे जो कहा वैसे ही जानना। वह इस प्रकार है— एक लाख करोड सागरोपम जितने समय मे से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढे आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि।

मूल :—

अभिनंदणस्स णं जाव प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ ८७॥

अर्थ—अर्हत् अभिनन्दन को यावत् सर्व दु खों से पूर्णतया मुक्त हुए दस लाख करोड सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष सभी जैसे शीतल के सम्बन्ध मे कहा वैसे ही जानना। अर्थात् दस लाख करोड सागरोपम मे से बयालीस हजार और तीन वर्ष तथा साढे आठ मास कम करने पर जो समय आता है, उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। इत्यादि सभी पूर्व के समान समझना।

मूल :—

संभवस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स वीसं सागरोवम-

कोडिसयसहस्सा विइक्कंता सेसं जहा सीयलस्स. तिवासअद्धनव-मासाहियवायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८८॥

अर्थ—अर्हत् सभव को यावत् सर्व दुःखो से मुक्त हुए बीस लाख करोड सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष सभी शीतल के सम्बन्ध मे कहा वैसे ही जानना चाहिए। अर्थात् बीस लाख करोड सागरोपम जितने समय मे से बयालीस हजार तीन वर्ष और साढे आठ मास को कम करके जो समय आता है उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए।

मूल :—

अजियस्स णं जाव प्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडि-सयसहस्सा विइक्कंता. सेसं जहा सीयलस्स. तिवासअद्धनवमा-साहियवायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८९॥

अर्थ—अर्हत् अजित को यावत् सर्व दुःखो से मुक्त हुए पचास लाख करोड सागरोपम बीत गए। उस समय मे बयालीस हजार तीन वर्ष और साढे आठ मास कम करके जो समय आता है उस समय महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए इत्यादि सभी पूर्ववत् समझना।

——● भगवान् ऋषभदेव

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसहे णं अरहा कोसलिए चउ उत्तरासाढे अभीइपंचमे होत्था, तं जहा—उत्तरासाढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव अभीइणा परिनिव्वुए ॥१९०॥

अर्थ—उस काल उस समय कौशलिक (कोशल देश में उत्पन्न हुए) अर्हत् ऋषभ चार उत्तराषाढा वाले और पांचवें अभिजित नक्षत्र वाले थे। अर्थात् उनके चार कल्याणकों में उत्तराषाढा नक्षत्र आया था। पांचवें कल्याणक में अभिजित नक्षत्र था। जैसे—कौशलिक अर्हत् ऋषभदे-

उत्तराषाढा नक्षत्र मे च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ मे आये, यावत् अभिजित नक्षत्र मे निर्वाण को प्राप्त हुए।

मूल :–

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे आसाढ़बहुले तस्स णं आसाढ़बहुलस्स चउत्थीपक्खेणं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीससागरोमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहारवक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते ॥१९१॥

अर्थ–उस काल उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ ग्रीष्म ऋतु का चतुर्थ मास, सातवाँ पक्ष अर्थात् आषाढ मास का कृष्ण पक्ष आया, तब उस आषाढ कृष्णा चतुर्थी के दिन जिसमे तेतीस सागरोपम की आयु होती है, उस सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान मे से आयुष्य आदि पूर्ण होने पर, दिव्य आहार आदि छूट जाने पर यावत् शीघ्र ही च्यवकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष मे, इक्ष्वाकुभूमि मे नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवो को कुक्षि मे रात्रि के पूर्वान्ह और अपरान्ह की सन्धिवेला मे, अर्थात् मध्यरात्रि मे उत्तराषाढा नक्षत्र का योग होने पर गर्भ रूप मे उत्पन्न हुए।

——● **पूर्वभव**

विवेचन–भगवान् श्री ऋषभदेव के जीव को सर्व प्रथम धन्ना सार्थवाह के भव मे सम्यग्दर्शन का आलोक प्राप्त हुआ था। उस समय वे मिथ्यात्व से मुक्त हुए थे, अत. ऋषभदेव के तेरह पूर्व भवो का उल्लेख अनेक ग्रन्थो मे किया गया है।[३७]

(१) **धन्ना सार्थवाह**—भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर मे धन्य नामक सार्थवाह हुआ। उसके

पास विपुल वैभव था। वह सुदूर विदेशों में व्यापार करता था। एक बार उसने यह उद्घोषणा करवाई कि जिसे वसन्तपुर व्यापारार्थ चलना हो वह मेरे साथ चले। मैं उसे सभी प्रकार की सुविधाएँ दूँगा। शताधिक व्यक्ति व्यापारार्थ उसके साथ प्रस्थित हुए।

धर्मघोष आचार्य शिष्यों सहित वसन्तपुर धर्म प्रचारार्थ जाना चाहते थे। विकट सकटमय पथ होने से बिना साथ के जाना असंभव था, उद्घोषणा सुन, आचार्य श्रेष्ठी के पास गये और साथ चलने की भावना अभिव्यक्त की।

श्रेष्ठी ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए अनुचरों को आदेश दिया कि श्रमणों के लिए भोजनादि की सुविधा का पूर्ण ध्यान रखना। आचार्य ने श्रमणाचार का विश्लेषण करते हुए बताया कि श्रमण के लिए औद्देशिक, आधाकर्मिक आदि दोषयुक्त आहार निषिद्ध है। उसी समय एक अनुचर आम लेकर आया। श्रेष्ठी ने आम ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। आचार्य ने बताया कि जैन श्रमण के लिए सचित्त पदार्थ भी अग्राह्य है। श्रमण की कठोर-चर्या को सुनकर श्रेष्ठी श्रद्धावनत हो गया।[38]

आचार्य भी सार्थ के साथ पथ को पार करते हुए बढ़े जा रहे थे। वर्षा ऋतु आई। आकाश में उमड़-घुमड़कर घनघोर घटाएँ छाने लगी और रिम-झिम वर्षा बरसने लगी। उस समय सार्थ भयानक अटवी में से गुजर रहा था। मार्ग कीचड़ से व्याप्त था। सार्थ उसी अटवी में वर्षावास व्यतीत करने हेतु रुक गया। आचार्य भी निर्दोष स्थान में स्थित हो गये।

उस अटवी में सार्थ को संभावना से अधिक रुकना पड़ा, अतः सार्थ की खाद्य-सामग्री समाप्त हो गयी। क्षुधा से पीड़ित हो सार्थ के लोग जंगल में कन्द मूलादि की अन्वेषणा कर जीवन व्यतीत करने लगे।

वर्षावास के उपसंहार काल में धन्य सार्थवाह को अकस्मात् स्मृति आई कि मेरे साथ जो आचार्य प्रवर आये थे, मैंने उनकी सुध नहीं ली। उनके आहार की क्या व्यवस्था है? वह शीघ्र ही आचार्य के पास गया, और आहार की अभ्यर्थना की। आचार्य ने उसे [illegible] और [illegible] को समझाया, [illegible] और

अकल्प का परिज्ञान कर उसने उत्कृष्ट भावना से प्रासुक विपुल घृत दान दिया। शुद्ध भावना के फलस्वरूप सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई।[३९]

(२) **उत्तर कुरु में मनुष्य**—वहाँ से धन्य सार्थवाह का जीव आयुपूर्णकर दान के प्रभाव से उत्तर कुरु मे मनुष्य हुआ।

(३) **सौधर्म देवलोक**—वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव सौधर्म कल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ।

(४) **महाबल**—वहाँ से च्यवकर धन्ना सार्थवाह का जीव पश्चिम महाविदेह के गधिलावती विजय मे वैताढ्य पर्वत की विद्याधरश्रेणी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ। महाबल के पिता को ससार से विरक्ति हुई पुत्र को राज्य देकर स्वय श्रमण बन गये।

एक बार सम्राट् महावल अपने प्रमुख अमात्यो के साथ राज-सभा मे बैठे हुए मनोविनोद कर रहे थे। तब स्वय बुद्ध अमात्य ने राजा को धर्म का मर्म समझाया, राजा पुत्र को राज्य देकर मुनि बना, दुष्कृत्यो की आलोचना की और बाईस दिन का सथारा कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया।

(५) **ललिताङ्ग देव**—वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव ऐशानकल्प मे ललिताङ्ग देव बना, वहाँ स्वयप्रभा देवी मे वह इतना आसक्त हो गया कि स्वय प्रभादेवी का च्यवन होने पर ललिताग देव उसके विरह मे आकुल-व्याकुल बन गया। तब स्वयं बुद्ध अमात्य के जीव ने जो उसी कल्प मे देव हुआ था, आकर उसे सात्वना दी। स्वय प्रभादेवी भी वहां से च्यवकर मानव लोक मे निर्यामिका नाम की वालिका हुई। केवली के उपदेश से श्राविका बनकर पुन आयु पूर्णकर उसी कल्प मे स्वयप्रभा देवी हो गई। ललिताङ्गदेव पुन उसमे आसक्त हो गया। जीवन के अन्त मे नमस्कार महामत्र का जाप करते हुए आयु पूर्ण की।

(६) **वज्रजंघ**—वहाँ से च्यवकर ललिताङ्गदेव का जीव जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय मे लोहार्गला नगर के अधिपति स्वर्णगध सम्राट् की पत्नी लक्ष्मी देवी की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ। वज्रजघ नाम दिया गया।

स्वयप्रभा देवी भी वहाँ से आयु पूर्ण कर पुण्डरीकिनी नगरी मे वज्रसेन राजा की पुत्री 'श्रीमती' हुई।

एक बार 'श्रीमती' महल की छत पर घूम रही थी कि उस समय पास के एक उद्यान मे मुनि को केवलज्ञान हुआ। उसके महोत्सव करने हेतु देव-गण आकाश मार्ग से जा रहे थे। आकाश मार्ग से जाते हुए देव समूह को निहारकर श्रीमती को पूर्व भव की स्मृति उद्बुद्ध हुई। उसने वह स्मृति एक चित्रपट्ट पर अंकित की। पण्डिता परिचारिका उस चित्रपट्ट को लेकर राजपथ पर, जहाँ चक्रवर्ती वज्रसेन की वर्षगाठ मनाने हेतु अनेक देशो के राजकुमार आ-जा रहे थे, वहाँ खडी हो गई। वज्रजघ राजकुमार ने ज्योही वह चित्र देखा त्योही उसे भी पूर्वभव की स्मृति जागृत हो गई। चित्र-पट्ट का सारा इतिवृत्त पण्डिता परिचारिका को बताया। परिचारिका ने श्रीमती को, और पुन श्रीमती की प्रेरणा से चक्रवर्ती वज्रसेन को परिचय दे श्रीमती का वज्रजघ के साथ पाणि-ग्रहण करवाया।

श्रीमती के पिता वज्रसेन ने सयम ले लिया। तब सीमा प्रान्तीय नरेश सम्राट् पुष्करपाल की आज्ञा का उल्लंघन करने लगे। वज्रजघ उनकी सहाय-तार्थ गया एव शत्रुओ पर विजय वैजयन्ती फहराकर वह पुन अपनी राजधानी को लौट रहा था, उसे ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत अरण्य में दो मुनियो को केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ है, उनके दिव्य प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी निर्विष हो गया। वज्रजघ मुनियो के दर्शन करने के लिए गया। उपदेश सुन वैराग्य हुआ। पुत्र को राज्य देकर सयम ग्रहण करूँगा, इस भावना के साथ वह वहाँ से प्रस्थान कर राजधानी पहुँचा। इधर पुत्र ने सोचा कि पिताजी जीते जी मुझे राज्य देंगे नहीं, अतएव राज्य लोभ मे फँसकर उसने उसी रात्रि को वज्रजघ के महल मे जहरीला धुआ फैलाया, जिससे नीद मे वज्रजघ और 'श्रीमती' दोनो ही मृत्यु को प्राप्त हुए।"

(७) युगलिक—वहाँ से दोनो ही आयु पूर्ण कर उत्तरकुरु मे युगल वन-लिनी बने।

(८) सौधर्म कल्प—वहाँ से आयु पूर्ण कर सौधर्म कल्प मे देव बने।

(६) **जीवानन्द वैद्य**—वहाँ से च्यवकर धन्नासेठ का जीव जीवानन्द वैद्य बना। उस समय वहाँ पाँच अन्य जीव भी उत्पन्न हुए (१) राजा का पुत्र-महीधर, (२) मन्त्रीपुत्र सुबुद्धि, (३) सार्थवाह पुत्र पूर्णभद्र, (४) श्रेष्ठीपुत्र गुणाकर (५) ईश्वरदत्त पुत्र केशव (जो श्रीमती का जीव था) इन छहो मित्रो मे पय पानी जैसा प्रेम था।

अपने पिता की तरह जीवानन्द वैद्य भी आयुर्वेद विद्या मे प्रवीण था। उसकी प्रतिभा की तेजस्विता से सभी प्रभावित थे। एक दिन सभी स्नेही साथी वार्तालाप कर रहे थे कि वहाँ एक दीर्घतपस्वी मुनि भिक्षा के लिए आये। वे कृमि-कुष्ठ की भयकर व्याधि से ग्रसित थे। सम्राट् पुत्र महीधर ने जीवानंद से कहा—मित्रवर ! आप अन्य गृहस्थ लोगो की चिकित्सा करने मे दक्ष है, पर कृमिकुष्ट रोग से ग्रसित इन तपस्वी मुनि को निहार करके भी उनकी चिकित्सा हेतु प्रवृत्त क्यो नही होते ?

जीवानन्द—मित्र, तुम्हारा कथन सत्य है, पर मेरे पास लक्षपाक तैल के अतिरिक्त अन्य आवश्यक औषधियाँ अभी उपलब्ध नही है।

उन्होने कहा—बताइए, क्या औषधियाँ चाहिए ? हम मूल्य देंगे, जहाँ भी उपलब्ध हो सकेगी, लाने का प्रयास करेंगे।

जीवानन्द–दो वस्तुएँ चाहिए, रत्न-कवल, और गोशीर्ष चन्दन ?

पाँचो ही साथी औषधि लाने के लिए एक श्रेष्ठी की दुकान पर पहुचे। श्रेष्ठी ने कहा–प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-एक लाख दीनार है। वे उस मूल्य को देने के लिए ज्योही प्रस्तुत हुए, त्योही श्रेष्ठी ने प्रश्न किया कि ये अमूल्य वस्तुएँ किसलिए चाहिए ? उन्होने कहा—मुनि की चिकित्सा के लिए। मुनि का नाम सुनकर वे दोनो ही वस्तुएँ बिना मूल्य लिये श्रेष्ठी ने दे दी। वे उन वस्तुओ को लेकर वैद्य के पास गए।

साथियो के साथ ही जीवानन्द वैद्य औषधिया लेकर मुनि के पास गया। मुनि ध्यानमुद्रा मे लीन थे। मुनि की विना स्वीकृति लिये ही मुनि को आरोग्य प्रदान करने हेतु उन्होंने तैल का मर्दन किया। उष्णवीर्य तैल के प्रभाव

से कृमियां बाहर निकलने लगी। तो शीतवीर्य रत्न-कम्बल से उनके शरीर को आच्छादित कर दिया गया, जिससे वे कृमियां रत्न-कम्बल में आ गईं। उसके पश्चात् रत्न-कम्बल की कृमियों को गो-चर्म में रख दिया। पुनः मर्दन किया, तो मांसस्थ कृमियां निकल गईं, तृतीय बार के मर्दन से अस्थिगत कृमियां निकल गईं। उसके पश्चात् गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, जिससे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गये। छहों मित्र मुनि की स्वस्थता देखकर बहुत प्रमुदित हुए।

छहों मित्रों को संसार से विरक्ति हुई। उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर उत्कृष्ट तप साधना की।

(१०) बारहवें देवलोक में—वहां से आयु पूर्णकर बारहवें अच्युत देव लोक में वे उत्पन्न हुए।

(११) वज्रनाभ–जीवानंद का जीव वहां से आयु समाप्त होने पर पुष्कलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी के अधिपति वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही माता ने चौदह महास्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र का नाम वज्रनाभ रखा गया। पूर्व के पांचों साथियों में से चार तो क्रमशः बाहु, सुबाहु, पीठ, महापीठ, उनके भ्राता हुए और एक उनका सारथी हुआ।

वज्रनाभ को राज्य देकर वज्रसेन ने संयम ग्रहण किया और उत्कृष्ट संयम साधना कर कैवल्य प्राप्त किया। वह तीर्थंकर बने। सम्राट् वज्रनाभ ने भी चक्ररत्न उत्पन्न होने पर षट्खण्ड को विजय कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। चिरकाल तक षट्खण्ड का राज्य किया और अन्त में पिता वज्रसेन के उपदेशामृत प्रवचन सुनकर विरक्ति हुई। वज्रनाभ भी अपने प्रिय भ्राताओं और सारथी के साथ प्रव्रजित हुआ। आगमों का गम्भीर अध्ययन मनन किया, उत्कृष्ट तप की साधना की, अनेक चामत्कारिक लब्धियां प्राप्त हुईं। तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में मासिक संलेखना द्वारा पादोपगमन संथारा कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया।

[illegible]

भ्राताओ ने एकादश अगो का अध्ययन किया। उनमे से बाहूमुनि मुनियो की वयावृत्य करता, और सुबाहुमुनि परिश्रान्त मुनियो को विश्रामणा देता, अर्थात् थके हुए मुनियो के अवयवो के मर्दन आदि रूप अन्तरग सेवा करता। दोनो की सेवा-भक्ति को निहारकर वज्रनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए और उनकी प्रशसा करते हुए कहा—तुमने सेवा और विश्रामणा के द्वारा अपने जीवन को सफल किया है।

ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा अपने मझले भ्राताओ की प्रशसा सुनकर पीठ, महापीठ मुनि के अन्तर्मानिस मे ये विचार उत्पन्न हुए कि हम स्वाध्याय आदि मे तन्मय रहते हैं, हमारी कोई प्रशसा नही करता, पर वैयावृत्य करने वालो की प्रशसा होती है। इस प्रकार मन मे ईष्या उत्पन्न हुई। उस ईर्ष्या-बुद्धि से व माया की तीव्रता से मिथ्यात्व आया और स्त्री वेद का बन्धन हुआ। कृत-दोष की आलोचना नही की। यदि नि शल्य होकर आलोचना करते तो जीवन अवश्य ही विशुद्ध बनता।[४१]

(१२) **सर्वार्थसिद्ध मे**—वहाँ से आयु पूर्णकर वज्रनाभ आदि पाँचो भाई सर्वार्थसिद्ध विमान मे उत्पन्न हुए। वहा तेतीस सागरोपम तक सुख के सागर मे निमग्न रहे।

(१३) **ऋषभदेव**—वहाँ से सर्वप्रथम आयु पूर्णकर वज्रनाभ का जीव, भगवान् ऋषभदेव हुआ। वाहुमुनि का जीव वैयावृत्य के प्रभाव से श्री ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के रूप मे जन्मा, सुबाहुमुनि का जीव मुनियो को विश्रामणा देने से विशिष्ट वाहुवल का अधिपति ऋषभदेव का पुत्र बाहुबली हुआ।[४२] पीठ, महापीठ मुनि के जीव कृत-दोषो की आलोचना न करने से ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी हुई। और सारथी का जीव श्रेयास-कुमार हुआ।

मूल :—

उसभे अरहा कोसलिए तिन्नाणोवगए होत्था तं जहा—चइस्सामि त्ति जाणइ जाव सुमिणे पासइ, तं जहा—गय उसह०

गाहा, सव्वं तहेवं, नवरं सुविणपाढगा, णत्थि, नाभी कुलगरो वागरेइ ॥१६२॥

अर्थ—कौशलिक अर्हन् ऋषभ तीन ज्ञान से युक्त थे। वह इस प्रकार—'मैं च्युत होऊँगा', इस प्रकार वे जानते थे, इत्यादि सभी पहले भगवान् महावीर के प्रकरण मे जो कहा है वैसा ही कहना, यावत् माता स्वप्न देखती है। वे स्वप्न इस प्रकार है गज, वृषभ आदि। विशेष यह कि वह प्रथम स्वप्न मे वृषभ को मुख मे प्रवेश करती हुई देखती है। (स्मरण रखना चाहिए कि अन्य सभी तीर्थंकरो की माताएँ प्रथम स्वप्न मे मुख मे प्रवेश करते हुए हाथी को देखती है) स्वप्न का सारा वृत्तान्त मरुदेवी नाभि कुलकर से कहती है। यहाँ स्वप्नो के फल बताने वाले, स्वप्न पाठक नही है। अत: स्वप्नो के फल को नाभि कुलकर स्वयं कहते हैं।

—— ● जन्म

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं पयाया, तं चेव जाव देवा देवीओ य वसुहारवासं वासिंसु सेसं तहेव चारगसोहणं माणुम्माणवड्ढणं उस्सुक्कमाईयं ट्ठिइपडियवज्जं सव्वं भाणियव्वं ॥१६३॥

अर्थ—उस काल उस समय ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष, अर्थात् जब चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आया, तब चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन, नौ मास और साढ़े सात रात्रि दिन व्यतीत होने पर, यावत् आषाढा नक्षत्र का योग होने पर आरोग्यवाली माता ने आरोग्यपूर्वक कौशलिक अर्हन् ऋषभ नामक पुत्र को जन्म दिया।

यहाँ पहले कहे हुए के समान जन्म सम्बन्धी सारा वृत्त कहना। यावत् देव-देवियाँ आती है, वसुधाराएँ वर्षाती है आदि, किन्तु कारागृह से बन्दियो को मुक्त करना, कर माफ करना, परम्परानुसार जन्मोत्सव आदि प्रस्तुत वर्णन जो पूर्व पाठ मे आया है वह यहाँ पर नही कहना चाहिए, क्योकि उस युग मे न कारागृह थे और न कर आदि ही थे।

मूल :—

उसभे णं कोसलिए कासवगुत्तेणं, तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा—उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खाचरे इ वा, पढमजिणे इ वा, पढमतित्थकरे इ वा ॥१९४॥

अर्थ—कौशलिक अर्हत् ऋषभ काश्यपगोत्रीय थे। उनके पॉच नाम इस प्रकार कहे जाते है (१) ऋषभ, (२) प्रथम राजा, (३) प्रथम भिक्षाचर, (४) प्रथम जिन और (५) प्रथम तीर्थंकर।

भगवान् ऋषभदेव के जन्म से पहले यौगलिक काल था, किन्तु उसमे परिवर्तन होता जा रहा था। अनुक्रम से आवश्यकताऐं तो बढ रही थी, पर कल्पवृक्षो की शक्ति क्षीण होती जाने से आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो पारही थी। साधनाभाव से परस्पर संघर्ष होने लगा। अपराधी मनोवृत्ति जब व्यवस्था का अतिक्रमण करने लगी, तब अपराधो के निरोध के लिए कुलकर व्यवस्था आई, जिसने सर्वप्रथम दण्डनीति का प्रचलन किया।[४३]

तीन नीति : हाकार नीति—प्रथम कुलकर विमलवाहन के समय हाकार नीति का प्रचलन हुआ। उस युग का मानव आज के मानव की तरह अमर्यादित व उच्छृ खल नही था। वह स्वभाव से सकोचशील एव लज्जालु था। अपराध करने पर अपराधी को इतना ही कहा जाता—'हा! तुमने यह क्या किया?' बस, यह शब्द-प्रताडना उस युग का महान्तम दण्ड था। इसे सुनते ही अपराधी पानी-पानी हो जाता।[४४] यह नीति द्वितीय कुलकर चक्षुष्मान् के समय तक चलती रही।

भरत और बाहुबली का विवाह—श्री ऋषभदेव ने यौगलिक धर्म को निवारण करने के लिए जब भरत और बाहुबली युवा हुए तब भरत की सहजात ब्राह्मी का पाणिग्रहण बाहुबली से करवाया और बाहुबली की सहजात सुन्दरी का पाणिग्रहण भरत से करवाया।[५२] इन विवाहो का अनुसरण कर जनता ने भी भिन्न गोत्र मे समुत्पन्न कन्याओ को उनके माता पिता आदि अभिभावको द्वारा दान मे प्राप्तकर पाणिग्रहण करना शुरू किया।[५३] इस प्रकार एक नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई। यही से विवाह प्रथा का आरम्भ हुआ।

● प्रथम राजा

पहले बताया जा चुका है कि ऋषभदेव के पिता 'नाभि' अन्तिम कुलकर थे। जब उनके नेतृत्व मे ही धिक्कार नीति का उल्लघन होने लगा तब घबराकर युगलिक श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे, और उन्हे सारी स्थिति का परिज्ञान कराया। भगवान ऋषभदेव ने कहा—जो मर्यादाओ का अतिक्रमण कर रहे हैं, उन्हे दण्ड मिलना चाहिए और यह व्यवस्था राजा ही कर सकता है, क्योकि शक्ति के सारे स्रोत उसमे केन्द्रित होते हैं। समय के पारखी कुलकर नाभि ने युगलिको की विनम्र प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर उन्हे 'राजा' घोषित किया।[५४] ऋषभदेव प्रथम राजा बने, और शेष जनता प्रजा। इस प्रकार पूर्व चली आ रही 'कुलकर' व्यवस्था का अन्त हुआ और नवीन राज्य व्यवस्था का प्रारम्भ।

राज्याभिषेक के समय युगल समूह कमल पत्रो मे पानी लाकर ऋषभदेव के पाद-पद्मो का सिंचन करने लगे। उनके विनीत स्वभाव को अनुलक्ष मे रखकर नगर का नाम 'विनीता' रखा।[५५] उसका दूसरा नाम अयोध्या भी है।[५६] उस प्रान्त का नाम 'विनीत भूमि'[५७] और 'इक्खाग भूमि'[५८] पडा। कुछ समय के बाद वह मध्यदेश के नाम से विख्यात हुई।[५९]

राज्य व्यवस्था का विकास—राजा बनने के पश्चात् ऋषभदेव ने राज्य की सुव्यवस्था हेतु आरक्षक दल की स्थापना की। जिसके अधिकारी 'उग्र' कहलाये। मत्रि-मण्डल बनाया जिसके अधिकारी 'भोग' नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट् के समीपस्थ जन जो परामर्श प्रदाता थे वे 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी 'क्षत्रिय' नाम से विश्रुत हुए।[६०]

राज्य के संरक्षणार्थ चार प्रकार की सेना व सेनापतियों का निर्माण किया। साम, दाम, दण्ड और भेद नीति का प्रचलन किया। चार प्रकार की दण्डव्यवस्था—परिभाष, (२) मण्डल बन्ध, (३) चारक, (४) छविच्छेद का निर्माण किया।

परिभाष—कुछ समय के लिए सापराध व्यक्ति को आक्रोश पूर्ण शब्दों के साथ नजरबन्दी आदि का दण्ड देना।

मण्डल बन्ध—सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड देना। (एक प्रकार की नजर कैद)

चारक—बन्दीगृह में बन्द करने का दण्ड देना। (कारावास)

छविच्छेद—हाथ पैर आदि अंगोपाङ्गों के छेदन का दण्ड देना।

ये चार नीतियां कब चली, इसमें विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि प्रथम दो नीतियाँ ऋषभ के समय चली और दो भरत के समय। आचार्य अभयदेव के मन्तव्यानुसार ये चारों नीतियाँ भरत के समय में चली। आचार्य भद्रबाहु और आचार्य मलयगिरि के अभिमतानुसार बन्ध (बेड़ी का प्रयोग) और घात (डंडे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे। मृत्यु-दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।

खाद्य समस्या का समाधान—ऋषभदेव के पूर्व मानवों का आहार कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल था। किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द, मूल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने से मानवों ने अन्नादि (कच्चे) का उपयोग प्रारम्भ किया। किन्तु पकाने के साधन न होने से उनका उदर कुपित होने पर लोग ऋषभदेव के पास पहुँचे और उनसे अपनी समस्या का समाधान मांगा। ऋषभदेव ने हाथ से मसलकर खाने की सलाह दी। जब उससे भी कुपित होता तो पानी में भिगोकर और मुट्ठी व बगल में रखकर गर्मी देकर खाने की सलाह दी। उससे भी अजीर्ण की व्याधि समाप्त नहीं हुई।

भगवान् श्री ऋषभदेव अग्नि के सम्बन्ध में जानते थे, पर वह काल

एकान्त स्निग्ध था, अत अग्नि उत्पन्न नही हो सकती थी। अग्नि की उत्पत्ति के लिए एकान्त स्निग्ध और एकान्त रुक्ष दोनो ही काल अनुपयुक्त होते हैं। समय के कदम आगे वढे। जव काल स्निग्ध से रुक्ष हुआ तव लकडियो को घिस कर अग्नि पैदा की और पाक निर्माण कर तथा पाकविद्या सिखाकर खाद्य समस्या का समाधान किया।[६८]

कला का अध्ययन—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की वृत्ति के अनुसार सम्राट् ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को वहत्तर कलाएँ और कनिष्ट-पुत्र वाहुवली को प्राणिलक्षण का ज्ञान कराया। प्रियपुत्री ब्राह्मी को अठारह लिपियो का अध्ययन कराया और सुन्दरी को गणितविद्या का परिज्ञान कराया।[६९] व्यवहार साधन हेतु मान (माप) उन्मान (तोला, मासा आदि वजन) अवमान (गज फुट इच) प्रतिमान (छटाक, सेर, मन आदि) प्रचलित किए और मणि आदि पिरोने की कला वताई।

इस प्रकार सम्राट् ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुरुषो को वहत्तर कलाएँ, स्त्रियो को चौसठ कलाएँ और सौ शिल्पो का परिज्ञान कराया।[७०] असि, मषि और कृषि (सुरक्षा, व्यापार, उत्पादन) की व्यवस्था की, कलाओ का निर्माण किया, प्रवृत्तियो का विकास कर जीवन को सरस, शिष्ट और व्यवहार योग्य वनाया।

अन्त मे अपनी राज्य व्यवस्था का भार भरत को सौंपकर और शेष निन्यानवे पुत्रो को अलग-अलग राज्य दे, दीक्षा ग्रहण के लिए प्रस्तुत हुए।

—— • प्रथम भिक्षाचर

मूल :—

उसभे अरहा कोसलिए दक्खे पतिन्ने पडिरूवे अल्लीण-भद्दए वीणीए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयप-

ज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ चोवट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता पुणरवि लोयंतिएहिं जिअकप्पिए० सेसं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चेत्तबहुले तस्स णं चेत्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे सुदंसणाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे जाव विणीयं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ, लोयं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अप्पाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए॥१९५॥

अर्थ—कौशलिक अर्हत् ऋषभदेव दक्ष थे। दक्ष प्रतिज्ञा वाले, उत्तम रूप वाले, सर्व गुणों से युक्त, भद्र और विनीत थे। वे बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे। उसके पश्चात् त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक राज्यकाल में रहे। त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक राज्य अवस्था में रहते हुए उन्होंने लिपि कला से गणित प्रधान है और शकुनरुत अर्थात् पक्षी के शब्द से शुभाशुभ जानने की कला अन्तिम है ऐसी बहत्तर कलाएँ व महिलाओं के चौसठ गुण तथा सौ शिल्प ये तीनों चीजें प्रजा के हित के लिए उपदेश दी। इन सभी का उपदेश करने के पश्चात् सौ राज्यों में सौ पुत्रों का अभिषेक कर दिया। इसके पश्चात् जिसका वर्णन करने का आचार है ऐसे लोकान्तिक देव उनके पास आए। उन्होंने प्रिय वाणी से भगवान् को कहा, इत्यादि सभी पूर्व वर्णन के समान कहना चाहिए। यावत् दायिकदान देकर, ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास,

प्रथम पक्ष अर्थात् जब चैत्र मास का कृष्ण पक्ष आया तव चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन पिछले प्रहर मे जिनके पीछे मार्ग मे देव, मानव और असुरो की विराट् मण्डली चल रही है ऐसे कौशलिक अर्हत् ऋषभ सुदर्शन नामक शिविका मे बैठकर यावत् विनीता राजधानी के मध्य-मध्य मे होकर निकलते है। निकलकर जिस ओर सिद्धार्थ वन नामक उद्यान है, जिस तरफ अशोक का उत्तम वृक्ष है, उस तरफ आते है, आकर के अशोक के उत्तम वृक्ष के नीचे, शिविका खडी रखते हैं। इत्यादि पूर्व कहे हुए के समान यहाँ भी कथन करना चाहिए। यावत् स्वय अपने हाथो से चार मुष्टि लोच करते है। उन्होंने उस समय पानी रहित षष्ठ भक्त का तप कर रखा था। आषाढा नक्षत्र का योग होते ही उग्रवश के, भोगवश के, राजन्यवश के और क्षत्रियवश के चार हजार पुरुषो के साथ एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर मुडित होकर गृहवास से निकलते हैं और अनगार-दशा को स्वीकार करते है।

विवेचन—भगवान ने चार हजार साधको को अपने हाथ से प्रव्रज्या प्रदान नही की, किन्तु उन्होने भगवान् का अनुकरण कर स्वयं लुचन आदि क्रियाएँ की।[७१]

श्रमण वनने के पश्चात् भगवान् अखण्ड मौनव्रती वनकर एकांत-शान्त स्थान मे ध्यानस्थ होकर रहने लगे। घोर अभिग्रहो को ग्रहण कर अनासक्त वन भिक्षा हेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते, पर भिक्षा और उसकी विधि से जनता अनभिज्ञ होने से भिक्षा उपलब्ध नही होती। वे चार सहस्र श्रमण चिरकाल तक यह प्रतीक्षा करते रहे कि भगवान् मौन छोडकर हमारी सुध-बुध लेंगे। सुख-सुविधा का प्रयत्न करेंगे, पर भगवान् आत्मस्थ थे, कुछ बोले नही। वे श्रमण भूख प्यास से सत्रस्त हो सम्राट् भरत के भय से पुनः गृहस्थ न वनकर वल्कलधारी तापस आदि हो गये।[७२] वस्तुतः विवेक के अभाव मे साधक साधना से पथभ्रष्ट हो जाता है।

भगवान् ऋषभदेव अम्लान चित्त से, अव्यथित मन से भिक्षा के लिए नगरो व ग्रामो मे परिभ्रमण करते। भावुक मानव भगवान् को निहार कर भक्ति भावना से विभोर होकर अपनी रूपवती कन्याओ को, सुन्दर वस्त्रो को,

अमूल्य आभूषणों को और गज, तुरङ्ग, रथ, सिंहासन आदि ग्रहण करने के लिए अभ्यर्थना करते, पर कोई भी भिक्षा के लिए नहीं कहता। भगवान् उन वस्तुओं को बिना ग्रहण किए जब उल्टे पैरों लौट जाते तो वे नहीं समझ पाते कि भगवान् को किस वस्तु की आवश्यकता है?

एक वर्ष पूर्ण हुआ। कुरुजनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि "सुमेरु पर्वत श्यामवर्ण का हो गया है। उसे मैंने अमृत कलश से अभिषिक्त कर पुनः चमकाया।"[13] सुबुद्धि नगर श्रेष्ठी ने भी स्वप्न देखा "सूर्य की हजार किरणें अपने स्थान से चलित हो रही थीं कि श्रेयांस ने उन रश्मियों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया।" राजा सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि "एक महान् पुरुष शत्रुओं से युद्ध कर रहा है, श्रेयांस ने उसे सहायता प्रदान की। उससे शत्रु का बल नष्ट हो गया।" प्रातः होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध में चिन्तन मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही श्रेयांस को विशिष्ट लाभ होगा।[14]

भगवान् उसी दिन विचरण करते हुए गजपुर पधारे। चिरकाल के पश्चात् भगवान् को देख पौरजन आह्लादित हुए। श्रेयांस को भी अत्यधिक प्रसन्नता हुई। भगवान् परिभ्रमण करते हुए श्रेयांस के यहाँ पधारे। भगवान् के दर्शन और चिन्तन से पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई। स्वप्न का सही तत्त्व परिज्ञात हुआ। उसने भक्ति-विभोर हृदय से ताजे आये हुए इक्षु रस के कलश को हाथ में ग्रहण कर भगवान् के कर कमलों में रस प्रदान किया। भगवान् ने भी विशुद्ध आहार जानकर ग्रहण किया। इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव को एक संवत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त हुई[15] और सर्वप्रथम इक्षु-रस का पान करने के कारण वे काश्यप नाम से भी विश्रुत हुए।[16]

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम वैशाख शुक्ला तृतीया को श्रेयांस ने प्रभु को इक्षु रस का दान दिया अतः वह तृतीया 'इक्षु-तृतीया' या 'अक्षय तृतीया' के नाम से प्रसिद्ध हुई।[17] इस प्रकार दान से विधि भी प्रचलित हो गई।

मूल :—

उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्सं निच्चं वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जाव अप्पाणं भावेमाणस्स एक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले तस्स णं फग्गुणवहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि पुरिमतालस्स नयरस्स वहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१९६॥

अर्थ—कौशलिक अर्हत् ऋषभदेव ने अपने शरीर की ओर लक्ष्य देना छोड दिया था। उन्होने शरीर की सभाल छोड दी थी। इस प्रकार अपनी आत्मा को भावित करते-करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये, तव हेमन्तऋतु के चतुर्थ मास और सातवे पक्ष, अर्थात् फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन, पूर्वाह्न मे, पुरिमताल नगर के वाहर, शकटमुख नामक उद्यान मे, उत्तम वट वृक्ष के नीचे, रहकर ध्यान कर रहे थे। उस समय निर्जल अष्टम तप किया हुआ था, आषाढा नक्षत्र का योग आने पर, ध्यान मे रहे हुए भगवान् को उत्तम अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उससे वे सभी लोकालोक के भाव जानते-देखते हुए विचरने लगे।

विवेचन—भगवान् श्री ऋषभदेव को केवलज्ञान की उपलब्धि वट वृक्ष के नीचे हुई थी अत वह आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

जिस समय भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान की उपलब्धि हुई उसी समय सम्राट् भरत की आयुधशाला मे चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ। और उसकी सूचना एक साथ ही यमक और शमक दूतो के द्वारा सम्राट् भरत को मिली।[७८] भरत एक साथ दो सूचनाएँ मिलने से एक क्षण असमजस मे पड गये। उन्होने सोचा—प्रथम चक्ररत्न की अर्चना करनी चाहिए, या भगवान्

की उपासना करनी चाहिए। कहाँ अभय का प्रदाता केवलज्ञान और कहाँ प्राणियों का विनाश करने वाला चक्ररत्न, मुझे प्रथम चक्ररत्न की नहीं, किन्तु भगवान् की उपासना करनी चाहिए।" ऐसा सोच सम्राट् भरत भगवान् के दर्शन हेतु सपरिजन प्रस्थित हुए।[1]

माँ मरुदेवा भी अपने लाडले पुत्र के दर्शन हेतु चिरकाल से छटपटा रही थी। पुत्र के वियोग से वह व्यथित थी। उसके दारुण कष्ट की कल्पना करके वह कलप रही थी। प्रतिपल प्रतिक्षण लाडले लाल की स्मृति से उसके नेत्रों से आँसू बरस रहे थे। जब उसने सुना कि ऋषभ विनीता के बाग में आया है, तो वह भरत के साथ ही हस्ती पर आरूढ होकर चल पड़ी। भरत के विराट् वैभव को देखकर उसने कहा—बेटा भरत ! एक दिन मेरा प्यारा ऋषभ भी इसी प्रकार राज्यश्री का उपभोग करता था। पर उस समय वह क्षुधा-पिपासा से पीड़ित होकर कहीं कष्टों को सहन करता होगा ? पुत्र प्रेम से आँखें छलछला आईं। भरत के द्वारा तीर्थंकरों की दिव्य विभूति का शब्द चित्र सुनने पर भी माता के हृदय को सन्तोष नहीं हो रहा था। समवसरण के सन्निकट पहुँचने पर ज्योंही भगवान ऋषभ को इन्द्रों द्वारा अर्चित देखा, त्योंही माता का चिन्तन का प्रवाह बदला गया। आर्तध्यान से शुक्लध्यान में लीन हो गई। ध्यान का उत्कर्ष बढ़ा। मोहकर्म का बन्धन टूटा, फिर ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय को नष्ट कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। उसी क्षण शेष कर्मों को भी नष्ट कर हस्ती पर आरूढ हुई सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।[2] कितने ही आचार्यों का अभिमत है कि भगवान् के शब्द उनके कानों में गिरने से, उन्हें आत्मज्ञान हुआ और मुक्ति प्राप्त हुई।[3]

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम केवलज्ञान श्री ऋषभदेव को प्राप्त हुआ और मोक्ष मरुदेवा माता को।

प्रथम धर्म चक्रवर्ती—भगवान् ऋषभदेव का प्रथम प्रवचन [illegible] प्रथम समवसरण में हुआ। [illegible] सम्राट् भरत के पौत्र और पुत्र [illegible] [illegible] [illegible] धारणी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्धि और सुन्दरी ने भी।[4] इस प्रकार श्रमण, श्रमणी, श्रावक

श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की सस्थापना कर वे सर्वप्रथमतीर्थंकर बने। श्रमण धर्म के लिए पाँच महाव्रत और गृहस्थ धर्म के लिए द्वादश व्रतो का निरुपण किया, इसीलिए भगवान् ऋपभदेव को धर्म का मुख कहा है।[८४]

भगवान् के प्रथम गणधर सम्राट् भरत के पुत्र ऋपभसेन हुए। उन्हे ही सर्वप्रथम भगवान् ने आत्म-विद्या का परिज्ञान कराया। भगवान् को केवल ज्ञान की सूचना प्राप्त होते ही पूर्व दीक्षित श्रमण, जो क्षुधा-पिपासा से पीडित होकर तापस बन गए थे, भगवान् की सेवा मे आ गए। उन्होंने पुन. विधिवत् प्रव्रज्या ग्रहण की, सिर्फ कच्छ और सुकच्छ ही ऐसे थे जो नही आए।[८५]

सुन्दरी का संयम—भगवान् श्री ऋषभ के प्रथम प्रवचन को श्रवणकर सुन्दरी भी सयम ग्रहण करना चाहती थी, उसने यह भव्य भावना अभिव्यक्त भी की थी, किन्तु सम्राट् भरत के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने से वह श्राविका बनी।[८६] उसके अन्तर्मानस मे वैराग्य का सागर उछालें मार रहा था। वह तन से गृहस्थाश्रम मे थी, पर उसका मन सयम मे रम रहा था। षट्खण्ड पर विजय-वैजयन्ती फहराकर जव सम्राट् भरत दीर्घकाल के पश्चात् विनीता लौटे तव सुन्दरी के कृश शरीर को देखकर वे चकित रह गए। प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि यह अवस्था जिस दिन से दीक्षा ग्रहण का निषेध किया था उस दिन से निरन्तर आचाम्ल व्रत करने से हुई है।[८७] सुन्दरी की सयम लेने की प्रबल भावना को देखकर भरत ने अनुमति प्रदान की और सुन्दरी ने ऋषभदेव की आज्ञानुवर्तिनी ब्राह्मी के पास दीक्षा ग्रहण की।[८८]

अट्ठानवें भ्राताओ की दीक्षा—वताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव अपने सौ पुत्रो को पृथक्-पृथक् राज्य देकर श्रमण वने थे। सम्राट् भरत चक्रवर्ती वनना चाहते थे। उन्होने अपने लघु भ्राताओ को अपने अधीन करने के लिए उनके पास दूत भेजे। अट्ठानवे भ्राताओ ने मिलकर परस्पर परामर्श किया, परन्तु वे निर्णय पर नही पहुच सके। उस समय भगवान् अष्टापद मागध मे विचर रहे थे। वे सभी भगवान् श्री ऋषभदेव के पास पहुचे।[८९] स्थिति का परिचय देते हुए निवेदन किया—"प्रभो! आपके द्वारा प्रदत्त राज्य

पर भाई भरत ललचा रहा है, वह हमारा राज्य लेना चाहता है। क्या बिना युद्ध किये हम उसे राज्य दे दें ? यदि देते हैं तो उसकी साम्राज्य-लिप्सा बढ़ जायगी और हम पराधीनता के पङ्क में डूब जायेंगे। यदि हम अपने ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध करते हैं तो भ्रातृ युद्ध की एक अनुचित परम्परा प्रारम्भ हो जायेगी। हमें क्या करना चाहिए ?"

भगवान् बोले—पुत्रो ! तुम्हारा चिन्तन ठीक है। युद्ध भी बुरा है, और कायर बनना भी बुरा है। युद्ध इसलिए बुरा है कि उसके अन्त में विजेता और पराजित दोनों को सन्ताप एवं ही निराशा मिलती है। अपनी सत्ता को गंवाकर पराजित पछताता है और कुछ नहीं पाकर विजेता पछताता है। कायर बनने का भी मैं तुम्हें परामर्श नहीं दे सकता। मैं तुम्हें ऐसा राज्य देना चाहता हूं, जो युद्ध और क्लीवत्व से ऊपर है।

भगवान् की आश्वासन भरी वाणी को सुनकर सभी के मुख कमल खिल उठे, मन मयूर नाच उठे। वे अनिमेष दृष्टि से भगवान् को निहारने लगे। भगवान की भावना को वे छू नहीं सके। यह उनकी कल्पना में नहीं आ सका कि भौतिक राज्य से अतिरिक्त भी कोई राज्य हो सकता है। वे भगवान के द्वारा कहे गये राज्य को पाने के लिए उत्सुक हो गये। उनकी तीव्र लालसा देख कर भगवान् बोले— एक लकड़हारा था, वह भाग्यहीन और मूर्ख था। प्रतिदिन कोयले बनाने के लिए वह जंगल में जाता और जो कुछ भी प्राप्त होता उससे अपना भरण पोषण करता। एक बार वह ग्रीष्म-ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप में छोटा-सा पानी लेकर जंगल में गया और सूखी लकड़ियां एकत्रित कर कोयले बनाने के लिए उन लकड़ियों में आग लगादी।

चिलचिलाती धूप व प्रचण्ड ज्वाला के कारण, उसे अत्यधिक प्यास लगी। साथ में जो पानी लाया था वह पी गया, पर प्यास शान्त नहीं हुई। इधर उधर जंगल में पानी को ढूंढ़ता भी परन्तु कहीं भी पानी उपलब्ध नहीं हुआ। नजदीक कोई भी सरोवर नहीं था। प्यास से गला सूख रहा था। थकावट बहुत थी, वह एक वृक्ष के नीचे लेट गया। नींद आ गई। स्वप्न में उसने देखा

कि घर मे जितना भी पानी है वह पी गया है, तथापि प्यास शान्त नही हुई। कुंए पर गया, और वहाँ का भी सारा पानी पी गया, पर प्यास न वुझी। नदी, नाले, और द्रहो का पानी पीता हुआ समुद्र पर पहुँचा, सारा पानी पी लेने पर भी उसकी प्यास कम नही हुई। प्यास से छटपटाता हुआ वह समुद्र के किनारे भीने हुए तिनको को निचोडकर प्यास वुझाने का प्रयास कर रहा था कि नीद खुल गई।"

रूपक का उपसहार करते हुए भगवान के कहा—क्या पुत्रो! उन भीगे हुए तिनको से उसकी प्यास शान्त हो सकती है, जवकि कुए और समुद्र के पानी से नही हुई?

पुत्रो ने कहा-नही भगवन्!

भगवान् ने अपने अभिमत की ओर पुत्रो को आकृष्ट करते हुए कहा—भौतिक राज्यश्री से तृष्णा को शान्त करने का प्रयास भी भीगे हुए तिनको को निचोडने के समान है। स्वर्गीय सुखो से भी जव तृष्णा शान्त नही हुई, तो इस तुच्छ और अल्पकालिक राज्य से शान्त होना कैसे सम्भव है? अत सम्वोधि प्राप्त करो।[१०] वस्तुत भौतिक राज्य से आध्यात्मिक राज्य महान् है, सासारिक सुखो से आध्यात्मिक सुख उत्तम है। इसे ग्रहण करो, इनमें न कायरता की आवश्यकता है और न युद्ध का ही प्रसग है। जव तक स्वराज्य नही मिलता तव तक पर-स्वराज्य की कामना रहती है। स्वराज्य मिलने पर पर-स्वराज्य का मोह नही रहता। भगवान् के उपदेश मे प्रभावित हो अट्ठानवें ही भ्राताओ ने राज्य त्यागकर सयम ग्रहण कर लिया। भरत को यह सूचना प्राप्त होते ही वह दौडे-दौड़े आए।[११] भ्रातृ-प्रेम से उनकी आँखे गीली हो गईं। पर उनकी गीली आँखें अठानवे भ्राताओ को पथ से विचलित नहीं कर सकी। भरत निराश होकर पुन: अपने घर लौट गए।

भ्रातृ-युद्ध—सम्राट् भरत एक शासन सूत्र मे समग्र भारतवर्ष को पिरोना चाहते थे। अत अपने लघुभ्राता वाहुवली को यह सन्देश पहुँचाया कि वह चक्रवर्ती की अधीनता स्वीकार कर ले। भरत का यह सन्देश सुनते ही वाहुवली की

भृकुटि तन गई। क्रोध उभर आया। दाँतों को पीसते हुए उसने कहा—क्या भाई भरत की भूख अभी तक शान्त नहीं हुई है? अपने लघु भ्राताओं से राज्य को छीन करके भी उसे सन्तोष नहीं हुआ! क्या वह मेरे राज्य को भी हड़पना चाहता है। यदि वह यह समझता है कि मैं शक्तिशाली हूँ और शक्ति से सभी को चट कर जाऊँ तो यह शक्ति का सदुपयोग नहीं, दुरुपयोग है। मानवता का भयंकर अपमान है और कुल मर्यादा का अतिक्रमण है। हमारे पूज्य पिता व्यवस्था के निर्माता हैं, और हम उनके पुत्र होकर व्यवस्था को भंग करते हैं, तो यह हमारे लिए उचित नहीं है। बाहु-बल में मैं भरत से किसी भी प्रकार कम नहीं हूँ, यदि वह अपने बड़प्पन को विस्मृत कर अनुचित व्यवहार करता है तो मैं चुप्पी नहीं साध सकता। मैं दिखा दूँगा भरत को कि आक्रमण करना कितना अनुचित है।

भरत विराट् सेना लेकर बाहुबली से युद्ध करने के लिए 'बहली' की सीमा पर पहुँच गये। और बाहुबली भी अपनी छोटी सेना को सजाकर युद्ध के मैदान में आ गया। बाहुबली के वीर सैनिकों ने भरत की विराट् सेना के छक्के छुड़ा दिये। लम्बे समय तक युद्ध चलता रहा, पर न भरत जीते और न बाहुबली ही। हार-जीत का कोई फैसला नहीं हुआ। आखिर बाहुबली ने मनुष्यों का यह रक्त बहता देखकर नरसंहार बन्द करके द्वन्द्व युद्ध के लिए आमन्त्रित किया। दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टियुद्ध और दण्डयुद्ध निश्चित हुए। सभी में सम्राट् भरत पराजित हुए और बाहुबली विजयी हुए। भरत को अपने लघुभ्राता से पराजित होना अत्यधिक अखरा। आवेश में आकर और मर्यादा को विस्मृत कर बाहुबली का शिरोच्छेदन करने हेतु भरत ने चक्र का प्रयोग किया। यह देख बाहुबली का खून उबल गया। बाहु-बली ने उछलकर चक्र को पकड़ना चाहा, पर चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा कर पुन भरत के पास लौट गया। वह बाहुबली का बाल भी बांका न कर सका। यह देख सभी स्तब्ध रह गये। बाहुबली की विजयध्वनि से भूमण्डल गूँज उठा। भरत अपने कृत्य पर लज्जित हो गये।

भाई भरत की भूल को भुलाने के लिए ज्यों ही मुट्ठी से से [illegible]

फूट पड़ी—"सम्राट् भरत ने भूल की है, पर आप भूल न करे। लघु भाई के द्वारा बड़े भाई की हत्या अनुचित ही नही, अत्यन्त अनुचित है। महान् पिता के पुत्र भी महान् होते हैं, क्षमा कीजिए, क्षमा करने वाला कभी छोटा नही होता।" वाहुवली का रोप कम हुआ, हृदय प्रवुद्ध हुआ। कुल-मर्यादा और युग की आवश्यकता को ध्यान मे रखकर वे चिन्तनमग्न हो गए। भरत को मारने के लिए उठा हुआ हाथ भरत पर नही पडकर, स्वय के सिर पर गिरा और वे लु चन कर श्रमण वन गये। राज्य को ठुकरा कर पिता के चरण-चिह्नों पर चल पडे।[१८]

वाहुवली को केवल ज्ञान—वाहुवली के पैर चलते-चलते रुक गये। वे पिता की शरण मे पहुँचने पर भी चरण मे नही पहुँच सके। पूर्व दीक्षित लघु-भ्राताओ को नमन करने की वात स्मृति मे आते ही उनके चरण एकान्त-शान्त कानन मे ही स्तव्ध हो गये। असन्तोष पर विजय पाने वाले वाहुवली अस्मिता से पराजित हो गये। एक वर्ष तक हिमालय की तरह अडोल ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित रहने पर भी केवलज्ञान का दिव्य आलोक प्राप्त नही हो सका। शरीर पर लताएँ चढ गईं, पक्षियो ने घोसले वना दिये, तथापि सफलता नही मिल सकी। केवलज्ञान नही हुआ।[१९]

"हस्ती पर आरूढ व्यक्ति को कभी केवलज्ञान की उपलब्धि नही होती, अत भाई नीचे उतरो" ये शव्द एकदिन वाहुवली के कानो मे पडे। वाहुवली ने चिन्तन किया—मैं हाथी पर कहाँ आरुढ हूँ ? फिर विचारधारा ने मोड़ लिया, नेत्र खोले, सामने विनीत मुद्रा मे भगिनियों को निहार कर सोचने लगे—मैं व्यर्थ ही अभिमान के हाथी पर चढा था। मैं अवस्था के भेद मे उलझ गया। वे भाई आयु मे मुझ से भले ही छोटे हैं, पर चारित्रिक दृष्टि से वड़े हैं। मुझे नमन करना चाहिए।" नमन करने के लिए ज्यो ही पैर उठे त्यो ही वन्धन टूट गए। विनय ने अहंकार को पराजित कर दिया। वाहुवली वही पर केवली वन गये। भगवान् श्री ऋषभदेव को नमन कर केवलीपरिषद् मे आकर सम्मिलित हुए।[११]

भरत को कैवल्य—राजनैतिक व सास्कृतिक एकता के लिए भरत ने

भ्राताओं के साथ जो व्यवहार किया था उससे वे स्वयं लज्जित थे। भ्राताओं को गंवाकर राज्य प्राप्त कर लेने पर भी उनके मानस को प्रसन्नता नहीं हुई। विराट् राज्य का उपभोग करते हुए भी वे अब उसमें आसक्त नहीं थे। सम्राट् होने पर भी वे साम्राज्यवादी वृत्ति के नहीं थे। दीर्घकाल तक राज्यश्री का उपयोग करने के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के बाद एक बार भरत वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आदर्श भवन (कांच के महल) में गए। अंगुली से अंगूठी गिर गई जिससे वह असुन्दर प्रतीत हो रही थी। भरत ने देखा तो अन्य आभूषण भी उतारे, सुन्दरता का रूप बदला देखकर चिन्तन का प्रवाह उमड़ पड़ा। भरत सोचने लगे—"यह सब सौन्दर्य कृत्रिम है, कृत्रिमता सदा क्षण भंगुर होती है। सुन्दरता तो वह है जो अक्षय, अजर, अमर हो, जो किसी अन्य की अपेक्षा से नहीं, किन्तु स्वयं के रूप से ही सुन्दर हो, वह सौन्दर्य बाहर में नहीं, भीतर में है, आत्मा के भीतर...अनन्त ज्ञान! अनन्त दर्शन! यही मेरे अक्षय सौन्दर्य का भण्डार है।" इस प्रकार चिन्तन करते हुए कृत्रिम-सौन्दर्य से आत्म-सौन्दर्य में पहुँच गए। कर्ममल का प्रक्षालन करते-करते केवल ज्ञानी बन गये।[१] इस प्रकार भगवान् के सौ ही पुत्रों ने तथा ब्राह्मी सुन्दरी दोनों पुत्रियों ने श्रमणत्व स्वीकार कर कैवल्य प्राप्त किया और मोक्ष गये।

● भगवान ऋषभदेव की शिष्य संपदा

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा चउरासीइं गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभीसुन्दरिपामोक्खाणं अज्जियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जंसपामोक्खाणं समणोवासगाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ पंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयसंपया होत्था। उसभस्स णं

अरहओ कोसलियस्स सुभद्दापामोक्खाणं समणोवासियाणं पंच सयसाहस्सीओ चउप्पन्नं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चत्तारि सहस्सा सत्त सया पन्नासा चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्विसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्कोसिया संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीससहस्सा केवलणाणीणं उक्कोसिया संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ वीससहस्स छच्च सया वेउव्वियाणं उक्कोसिया संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बारससहस्सा छच्च सया पन्नासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीणं पंचिदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पासमाणाणं उक्कोसिया विपुलमइ संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बारससहस्सा छच्च सया पन्नासा वाईणं संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं अंतेवासि सया सिद्धा, चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ सिद्धाओ। बावीस सहस्सा नव य सया अणुत्तरोववाइयाणं गति कल्लाणाणं जाव भद्दाणं उक्कोसिया संपया होत्था ॥१९७॥

अर्थ—कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के संघ मे ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार श्रमणो की उत्कृष्ट श्रमण सपदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय मे ब्राह्मी आदि तीन लाख आर्यिकाओ की उत्कृष्ट आर्यिका सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय मे श्रेयास प्रमुख तीन लाख और पाँच हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सपदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय मे

सुभद्रा प्रमुख पाँच लाख चौवन हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में जिन नहीं किन्तु 'जिन' के समान चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वधारियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में नौ हजार अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में बीस हजार केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट केवलज्ञानी-सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में बीस हजार छः सौ वैक्रिय लब्धिधारियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में ढाई द्वीप में और दोनों समुद्रों में रहते हुए पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियों के मनोभावों को जानने वाले ऐसे विपुलमति मनःपर्यवज्ञानियों की बारह हजार छः सौ पचास जितनी उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में बारह हजार छः सौ पचास वादियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के संघ में से उनके बीस हजार अन्तेवासी शिष्य और चालीस हजार आर्यिकाएँ सिद्ध हुईं। कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समुदाय में बावीस हजार नौ सौ कल्याण गति वाले, यावत् भविष्य में भद्र प्राप्त करने वाले अनुत्तरौप-पातिकों की अर्थात् अनुत्तर विमान में जाने वालों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

मूल :—

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स दुविहा अंतगडभूमी होत्था, तं जहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य। जाव असंखेज्जाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, अंतोमुहुत्तपरियाए अंतमकासी ॥४६=॥

अर्थ—कौशलिक अर्हत् ऋषभ की दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि थी। [illegible] भूमि और पर्यायान्तकृत् भूमि। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सर्व दुःखो का अन्त किया, निर्वाण प्राप्त किया, यह उनकी पर्यायान्तकृत् भूमि है।

——● परिनिर्वाण

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झावसित्ता णं, तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झावसित्ता णं, तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झावसित्ता णं, एगं वाससहस्सं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरियागं पाउणित्ता, पडिपुन्नं पुव्वसयसहस्सं सामन्नपरियागं पाउणित्ता, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं उप्पिं अट्ठावयसेलसिहरंसि दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं चोद्दसमेणं भत्तेणं अप्पाणएणं अभिइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१९९॥

अर्थ—उस काल उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ बीस लाख पूर्व वर्ष तक कुमार अवस्था मे रहे। त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक राज्यावस्था मे रहे। तिरासी लाख पूर्व वर्ष तक गृहवास मे रहे, एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय मे रहे, एक लाख पूर्व वर्ष मे एक हजार वर्ष न्यून केवलीपर्याय मे रहे, और इस प्रकार पूरे एक लाख पूर्व वर्ष तक श्रमण पर्याय मे रहे। इस तरह निश्चित रूप से चौरासी लाख पूर्व का पूर्ण आयुष्य भोग करके, वेदनीय कर्म,
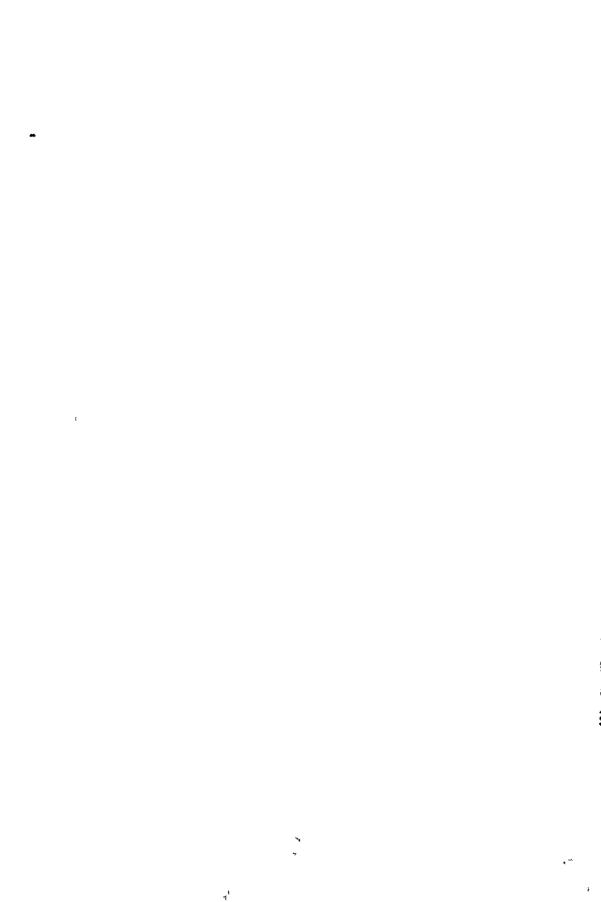
आयुकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म क्षीण होते ही इस अवसर्पिणी काल के सुषम-दुषम नामक आरे का बहुत समय व्यतीत हो जाने और तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर हेमन्तऋतु के तृतीय मास, पाचवें पक्ष, अर्थात् माघ मास का कृष्ण पक्ष आया, उस माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन, अष्टापद पर्वत के शिखर पर श्री ऋषभदेव अर्हन्, दूसरे दस हजार अनगारों के साथ, पानी रहित, चतुर्दश भक्त का तप करते हुए, अभिजित नक्षत्र का योग होते ही, पूर्वाह्न में पल्यकासन से रहे हुए कालगत हुए, यावत् सर्व दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए, निर्वाण को प्राप्त हुए।

मूल :—

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स तिन्नि वासा अद्धनवमा य मासा विइक्कंता. तओ वि परं एगा सागरोवमकोडाकोडी तिवासअद्धनवमासाहिएहिं बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया वीइक्कंता. एयम्मि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे. तओ वि परं नव वाससया वीइक्कंता. दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरकाले गच्छइ ॥२००॥

अर्थ—कौशलिक अर्हन् ऋषभ को निर्वाण हुए, यावत् उनको सर्व दुःखों से मुक्त हुए, तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत हो गये, उसके पश्चात् बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास कम एक कोटाकोटि सागरोपम जितना समय व्यतीत हुआ। उस समय श्रमण भगवान महावीर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उसके पश्चात् भी नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अब दसवीं सदी का यह अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है।

स्थविरावली

—— ० गणधर चरित्र

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा एक्कारस गणहरा होत्था ॥२०१॥

अर्थ—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ।

मूल :—

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा एक्कारस गणहरा होत्था ?

समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वातेइ, मज्झिमे अणगारे अग्गिभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्जवियत्ते भारदाये गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्जसुहम्मे अग्गिवेसायणे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठे गोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे मोरियपुत्ते कासवगोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अकंपिए गोयमे गोत्तेणं, थेरे अयलभाया हारियायणे गोत्तेणं ते दुन्नि

वि थेरा तिन्नि तिन्नि समणसयाइं वाइंति, थेरे मेयज्जे थेरे य प्पभासे एए दोन्नि वि थेरा कोडिन्ना गोत्तेणं तिन्नि तिन्नि समण-सयाइं वाएंति. से एतेणं अट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा एक्कारस गणहरा होत्था ॥२०२॥

अर्थ—प्रश्न—भगवन् ! यह किस दृष्टि से कहा जाता है कि श्रमण भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे ?

उत्तर—श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार पांचसौ श्रमणों को वाचना देते थे। द्वितीय शिष्य अग्निभूति नामक गौतम गोत्रीय अनगार ने पांचसौ श्रमणों को वाचना दी। तृतीय शिष्य लघु अनगार वायुभूति गौतम गोत्रीय ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी। चतुर्थ शिष्य आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीय स्थविर ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी। पांचवें शिष्य आर्य सुधर्मा नामक अग्निवैशायन गोत्रीय स्थविर ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी। छट्ठे शिष्य मण्डितपुत्र नामक वाशिष्ठ गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी। सातवें शिष्य मौर्यपुत्र नामक काश्यप गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ पचास श्रमणों को वाचना दी। आठवें शिष्य अकम्पित नामक गौतम गोत्रीय स्थविर ने और नौवें शिष्य अचलभ्राता नामक हारितायन गोत्रीय स्थविर ने तीन सौ श्रमणों को वाचना दी। दसवें शिष्य मेतार्य नामक कौडिन्य गोत्रीय स्थविर ने और ग्यारहवें शिष्य प्रभास नामक स्थविर ने तीन-तीन सौ श्रमणों को वाचना दी।

इसलिए हे आर्यो ! ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे। अर्थात् आठवें और नौवें गणधर की एक वाचना थी और दसवें व ग्यारहवें गणधर की भी एक वाचना थी। [illegible] महावीर के [illegible] सभी गणधर [illegible] आर्य सुधर्मा [illegible] बन गये थे।

विवेचन—इन्द्रभूति श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य थे। [illegible] [illegible] (गौतम गोत्र) [illegible]

जो आज नालन्दा का ही एक विभाग माना जाता है। उनके पिता वसुभूति[3] और माता 'पृथ्वी' थी।[4] उनका नाम यद्यपि इन्द्रभूति था पर अपने गोत्राभिधान 'गौतम'[5] इस नाम से ही वे अधिक विश्रुत थे। पचास वर्ष की आयु में[6] आपने पाँच सौ छात्रो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, तीस वर्ष तक छद्मस्थ रहे,[7] और बारह वर्ष जीवन्मुक्त केवली[8]। गुणशील चैत्य मे मासिक अनशन करके बानवे (९२) वर्ष की उम्र मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[9]

अग्निभूति—अग्निभूति इन्द्रभूति गौतम के मझले भाई थे। छयालीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की,[10] बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था[11] मे तप जप कर केवलज्ञान प्राप्त किया। सोलह वर्ष[12] तक केवली अवस्था मे विचरण कर, भगवान् महावीर के निर्वाण से दो वर्ष पूर्व राजगृह के गुणशील चैत्य मे मासिक अनशन कर चौहत्तर (७४) वर्ष की अवस्था मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[13]

वायुभूति—ये इन्द्रभूति के लघु भ्राता थे। बयालीस वर्ष की अवस्था मे गृहवास को त्यागकर श्रमण धर्म स्वीकार किया था।[14] दस वर्ष छद्मस्थावस्था मे रहे।[15] अठारह वर्ष केवली अवस्था मे रहे।[16] सत्तर वर्ष की अवस्था मे राजगृह के गुणशील चैत्य मे मासिक अनशन के साथ निर्वाण प्राप्त हुए।[17]

ये तीनो ही गणधर सहोदर थे, और वेदो आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे।

(४) **आर्यव्यक्त**—ये कोल्लागसंनिवेश के निवासी थे[18] और भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे।[19] उनके पिता का नाम धनमित्र[20] और माता का नाम वारुणी था।[21] पचास वर्ष की अवस्था में पाँच सौ छात्रो के साथ श्रमणधर्म स्वीकार किया,[22]। बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे रहे[23] और अठारह वर्ष तक केवलीपर्याय पालकर[24], अस्सी वर्ष की अवस्था मे मासिक अनशन के साथ राजगृह के गुणशील चैत्य मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[25]

(५) **सुधर्मा**—ये कोल्लागसंनिवेश के निवासी,[26] अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे।[27] इनके पिता धम्मिल थे[28] और माता भद्दिला थी।[29]

पाचसौ छात्र उनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छद्मस्थावस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे।

श्रमण भगवान् के सर्व गणधरों में सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अतः अन्यान्य गणधरों ने अपने अपने निर्वाण के समय अपने गण सुधर्मा को अर्पित कर दिए थे।

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सौ वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन पूर्वक राजगृह के गुणशील चैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।

(६) माण्डिक—माण्डिक मौर्य सन्निवेश के रहने वाले वासिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता धनदेव और माता विजयदेवा थी। इन्होंने तीन सौ पचास छात्रों के साथ त्रेपन (५३) वर्ष की अवस्था में प्रव्रज्या ली। सड़सठ (६७) वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया, और तिरासी वर्ष की अवस्था में गुणशील चैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।

(७) मौर्यपुत्र—ये काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मौर्य और माता का नाम विजयदेवा था। मौर्यसन्निवेश के निवासी थे। तीन सौ पचास छात्रों के साथ पैंसठ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली। उनासी वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया, और भगवान् के अन्तिम वर्ष में तिरासी (८३) वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन पूर्वक राजगृह के गुणशील चैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।

(८) अकम्पित—ये मिथिला के रहने वाले गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता देव और माता जयन्ती थी। तीन सौ छात्रों के साथ अड़तालीस वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली। सत्तावन वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया और भगवान् महावीर के अन्तिम वर्ष में अठहत्तर वर्ष की अवस्था में राजगृह के गुणशील चैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।

(९) अचलभ्राता–ये कोशला ग्राम के निवासी[५२] हारीत गोत्रीय ब्राह्मण थे ।[५३] आपके पिता वसु[५४] और माता नन्दा थी ।[५५] तीन सौ छात्रो के साथ छयालीस वर्ष की अवस्था मे श्रमणत्व स्वीकार किया। बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे रहे और चौदह वर्ष केवली अवस्था मे विचरण कर, बहत्तर वर्ष की[५७] अवस्था मे मासिक अनशन के साथ राजगृह के गुणशील चैत्य मे निर्वाण को प्राप्त हुए ।

(१०) मेतार्य–ये वत्सदेशान्तर्गत तु गिक सन्निवेश के निवासी[५८], कौडिन्य गोत्रीय ब्राह्मण थे ।[५९] इनके पिता का नाम दत्त था[६०] और माता का नाम वरुणदेवा था ।[६१] इन्होने तीन सौ छात्रो के साथ छत्तीस वर्ष की [६२] अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की । दस वर्ण तक छद्मस्थावस्था मे रहे, और सोलह वर्ण तक केवली अवस्था मे रहे । भगवान् महावीर के निर्वाण से चार वर्ण पूर्व बासठ वर्ण[६३] की अवस्था मे, राजगृह के गुणशील चैत्य मे निर्वाण हुआ ।

(११) प्रभास–ये राजगृह के निवासी[६४], कौडिन्यगोत्रीय ब्राह्मण थे ।[६५] इनके पिता का नाम 'वल'[६६] और माता का नाम 'अतिभद्रा' था ।[६७] इन्होने सोलह वर्ण की अवस्था मे श्रमण धर्म स्वीकार किया[६८], आठ वर्ण तक छद्मस्थावस्था मे रहे और सोलह वर्ण तक केवली अवस्था मे । भगवान् महावीर के सर्वज्ञ जीवन के पच्चीसवे वर्ष मे गुणशील चैत्य मे मासिक अनशन पूर्वक चालीस वर्ण की अवस्था मे निर्वाण प्राप्त किया ।[६९]

इन ग्यारह ही ब्राह्मण विद्वानो ने भगवान् के द्वितीय समवसरण पावा मे दीक्षा ग्रहण की और सभी गणधर के महत्त्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुए थे ।

मूल :—

सव्वे एए समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारस वि गणहरा दुवालसंगिणो चोद्दसपुव्विणो समत्तगणिपिडगधरा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तिएणं अपाणएणं कालगया जाव सव्वदु-

क्खपहीणा थेरे इंदभूई थेरे अज्जसुहम्मे सिद्धिं गए महावीरे पच्छा दोन्नि वि परिनिव्वुया ॥२०३॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर के ये ग्यारहों गणधर द्वादशाङ्गी के ज्ञाता थे, चौदह पूर्व के वेत्ता थे, और समग्र गणिपिटक के धारक थे। ये सभी राजगृह नगर में एक मास तक पानी रहित अनशन कर कालधर्म को प्राप्त हुए, सर्व दुःखों से रहित हुए। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् स्थविर इन्द्रभूति और स्थविर आर्य सुधर्मा परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

मूल :—

जे इमे अज्जत्ताते समणा निग्गंथा विहरंति एए णं सव्वे अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा, अवसेसा गणहरा निरवच्चा वोच्छिन्ना ॥२०४॥

अर्थ—आज जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, या विद्यमान हैं, वे सभी आर्य सुधर्मा अनगार की सन्तान हैं। शेष सभी गणधरों की शिष्य परम्परा व्युच्छिन्न हो गई।

——● आर्य जम्बू

मूल :—

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेणं समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगोत्तस्स अज्ज सुहम्मे थेरे अन्तेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणसगोत्तस्स अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते। थेरस्स णं अज्जजंबुनामस्स कासवगोत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगोत्तस्स अज्जसेज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसेज्जंभवस्स

मणगपिउणो वच्छसगोत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगिया-यणसगोत्ते ॥२०५॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर काश्यपगोत्री थे। काश्यपगोत्री श्रमण भगवान् महावीर के अग्निवैशायन गोत्री स्थविर आर्यसुधर्मा नामक अन्तेवासी शिष्य थे। अग्निवैशायन गोत्री स्थविर आर्यसुधर्मा के काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू नामक अन्तेवासी थे। काश्यपगोत्री स्थविर आर्य जम्बू के कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव नामक अन्तेवासी थे। कात्यायन गोत्री स्थविर आर्य प्रभव के वात्स्यगोत्री स्थविर आर्य सिज्जंभव (शय्यभव) नामक अन्तेवासी थे। मनक के पिता और वात्स्यगोत्री स्थविर आर्यसिज्जभव के तुंगियायन गोत्री स्थविर जसभद्द (आर्य यशोभद्र) नामक अन्तेवासी थे।

विवेचन—श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के सोलह वर्ष पूर्व मगध की राजधानी राजगृह मे जम्बूकुमार का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम श्रेष्ठी ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। ये अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे।

सोलह वर्ष की उम्र मे आठ कन्याओ के साथ पाणिग्रहण हुआ। पाणि-ग्रहण से पूर्व ही सयम लेने का सकल्प किया, किन्तु माता-पिता के आग्रह पर सुन्दरियों से पाणिग्रहण किया, दहेज मे ९९ करोड का धन मिला। किन्तु सुधर्मा स्वामी के वैराग्यरग से परिप्लावित प्रवचन को सुनकर इतने विरक्त हुए कि विना सुहाग रात मनाये ही आठ सुन्दर पत्नियो का, एव अपार वैभव का परित्याग कर भगवान् सुधर्मा के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की। जम्बू के साथ ही उनके माता-पिता ने तथा आठो पत्नियाँ और उनके भी माता-पिताओ ने, तथा दस्युराज प्रभव व उसके साथ के पाँच सौ चोरो ने इस प्रकार पांच सौ सत्तावीस व्यक्तियो ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। करोडो का धन जनकल्याण के लिए न्यौच्छावर कर दिया।

सोलह वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की। बारह वर्ष तक सुधर्मा स्वामी से आगम की वाचना प्राप्त करते रहे। वीर निर्वाण संवत् एक में दीक्षा ग्रहण

थी,[104] वीर संवत् १३ में सुधर्मास्वामी के केवलज्ञानी होने के पश्चात् उनके पट्ट पर आसीन हुए। आठ वर्ष तक संघ का कुशल नेतृत्व करने के पश्चात् वीर संवत् बीस में केवल ज्ञान प्राप्त किया और वीर संवत् चौसठ में अस्सी वर्ष की आयु पूर्ण कर मथुरा नगरी में निर्वाण प्राप्त किया।

आज जो आगम-साहित्य उपलब्ध है उसका बहुत सारा श्रेय जम्बूस्वामी को ही है। उनकी प्रबल जिज्ञासा से ही सुधर्मा स्वामी ने आगम की वाचना दी। जम्बूस्वामी इस अवसर्पिणी कालचक्र के अन्तिम केवली थे। उनके पश्चात् कोई भी मोक्ष नहीं गया। उनके मोक्ष पधारने के पश्चात् निम्न दस बातें विच्छिन्न हो गई —

(१) मन पर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाक लब्धि, (४) आहारक शरीर, (५) क्षपक श्रेणी, (६) उपशम श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) संयम त्रिक (परिहार विशुद्ध चारित्र, सूक्ष्मसापराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र), (९) केवल ज्ञान (१०) और सिद्धपद।[105]

—— • आर्य प्रभव स्वामी

आर्य प्रभव विन्ध्याचल के सन्निकटवर्ती जयपुर के निवासी थे। पिता का नाम विन्ध्य राजा था। एक बार किसी कारणवश पिता से अनबन हो जाने के कारण अपने पांच सौ साथियों के साथ राज्य को छोड़कर निकल पड़े। अपने साथियों के साथ इधर उधर डाका डालना और लूट मार करना, इसी प्रवृत्ति से प्रभव राजकुमार दस्युराज के रूप में विख्यात हो गए। उनके नाम से लोग कांपने लगे। जिस दिन जम्बूकुमार का विवाह था, उसी दिन रात्रि डाका डालने के लिए प्रभव उनके घर पर पहुँचे। प्रभव के पास दो विद्याएँ थी, तालोद्घाटनी (ताला तोड़ने की) एवं अवस्वापिनी (नींद दिलाने की)। इसी विद्या के प्रभाव से घर के सभी सदस्य सो गए, पर, जाग जम्बूकुमार अपनी नवपरिणीता पत्नियों के साथ वैराग्यचर्चा कर रहे थे। प्रभव वहाँ पहुँचा, छिपकर सुनने लगा, वैराग्य रस से ओतप्रोत इस उपदेश को सुनकर प्रभव संसार से विरक्त हो गये। अपने साथियों के साथ ही उन्होंने [illegible]

की अवस्था मे प्रव्रज्या ग्रहण की। पचास वर्ष की अवस्था मे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए, और एक सौ पाँच वर्ष की उम्र में अनशन कर स्वर्गवासी हुए।

——● आर्य शय्यंभव—

आचार्य प्रभव स्वामी के स्वर्गस्थ होने पर आर्य शय्यंभव उनके पट्ट पर आसीन हुए। ये राजगृह के निवासी वत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे। वैदिक साहित्य के उद्भट विद्वान् थे। एक समय वे बहुत बडा यज्ञ कर रहे थे। आर्य प्रभव के आदेशानुसार कुछ शिष्य उनके समीप आए और कहते हुए आगे निकल गए—

'अहो कष्टमहो कष्टं पुनस्तत्वं न ज्ञायते'

"अत्यन्त खेद है कि तत्व को कोई नही जानता।" यह वाक्य शय्यभव के पाण्डित्य पर एक करारी चोट थी। उन्होने गहराई से सोचा, पर तत्व का रहस्य ज्ञात न हो सका, तब उन्होंने इन्ही मुनियो से पूछा—तत्व क्या है ? बताओ !

शिष्यो ने कहा—तत्व क्या है ? यह तो हमारे गुरु बताएँगे। यदि तत्व की जिज्ञासा हैं तो हमारे गुरु आर्य प्रभव के चरणो मे चलो। उसी क्षण शय्यभव आर्य प्रभव के पास आये। प्रभवस्वामी ने बताया—"यज्ञ करना एक तत्व है, पर वह यज्ञ वाह्य नही, आभ्यन्तर होना चाहिए, विकारो के पशुओ को होमना ही यज्ञ का तत्व है।" प्रभव स्वामी के प्रभावपूर्ण प्रवचन से प्रबुद्ध होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। चतुर्दश पूर्व का अध्ययन किया।

जब इन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की थी तब पत्नी सगर्भा थी। पश्चात् पुत्र हुआ।, 'मनक' नाम रखा गया। 'मनक' ने लघुवय मे ही चम्पानगरी मे आपके दर्शन किये, और वह भी मुनि बन गया। विशिष्ट ज्ञान से पुत्र को छह मास का अल्पजीवी समझकर अल्पकाल में ही श्रमणाचार का सम्यक् परिचय देने हेतु पूर्वश्रुत के आधार से आचार सहिता का सकलन किया। उसके दस अध्ययन थे। विकाल मे रचा जाने के कारण उसका नाम 'दशवैकालिक' रखा गया।

इन्होने अट्ठाईस वर्ष की वय मे प्रव्रज्या ग्रहण की। चौतीस वर्ष साधारण मुनि अवस्था मे रहे और तेवीस वर्ष युग प्रधान आचार्य पद पर। वीर सं० ९८ मे ८५ वर्ष की आयु पूर्णकर स्वर्गस्थ हुए।

● आर्य यशोभद्र

ये आचार्य शय्यंभव के परम मेधावी शिष्य थे। तुंगियायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे विशेष सामग्री उपलब्ध नही है। पाटलिपुत्र का नन्द-राजवंश और मंत्री-वंश उनके प्रभाव से पूर्ण प्रभावित था। तथा विदेह, मगध और अंग आदि आपके पाद-पद्मो से सदा पावन होते रहे। बाईस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की। चौदह वर्ष तक मुनि अवस्था मे रहे, और पचास वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर रहे। वीर संवत् १४८ मे ८६ वर्ष की आयु पूर्णकर स्वर्गस्थ हुए।

यहाँ यह स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि स्थविरावली का लेखन एक समय मे नही हुआ है, जैसे आगमो को तीन बार व्यवस्थित किया गया था वैसे ही स्थविरावली भी तीन भागो मे व्यवस्थित की गई है।

आर्य यशोभद्र तक स्थविरावली की एक परम्परा रही है। उनके पश्चात् दो धाराएँ हो गई, एक संक्षिप्त और दूसरी विस्तृत। आर्य यशोभद्र तक की स्थविरावली भगवान् महावीर के निर्वाण से करीब १६० वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र मे जो प्रथम वाचना हुई थी उसके पूर्व की है। उसके पश्चात् की संक्षिप्त और विस्तृत दोनों ही स्थविरावलियाँ, जिनकी परिसमाप्ति क्रमशः आर्य तापस और फल्गुमित्र तक हुई है। द्वितीय वाचना के समय सूत्र के साथ सम्मिलित की गई है। संक्षिप्त स्थविरावली में मूल परम्परा के स्थविरों का ही सूचक रूप से निर्देश किया गया है और विस्तृत स्थविरावली में मूल पुरुषों के अतिरिक्त उनके गुरुभ्राता और उनसे प्रादुर्भूत होने वाले गण, शाखा, कुल और शाखाओं का भी वर्णन किया गया है। आर्य तापस और फल्गुमित्र के पश्चात् स्थविरावली तृतीय वाचना के समय पूर्वोक्त स्थविरावली में संकलित कर दी गई।

मूल :—

संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तं जहा—थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा-थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते; थेरे अज्ज-भद्दबाहू पाइणसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरस-गोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्ज-महागिरी एलावच्छसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठ-सगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुपडिबुद्धा कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगोत्ता। थेराणं सुट्ठिसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते। थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज-दिन्ने गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिसरस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमगोत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा—थेरे अज्जनाइले, थेरे अज्जपोगिले थेरे अज्जजयंते, थेरे अज्जतावसे। थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया, थेराओ अज्जपोगिलाओ अज्जपोगिला साहा निग्गया, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया, थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति ॥२०६॥

अर्थ—आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावलि संक्षिप्त वाचना के द्वारा

इस प्रकार कही गई है। जैसे—तुंगियायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे। एक माठरगोत्र के स्थविर आर्य संभूतविजय और दूसरे प्राचीन गोत्र के स्थविर आर्य भद्रबाहु। माठर गोत्रीय स्थविर आर्य संभूतविजय के गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र नामक अन्तेवासी थे। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे। प्रथम एलावच्चगोत्रीय (एलावत्स) स्थविर आर्यमहागिरि, और दूसरे वासिष्ठ-गोत्रीय स्थविर आर्यसुहस्ती। वासिष्ठगोत्रीय स्थविर आर्यसुहस्ती के दो स्थविर अन्तेवासी थे। प्रथम सुस्थित स्थविर और द्वितीय सुप्पडिबुद्ध (सुप्रतिबुद्ध) स्थविर। ये दोनों कोटिय-काकदक[31] कहलाते थे और ये दोनों वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्र के थे। कोटियकाकदक के रूप में प्रसिद्ध हुए और वग्घावच्चगोत्री (व्याघ्रापत्यगोत्री) सुस्थित और सुप्पडिबुद्ध स्थविर के कौशिक गोत्री आर्य इन्द्र दिन्न नामक स्थविर अन्तेवासी थे। कौशिक गोत्रीय आर्य इन्द्रदिन्न स्थविर के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न नामक अंतेवासी थे। गौतमगोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न के कौशिक गोत्रीय आर्यसिंहगिरि नामक स्थविर अन्तेवासी थे। आर्यसिंहगिरि को जातिस्मरण ज्ञान हुआ था। जाति-स्मरण ज्ञान को प्राप्त कौशिकगोत्रीय आर्यसिंहगिरि स्थविर के गौतमगोत्रीय आर्य वज्रनामक स्थविर अन्तेवासी थे। गौतमगोत्रीय स्थविर आर्य वज्र के उत्कौशिकगोत्री आर्य वज्रसेन नामक स्थविर अन्तेवासी थे। उत्कौशिकगोत्री आर्य वज्रसेन स्थविर के चार स्थविर अन्तेवासी थे—(१) स्थविर आर्य नाइल, (२) स्थविर आर्य पोमिल (पद्मिल) (३) स्थविर आर्य जयन्त (४) और स्थविर आर्य तापस। स्थविर आर्य नाइल से आर्य नाइला शाखा निकली। स्थविर आर्य पोमिल (पद्मिल) से आर्य पोमिला (पद्मिला) शाखा निकली। स्थविर आर्य जयन्त से आर्य जयन्ती शाखा निकली। स्थविर आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा निकली।

मूल :—

वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ पुरओ थेरावली

एवं पलोइज्जइ, तं जहा–थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा–थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते, थेरे अज्ज संभूयविजये माढरसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा–थेरे गोदासे थेरे अग्गिदत्ते थेरे जण्णदत्ते थेरे सोमदत्ते कासवगोत्ते णं। थेरेहिंतो णं गोदासेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो एत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा–तामलित्तिया कोडीवरिसिया पोंडवद्धणिया दासीखब्बडिया।२०७॥

अर्थ–अब आर्य यशोभद्र से आगे की स्थविरावली विस्तृत वाचना से इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है। जैसे तुंगियान गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के पुत्र-समान ये दो प्रख्यात स्थविर अन्तेवासी थे। जैसे—प्राचीन गोत्रीय आर्य भद्रबाहु स्थविर और माठर गोत्री आर्य संभूतविजय स्थविर। प्राचीन गोत्रीय आर्य भद्रबाहु स्थविर के पुत्र के समान, प्रख्यात ये चार स्थविर अन्तेवासी थे। जैसे– १) स्थविर गोदास, (२) स्थविर अग्निदत्त, (३) स्थविर यज्ञदत्त और (४) स्थविर सोमदत्त, ये चारो स्थविर काश्यप गोत्रीय थे। काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से गोदास गण प्रारम्भ हुआ। उस गण की ये चार शाखाएँ इस प्रकार हैं। जैसे—(१) तामलित्तिया (ताम्रलिप्तिका), (२) कोडिवरिसिया (कोटिवर्षीया), (३) पडुबद्धणिया (पौण्ड्रवर्धनिका), (४) दासी खब्बडिया (दासीकर्पटिका)।[७२]

विवेचन–सक्षिप्त स्थविरावली मे आर्य सभूतविजय का नाम प्रथम आया है और आर्य भद्रबाहु का द्वितीय। किन्तु इस विस्तृत स्थविरावली मे प्रथम भद्रबाहु का नाम आया है और फिर सभूतविजय का। पट्टवलीकार का भी यही अभिमत है कि सभूतविजय के लघु गुरुभ्राता भद्रबाहु थे और यशोभद्र के पश्चात् उनके दोनो ही शिष्य पट्टधर बने थे।

—— आर्य भद्रबाहु

ये जैन संस्कृति के एक ज्योतिर्धर आचार्य थे। जैन आगमों पर सर्वप्रथम व्याख्यात्मक चिन्तन के रूप में आपने ही निर्युक्तियों की सर्जना की है। मंत्रशास्त्र और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान थे। जैन साहित्य सर्जना के ये आदिपुरुष माने जा सकते हैं। आगमव्याख्याता, इतिहासकार और साहित्य के नवसर्जक के रूप में वस्तुत. आचार्य भद्रबाहु अपने युग के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एवं प्रभावशाली आचार्य थे। आपका जन्म प्रतिष्ठानपुर नगर में हुआ था। ४५ वर्ष की वय में आर्य यशोभद्र के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, सत्तरह वर्ष तक साधारण मुनि अवस्था में रहे और चौदह वर्ष तक युगप्रधान आचार्य पद पर। वीर संवत् १७० में ७६ वर्ष की आयु में स्वर्गस्थ हुए।

आर्य प्रभव से प्रारम्भ होने वाली श्रुतकेवली परम्परा में भद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली हैं, चतुर्दश पूर्वधर हैं। उनके पश्चात् कोई भी साधक चतुर्दशपूर्वी नहीं हुआ। अतः ये अन्तिम श्रुतकेवली माने जाते हैं।

दशाश्रुत, बृहत्कल्प, व्यवहार[33] और कल्पसूत्र ये आपके द्वारा रचे गये हैं। आवश्यक निर्युक्ति आदि दस निर्युक्तियों की रचना भी आपने की है। आवश्यक निर्युक्ति तो वस्तुतः जैन साहित्य का एक 'आकर' ग्रन्थ है, जिसमें सर्वप्रथम इस अवसर्पिणी काल के जैन महापुरुषों का जीवन चरित्र ग्रथित हुआ। आपने सपादलक्ष गाथाबद्ध वसुदेव चरित्र (प्राकृत भाषा में) लिखा था। [illegible] उवसग्गहर स्तोत्र भी आप ही की रचना है। इस कृति के सम्बन्ध में अनुश्रुति है कि वराहमिहिर संहिता का रचयिता वराहमिहिर आपका लघु भ्राता था। उसने भी आर्हती दीक्षा ग्रहण की थी। जब स्थूलिभद्र को आचार्य पद देना निश्चित हुआ तब वह ईर्ष्या से श्रमण परिधान का परित्याग कर गृहस्थ बन गया, और वराहमिहिर-संहिता का निर्माण किया। विद्वानों की यह धारणा है कि वर्तमान में जो वराहमिहिर संहिता उपलब्ध है, वह उससे भिन्न है। वह मर कर व्यन्तर देव हुआ तब पूर्व वैर से जैन शासनानुगामियों को उपसर्ग देने लगा, तब आचार्य ने प्रस्तुत स्तोत्र की रचना की, जिसके पाठ से सारे उपसर्ग नष्ट हो गये।[34]

कहा जाता है कि प्राकृत भाषा मे आपने भद्रबाहु सहिता नामक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा था, जो आज अनुपलब्ध है। उसके प्रकाश मे ही द्वितीय भद्रबाहु ने सस्कृत भाषा मे भद्रबाहुं सहिता का निर्माण किया।[७५]

आगमो की प्रथम वाचना पाटलीपुत्र मे[७६] आपके द्वारा ही सम्पन्न हुई थी। उस समय (वी० नि० १५५ के आसपास) द्वादशवर्षीय भयकर दुष्काल पडा। श्रमण सघ समुद्र तट पर चला गया। अनेक श्रुतधर काल-कवलित हो गए। दुष्काल आदि अनेक कारणो से यथावस्थित सूत्र पारायण नही हो सका, जिससे आगम ज्ञान की श्रृ खला छिन्न-भिन्न हो गई। दुर्भिक्ष समाप्त हुआ। उस समय विद्यमान विशिष्ट आचार्य पाटलीपुत्र मे एकत्रित हुए। एकादश अग सकलित किए गए। बारहवें अंग के एक मात्र ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी उस समय नेपाल मे महाप्राणध्यान की साधना कर रहे थे। संघ के आग्रह से उन्होने स्थूलिभद्र मुनि को बारहवे अग की वाचना देना स्वीकार किया। दस पूर्व अर्थ सहित सिखाए, ग्यारहवे पूर्व की वाचना चल रही थी कि एक बार आर्य स्थूलिभद्र से मिलने के लिए, जहाँ वे ध्यान कर रहे थे वहाँ उनकी बहनें आईं। बहनो को चमत्कार दिखाने के कौतुक वश स्थूलिभद्र ने सिंह का रूप बनाया। इस घटना पर, भद्रबाहु ने आगे वाचना देना बन्द कर दिया कि वह ज्ञान को पचा नही सकता। पर सघ के अत्याग्रह से अन्तिम चार पूर्वो की वाचना तो दी, पर अर्थ नही बताया और दूसरो को उसकी वाचना देने की स्पष्ट मनाई की[७७]। अर्थ की दृष्टि से अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु ही हैं। स्थूलिभद्र शाब्दिक दृष्टि से चौदहपूर्वी थे और अर्थ दृष्टि से दसपूर्वी थे।

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त आपके अनन्य भक्त थे। उनके द्वारा देखे गये १६ स्वप्नो का फल आपने बताया था जिनमे पचमकाल की भविष्यकालीन स्थिति का रेखाचित्र था। सभवत. भद्रबाहु के इस विराट् व्यक्तित्व के कारण ही श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्पराओ मे उनके प्रति समान श्रद्धाभाव है। दोनो ही उन्हे अपनी परम्परा के ज्योतिर्धर आचार्य मानते है। वी० स० १७० मे अर्थात् वि० पू० ३०० मे उनका स्वर्गवास माना जाता है।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—

नंदणभद्दे उवनंदभद्द तह तीसभद्द जसभद्दे ।
थेरे य सुमिणभद्दे मणिभद्दे य पुन्नभद्दे य ॥१॥
थेरे य थूलभद्दे उज्जुमती जंबुनामधेज्जे य ।
थेरे य दीहभद्दे थेरे तह पंडुभद्दे य ॥२॥

थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगोत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिन्नताओ होत्था, तं जहा—

जक्खा य जक्खदिन्ना भूया तह होइ भूयदिन्ना य ।
सेणा वेणा रेणा भगिणीओ थूलभद्दस्स ।१॥२०८॥

अर्थ—माढरगोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतिविजय के पुत्र समान एवं प्रख्यात ये बारह स्थविर अंतेवासी थे। जैसे—(१) नन्दनभद्र (२) उपनन्दन भद्र, (३) तिष्यभद्र, (४) यशोभद्र, (५) स्थविर सुमनभद्र, (स्वप्नभद्र) (६) मणिभद्र, (७) पुण्यभद्र (पूर्णभद्र), (८) आर्य स्थूलभद्र (९) ऋजुमति, (१०) जम्बू, (११) स्थविर दीर्घभद्र, (१२) स्थविर पाण्डुभद्र। माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतविजय की पुत्री समान तथा प्रख्यात ये सात अंतेवासिनियाँ (शिष्याएँ) थीं, जैसे कि—(१) यक्षा, (२) यक्षदत्ता, (३) भूता, (४) भूतदत्ता (५) सेणा, (६) वेणा, (७) और रेणा ये सातों ही आर्य स्थूलभद्र की बहिनें थीं।

विवेचन—आचार्य सम्भूतविजय माढर गोत्रीय ब्राह्मण विद्वान थे। आर्य यशोभद्र से आपने ४२ वर्ष की वय में दीक्षा ग्रहण की, ४० वर्ष सामान्य साधु अवस्था में रहे और ८ वर्ष युगप्रधान आचार्य पद पर। ९० वर्ष की आयु में वीर सं० १५६ में स्वर्गवासी हुए।

आपका शिष्य परिवार बहुत ही विस्तृत था। यहाँ तो प्रमुख १२ शिष्यों का ही नाम निर्देश किया गया है।

——— ● आर्य स्थूलिभद्र

मूल :—

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमगोत्तस्स इमे दो थेरा अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्छसगोत्ते, थेरे अज्ज सुहत्थी वासिट्ठसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्छसगोत्तस्स इमे अट्ठ अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे उत्तरे थेरे बलिस्सहे थेरे धणड्ढे थरे कोडिन्ने थेरे नागे थेरे नागमित्ते थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसिए गोत्तेणं। थेरेहिंतो णं छलुएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगोत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया। थेरेहिंतो णं उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ णं उत्तरबलिस्सहगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—कोसंबिया सोतित्तिया कोडवाणी चंदनागरी ॥२ ६॥

अर्थ—गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलिभद्र, स्थविर के पुत्र समान एव प्रख्यात ये दो स्थविर अन्तेवासी थे—

जैसे कि—एक ऐलावच्च (एलावत्स) गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और दूसरे वसिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ती। ऐलावच्चगोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि के पुत्र समान प्रख्यात ये आठ स्थविर अन्तेवासी थे। जैसे—(१) स्थविर उत्तर, (२) स्थविर बलिस्सह, (३) स्थविर धणड्ढ (धनाढ्य), (४) स्थविर सिरिड्ढ (श्रीआढ्य), (५) स्थविर कोडिन्न (कौडिन्य), (६) स्थविर नाग, (७) स्थविर नागमित्त (नागमित्र), (८) षडुलूक, कौशिकगोत्रीय स्थविर रोहगुप्त।

कौशिक गोत्रीय स्थविर षडुलूक रोहगुप्त से त्रैराशिक सम्प्रदाय निकला। स्थविर उत्तर से और स्थविर बलिस्सह से 'उत्तरबलिस्सह" नामक गण

निकला। उसकी ये चार शाखाएँ इस प्रकार कही जाती हैं। जैसे—(१) कोसं-बिया (कौशाम्बिका)[88] (२) सोइत्तिया (शुक्तिमतीया)[89] (३) कोडंबाणी[90] (४) चन्दनागरी।[91]

विवेचन—आर्य स्थूलिभद्र जैन जगत् के वे उज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिनकी जीवन-प्रभा से आज भी जन जीवन आलोकित है। मंगलाचरण में तृतीय मंगल के रूप में उनका स्मरण किया जाता है।

ये मगध की राजधानी पाटलीपुत्र के निवासी थे। इनके पिता का नाम शकटाल था, जो नन्द साम्राज्य के महामन्त्री थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी और राजनीतिज्ञ थे। जब तक वे विद्यमान रहे तब तक नन्द साम्राज्य प्रतिदिन विकास करता रहा।

स्थूलिभद्र के लघुभ्राता श्रेयक थे। यक्षा आदि सात भगिनियाँ थीं। स्थूलिभद्र जब यौवन की चौखट पर पहुँचे तब कोशागणिका (युग की सुन्दरी गणिका तथा नर्तकी) के रूप-जाल में फंस गए। महापण्डित वररुचि के षड्यन्त्र से श्रेयक ने पिता को मार दिया। पिता के अमात्यपद को ग्रहण करने के लिए स्थूलिभद्र से निवेदन किया गया। किन्तु पिता की मृत्यु से उन्हें वैराग्य हो गया उन्होंने आचार्य सम्भूतिविजय से प्रव्रज्या ग्रहण की।

प्रथम वर्षावास का समय आया। अन्य साथी मुनियों में से एक ने सिंह गुफा पर चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। दूसरे ने दृष्टि-विष सर्प की बांबी पर तीसरे ने कुएं के पाट पर, और स्थूलिभद्र ने कोशा की चित्रशाला में। गुरु-आज्ञा लेकर स्थूलिभद्र कोशा के भवन पर पहुँचे। राग और वासना का वाता-वरण, कोशा वेश्या के हाव भाव और विभ्रम से भी स्थूलिभद्र चलित न हुए। अन्त में स्थूलिभद्र के त्यागमय उपदेश से वह श्राविका बन गई।

वर्षावास पूर्ण होने पर सभी शिष्य गुरु के चरणों में लौटे। तीनों का 'दुष्करकारक' सम्बोधन से स्वागत किया गया। स्थूलिभद्र के लौटने पर गुरु सात-आठ कदम सामने गये और 'दुष्कर-दुष्कर कारक महात्मा' कहकर स्वागत किया। सिंहगुफा वासी मुनि का ईर्ष्या उत्पन्न हुआ। चातुर्मास में उस-ने भी कोशा के घर जाकर प्रयत्न किया, पर उसका ध्येय सफल नहीं हुआ।

दूसरे वर्ष सिंहगुफावासी मुनि कोशा वेश्या के यहाँ पहुँचा। वेश्या ने परीक्षा के लिए ज्योंही कटाक्ष का बाण छोडा कि घायल हो गया और व्रत-भग करने के लिए प्रस्तुत हो गया। कोशा ने प्रतिवोध देने हेतु नेपाल नरेश के यहाँ के रत्नकम्वल की याचना की। विषयाकुल वना हुआ वह वर्षावास मे ही नेपाल पहुँचा। रत्नकम्वल लेकर लौट रहा था कि मार्ग मे चोरो ने उसे अनेक कष्ट दिए। वहुत-सी कठिनाइयो को सहता हुआ पुन. पाटलिपुत्र पहुँचा। रत्नकम्वल वेश्या को दिया। वेश्या ने गन्दे पानी की नाली मे उसे फेंक दिया। आक्रोश पूर्ण भाषा मे साधु ने कहा—अत्यन्त कठिनता से जिस रत्नकम्वल को प्राप्त किया गया है उसको गन्दी नाली मे डालते हुए तुम्हे लज्जा नही आती ? वेश्या ने कहा—रत्न-कम्वल से भी अधिक मूल्यवान सयम रत्न को क्षणिक वासना के लिए भग करना क्या संयम रतन को गदी नाली मे डालना नही है ? वेश्या के एक ही वाक्य से सिंह गुफा वासी मुनि को अपनी भूल मालूम हो गई। उसे गुरु के कथन का रहस्य ज्ञात हो गया। आकर गुरु से क्षमा याचना की।

आचार्य स्थूलिभद्र का महत्त्व कामविजेता होने के कारण ही नही, अपितु पूर्वधारी होने के कारण भी रहा है।

वीर संवत् ११६ में इनका जन्म हुआ। तीस वर्ष की वय मे दीक्षा ग्रहण की। २४ वर्ष तक साधारण मुनि पर्याय मे रहे, और ४५ वर्ष तक युग प्रधान आचार्य पद पर। ९९ वर्ष का आयु भोगकर वैभारगिरि पर्वत पर पंद्रह दिन का अनशन कर वीर सवत् २१५ (मतान्तर से २१९) मे स्वर्गस्थ हुए।[८२]

आचार्य प्रवर स्थूलिभद्र के पट्ट पर उनके शिष्य रत्न, महान् मेधावी और चारित्रनिष्ठ आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती आसीन हुए। ये दोनो ही आर्य स्थूलिभद्र की वहिन यक्षा साध्वी द्वारा प्रतिवुद्ध हुए थे।

आर्य महागिरि उग्र तपस्वी थे। दस पूर्व तक अध्ययन करने के पश्चात् सघ संचालन का उत्तरदायित्व अपने लघु गुरुभ्राता आर्य सुहस्ती को समर्पित

कर स्वयं आर्य जम्बू के समय से विच्छिन्न जिनकल्प की अत्यन्त कठोर साधना करने के लिए एकान्त-शान्त कानन में चले गये।

अनुश्रुति है कि एक बार दोनों आचार्य कौशाम्बी में गये। दुष्काल से ग्रसित एक द्रमक (भिखारी) को प्रव्रज्या दी। वही द्रमक समाधि पूर्वक आयु पूर्णकर कुणालपुत्र संप्रति हुआ। अवन्ती (उज्जयनी) में आर्य सुहस्ती के दर्शन कर जातिस्मरण हुआ और प्रवचन सुनकर जैनधर्मावलम्बी बना। यह बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ। हृदय से दयालु प्रकृति का था। उसने ७०० दान-शालाएँ खुलवाई, और जैनधर्म के प्रचार के लिए अपने विशिष्ट अधिकारियों को श्रमणवेश में आन्ध्र आदि प्रदेशों में भेजा।[८७]

दोनों ही आचार्यों की शिष्य परम्पराएँ बहुत ही विस्तृत रही है, जिनका वर्णन मूलार्थ में किया गया है।

आर्य महागिरि का जन्म वीर संवत् १४५ में हुआ, और दीक्षा १७५ में हुई, २१५ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और २४५ में १०० वर्ष की आयु पूर्णकर दशार्ण प्रदेशस्थ गजेन्द्र पद तीर्थ में स्वर्गस्थ हुए।

आर्य सुहस्ती का जन्म वीर संवत् १९१ में हुआ, दीक्षा २१५ में हुई, युगप्रधान आचार्य पद पर २४५ में प्रतिष्ठित हुए और १०० वर्ष की आयु पूर्णकर उज्जयिनी में २९१ में स्वर्गस्थ हुए।[८८]

आर्य सुहस्ती की शिष्य परम्परा अगले सूत्र में स्वयं सूत्रकार निर्दिष्ट कर रहे हैं।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—

थेरे त्थ अज्जरोहण, भद्दजसे मेहगणी य कामिड्ढी।
सुट्ठियसुप्पडिबुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते य ॥१॥

इसिगुत्ते सिरिगुत्ते, गणी य बंभे गणी य तह सोमे।
दस दो य गणहरा, खलु एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥२१०॥

अर्थ—वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ती के पुत्र समान एव प्रख्यात ये बारह स्थविर अन्तेवासी थे। जैसे—

(१) स्थविर आर्य रोहण, (२) जसभद्र (भद्रयशा), (३) मेहगणी (मेघगणी), (४) कामिड्ढि (कामार्द्धि), (५) सुस्थित, (६) सुप्पडिबुद्ध (प्रतिबुद्ध), (७) रक्षित, (८) रोहगुप्त, (९) ईसीगुप्त (ऋषिगुप्त), (१०) सिरिगुप्त (श्री गुप्त), (११) बभगणि (ब्रह्मगणि), (१२) और सोमगणि, बारह गणधर के समान, ये बारह शिष्य सुहस्ती के थे।

विवेचन—इन बारह शिष्यो में आर्य सुस्थित और आर्य सुप्पडिबुद्ध (सुप्रतिबुद्ध) ये दोनो आचार्य बने। ये दोनो काकदी नगरी के निवासी थे, राजकुलोत्पन्न व्याघ्रापत्य गोत्रीय सहोदर थे। कुमारगिरि पर्वत पर दोनो ने उग्र तप साधना की। संघ संचालन का कार्य सुस्थित के अधीन था और वाचना का कार्य सुप्रतिबुद्ध के।

हिमवन्त स्थविरावली के अभिमतानुसार इनके युग में कुमारगिरि पर एक छोटा-सा श्रमण सम्मेलन हुआ था। और द्वितीय आगम वाचना भी।

३१ वर्ष की अवस्था मे आर्य सुस्थित ने प्रव्रज्या ग्रहण की, १७ वर्ष साधारण श्रमण अवस्था में रहे और ४८ वर्ष आचार्य पद पर रहे ९६ वर्ष की अवस्था मे वीर स० ३३९ मे कुमारगिरि पर्वत पर स्वर्गस्थ हुए।

मूल :—

थेरेहिंतो णं अज्जरोहणेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो तत्थ णं उद्देहगणे नामं गणे निग्गए। तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? एवमाहिज्जंति—उद्दुंबरिज्जिया मासपूरिया मतिपत्तिया सुवन्नप-

त्तिया, से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं? एवमाहिज्जंति, तं जहा—

पढमं च नागभूयं, बीयं पुण सोमभूइयं होइ।
अह उल्लगच्छ तइयं, चउत्थयं हत्थिलिज्जं तु ॥१॥
पंचमगं नंदिज्जं, छट्ठं पुण पारिहासियं होइ।
उद्देहगणस्सेते, छच्च कुला होंति नायव्वा ॥२॥२११॥

अर्थ—काश्यपगोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से यहाँ पर उद्देहगण नामक गण निकला। उनकी ये चार शाखाएँ और छह कुल इस प्रकार कहलाते हैं—

प्रश्न—वे शाखाएँ कौनसी-कौनसी हैं?

उत्तर—वे शाखाएँ इस प्रकार कही जाती हैं। जैसे—(१) उदुंबरिज्जिया (उदुम्बरीया)[८७] (२) मासपूरिआ[८८] (या) (३) मइपत्तिया (४) पुण्णपत्तिया।

प्रश्न—वे कुल कौन से हैं?

उत्तर—वे कुल इस प्रकार कहलाते हैं—जैसे (१) नागभूय (नागभूत), (२) सोमभूतिक, (३) उल्लगच्छ (आर्द्रकच्छ), (४) हत्थलिज्ज (हस्तलीय) (५) नन्दिज्ज (नन्दीय), (६) पारिहासिय (पारिहासिक) ये उद्देहगण के छह कुल जानना।

मूल :—

थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो णं हारियसगोत्तेहिंतो एत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? एवमाहिज्जंति, तं जहा—हारियमालागारी संकासिया गवेधुया वज्जनागरी, से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं? एवमाहिज्जंति, तं जहा—

पढमेत्थ वच्छलिज्जं, बीयं पुण वीचिधम्मकं होइ ।*
तइयं पुण हालिज्जं, चउत्थगं पूसमित्तेज्जं ॥१॥
पंचमगं मालिज्जं, छट्ठं पुण अज्जचेडयं होइ ।
सत्तमगं कण्हसहं, सत्त कुला चारणगणस्स ॥२॥२१२॥

अर्थ—हारियगोत्रीय स्थविर सिरिगुत्त से यहाँ चारणगण नाम का गण निकला । उसकी ये चार शाखाएँ और सात कुल हुए ।

प्रश्न—वे शाखाएँ कौनसी-कौनसी है ?

उत्तर—शाखाएँ इस प्रकार है.–(१) हारियमालागारी (२) संकासीआ (३) गवेधुया (४) वज्जनागरी ये चार शाखाएँ है ।

प्रश्न—वे कुल कौनसे है ?

उत्तर-कुल इस प्रकार है—(१) प्रथम वत्सलीय, (२) द्वितीय पीई-धम्मिअ (प्रीतिधर्मक), (३) तृतीय हालिज्ज (हालीय), (४) चतुर्थं पूसमित्तिज्ज (पुष्पमित्रीय), (५) पाँचवें मालिज्ज (मालीय), (६) छट्ठे अज्जचेडय (आर्यचेटक), (७) सातवे कण्हसह (कृष्णसख) । चारण गण के ये सात कुल है ।

मूल :—

थेरेहिंतो भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगोत्तेहिंतो एत्थ णं उडुवाडियगये नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्नि कुलाइं एवमाहिज्जंति । से किं तं साहाओ ? एवमाहिज्जंति, तं जहा—चंपिज्जिया भद्दिज्जिया काकंदिया मेहलिज्जिया, से त्तं साहाओ । से किं तं कुलाइं ? एवमाहिज्जंति—

भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं, तइयं च होइ जसभद्दं ।
एयाइं उडुवाडियगणस्स, तिन्नेव य कुलाइं ॥१॥२१३॥

---

* बीय पुण पीइधम्मय होइ । —पाठान्तरे

अर्थ—भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्दजस (भद्रयश) से यहाँ उडुवाडियगण (ऋतुवाटिक) नामक गण निकला। उसकी ये चार शाखाएँ निकलीं, और तीन कुल निकले, इस प्रकार कहा जाता है।

प्रश्न—वे कौनसी-कौनसी शाखाएं हैं?

उत्तर—वे शाखाएँ ये है, जैसे—(१) चंपिज्जिया, (२) भद्दिज्जिया (भद्रीया)'' (३) काकंदीया'', (४) मेहलिज्जिया'', (मैथिलीया)।

प्रश्न—वे कुल कौन से हैं?

उत्तर—वे कुल इस प्रकार हैं—(१) भद्दजसिय (भद्रयशीय), (२) भद्दगुत्तिय (भद्रगुप्तीय), (३) जसभद्द (यशोभद्रीय) कुल ये तीनों कुल, उडुवाडिय (ऋतुवाटिक)'', कुल के हैं।

मूल :—

थेरेहिंतो णं कामिड्ढिहिंतो कुंडिलसगोत्तेहिंतो एत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? एवमाहिज्जंति—सावत्थिया रज्जपालिया अन्तरिज्जिया खेमलिज्जिया से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं? एवमाहिज्जंति—

गणियं मेहिय कामड्ढियं च, तह होइ इंदपुरगं च।
एयाइं वेसवाडियगणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥१॥२१४॥

अर्थ—कुण्डिलगोत्रीय कामर्द्धि स्थविर से यहाँ वेसवाटिकगण नामक गण निकला। उससे चार शाखाएँ और चार कुल निकले।

प्रश्न—वे शाखाएँ कौनसी-कौनसी हैं।

उत्तर—वे शाखाएँ इस प्रकार हैं—(१) सावत्थिया (श्रावस्तिका), (२)

रज्जपालिया (राज्यपालिता) (३) अन्तरिज्जिया (अन्तरजिया) (४) खेमलिज्जिया (क्षौमिलीया)[९२] ये चार शाखाए हैं।

प्रश्न—वे कुल कौनसे-कौनसे है ?

उत्तर—वे कुल इस प्रकार है (१) गणिय (गणिक) (२) मेहिय (मेघिक) (३) कामड्ढिअ (कामर्द्धिक) (४) और इन्दपुरग (इन्द्रपुरक)। वेसवाडियगण (वंशवाटिक) के ये चार कुल है।

मूल :—

थेरेहिंतो णं इसिगोत्तेहिंतो णं काकंदएहिंतो वासिट्ठसगोत्तेहिंतो एत्थ णं माणवगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिण्णि य कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? सहाओ एवमाहिज्जंति-कासविज्जिया, गोयमिज्जिया वासिट्ठिया सोरट्ठिया, से त्तं साहाओ। से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

इसिगोत्तियऽत्थपढमं, बिइयं इसिदत्तियं मुणेयव्वं।
तइयं च अभिजसंतं,* तिन्नि कुला माणवगणस्स ॥१॥२१५॥

अर्थ—वासिष्ठगोत्री और काकदक ईसिगुप्त (ऋषिगुप्त) स्थविर से माणवगण (मानवगण) नामक गण निकला, उनकी चार शाखाएँ और तीन कुल इस प्रकार हैं।

प्रश्न—वे शाखाएं कौनसो-कौनसी है ?

उत्तर—वे शाखाएँ इस प्रकार है—(१) कासविज्जिया (काश्यपीया) (२) गोयमिज्जिया (गौतमीया), (३) वासिट्ठिया (वासिष्ठीया), (४) सौरट्ठीया (सौराष्ट्रीया) ये चार शाखाएँ हैं।

---

* 'अभिजयंत' इति कल्याणविजय। —पट्टावली परागे

प्रश्न—वे कुल कौनसे-कौनसे हैं ?

उत्तर—वे कुल इस प्रकार हैं। (१) इसिगोत्तिय (ऋषिगुप्तिक), (२) इसिदत्तिय (ऋषिदत्तिक) (३) और अभिजयंत—ये तीनों कुल माणवक (मानवक) गण के हैं।

मूल :—

थेरेहिंतो णं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडियकाकंदिएहिंतो वग्घावच्चसगोत्तेहिंतो एत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ ? एवमाहिज्जंति, तं जहा—

उच्चानागरि विज्जाहरी य, वइरी य मज्झिमिल्ला य।
कोडियगणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ ॥१॥

से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—

पढमेत्थ वंभलिज्जं, बितियं नामेण वच्छलिज्जं तु।
ततियं पुण वाणिज्जं, चउत्थयं पन्नवाहणयं ॥१॥२१६॥

अर्थ—कोटिक काकन्दक कहलाने वाले और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय स्थविर सुट्ठिय (सुस्थित) और सुप्पडिबुद्ध (सुप्रतिबुद्ध) से यहाँ कोडियगण नामक गण निकला। उसकी चार शाखाएँ और कुल इस प्रकार हैं—

प्रश्न—वे शाखाएँ कौनसी कौनसी हैं ?

उत्तर—वे शाखाएँ इस प्रकार हैं—(१) उच्चानागरी (२) विज्जाहरि (विद्याधरी), (३) वइरी, (वज्री) (४) मज्झिमिल्ला (मध्यमा)। ये चारों शाखाएँ कोडियगण की हैं।

प्रश्न—वे कुल कौनसे-कौनसे हैं ?

उत्तर—वे कुल इस प्रकार हैं—प्रथम बंभलिज्ज (ब्रह्मलीय) कुल, द्वितीय

वच्छलिज्ज 'वस्त्रलीय' कुल, तृतीय वाणिज्ज 'वाणिज्य'[९८] कुल, और चतुर्थ प्रश्नवाहनक 'प्रश्नवाहन' कुल।

मूल :—

थेराणं सुट्ठियसुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदाणं वग्घावच्च-सगोत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जइंददिन्ने थेरे पियगंथे थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगोत्ते णं थेरे इसिदत्ते थेरे अरहदत्ते। थेरेहिंतो णं पियगंथे-हिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं विज्जाह-रगोवालेहिंतो तत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ॥२१७॥

अर्थ—कोटिककाकदक कहलाने वाले और वग्घावच्च (व्याघ्रापत्य) गोत्रीय स्थविर सुस्थित तथा सुप्रतिवुद्ध के ये पाच स्थविर पुत्र समान एव प्रख्यात अन्तेवासी थे। जैसे—

(१) स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न, 'इद्रदत्त' (२) स्थविर पियगथ, 'प्रियग्रन्थ' (३) स्थविर विद्याधर गोपाल काश्यपगोत्री, (४) स्थविर ईसीदत्त 'ऋषिदत्त' (५) और स्थविर अरहदत्त 'अर्हंदत्त।

स्थविर प्रियग्रन्थ से यहाँ मध्यमाशाखा निकली। काश्यपगोत्री स्थविर विद्याधर गोपाल से विद्याधरीशाखा प्रारम्भ हुई।

विवेचन—आचार्य इन्द्रदिन्न (इन्द्रदत्त) युग प्रभावक आचार्य थे। आपके जीवन के सम्बन्ध मे विशिष्ट जानकारी प्राप्त नही है। आपके लघु गुरुभ्राता आर्य पियगथ (प्रियग्रन्थ) भी अपने युग के परम प्रभावक युग पुरुष थे। आपने हर्षपुर मे होने वाले अजमेध का निवारण किया और हिंसाधर्मी ब्राह्मणविज्ञो को अहिंसा धर्म का पाठ पढाया।[९९]

मूल :—

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगोत्तस्स अज्जदिन्ने

थेरे अंतेवासी गोयमसगोत्ते। थेरस्सणं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया वि होत्था, तं जहा–थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगोत्ते थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते। थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो णं माढरसगोत्तेहिंतो एत्थ णं उच्चानागरी साहा निग्गया ॥२१८॥

अर्थ–काश्यपगोत्री स्थविर आर्य इन्द्रदत्त के गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न (दत्त) अन्तेवासी थे।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न के ये दो स्थविर पुत्र समान एवं प्रख्यात अन्तेवासी थे। आर्य सन्तिसेणिय [शान्तिश्रेणिक] स्थविर माढरगोत्री और जातिस्मरण ज्ञान वाले कौशिक गोत्री स्थविर आर्य सिंहगिरि।

माढरगोत्री [माठरगोत्री] स्थविर आर्य शान्ति श्रेणिक से उच्चानागरी शाखा प्रारम्भ हुई।

● आर्य कालक

विवेचन- आर्य दिन्न (इन्द्रदत्त) एक प्रतिभा सम्पन्न आचार्य थे। आपने दक्षिण में कर्नाटक पर्यन्त सुदूर प्रदेशों में धर्म की ध्वजा फहराई थी। आपका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं है। आर्य सन्तिसेणिय (शान्तिश्रेणिक) से उच्चानागर शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। इसी शाखा में प्रतिभामूर्ति आचार्य उमास्वाति हुए, जिन्होंने सर्व प्रथम दर्शन शैली में तत्त्वार्थ सूत्र का निर्माण किया।

आपके ही निकट समय में आर्य कालक, आर्य खपुटाचार्य, इन्द्रदेव, श्रमणसिंह, वृद्धवादी और सिद्धसेन आदि आचार्य हुए हैं।

आर्य कालक के नाम से चार आचार्य हुए हैं। प्रथम कालक, जिनका दूसरा नाम श्यामाचार्य भी मिलता है, और जिन्होंने प्रज्ञापना सूत्र का निर्माण किया। वे द्रव्यानुयोग के विशिष्ट ज्ञाता थे। कहा जाता है कि शक्रेन्द्र ने एक बार भगवान् श्री सीमन्धर स्वामी से निगोद पर गम्भीर विवेचन सुना। उन्होंने यह जिज्ञासा व्यक्त की कि इस प्रकार की व्याख्या भरत क्षेत्र में कोई कर

सकता है ? भगवान् सीमन्धर स्वामी ने आचार्य कालक का नाम बताया। वे सीधे ही कालकाचार्य के पास आए। जैसा भगवान् ने कहा था वैसा ही वर्णन सुनकर अत्यन्त आह्लादित हुए।

आपका जन्म वीर सवत् २८० मे हुआ, वीर स० ३०० मे दीक्षा ली, ३३५ मे युगप्रधान आचार्य पद पर आसीन हुए, और ३७६ मे स्वर्गारोहण हुआ।

(२) द्वितीय आचार्य कालक भी इन्ही के सन्निकटवर्ती हैं। ये धारा नगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम राजा वीरसिंह और माता का नाम सुरसुन्दरी था। इनकी एक छोटी बहिन थी, जिसका नाम सरस्वती था। वह अत्यन्त रूपवती थी। दोनो ने ही गुणाकर सूरि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। एक वार साध्वी सरस्वती के रूप पर मुग्ध होकर उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल ने उसका अपहरण किया। आचार्य कालक को जव यह वृत्त ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होने शक राजाओ से मिलकर गर्दभिल्ल का साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट किया। कहा जाता है कि वे सिंधु सरिता को पार कर फारस (ईरान) तथा वर्मा और सुमात्रा भी गए। इन्होने ही भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को पर्युषण पर्व की आराधना की थी। वह प्रसग इस प्रकार है—

एक वार आचार्य का वर्षावास दक्षिण के प्रतिष्ठानपुर मे था। वहाँ का राजा सातवाहन जैन धर्मावलम्बी था। उस राज्य मे भाद्रपद शुक्लापंचमी को इन्द्रपर्व मनाया जाता था जिसमे राजा से लेकर रंक तक सभी को सम्मिलित होना अनिवार्य माना जाता था। राजा ने आचार्यकालक से निवेदन किया--मुझे भी संवत्सरी महापर्व की आराधना करनी है एतदर्थ सवत्सरी महापर्व छट्ठ को मनाया जाय तो श्रेयस्कर है। आचार्य ने कहा--उस दिन का उल्लघन कदापि नही किया जा सकता। राजा के आग्रह वश आचार्य ने कारण से चतुर्थी को सवत्सरी पर्व मनाया। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि आचार्य ने अपवाद रूप मे चतुर्थी को सम्वत्सरी पर्व की आराधना की है, न कि उत्सर्ग—[१००] सामान्य स्थिति के रूप मे।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जसंतिसेणियस्स माढरसगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा—थेरे अज्जसेणिए थेरे अज्जतावसे थेरे अज्जकुबेरे थेरे अज्जइसिपालिते। थेरेहिंतो णं अज्जसेणितेहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जकुबेरेहिंतो एत्थ णं अज्जकुबेरा साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जइसिपालेहिंतो एत्थ णं अज्जइसिपालिया साहा निग्गया ॥२१६॥

अर्थ—माढरगोत्री स्थविर आर्यसन्तिसेणिय के चार स्थविर पुत्र समान अन्तेवासी थे। जैसे (१) स्थविर आर्यसेणिय (आर्यश्रेणिक) (२) स्थविर आर्य तापस (३) स्थविर आर्य कुबेर (४) स्थविर आर्य इसिपालित (ऋषि-पालित)।

स्थविर आर्यसेणिय से यहां आर्यसेणिया (श्रेणिका) शाखा निकली। स्थविर आर्य तापस से यहां आर्यतापसी शाखा निकली। स्थविर आर्य कुबेर से यहां आर्य कुबेरी शाखा निकली। स्थविर आर्य इसिपालित (ऋषिपालित) से यहां आर्य इसिपालिता (ऋषिपालिता) शाखा निकली।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातीसरस्स कोसियगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा—थेरे धणगिरी थेरे अज्जवइरे थेरे अज्जसमिए थेरे अरहदिन्ने। थेरेहिंतो णं अज्जसमिएहिंतो एत्थ णं बभंदीया साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगोत्तेहिंतो एत्थ णं अज्जवइरा साहा निग्गया ॥२२०॥

अर्थ–जातिस्मरणज्ञान वाले कौशिकगोत्रीय आर्यसिंहगिरि स्थविर के ये चार स्थविर पुत्र समान सुविख्यात अन्तेवासी थे। जैसे–(१) स्थविर धन-गिरि (२) स्थविर आर्यवज्र (३) स्थविर आर्यसमित और (४) स्थविर अरहृदत्त (अर्हदत्त)। स्थविर आर्यसमित से यहाँ पर वभदेवीया 'ब्रह्मदीपिका' शाखा प्रारम्भ हुई।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यवज्र से आर्य वज्री शाखा निकली।

विवेचन—आर्य सिंहगिरि के जीवन वृत्त के सम्बन्ध मे विशेष सामग्री अनुपलब्ध है। यहाँ पर उन्हे कौशिक गोत्रीय बताया है, तथा जातिस्मरण ज्ञान वाला कहा है। इनके चार मुख्य शिष्य थे–आर्य समित, आर्य धनगिरि आर्य वज्रस्वामी और आर्य अर्हद्दत्त।

आर्य समित का जन्म अवन्ती देश के तुम्बवन ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम धनपाल था, ये जाति से वैश्य थे। इनकी एक बहिन थी जिसका नाम सुनन्दा था। उसका पाणिग्रहण तुम्बवन[101] के धनगिरि के साथ हुआ था।[102] आर्य समित योगनिष्ठ और उग्र तपस्वी थे। अनुश्रुति है कि आभीर देश के अचलपुर ग्राम मे इन्होने कृष्णा और पूर्णा सरिताओ को योग बल से पार किया, और ब्रह्मद्वीप पहुँचे। ब्रह्मद्वीपस्थ पाँच सौ तापसों को अपने चम-त्कार से चमत्कृतकर उन सबको अपने शिष्य बनाये।

आर्य वज्र स्वामी—आर्य समित की बहिन का विवाह इभ्यपुत्र धनगिरि के साथ हुआ था।[103] धनगिरि धर्मपरायण व्यक्ति थे। जब उनके सामने धनपाल की ओर से विवाह का प्रस्ताव आया तब उसने स्पष्ट अस्वीकार करते हुए कहा कि—मैं विवाह नही करूंगा, संयम लूंगा। परन्तु धनपाल ने उनके साथ विवाह कर दिया। विवाह हो जाने पर भी उनका मन संसार में न लगा। अपनी पत्नी को गर्भवती छोड़कर ही उन्होने आर्य सिंहगिरि के पास दीक्षा ग्रहण की। जब बच्चे का जन्म हुआ तब उसने पिता की दीक्षा की बात सुनी। सुनते ही जातिस्मरण ज्ञान हुआ, माता के मोह को कम करने के लिए वह रातदिन रोने लगा। एक दिन धनगिरि और समित भिक्षा हेतु जा रहे थे, तब आर्य

सिंहगिरि ने शुभ लक्षण देखकर शिष्यों को आदेश दिया कि जो भी भिक्षा में मिले उसे ले लेना । दोनों ही भिक्षा के लिए सुनन्दा के यहाँ पर पहुँचे । सुनन्दा बच्चे से ऊब गई थी । ज्योंही भिक्षा के लिए पात्र आगे रखा कि सुनन्दा ने आवेश में आकर बालक को पात्र में डाल दिया, और बोली आप तो चले गये, और उसे छोड़ दिया, रो-रोकर इसने मुझे परेशान कर लिया, इसे भी ले जाइए।' धनगिरि ने समझाने का प्रयास किया, पर वह न समझी । धनगिरि ने छह मास के बालक को ले लिया और लाकर गुरु को सौंप दिया । अति भारी होने के कारण गुरु ने बच्चे का नाम वज्र रखा दिया ।[१५४] पालन पोषण हेतु वह गृहस्थ को दे दिया गया । श्राविका के साथ वह उपाश्रय जाता । साध्वियों के सम्पर्क में रहने से, और निरन्तर स्वाध्याय सुनने से उसे ग्यारह अंग कण्ठस्थ हो गए ।

जब बच्चा तीन वर्ष का हुआ तब उसकी माता ने बच्चे को लेने के लिए राजसभा में विवाद किया । माता ने बालक को अत्यधिक प्रलोभन दिखाए, पर बालक उधर आकृष्ट नहीं हुआ और धनगिरि के पास आकर रजोहरण उठा लिया ।

जब बालक की उम्र आठ वर्ष की हुई तब गुरु धनगिरि ने उसे दीक्षा दे दी व वज्रमुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए । जृंभक देवों ने अवन्ती में आहार शुद्धि की परीक्षा की, आप पूर्ण खरे उतरे । देवताओं ने लघुवय में ही आपको वैक्रियलब्धि और आकाशगामिनी विद्या दे दी ।[१५५] एक बार उत्तर भारत में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा । उस समय विद्या के बल से आप श्रमण संघ को कलिंग प्रदेश में ले गए थे ।

पाटलीपुत्र के इभ्यश्रेष्ठी धनदेव की पुत्री रुक्मिणी आपके अनुपम रूप पर मुग्ध हो गई । धनश्रेष्ठी ने भी पुत्री के साथ करोड़ों की सम्पत्ति दहेज में देने का प्रस्ताव किया, पर तनिक मात्र भी कनक और कान्ता के मोह में उलझे नहीं, किन्तु रुक्मिणी को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या प्रदान की ।

वज्रस्वामी के चमत्कारों की अनेक घटनाएँ जैन साहित्य में उट्टंकित हैं ।

वज्रस्वामी की शाखा मे अनेक वज्र नाम के प्रभावशाली, युगपुरुष, दार्शनिक और भविष्यद्रष्टा आचार्य हुए हैं। ईस्वी सन् ६४६ मे चीनी यात्री हुएनत्साँग भारत आया था। नालन्दा से वह पुन. अपने देश जाना चाहता था, किन्तु असहाय था। उस समय वज्र स्वामी ने उससे कहा– तुम चिन्ता न करो असम के राजा कुमार और कान्यकुब्ज के राजा श्रीहर्ष तुम्हारी सहायता करेगे। राजा कुमार का दूत तुम्हे लिवाने के लिए आ रहा है। वज्रस्वामी की ये भविष्य वाणिया पूर्ण सत्य सिद्ध हुई। हुएनत्साग ने अपनी यात्रा की पुस्तक मे उनका महान् भविष्यद्रष्टा के रूप मे उल्लेख किया है।

एक बार वज्रस्वामी को कफ की व्याधि हो गई। तदर्थ उन्होने एक सोठ का टुकडा भोजन के पश्चात् ग्रहण करने हेतु कान मे डाल रखा था, पर वे उसे लेना भूल गए। सांध्य प्रतिक्रमण के समय वन्दन करते समय वह नीचे गिर गया। अपना अन्तिम समय सन्निकट समझ अपने शिष्य वज्रसेन से कहा— द्वादशवर्षीय दुष्काल पडेगा, अत· साधु सघ के साथ तुम सौराष्ट्र और कोकण प्रदेश में जाओ और मैं रथावर्त पर्वत पर अनशन करने जाता हू। जिस दिन तुम्हे लक्ष मूल्य वाले चावल मे से भिक्षा प्राप्त हो, उसके दूसरे दिन सुकाल होगा, ऐसा कह आचार्य सथारा करने हेतु चल दिये।

वज्र स्वामी का जन्म वीर निर्वाण स० ४९६ मे हुआ। ५०४ (पाँच सौ चार) मे दीक्षा ग्रहण की, ५३६ मे आचार्य पद पर आसीन हुए और ५८४ मे स्वर्गस्थ हुए।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोतमसगोत्तस्स इमे तिन्नि थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिन्नाया होत्था, तं जहा–थेरे अज्जवइ-रसेणिए थेरे अज्जपउमे थेरे अज्जरहे। थेरेहिंतो णं अज्जवइरसे-णिएहिंतो एत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं

अज्जपउमेहिंतो एत्थ णं अज्जपउमा साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो एत्थ णं अज्जजयंती साहा निग्गया ॥२२१॥

अर्थ—गौतमगोत्रीय स्थविर आर्यवज्र के ये तीन स्थविर पुत्र समान एवं गुणवान अन्तेवासी थे। जैसे कि—(१) स्थविर आर्यवज्रसेन, (२) स्थविर आर्य पद्म, (३) स्थविर आर्य रथ।

स्थविर आर्यवज्रसेन से आर्य नाईली (नागिलो) शाखा निकली, स्थविर आर्यपद्म से आर्य पद्मा शाखा निकली, और स्थविर आर्य रथ से आर्य जयन्ती शाखा निकली।

विवेचन—आर्य वज्रस्वामी के पट्ट पर आर्य वज्रसेन आसीन हुए। इनके समय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। निर्दोष भिक्षा का मिलना असंभव हो गया, जिसके कारण ८८४ श्रमण अनशन कर परलोकवासी हुए। क्षुधा से सभी छटपटाने लगे। जिनदास श्रेष्ठी ने एक लाख दीनार से एक अंजलि अन्न मोल लिया। वह उसमें विष मिलाकर समस्त परिवार के साथ खाने की तैयारी कर रहा था कि आचार्य वज्रस्वामी के कहने के अनुसार आपने सुभिक्ष की घोषणा की और सबके प्राणों की रक्षा की। दूसरे ही दिन अन्न से परिपूर्ण जहाज आ गए। जिनदास ने वह अन्न लेकर बिना मूल्य लिए दीनों को वितरण कर दिया। कुछ समय के पश्चात् वर्षा हो जाने से सर्वत्र आनन्द की ऊर्मियां उछलने लगी। जिनदास सेठ ने अपनी विराट् सम्पत्ति को जनकल्याण के लिए न्यौछावर कर अपने नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर आदि चार पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

आर्य वज्रसेन प्रतिभा सम्पन्न आचार्य थे। दुष्काल के परिसमाप्त होने पर उन्होंने पुनः श्रमण संघ को एकता के सूत्र में पिरोया और श्रमण संघ में अभिनव चेतना जागृत की। किन्तु उस दुष्काल में अनेक श्रमणों का स्वर्गवास हो जाने से कई वंश, कुल, व गण विच्छिन्न हो गए।

● आर्य रक्षित

आर्य वज्रसेन के ही समय में आत्मयोगी आर्यरक्षित सूरि हुए। उन्हीं

जन्मभूमि दशपुर (मन्दसौर) थी। पिता का नाम रुद्रसोम था। आप जब काशी से गभीर अध्ययन करके लौटे तब भी माता प्रसन्न नही हुई। माता की प्रबल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिए उसी समय दशपुर के इसुवन मे विराजित आचार्य तोसलीपुत्र के पास गए और श्रमण बने। तोसली पुत्र मे आगम का अध्ययन किया। उसके पश्चात् दृष्टिवाद का अध्ययन करने हेतु आर्य वज्रस्वामी के पास पहुचे। साढे नौ पूर्व तक अध्ययन किया। आपने अनुयोगद्वार सूत्र की रचना की और आगमो को द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग के रूप मे विभक्त किया।

आपके समय तक प्रत्येक आगम पाठ को द्रव्य आदि रूप मे चार-चार व्याख्याएँ की जाती थीं। आपने श्रुतधरो की स्मरणशक्ति के दौर्बल्य को देख कर जिन पाठो से जो अनुयोग स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता था, उसी प्रधान अनुयोग को रखकर शेप अन्य गौण अर्थों का प्रचलन बन्द कर दिया। जैसे—ग्यारह अगो-महाकल्पश्रुत और छेदसूत्रो का समावेश चरणकरणानुयोग मे किया गया। ऋषिभाषितो का धर्मकथानुयोग में, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि का गणितानुयोग मे और दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग मे किया गया।।[१०६] इस प्रकार जब अनुयोगो का पार्थक्य किया गया तब से नयावतार भी अनावश्यक हो गया।[१०७] यह कार्य द्वादशवर्षीय दुष्काल के पश्चात् दशपुर मे किया गया था। इतिहासज्ञो का अभिमत है कि प्रस्तुत आगमवाचना वीर संवत् ५९२ के लगभग हुई थी। इस आगमवाचना मे वाचनाचार्य आर्य नन्दिल, युगप्रधान आचार्य आर्यरक्षित और गणाचार्य वज्रसेन आदि उपस्थित थे। विद्वानो की यह भी धारणा है कि आगम साहित्य मे उत्तरकालीन महत्त्वपूर्ण घटनाओ का जो चित्रण हुआ है उसका श्रेय भी आर्यरक्षित को ही है। वीर सवत् ५९७ मे आर्य रक्षित स्वर्गस्थ हुए। उनके उत्तराधिकारी दुर्वलिका पुष्यमित्र हुए।

आर्य रथस्वामी—आर्य रथस्वामी आर्य वज्रस्वामी के द्वितीय पट्टधर थे। आप वसिष्ठगोत्रीय थे और बडे ही प्रभावशाली थे। आपका अपरनाम आर्य जयन्त भी था, जिसके नाम पर ही जयन्ती शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। आपके जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे विशेष सामग्री नही मिलती।

मूल :—

थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगोत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंतेवासी कोसियगोत्ते। थेरस्स णं अज्जपूसगिरिस्स कोसियगोत्तस्सअज्जफग्गुमित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥२२२॥

अर्थ—वात्स्यगोत्रीय स्थविर आर्य रथ के कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य-पुष्यगिरि अन्तेवासी थे।

कौशिकगोत्रीय स्थविर आर्यपुष्यगिरि के गौतमगोत्रीय स्थविर आर्य फग्गुमित्त अन्तेवासी थे।

---

० थेरस्स ण अज्जफग्गुमित्तस्स गोयमसगुत्तस्स।
अज्जधणगिरी थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगोत्ते ॥३॥
थेरस्स ण अज्जधणगिरिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स।
अज्जसिवभूई थेरे अंतेवासी कुच्छसगोत्ते ॥४॥
थेरस्स ण अज्जसिवभूइस्स कुच्छसगोत्तस्स।
अज्जभद्दे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥५॥
थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स।
अज्जनक्खत्ते थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥६॥
थेरस्स ण अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स।
अज्जरक्खे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥७॥
थेरस्स ण अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स।
अज्जनागे थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥८॥
थेरस्स णं अज्जनागस्स गोयमसगुत्तस्स।
अज्जजेहिले थेरे अन्तेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥९॥
थेरस्स ण अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स।
अज्जविण्हू थेरे अन्तेवासी माढरसगोत्ते ॥१०॥
थेरस्स ण अज्जविण्हुस्स माढरसगुत्तस्स।

मूल :—

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं ।
कोच्छिं सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जितकंटे य ॥१॥
तं वंदिऊण सिरसा चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं ।
णक्खं कासवगोत्तं रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥

अज्जकालए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥११॥
थेरस्स ण अज्जकालगस्स गोयमसगुत्तस्स ।
इमे दुवे थेरा अन्तेवासी गोयमसगोत्ता—
थेरे अज्जसंपलिए थेरे अज्जभद्दे ॥१२॥
एएसि दुण्ह वि थेराण गोयमसगुत्ताण ।
अज्जवुड्ढे थेरे अन्तेवासी गोयमसगुत्ते ॥१३॥
थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगोत्तस्स ।
अज्जसघपालिए थेरे अन्तेवासी गोयमसगोत्ते ॥१४॥
थेरस्स ण अज्जसघपालियस्स गोयमसगोत्तस्स ।
अज्जहत्थी थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१५॥
थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स ।
अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी सुव्वयगोत्ते ॥१६॥
थेरस्स ण अज्जधमस्स सुव्वयगोत्तस्स ।
अज्जसीहे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१७॥
थेरस्स ण अज्जसीहस्स कासवगुत्तस्स ।
अज्जधम्मे थेरे अन्तेवासी कासवगुत्ते ॥१८॥
थेरस्स ण अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स ।
अज्जसडिल्ले थेरे अन्तेवासी ॥१९॥

—अर्वाचीनासु प्रतिषु पाठः

वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं ।
विण्हुं माढरगोत्तं कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥
गोयमगोत्तमभारं° सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे ।
[1]थेरं च संघवालियकासवगोत्तं पणिवयामि ॥४॥

° गोयमगोत्तकुमारं— इतिकल्याणविजय— पट्टावलीपरागे पृ० २६

१— थेर च अज्जवुड्ढ, गोयमगुत्तं नमसामि ॥४॥
त वंदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्न ।
थेर च सघवालिय गोयमगुत्त पणिवयामि ॥५॥
वदामि अज्जहत्थि च कासव खतिसागर धीर ।
गिम्हाणपढममासे कालगय चेव सुद्धस्स ॥६॥
वदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसपन्न ।
जस्स निक्खमणे देवो छत्त वरमुत्तमं वहइ ॥७॥
हत्थि कासवगुत्त धम्म सिवसाहगं पणिवयामि ।
सीह कासवगुत्त धम्म पि अ कासव वदे ॥८॥
त वदिऊण सिरसा थिरसत्तचरित्तनाणसपन्न ।
थेर च अज्जजंबु गोअमगुत्त नमसामि ॥९॥
मिउमद्दवसपन्नं उवउत्तं नाणदसणचरित्ते ।
थेरं च नदिअ पि य कासवगुत्त पणिवयामि ॥१०॥
तत्तो अ थिरचरित्तं उत्तमसम्मत्तसत्तसंजुत्त ।
देसिगणिखमासमण माढरगुत्त नमसामि ॥११॥
तत्तो अणुओगधर धीर मइसागर महासत्तं ।
थिरगुत्तखमासमण वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥१२॥
तत्तो य नाणदसणचरित्ततवसुट्ठिअ गुणमहंत ।
थेर कुमारधम्मं वंदामि गणि गुणोवेयं ॥१३॥
सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहि संपन्ने ।
देविड्ढिखमासमणे कासवगुत्तं पणिवयामि ॥१४॥

— [illegible]

वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं।
गिम्हाण पढममासे कालगयं चेत्तेसुद्धस्स ॥५॥
वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीसलद्धिसंपन्नं।
जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥६॥
हत्थं कासवगोत्तं धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि।
सीहं कासवगोत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥७॥
सुत्तत्थरयणभरिए खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने।
देविड्ढिखमासमणे कासवगोत्ते पणिवयामि ॥८॥२२३॥

अर्थ—गौतमगोत्रीय फग्गुमित्र (फल्गुमित्र) को, वासिष्ठगोत्रीय धनगिरि को, कौत्स्यगोत्री शिवभूति को और कौशिकगोत्री दोज्जतकटक को वदन करता हूँ। उन सभी को मस्तिष्क झुकाकर वन्दन करके काश्यपगोत्री चित्त को वन्दन करता हूँ। काश्यपगोत्रीं नक्षत्र को और काश्यपगोत्रीय रक्ष को भी वन्दन करता हूँ। गौतम गोत्री आर्य नाग को और वासिष्ठगोत्री जेहिल (जेष्ठिल) को तथा माढरगोत्री विष्णु को और गौतम गोत्री कालक को भी वन्दन करता हूँ। गोतम गोत्री मभार को, अथवा अभार को, सप्पलय (संपलित) को तथा भद्रक को वन्दन करता हूँ। काश्यपगोत्री स्थविर संघपालित को नमस्कार करता हूं। काश्यपगोत्री आर्यं हस्ती को वन्दन करता हू। ये आर्य हस्ती क्षमा के सागर और धीर थे तथा ग्रीष्मऋतु के प्रथम मास मे शुक्ल पक्ष के दिनो मे कालधर्म को प्राप्त हुए थे। जिनके निष्क्रमण—दीक्षा लेने के समय मे देव ने उत्तम छत्र धारण किया था, उन सुव्रत वाले, शिष्यो की लब्धि से सम्पन्न आर्य धर्म को वन्दन करता हूँ। काश्यपगोत्री 'हस्त' को और शिवसाधक धर्म को नमस्कार करता हूँ। काश्यपगोत्री 'सिह' को और काश्यपगोत्री 'धर्म' को भी वन्दन करता हूँ। सूत्ररूप और उसके अर्थ रूप रत्नों से भरे हुए क्षमा सम्पन्न, दम सपन्न, और मार्दव गुण सम्पन्न काश्यपगोत्री देवड्ढिक्षमाश्रमण को प्रणिपात करता हूँ।

विवेचन—आर्य धर्म के आर्य स्कन्दिल और आर्य जम्बू ये दो प्रमुख शिष्य रत्न थे। आर्य स्कन्दिल की जन्मभूमि मथुरा थी। गृहस्थाश्रम में आपका नाम सोमरथ था। आर्य सिंह के वैराग्य रस से परिपूर्ण प्रवचन को श्रवणकर संसार से विरक्ति हुई और आर्य धर्म के सन्निकट प्रव्रज्या स्वीकार की। ब्रह्म-दीपिका शाखा के वाचनाचार्य आर्यसिंह सूरि से आगमों (पूर्वों) का तलस्पर्शी अध्ययन किया और वाचक पद प्राप्त किया तथा युग प्रधान आचार्य बने।

इतिहासज्ञों का अभिमत है कि उस समय भारत की विचित्र परिस्थिति थी। हूणों और गुप्तों में भयंकर युद्ध हुआ था। द्वादशवर्षीय दुष्काल से मानव समाज जर्जरित हो चुका था।[१०] जैन, बौद्ध और वैदिक धर्म के अनुयायी भी एक दूसरे का खण्डन मण्डन कर रहे थे। इत्यादि अनेक कारणों से आगमज्ञ श्रुतधरों की संख्या दिनानुदिन कम होती चली जा रही थी। उस विकट वेला में आर्य स्कन्दिल ने श्रुत की सुरक्षा के लिए मथुरा में उत्तरापथ के मुनियों का एक सम्मेलन बुलवाया और आगमों का पुस्तकों के रूप में लेखन किया। यह सम्मेलन वीर सं० ८२७ से ८४० के आस पास हुआ था।[११] उधर आचार्य नागार्जुन ने भी वल्लभी (सौराष्ट्र) में दक्षिणापथ के मुनियों का सम्मेलन बुलाया और आगमों का लेखन व संकलन किया। यह सम्मेलन दूर-दूर होने के कारण स्थविर एक दूसरे के विचारों से अवगत नहीं हो सके अतः पाठों में कुछ स्थलों पर भेद हो गये। उपर्युक्त वाचनाओं को सम्पन्न हुए लगभग डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया तब वल्लभी नगर में देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में श्रमण संघ एकत्रित हुआ। दोनों वाचनाओं के समय जिन-जिन विषयों में मतभेद हो गया था उन भेदों का देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण ने समन्वय किया। जिन पाठों में समन्वय न हो सका उन स्थलों पर स्कन्दिलाचार्य के पाठ को प्रमुखता देकर नागार्जुन के पाठों को पाठान्तर के रूप में स्थान दिया। टीकाकारों ने 'नागार्जुनीयास्तु पठन्ति' के रूप में उनका उल्लेख किया है। यह आगमों की चतुर्थ वाचना है।

आचार्य देवर्द्धिगणी—आचार्य प्रवर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण जैन आगम साहित्य के वर्तमान स्वरूप हैं। इनकी प्रखर प्रज्ञा से आज भी जैन साहित्य

जगमगा रहा है। आगम साहित्य वर्तमान मे जिस रूप मे आज उपलब्ध है उसका सम्पूर्ण श्रेय आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को ही है।

आपका जन्म वेरावल (सौराष्ट्र) मे हुआ था। आपके पिता का नाम कामर्धि और माता का नाम कलावती था। कहा जाता है कि भगवान् महावीर के समय जो सौधर्मेन्द्र शक्रेन्द्र का सेनापति हरिणैगमेषी देव था वही आयुपूर्ण कर देवर्धिगणी बना। प्रस्तुत स्थविरावली के अनुसार कुमार धर्मगणी के पट्टधर देवर्धिगणी है। नन्दी सूत्र की चूर्णि के अनुसार उनके गुरु का नाम दुष्य गणी है और नन्दी सूत्र की पट्टावली के अनुसार उनके गुरु का नाम आचार्य लौहित्यसूरि था। उपकेशगच्छीय आर्य देवगुप्त के पास उन्होने एक पूर्व तक अर्थ सहित और दूसरे पूर्व का मूल पढा था। आप अन्तिम पूर्वधर थे। आपके वाद कोई भी पूर्वधर नही हुआ।[११०] आपका द्वितीय नाम देववाचक भी विश्रुत है।[१११] वीर सवत् ९८० के आसपास वलभी (सौराष्ट्र) मे एक विराट् श्रमण सम्मेलन हुआ, जिसका कुशल नेतृत्व आप ही ने किया। वहाँ पाँचवी आगम वाचना हुई। आगम पुस्तकारूढ किये गये। इस आगम वाचना मे नागार्जुन की चतुर्थ वलभी वाचना के गम्भीर अभ्यासी चतुर्थ कालकाचार्य विद्यमान थे। ये वही कालकाचार्य थे जिन्होने वीर सवत् ९९३ मे आनन्दपुर मे राजा ध्रुवसेन के सामने श्री सघ को कल्पसूत्र सुनाया था।

इस प्रकार आचार्य देवर्धिगणी को नमस्कार के साथ यह स्थविरावली का प्रकरण समाप्त होता है।

स्थविरावली सम्पूर्ण

समाचारी

——● वर्षावास कल्प

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२२४॥

अर्थ—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर अर्थात् आषाढ़ी चातुर्मासी होने के पश्चात् पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे।'

मूल :—

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ? जतो णं पाएणं अगारीण अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कयाइं परिभोत्ताइं परिणामियाइं भवंति से एतेणट्ठेणं एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते वासावासं पज्जोसवेति ॥२२५॥

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन् ! किस कारण से इस प्रकार कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे ?

उत्तर–कारण यह है कि प्राय उस समय गृहस्थो के गृह चारो ओर से चटाई आदि से आच्छादित होते है। चूने आदि से पोते हुए होते है। घास आदि से ढके हुए होते हैं। चारदीवारी से सुरक्षित होते हैं। घिसघिसाकर विषम भूमि को सम किए हुए व मुलायम वनाये हुए होते हैं। सुवासित धूपो से सुगन्धित किए हुए होते हैं। पानी निकलने के लिए परनाले आदि वनाए हुए होते है, घरो के वाहर नालिया आदि खुदवाई हुई होती है। वे घर, गृहस्थ स्वय के लिए अच्छा करता है। वे घर, गृहस्थ के उपयोग मे लिए हुए होते हैं। स्वयं के रहने के लिए वह उन्हे साफ कर जीव जन्तु रहित वनाता है एतदर्थ यह कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर वर्षाऋतु के वीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे।

मूल :—

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसर्विति ॥२२६॥

अर्थ–जैसे श्रमण भगवान् महावोर वर्षाऋतु का वीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे है वैसे ही गणधर भी वर्षाऋतु का वीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे है।

मूल :—

जहा णं गणहरा वासाणं जाव पज्जोसवेंति तहा णं गणहरसीसा वि वासाणं जाव पज्जोसर्विति ॥२२७॥

अर्थ—जैसे गणधर वर्षाऋतु के वीस रात्रि सहित एक मास व्यतीन होने पर वर्षावास रहे, वैसे ही गणधरों के शिष्य भी वर्षाऋतु के वीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं।

मूल :—

जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं थेरा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२२८॥

अर्थ—जैसे गणधरों के शिष्य वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं वैसे ही स्थविर भी वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं।

मूल :—

जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एए वि णं वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२२९॥

अर्थ—जैसे स्थविर वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने के पश्चात् वर्षावास रहे, वैसे ही आजकल जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते है—या विद्यमान है, वे भी वर्षाऋतु के बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहते हैं।

मूल :—

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं अम्हं पि आयरियउवज्झाया वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेंति ॥२३०॥

अर्थ—जैसे आजकल श्रमण निर्ग्रन्थ वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास करते है, वैसे ही हमारे भी आचार्य उपाध्याय वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास करते हैं।

मूल :—

जहा णं अम्हं आयरियउवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसवेंति तहा णं अम्हे वि अज्जो ! वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो । अंतरा वि य से कप्पइ पज्जोसवित्ताए नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए ॥२३१॥

अर्थ—जैसे हमारे आचार्य, उपाध्याय, यावत् वर्षावास रहते है, वैसे ही हम भी वर्षाऋतु का बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहते है । इस समय से पूर्व भी वर्षावास रहना कल्पता है, परन्तु उस रात्रि को उल्लघन करना नही कल्पता । अर्थात् वर्षाऋतु के वीस रात्रि सहित एक मास की अन्तिम रात्रि को उल्लघन करना नही कल्पता एतदर्थ इस अन्तिम रात्रि के पूर्व ही वर्षावास करना चाहिए ।[2]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ता णं चिट्ठिउं अहालंदमवि उग्गहे ॥२३२॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को सभी ओर पाँच कोस तक अवग्रह को स्वीकार कर रहना कल्पता है । पानी से आर्द्र बना हुआ हाथ जब तक न सूखे तब तक भी अवग्रह मे रहना कल्पता है, और बहुत समय तक भी अवग्रह मे रहना कल्पता है, किन्तु अवग्रह से बाहर रहना नही कल्पता ।

——● भिक्षाचरी कल्प

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गं-

थीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतु पडियत्तए। जत्थ णं नई निच्चोयगा निच्चसंदणा नो से कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडियत्तए। एरवई(ए) कुणालाए जत्थ चक्किया एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवं चक्किया एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडियत्तए. एवं नो चक्किया एवं णं नो कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए ॥२३३॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को चारों ओर पाच कोस तक भिक्षाचर्या के लिए जाना कल्पता है, और पीछा आना कल्पता है। जहाँ पर नदी हमेशा अच्छे पानी से भरी हुई रहती है, नित्य बहती रहती है, वहाँ पर सभी ओर पाच कोस तक भिक्षाचर्या के लिए जाना और पीछा लौटना नहीं कल्पता। ऐरावती नदी कुणाला नगरी में है, वहाँ एक पैर पानी में रखकर चला जा सकता है और एक पैर स्थल में—पानी से बाहर रखकर चला जा सकता है अर्थात् ऐसे स्थल पर चारों ओर पांच कोस तक भिक्षा के लिए जाना और पीछा लौटना कल्पता है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगतियाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'दावे भंते !' एवं से कप्पइ दावित्तए नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥२३४॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए कितने ही श्रमणों को प्रारम्भ में ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि—'भगवन् ! आप देना' तो उन्हें इस प्रकार देना कल्पता है, किन्तु उन्हें स्वयं के लिए लेना नहीं कल्पता। अर्थात् वर्षावास स्थित श्रमण श्रमणियों को गुरुजनों ने यह आदेश दिया हो कि अमुक ग्लानादि के लिए अमुक अशनादि लाकर देना तो वह लाया हुआ अशनादि स्वयं को भोगना नहीं कल्पता।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'पडिगाहे भंते !' एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए नो से कप्पइ दावित्तए ॥२३५॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए कितने ही श्रमणो को इस प्रकार प्रारम्भ मे ही कहा हुआ होता है, 'भगवन् ! तू लेना', तो उसको इस प्रकार स्वय लेना कल्पता है, किन्तु दूसरो को देना नही कल्पता ।[४]

मूल :—

वासावास पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'दावे भंते ! पडिगाहे भंते ! एवं से कप्पइ दावित्तए वि पडिगाहित्तए वि ॥२३६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए कितने ही श्रमणो को पूर्व ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि – हे भगवन् ! तू, दूसरो को भी देना और स्वय भी लेना' तो उसको इस प्रकार दूसरो को देना और स्वयं को लेना कल्पता है ।[५]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीणं वा हट्ठाणं आरोग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नवरसविगईओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए, तं जहा—खीरं दहिं नवणीयं सप्पिं तिल्लं गुडं महुं मज्जं मंसं ॥२३७॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियाँ हृष्टपुष्ट हो, नीरोग हो, बलवान् देहवाले हो, उनको ये नौ रस-विकृतियो का बार बार खाना नही कल्पता, जैसे—(१) क्षीर-दूध, (२) दही, (३) मक्खन, (४) घृत, (५) तेल, (६) गुड, (७) मधु, (८) मद्य, (९) मांस ।

विवेचन—आगम साहित्य मे दूध-दही आदि को कही पर विकृति'[१] कहा गया है और कही पर 'रस'[२] कहा है। दूध, दही आदि विकार-वृद्धि करते है एतदर्थ उनका नाम विकृति है।[३] प्रस्तुत सूत्र की तरह स्थानाङ्ग मे भी नौ विकृतियो का वर्णन है।[४] स्थानाङ्ग मे तेल, घृत, वसा (चर्बी) और मक्खन को स्नेह-विकृत भी कहा है[५] और आगे चलकर मधु, मद्य, मास और मक्खन को महाविकृति भी कहा है।[६] विकृति खाने से मोह का उदय होता है[७] एतदर्थ उन्हे बार-बार खाने का निषेध किया गया है। मद्य-मास ये दो विकृतियां और वसा (चर्बी) अभक्ष्य है। कुछ आचार्य मधु और मक्खन को भी अभक्ष्य मानते है और कुछ आचार्य मधु और मक्खन को विशेष परिस्थिति मे भक्ष्य भी मानते है। जो विकृतियां भक्ष्य हैं, उन्ही विकृतियो को पुनः पुनः खाने का निषेध किया गया है। मद्य और मांस तो श्रमण के लिए सर्वथा त्याज्य है ही, अतः उनके खाने का प्रसग ही नही उठ सकता।[८]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगतियाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'अट्ठो भंते ! गिलाणस्स ?' से य वयिज्जा 'अट्ठो' से य पुच्छियव्वे सिया 'केवइएणं अट्ठो !' से य वएज्जा 'एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स'। जं से पमाणं वदति से पमाणतो घेत्तव्वे। से य विन्नवेज्जा, से य विन्नवेमाणे लभिज्जा, से य पमाणपत्ते, 'होउ, अलाहि' इति वत्तव्वं सिया। से किमाहु भंते ! एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स। सिया णं एवं वयंतं परो वएज्जा 'पडिग्गाहेहि अज्जो !' तुमं पच्छा भोक्खसि वा देहिसि वा' एवं से कप्पइ पडिग्गाहित्तए, नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिग्गाहित्तए ॥२३८॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए [illegible] श्रमणों को पूर्व ही इस प्रकार [illegible] होता है—हे भगवन् ! [illegible] के लिए आवश्यकता है ? [illegible]

कहे कि आवश्यकता है, तो उसके पश्चात् उस अस्वस्थ व्यक्ति से पूछना चाहिए कि कितने प्रमाण मे (दूध आदि की) आवश्यकता है और दूध आदि का प्रमाण अस्वस्थ व्यक्ति से जान लेने के पश्चात् वह कहे कि इतने प्रमाण में अस्वस्थ व्यक्ति (सन्त) को दूध की आवश्यकता है। वीमार जितने प्रमाण में कहे उतने ही प्रमाण मे लाना चाहिए। लाने के लिए जाने वाला प्रार्थना करे और प्रार्थना करता हुआ दूध आदि प्राप्त करे। जव दूध आदि प्रमाणयुक्त प्राप्त हो जाय तव उसे पर्याप्त (वस) है, इस प्रकार कहना चाहिए। उसके पश्चात् दूध देने वाला उस श्रमण से कहे कि—'हे भगवन्! 'वस, पर्याप्त है' ऐसा आप कैसे कह रहे है। उत्तर मे लेने वाला भिक्षुक कहे, कि बीमार के लिए इतने की ही आवश्यकता है। इस प्रकार कहते हुए भिक्षूक को दूध आदि प्रदान करने वाला गृहस्थ कदाचित् यह कहे कि हे आर्य! आप ले जावे बाद मे आप खा लेना, या पी लेना, इस प्रकार वार्ता हुई हो तो उसे अधिक लेना कल्पता है, किन्तु लाने वाले को वीमार व्यक्ति के वहाने अधिक लाना नही कल्पता।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं कडाइं पत्तियाइं थेज्जाइं वेसासियाइं सम्मयाइं बहुमयाइं अणुमयाइं भवंति तत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइत्तए 'अत्थि ते आउसो! इमं वा इमं वा? से किमाहु भंते! सड्ढी गिही गिण्हइ वा तेणियं पि कुज्जा ॥२३६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए स्थविरो के तथा प्रकार के कुल आदि किये हुए होते है, जो कुल प्रीतिपात्र होते हैं स्थिरता वाले होते है, विश्वास वाले होते हैं, सम्मत होते है, वहुमत होते हैं और अनुमति वाले होते है, उन कुलो मे जाकर आवश्यक वस्तु न देखकर उन स्थविरो को इस प्रकार कहना नही कल्पता कि हे आयुष्मन्! यह वस्तु या यह वस्तु तुम्हारे यहाँ पर है?

प्रश्न—हे भगवन्! उन्हे इस प्रकार कहना नही कल्पता, यह किस उद्देश्य से कहा गया है?

उत्तर—हे आयुष्मन् ! ऐसा कहने से श्रद्धावान् गृहस्थ वह वस्तु न होने पर नवीन ग्रहण करे, मूल्य से खरीदकर लाये, अथवा चोरी करके भी ले आए।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगं गोयरकालं गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नऽन्नत्थ आयरियवेयावच्चेण वा उवज्झायवेयावच्चेण तवस्सिगिलाणवेयावच्चेण खुडएणं वा अवंजणजायएणं ॥२४०॥

अर्थ– वर्षावास में रहे हुए नित्यभोजी भिक्षु को गोचरी के समय में आहार के लिए अथवा पानी के लिए गृहस्थ के कुल की तरफ एक बार निकलना कल्पता है और एक बार प्रवेश करना कल्पता है। सिवाय इसके कि आचार्य की सेवा का कारण हो, उपाध्याय की सेवा का कारण हो, तपस्वी या रुग्ण श्रमण की सेवा का कारण हो, जिनके दाढ़ी मूँछ अथवा बगल में केश न आये हों ऐसे लघु (बाल) श्रमण और श्रमणियों की सेवा का कारण हो। अर्थात् यदि इनमें से कोई कारण विद्यमान हो तो एक से अधिक बार भी भिक्षा के लिए जाना कल्पता है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स अयं एवइए विसेसे जं से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडगं भोच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिया संपमज्जिया, से य संथरिज्जा कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, से य नो संथरिज्जा एवं से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४१॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए चतुर्थ भक्त करने वाले भिक्षु के लिए यह विशेषता है कि वह उपवास के पश्चात् प्रात गोचरी के लिए निकलकर प्रथम विकटक (स्पष्ट-शुद्ध) अर्थात् निर्दोष भोजन करके और निर्दोष पानक पीकर के पश्चात् पात्र को साफ करके, धोकर के, यदि उतने ही आहार पानी से निर्वाह हो सकता हो तो, उतने ही भोजन पानी से चलावे। यदि उतने से निर्वाह नही हो सकता हो, तो उसको गृहपति के कुल की तरफ द्वितीय बार भी निकलना और प्रवेश करना कल्पता है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कपंति दो गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४२॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए षष्ठ भक्त करने वाले भिक्षु को गोचरी के समय आहार के लिए अथवा पानी के लिए गृहस्थ के कुल की ओर दो वार निकलना और प्रवेश करना कल्पता है।[७]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४३॥

अर्थ—वर्षावास मे स्थित अष्टभक्त करने वाले भिक्षुक को गोचरी के समय आहार के लिए अथवा पानी के लिए गृहस्थो के कुल की ओर तोर बार निकलना और प्रवेश करना कल्पता है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं विकिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स

कप्पंति सव्वे वि गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४४॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए विकृष्टभक्त (अष्टम भक्त से अधिक तप) करने वाले भिक्षुक को आहार के लिए अथवा पानी के लिए गृहस्थ के कुल की ओर जिस समय इच्छा हो उस समय निकलना और प्रवेश करना कल्पता है। अर्थात् विकृष्ट भक्त करने वाले भिक्षुक को गोचरी के लिए सभी समय प्रवेश करने की आज्ञा है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए ॥२४५॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए नित्यभोजी भिक्षुक को सभी प्रकार का पानी लेना कल्पता है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहेत्तए, तं जहा—उस्सेइमं संसेइमं चाउलोदगं ॥२४६॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए चतुर्थभक्त करने वाले भिक्षुक को तीन प्रकार के पानी लेना कल्पता है। जैसे कि उत्स्वेदिम (आटे का धोवन) संस्वेदिम, (उबाल, उबाला हुआ जल) चाउलोदक (चावल का धोवन)।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहेत्तए, तं जहा—तिलोदए तुसोदए जवोदए ॥२४७॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए पप्ठभक्त करने वाले भिक्षुक को तीन प्रकार का पानी पीमा कल्पता है जैसे कि—तिलोदक, तुषोदक और जवोदक।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणयाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—आयामए सोवीरए सुद्धवियडे ॥२४८॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए अष्टम भक्त करने वाले भिक्षुक को तीन पानी लेना कल्पता हैं। जैसे—आयाम, सौवीर (काजी) और शुद्धविकट (उष्णोदक)।[10]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं विकिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणोदए वियडे पडिगाहेत्तए, से वि य णं असित्थे णो वि य णं ससित्थे ॥२४९॥

अर्थ—वर्षावास मे अवस्थित विकृष्ट भक्त करने वाले भिक्षुक को एक उष्णविकट (शुद्ध उष्णोदक) पानी लेना कल्पता है, वह भी अन्नकण रहित, अन्नकण युक्त नही।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं भत्तपडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणोदए पडिगाहित्तए, से वि य णं असित्थे नो चेव णं ससित्थे, से वि य णं परिपूते नो चेव णं अपरिपूए, से वि य णं परिमिए नो चेव णं अपरिमिए से वि य णं बहुसंपण्णे नो चेव णं अबहुसंपण्णे ॥२५०॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए भक्त प्रत्याख्यानी भिक्षुक को एक उष्ण विकट

पानी लेना कल्पता है, वह भी अन्नकण रहित, अन्नकण युक्त नही। वह भी कपड़े से छाना हुआ, बिना छाना हुआ नही। वह भी परिमित, अपरिमित नही। वह भी जितनी आवश्यकता हो उतना, पूरा, अधिक या कम नही।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं संखादत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स, अहवा चत्तारि भोयणस्स पंच पाणगस्स, अहवा पंच भोयणस्स चत्तारि पाणगस्स, तत्थ णं एगा दत्ती लोणासायणमेत्तमविपडिग्गाहिया सिया कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२५१॥

अर्थ--वर्षावास मे रहे हुए नियत संख्या वाली दत्ति प्रमाण (एक बार मे दी जाने वाली थोड़ी सी भी परिमित भिक्षा एक दत्ति होती है) आहार लेने वाले भिक्षुक को भोजन की पाच दत्तिया और पानी की पाच दत्तिया लेनी योग्य है। अथवा भोजन की चार दत्तिया और पानी की पाच दत्तिया भी ली जा सकती है। तथा भोजन की पाच दत्तिया और पानी की चार दत्तियां ली जा सकती हैं। नमक के एक कण जितना भी जितना आस्वाद लिया जा सके वह भी एक दत्ति गिनी जाती है। ऐसी दत्ति से लेने के पश्चात् उस भिक्षुक को उस दिन उस भोजन से ही निर्वाह करना चाहिए। उस भिक्षुक को दूसरी बार पुन गृहपति के कुल की ओर भोजन के लिए या पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता।"

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो से कप्पति निग्गंथाण वा

निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिसन्नियट्टचा-रिस्स एत्तए। एगे पुण एवमाहंसु—नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेणं संखडिं सन्नियट्टचारिस्स एत्तए। एगे पुण एवमाहंसु—नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परंपरेण संखडिं सन्नियट्टचारिस्स एत्तए ॥२५२॥

अर्थ—वर्षावास मे हुए निपिद्ध घर का त्याग करने वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को उपाश्रय से लेकर सात घर तक जहाँ सखडि (जीमनवार) हो, वहाँ जाना नही कल्पता। कितने ही ऐसा कहते है कि उपाश्रय से लगाकर आगे आने वाले घरो मे जहा सखडि हो वहाँ निषिद्ध घर का त्याग करने वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को जाना नही कल्पता। कितने ही ऐसा भी कहते है कि उपाश्रय से लगा कर परम्परा से आते हुए घरो मे जहा जीमनवार होती हो वहा निषिद्ध घर का त्याग करने वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को जाना नही कल्पता।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।२५३।

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए कर-पात्री भिक्षुक को, कणमात्र भी स्पर्श हो इस प्रकार का वृष्टिकाय (ओस और धुन्ध) गिरता हो तब गृहपति के कुल की ओर भोजन और पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना नही कल्पता।[१२]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गाहियस्स भिक्खुस्स

नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिग्गाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोस-वेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवडिज्जा देसं भोच्चा देसमायाय पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा, कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा, अहाछन्नाणि वा लयणाणि उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दत्ते वा दत्तए वा दगफुसिया वा नो परियावज्जइ ॥२५४॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए कर पात्री भिक्षुक को पिण्डपात्र भिक्षा-लेकर के जहाँ घर न हो वहाँ अर्थात् खुले आकाश में रहकर भोजन करना नहीं कल्पता। खुले आकाश में रहकर खाते समय अचानक वृष्टिकाय गिरे तो जितने भाग को खा लिया है उसे खाकर के और बचे हुए अवशेष भाग को लेकर के उसे हाथ से ढक करके और उस हाथ को सीने से चिपकाकर रखे या कक्षा (काख) मे छिपाकर रखे। ऐसा करने के पश्चात् गृहस्थो ने अपने लिए सम्यक् प्रकार से जो घर छाये हो उस ओर जाये, अथवा वृक्ष के मूल (नीचे) की ओर जाये, जिस हाथ मे भोजन है उस हाथ मे जिस प्रकार पानी की बूंदों की या फुहारो आदि की विराधना न हो इस प्रकार प्रवृत्ति करे।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स जं किंचि कणगफुसियमित्तं पि निवडइ नो से कप्पइ भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२ ५॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए करपात्री भिक्षुक को कणमात्र भी स्पर्श हो, इस प्रकार अत्यन्त हल्की बूंदें आती हो तब भोजन और पानी के लिए गृहस्थ के घर की ओर निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स

नो कप्पइ वग्घारियवुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२५६॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए पात्रधारी भिक्षुक को अविच्छिन्न धारा (वग्घारिय वुट्ठिकायसि)[13] से वर्षा वरस रही हो तव भोजन और पानी के लिए गृहपति के कुल की ओर जाना नही कल्पता, और प्रवेश करना भी नही कल्पता। कम वर्षा (अल्प वर्षा) वरस रही हो, तव अन्दर सूती वस्त्र और उसके ऊपर ऊनी वस्त्र ओढकर रजोहरण एव पात्र को प्रावरण से ढक कर भोजन के लिए अथवा पानी के लिए गृहपति के कुल की ओर निकलना और प्रवेश करना कल्पता है।

विवेचन—प्रस्तुत पाठ मे जोरदार वर्षा—जव अविच्छिन्नधारा से वर्षा वरस रही हो उस समय भिक्षा के लिए जाने का निपेव किया है और आगे हलकी वर्षा मे जाने की अनुमति दी है। पाठ मे 'सत्तरुत्तरसि' शव्द आया है। यह शव्द आचाराग[14] और उत्तराध्ययन[15] मे भी मिलता है, पर वहाँ पर प्रकरण के अनुसार टीकाकारो ने दूसरा अर्थ किया है। यहाँ पर कल्पसूत्र के चूर्णिकार और टिप्पणकार ने अन्तर शव्द के तीन अर्थ किए हैं—(१) सूती वस्त्र, (२) रजोहरण, (३) और पात्र। तथा उत्तर शव्द के दो अर्थ किए हैं (१) कम्वल और (२) ऊपर ओढने का उत्तरीय वस्त्र।[16] साराश यह है कि हलकी वर्षा मे भीतर सूती वस्त्र और ऊपर ऊनी वस्त्र ओढकर भिक्षा के लिए जाय। ओघनिर्युक्ति[17], धर्मसग्रह वृत्ति[18] और योगशास्त्र स्वोपज्ञवृत्ति[19] मे प्रस्तुत परम्परा का उल्लेख किया है। किन्तु आचारांग मे **'तिव्वदोसीयं वासं वासमाणं पेहाए'**[20] के द्वारा तेज वर्षा मे जाने का निषेध किया है। दशवैका-लिक मे भी **'न चरेज्ज वासे वासंते'**[21] पाठ मे स्पष्ट रूप से वर्षा वरसते समय भिक्षा के लिए जाने का निषेध है। अगस्त्यसिंह स्थविर[22] जिनदास महत्तर[23] और आचार्य हरिभद्र[24] ने भी अपनी चूर्णि और टीका मे वताया है कि भिक्षा

का काल होने पर यदि वर्षा हो रही हो तो भिक्षुक बाहर न निकले। भिक्षा के लिए निकलने के पश्चात् यदि वर्षा होने लगे तो ढके हुए स्थान में खड़ा हो जाय, आगे न जाय। उक्त प्रकरण के सन्दर्भ में अल्पवृष्टि में जाने का उल्लेख नहीं हुआ है, अपितु निषेध ही है। तीव्र वृष्टि, धुन्ध और कुहरा गिर रहा हो उस समय नहीं जाना और अल्पवृष्टि में जाना यह श्रमणाचार की विधि के अनुसार किस प्रकार संगत हो सकता है यह गीतार्थ श्रमणों व आगम मर्मज्ञों के लिए विचारणीय है। हमारी दृष्टि से वर्षा में भिक्षा के लिए जाने की परम्परा विशुद्ध श्रमणाचार की परम्परा नहीं है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवएज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्खमूलंसि, वा उवागच्छित्तए, तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे कप्पइ से चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिग्गाहित्तए, तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिग्गाहित्तए नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए, तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं वट्टंति कप्पंति से दो वि पडिग्गाहित्तए, तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं नो से कप्पंति दो वि पडिग्गाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिग्गाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते से नो कप्पइ पडिग्गाहित्तए ॥२५७॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए और भिक्षा लेने की इच्छा से गृहस्थ के कुल

मे प्रवेश किए हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को रह रहकर थोड़ी-थोडी देर से वर्षा गिर रही हो तब बगीचे मे अथवा उपाश्रय मे, अथवा विकटगृह मे जहाँ गाँव के लोग एकत्र होकर बैठते है, उस सभा भवन मे अथवा वृक्ष के नीचे जाना कल्पता है ।

उपर्युक्त स्थानो पर जाने के पश्चात् वहा यदि पहुँचने के पूर्व ही तैयार किया हुआ चावलओदन मिलता हो तो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी ग्रहण कर सकते हैं । उनके पहुँचने के पश्चात् पीछे से तैयार किया हुआ भिलिंगसूप[२७] अर्थात् मसूर की दाल, उडद की दाल या तेल वाला सूप मिलता हो तो उन्हे चावलओदन लेना तो कल्पता है पर भिलिंगसूप लेना नहीं कल्पता ।

वहाँ यदि श्रमणो के पहुँचने के पूर्व ही तैयार किया हुआ भिलिंगसूप मिलता हो और चावलओदन उनके पहुचने के पश्चात् पीछे से तैयार किया हुआ प्राप्त होता हो, तो उन्हे भिलिंगसूप तो लेना कल्पता है पर चावलओदन लेना नही कल्पता ।

वहां पर पहुँचने के पूर्व ही यदि दोनो वस्तुएं तैयार की हुई मिलती हो तो उन्हे दोनो ही वस्तुएँ लेनी कल्पती हैं ।

वहाँ पर पहुँचने के पूर्व यदि दोनो ही वस्तुएँ प्रारम्भ से ही तैयार की हुई नही मिलती हैं, और उनके पहुंचने के पश्चात् तैयार की हुई प्राप्त होती हैं तो उन्हे दोनो ही वस्तुएँ लेना नही कल्पता ।

उनके पहुंचने के पूर्व जो वस्तुएँ तैयार की हुई हैं, उन्हे लेना कल्पता है, पर पहुचने के पश्चात् तैयार की हुई वस्तु लेना नही कल्पता ।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवएज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ

पुव्वगहिएणं भत्तपाणेणं वेलं उवाइणावित्तए. कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भोच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिय संलिहिय पमज्जिय पमज्जिय एगायगं भंडगं कट्टु जाव सेसे सूरिए जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए. नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥२५८॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए और भिक्षा लेने की वृत्ति से गृहस्थ के कुल में प्रवेश किये हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को जब रह रहकर वर्षा बरस रही हो तब उन्हे या तो उद्यान के मूल के नीचे, (बाग की दीवाल की छाया मे) जहाँ छींटे न लगे या उपाश्रय के नीचे, या विकटगृह के नीचे, या वृक्ष के मूल के नीचे चला जाना कल्पता है। वहाँ जाने के पश्चात् पूर्व लाये हुए आहार पानी को रखकर समय को नष्ट करना नहीं कल्पता। वहाँ पहुँचते ही विकटक (निर्दोष आहार-पानी) को खा पीकर पात्र को साफ कर एक साथ सम्यक् प्रकार से बांधकर सूर्य अवशेष रहे वहाँ तक उपाश्रय की ओर जाना कल्पता है, किन्तु वहाँ पर उस रात्रि को व्यतीत करना नहीं कल्पता।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा जाव उवागच्छित्तए. तत्थ नो कप्पइ एगस्स य निग्गंथस्स एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स दोण्ह य निग्गंथीण एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स दोण्ह य निग्गंथीणं एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ दोण्ह य निग्गंथाणं एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ दोण्ह य निग्गंथाणं दोण्ह य निग्गंथीणं एगयओ

चिट्ठित्तए, अत्थि या इत्थ केइ पंचमए खुड्डुए वा खुड्डिया वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे एवण्हं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ॥२५६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए और भिक्षा लेने की वृत्ति से गृहस्थ के कुल मे प्रवेश किये हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनियो को जब रह रहकर अन्तरसहित वर्षा गिर रही हो तब उन्हे या तो बगीचे के नीचे, या उपाश्रय के नीचे, यावत् चला जाना कल्पता है।

(१) वहाँ पर उस अकेले साधु को अकेली साध्वी के साथ सम्मिलित रहना नही कल्पता। (२) वहा पर उस अकेले निर्ग्रन्थ को दो निर्ग्रन्थिनियो के साथ सम्मिलित रहना नही कल्पता। (३) वहाँ पर दो निर्ग्रन्थो को अकेली निर्ग्रन्थिनी के साथ सम्मिलित रहना नही कल्पता। (४) वहाँ पर दो निर्ग्रन्थो को दो निर्ग्रन्थिनियो के साथ सम्मिलित रहना नही कल्पता।

वहाँ पर किसी पांचवे की साक्षी रहनी चाहिए। भले ही वह क्षुल्लक हो या क्षुल्लिका हो, अथवा दूसरे उन्हे देख सकते हो, दूसरो की दृष्टि मे वे आ सकते हो, अथवा घर के चारों ओर के द्वार खुले हुए हो तो इस प्रकार उनको अकेला रहना कल्पता है।[२८]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवएज्जा कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए य अगारीए एगयओ चिट्ठित्तए, एवं चउभंगो, अत्थि या इत्थ केइ पंचमए थेरे वा थेरिया वा अन्नेसिं वा संलोते सपडिदुवारे एवं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ॥२६०॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए और भिक्षा लेने की वृत्ति से गृहस्थ के कुल मे प्रवेश किए हुए निर्ग्रन्थ को जब रह रहकर सान्तर वर्षा गिर रही हो, तब उसे या तो बगीचे की छाया में, या उपाश्रय के नीचे जाना कल्पता है। वहां पर अकेले निर्ग्रन्थ को अकेली महिला के साथ सम्मिलित रहना नही कल्पता। यहां पर भी सम्मिलित नही रहने के सम्बन्ध मे पूर्व सूत्र की तरह चार भंग समझ लेने चाहिए।

वहां पर पांचवा कोई भी स्थविर या स्थविरा होनी चाहिए। अथवा दूसरो की दृष्टि से देखे जा सकें ऐसा होना चाहिए, अथवा घर के चारो तरफ के द्वार खुले रहने चाहिए। इस प्रकार उन्हें अकेला रहना कल्पता है।

मूल :—

एवं चेव निग्गंथीए अगारस्स य भाणियव्वं ॥२६१॥

अर्थ—और इसी प्रकार अकेली निर्ग्रन्थिनी और अकेले गृहस्थ के सम्मिलित नही रहने के सम्बन्ध मे चार भंग समझने चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत विधान व्यवहार शुद्धि और ब्रह्मचर्य की विशुद्धि के लिए किया गया है। ब्रह्मचारी साधक को सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। जरा-सी असावधानी भी साधक को पथ से विचलित कर सकती है, अतः शास्त्रकार ने सजग रहने की प्रेरणा दी है। इसकी बात साधक स्वयं मे भले ही जागृत हो किन्तु अगर व्यवहार अशुद्ध हो तो ऐसे स्थान मे भी नही रहना चाहिए। इसीलिए कहा गया है—'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं न करणीयम्।'

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अपरिन्नएणं अपरिन्नयस्स अट्ठाए असणं वा ४

जाव पडिग्गाहित्तए, से किमाहु भंते ! इच्छा परो अपडिन्नते भुंजिज्जा, इच्छा परो न भुंजिज्जा ॥२६२॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए निर्ग्रन्थ को या निर्ग्रन्थिनियो को दूसरे किसी के कहे विना या दूसरे को सूचना किये विना उनके लिए अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारो प्रकार का आहार लाना नही कल्पता ।

प्रश्न—हे भगवन् ! इस प्रकार क्यो कहते हैं ?

उत्तर—हे शिष्य ! दूसरे के द्वारा विना कहे हुए या दूसरे के द्वारा विना सूचित किये हुए, लाया गया आहार आदि यदि उसकी इच्छा होगी तो वह खायेगा, यदि इच्छा न होगी तो वह नही खायेगा । अर्थात् दूसरे के लिए विना पूछे या दूसरे के विना कहे आहार आदि नही लाना चाहिए । क्योकि विना पूछे लाया गया आहार यदि उसकी इच्छा नही है और विना इच्छा के वह खाता है तो या तो उसे रोग हो जायगा, और यदि वह नही खाएगा तो परिष्ठापन-दोष लगेगा ।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा उदउल्लेण वा ससणिद्धेण वा काएणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए ॥२६३॥

अर्थ—वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनियो को उनके शरीर पर से पानी गिरता हो या उनका शरीर आर्द्र हो तो अशन, पान, खादिम और स्वादिम को खाना नही कल्पता ।

मूल :—

से किमाहु भंते ! सत्त सिणेहायतणा, तं जहा—पाणी, पाणीलेहा, नहा, नहसिहा, भमुहा, अहरोट्ठा, उत्तरोट्ठा । अह

पुण एवं जाणेज्जा–विगओअए से काए छिन्नसिणेहे एवं से कप्पइ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए ॥२६४॥

अर्थ–प्रश्न–हे भगवन् ! किस दृष्टि से आप ऐसा कहते हैं ?

उत्तर–शरीर में सात भाग स्नेहायतन बताये गये है अर्थात् शरीर में सात भाग ऐसे है जहाँ पर पानी टिक सकता है, जैसे–(१) दोनों हाथ, (२) दोनों हाथों की रेखाएं, (३) नाखून, (४) नाखून के अग्रभाग, (५) दोनों भौंहे, (६) नीचे का ओष्ठ अर्थात् दाढी, (७) ऊपर का ओष्ट अर्थात् मूछें।

जब निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को ऐसा ज्ञान हो कि अब मेरे शरीर मे पानी का आर्द्रपन बिल्कुल नहीं रहा है तो उनको अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार करना कल्पता है।

——● आठसूक्ष्म

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं पासियव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति, तं० पाणसुहुमं पणगसुहुमं बीयसुहुमं, हरियसुहुमं पुप्फसुहुमं अंडसुहुमं लेणसुहुमं सिणेहसुहुमं ॥२६५॥

अर्थ–यहां (निर्ग्रन्थ शासन में) वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को ये आठ सूक्ष्म जानने योग्य हैं। प्रत्येक छद्मस्थ निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी को पुनः पुनः सम्यक् प्रकार से आठ सूक्ष्म जानने (आगम से) योग्य हैं, देखने (चक्षु से) योग्य हैं—और सावधानी पूर्वक प्रतिलेखना करने योग्य हैं। जैसे कि—(१) प्राणसूक्ष्म, (२) पनक सूक्ष्म, (३) बीज सूक्ष्म, (४) हरित सूक्ष्म, (५) पुष्प सूक्ष्म, (६) अण्डसूक्ष्म (७) लयन सूक्ष्म, और (८) स्नेह सूक्ष्म।

मूल :—

से किं तं पाणसुहुमे ! पाणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा— किण्हे, नीले, लोहिए, हालिद्दे, सुक्किले, अत्थि कुंथू अणुद्धरी नामं जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाणं चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वा पासियव्वा पडिलेहियव्वा भवइ, से त्तं पाणसुहुमे १ ॥२६॥

अर्थ–प्रश्न—हे भगवन् ! वह प्राण सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—प्राणसूक्ष्म अर्थात् अत्यन्त बारीक जो साधारण नेत्रो से न देखा जा सके, वैसे बेइन्द्रिय आदि सूक्ष्म प्राणी। प्राणसूक्ष्म के पाँच प्रकार बताये है। जैसे—(१) कृष्ण रग के सूक्ष्म प्राणी। (२) नीले रग के सूक्ष्म प्राणी, (३) लाल रग के सूक्ष्म प्राणी, (४) पीले रग के सूक्ष्म प्राणी, (५) श्वेत रग के सूक्ष्म प्राणी। अनुद्धरी कुथुआ नामक सूक्ष्म प्राणी जो यदि स्थिर हो, चलता फिरता न हो, तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी की दृष्टि में शीघ्र नही आ सकता। यदि वह स्थिर न हो, चलता फिरता हो तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को शीघ्र ही दृष्टि गोचर हो सकता है। अत छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को पुन पुन उसे जानना चाहिए, देखना चाहिए, सावधानी से तल्लीनता पूर्वक प्रतिलेखना करनी चाहिए। यह प्राणसूक्ष्म की व्याख्या हुई।

मूल :—

से किं तं पणगसुहुमे ? पणगसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–किण्हे नीले लोहिए हालिद्दे सुक्किले, अत्थि पणगसुहुमे

तद्दव्वसमाणवन्नए नामं पण्णत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवति से त्तं पणगसुहुमे २ ॥२६७॥

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन् ! वह पनक सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—अत्यन्त बारीक जो साधारण नेत्रों से न देखी जा सके वैसी लीलन फूलन (सेवाल) पनक सूक्ष्म है। पनक सूक्ष्म के पांच प्रकार बताये हैं, जैसे—(१) कृष्ण पनक, (२) नीली पनक, (३) लाल पनक, (४) पीली पनक और (५) श्वेत पनक। तात्पर्य यह है कि लीलन-फूलन, फुगी या सेवाल, जो अत्यन्त बारीक होती है, वस्तु के साथ मिली होने के कारण, उस जैसे रंग की होती है, अतः वह शीघ्र दिखलाई नहीं देती है। अतएव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रंथिनी को सम्यक् प्रकार से जानना चाहिए, देखना चाहिए और उसकी प्रतिलेखना करना चाहिए। यह है पनक सूक्ष्म की व्याख्या।

मूल :—

से किं तं बीयसुहुमे ? बीयसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे जाव सुकिल्ले. अत्थि बीयसुहुमे कण्णियासमाणवन्नए नामं पण्णत्ते. जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ, से त्तं बीयसुहुमे ३ ॥२६८॥

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन् ! बीज सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—जो बीज साधारण नेत्रों से न देखा जा सके, वह बीज-सूक्ष्म है। वह बीजसूक्ष्म पांच प्रकार का है, जैसे—(१) श्याम बीज सूक्ष्म, (२) नील बीज सूक्ष्म, (३) लाल बीज सूक्ष्म, (४) पीला बीज सूक्ष्म, (५) श्वेत बीज सूक्ष्म। वस्तु से वस्तु रंग के समान रंगवाला बीज सूक्ष्म होता है। तात्पर्य जिस रंग के अन्न के कण हों उसी रंग के बीज सूक्ष्म होते हैं। छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रंथिनी को उन्हें बारम्बार जानना चाहिए और प्रतिलेखना करनी चाहिए। यह बीज सूक्ष्म की व्याख्या हुई।

मूल :—

से किं तं हरियसुहुमे ? हरियसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तं
जहा–किण्हे जाव सुकिल्ले, अत्थि हरियसुहुमे पुढवीसमाणवन्नए,
जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीण वा, अभिक्खणं अभि-
क्खणं जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवइ,से त्तं हरियसुहुमे ४ ॥२६९॥

अर्थ–प्रश्न—हे भगवन् वह हरितसूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—हरित अर्थात् अभिनव उत्पन्न हुआ अत्यन्त बारीक नेत्रो से भी
न निहारा जाय वैसा हरित । वह हरित सूक्ष्म पाँच प्रकार का कहा गया है ।
वह जैसे–(१) कृष्ण हरित सूक्ष्म, (२) नीला हरित सूक्ष्म, (३) लाल हरित
सूक्ष्म, (४) पीला हरित सूक्ष्म, (५) श्वेत हरित सूक्ष्म । ये हरित सूक्ष्म पृथ्वी
पर उत्पन्न होते हैं । जिस पृथ्वी का जैसा रग होता है वैसा ही रग उस हरित
सूक्ष्म का होता है । छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को उसे वारम्वार जानना,
देखना और प्रतिलेखन करना चाहिए । यह हरित सूक्ष्म का कथन हुआ ।

मूल :—

से किं तं पुप्फसुहुमे ? पुप्फसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा–
किण्हे जाव सुक्किल्ले, अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवन्ने नामं
पन्नत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निगंथीण वा अभिक्खणं
अभिक्खणं जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवति, से त्तं
पुप्फसुहमे ५ ॥२७०॥

अर्थ–प्रश्न—हे भगवन् ! वह पुष्पसूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—जो पुष्प अत्यन्त बारीक हो, साधारण नेत्रो से न निहारा जा
सके । जैसे वट उदुम्बर आदि के फूल श्वास मात्र से जिनकी विराधना हो
सकती है, वह पुष्पसूक्ष्म होता है । यह पुष्प सूक्ष्म पाँच प्रकार का है–(१)

कृष्ण पुष्प सूक्ष्म, (२) नीला पुष्प सूक्ष्म, (३) लाल पुष्प सूक्ष्म, (४) पीला पुष्प सूक्ष्म (५) श्वेत पुष्प सूक्ष्म। ये पुष्प सूक्ष्म जिस वृक्ष पर उत्पन्न होते है उस वृक्ष के रंग के सदृश रंग वाले होते हैं। छद्मस्थ निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी को उन्हें सम्यक् प्रकार जानना चाहिए, देखना चाहिए और प्रतिलेखन करना चाहिए। यह पुष्पसूक्ष्म की विवेचना हुई।

मूल :—

से किं तं अंडसुहुमे? अंडसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा—उद्दंसंडे उक्कलियंडे पिपीलियंडे हलियंडे हल्लोहलियंडे, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीण वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ, से त्तं अंडसुहुमे ६ ॥२७१॥

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन् वह अंड सूक्ष्म क्या है?

उत्तर—जो अण्डा अत्यन्त बारीक हो, आंखो से भी नही देखा जा सके वह अण्ड सूक्ष्म है। अण्डसूक्ष्म पांच प्रकार का है। जैसे (१) मधुमक्खियां आदि दश देने वाले प्राणियों के अण्डे। (२) मकड़ो के अण्डे, (३) चीटियों के अण्डे (४) छिपकली के अण्डे, (५) काकीड़ा (गिरगिट) के अण्डे। छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को, ये अण्डे सम्यक् प्रकार जानने चाहिए, देखने चाहिए और प्रतिलेखन करने चाहिए। यह अण्डसूक्ष्म की विवेचना हुई।

मूल :—

से किं तं लेणसुहुमे? लेणसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा—उत्तिंगलेणे भिंगुलेणे उज्जुए तालमूलए संबोक्कावट्टे नामं पंचमे, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवइ से त्तं लेणसुहुमे ७ ॥२७२॥

अर्थ—प्रश्न—हे भगवन् लयन सूक्ष्म क्या है।

उत्तर—लेण (लयन) अर्थात् बिल जो अत्यन्त बारीक होने से साधारण आँखों से देखा न जा सके, वह लयनसूक्ष्म है। लयनसूक्ष्म पांच प्रकार का है, जैसे—गधैया आदि जीव अपने रहने हेतु पृथ्वी मे जमीन को खोदकर बिल बनाते है वह उत्तिगलेण है। (२) पानी सूखने के पश्चात् जहाँ पर बडी-बडी दरारें पड गई हो उनमे जो बिल बनाये गये हो वह भिगुलेण है। (३) बिल-भोण (४) ताड के मूल जैसी आकृतिवाला बिल जो ऊपर से सकुचित और अन्दर से विस्तृत होता है वह तालमूलक है। (५) शख के सदृश आकृति वाला जो बिल होता है वह शबूकावर्त है, जैसे भ्रमर के बिल। छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी को ये बिल बारम्बार जानने, देखने और प्रतिलेखना करने योग्य है। यह लेणसूक्ष्म की विवेचना हुई।

मूल :—

से किं तं सिणेहसुहुमे ? सिणेहसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–उस्सा हिमए महिया करए हरतणुए, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा, निग्गंथीण वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ, से त्तं सिणेहसुहुमे ८ ॥२७३॥

अर्थ–प्रश्न–वह स्नेह सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर—स्नेह अर्थात् आर्द्रता, जो आर्द्रता शीघ्र ही दृष्टिगोचर न हो (जसे—धुअर, ओले, वर्फ, ओस आदि) वह स्नेह सूक्ष्म है। स्नेह सूक्ष्म पाच प्रकार का है। जैसे—(१) ओस, (२) हिम, (३) धूमस, (४) गडे, (५) हरतनु-भूमि से उठकर घास के अग्रभाग पर अवस्थित पानी की सूक्ष्म बूदें। छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को ये पाँच स्नेह सूक्ष्म अच्छी प्रकार जानने, देखने और प्रतिलेखन करने योग्य है।

इस प्रकार यह आठ सूक्ष्मो की विवेचना हुई।

मूल :—

वासवासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा उवज्झायं वा थेरं वा पवत्तिं वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ काउं विहरइ. कप्पइ से आपुच्छिउं आयरियं जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा जाव पविसित्तए वा, ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, से किमाहु भंते ! ? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥२७४॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए भिक्षु को आहार के लिए या पानी के लिए गृहस्थ के घर जाने की या प्रवेश करने की इच्छा हो तो आचार्य से, अथवा उपाध्याय से, अथवा स्थविर से, अथवा प्रवर्तक से, अथवा गणि से, अथवा गणधर से, अथवा गणावच्छेदक से, अथवा जिस किसी को प्रमुख मान कर विचरण करता हो, उनसे बिना पूछे उसे इस प्रकार करना नहीं कल्पता है। आचार्य, अथवा उपाध्याय, अथवा स्थविर, अथवा प्रवर्तक, अथवा गणि अथवा गणधर अथवा गणावच्छेदक अथवा जिनको मुखिया करके विचरता है उनसे पूछकर उसे जाना एवं प्रवेश करना कल्पता है। भिक्षु उन्हें इस प्रकार पूछता है—हे भगवन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं गृहपति के कुल की ओर आहार के लिए या पानी के लिए, जाने की एवं प्रवेश करने की इच्छा रखता हूँ। इस प्रकार पूछने से भगवान् जो यह अनुमति दें तो उस भिक्षु को गृहस्थ के कुल की ओर आहार के लिए या पानी के लिए निकलना अथवा प्रवेश करना कल्पता है। जो वे

अनुमति न दें तो भिक्षु को आहार के लिए अथवा पानी के लिए गृहस्थ के कुल की ओर निकलना और उसमे प्रवेश करना नही कल्पता।

प्रश्न—हे भगवन् ! आप ऐसा क्यो कहते है ?

उत्तर—अनुमति देने मे अथवा न देने मे आचार्य प्रत्यवाय (विघ्न) आदि को जानते होते है।

मूल :—

एवं विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा अन्नं वा जं किंपि पओयणं, एवं गामाणुगामं दुइज्जित्तए ॥२७५॥

अर्थ—इस प्रकार विहारभूमि की ओर जाने के लिए, अथवा विचार भूमि की ओर जाने के लिए, अथवा अन्य किसी भी प्रयोजन के लिए या एक गाँव से दूसरे गाँव जाना आदि सभी प्रवृत्तियो के लिए इसी प्रकार अनुमति प्राप्त करना चाहिए।

मूल :—

वासावासं पज्जोसविए भिक्खु य इच्छिज्जा अन्नयरिं विगइं आहारित्तए नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ कट्टु विहरइ, कप्पइ से आपुच्छित्ता णं तं चेव—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे अन्नयरिं विगइं आहारित्तए, तं एवइयं वा एवतिक्खुत्तो वा, ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ अन्नयरिं विगइं आहारित्तए, ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नयरिं विगइं आहरित्तए, से किमाहु भंत्ते ! ? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥२७६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहा हुआ भिक्षु किसी भी एक विगय को खाने की इच्छा करे तो आचार्य से अथवा उपाध्याय से, स्थविर से, प्रवर्तक से, गणि से,

गणधर से, गणावच्छेदक से, अथवा जिसे भी प्रमुख मानकर विचरण करता हो उससे बिना पूछे उसे वैसा करना नहीं कल्पता है। आचार्य अथवा उपाध्याय, अथवा स्थविर, अथवा प्रवर्तक, गणि, गणधर, गणावच्छेदक अथवा जिस किसी को प्रमुख मानकर विचरण करता हो उससे पूछकर उसे इस प्रकार करना कल्पता है। भिक्षु उन्हें इस प्रकार पूछे—"हे भगवन्! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं कोई भी एक विगय को इतने प्रमाण में और इतनी बार खाना चाहता हूं।" इस प्रकार पूछने पर जो वे उसे अनुमति प्रदान करें तो इस प्रकार उस भिक्षु को कोई एक विगय खाना कल्पता है। जो वे उसे अनुमति प्रदान न करें तो उस भिक्षु को कोई भी एक विगय खाना नहीं कल्पता।

प्रश्न—हे भगवन्! आप इस प्रकार किसलिए कहते हैं?

उत्तर—आचार्य प्रत्यवाय को और अप्रत्यवाय को, अर्थात् हानि और लाभ को जानते होते हैं।"

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं भिक्खु य इच्छेज्जा अन्नयरिं तेइ छं आउट्टित्तए, त चेव सव्वं ॥२७७॥

अर्थ—वर्षावास में स्थित भिक्षु यदि किसी प्रकार की चिकित्सा करवाने की इच्छा करे तो इस सम्बन्ध में भी पूर्ववत् ही जानना चाहिए।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं भिक्खु य इच्छिज्जा अन्नयरं ओरालं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, तं चेव सव्वं ॥२७८॥

अर्थ—वर्षावास में रहा हुआ भिक्षु, कोई एक प्रकार का प्रशस्त, कल्याणकारी, उपद्रवों को दूर करने वाला, जीवन को धन्य करने वाला, मंगल करने वाला, सुशोभन, और बड़ा प्रभावशाली तपःकर्म स्वीकार कर विचरने की इच्छा

करे तो उस सम्बन्ध मे भी पूर्ववत् ही कहना चाहिए । अर्थात् गुरुजनो की आज्ञा प्राप्त करके ही तप करना चाहिए ।

मूल :—

वासवासं पज्जोसविए भिक्खु य इच्छिज्जा अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणाजूसणाभूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओव-गए कालं अणवकखमाणे विहरत्तए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए वा, उच्चारपासवणं वा परिट्ठावित्तए सज्झायं वा करित्तए धम्मजाग-रियं वा जागरित्तए नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता तं चेव ॥२७६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए भिक्षु को सबसे अन्तिम, मारणान्तिक सले-खना का आश्रय लेकर के उसके द्वारा शरीर को खपाने की वृत्ति से आहार पानी का त्याग करके, पादपोपगत (वृक्ष की तरह निश्चल) होकर मृत्यु की अभिलाषा नही रखते हुए विचरण करने को इच्छा करे और सलेखना की दृष्टि से गृहस्थ के कुल की ओर निकलने की और उसमे प्रवेश करने की इच्छा करे अथवा अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार की इच्छा करे अथवा मल-मूत्र के परिस्थापन की इच्छा करे अथवा स्वाध्याय करने की इच्छा करे अथवा धर्म जागरण के साथ जागने की इच्छा करे तो यह सभी प्रवृत्ति भी आचार्य आदि से बिना पूछे करनी नही कल्पती है । इन सभी प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे पूर्व प्रमाण ही कहना चाहिए ।

मूल :—

वासावासं पज्जोसविए भिक्खु य इच्छिज्जा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अन्नयरिं वा उवहिं आया-वित्तए वा पयावित्तए वा, नो से कप्पइ एगं वा अणेगं वा अपडि-ण्णवित्ता गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा

वा पविसित्तए वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहा-
रित्तए, वहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए,
काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए, अत्थि या इत्थ केइ अहासन्निहिए
एगे वा अणेगे वा कप्पइ से एवं वदित्तए--इमं ता अज्जो ! तुमं
मुहुत्तगं जाणाहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा
ठाणं वा ठाइत्तए, से य से पडिसुणिज्जा एवं से कप्पइ गाहावइ तं
चेव, से य से नो पडिसुणिज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं जाव
काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए ॥२८०॥

अर्थ--वर्षावास मे रहा हुआ भिक्षु वस्त्र को, पात्र को अथवा कम्बल को, अथवा पादप्राञ्छन को, अथवा अन्य किसी भी उपाधि को धूप मे तपाने की इच्छा करे, अथवा धूप मे बारम्बार तपाने की इच्छा करे तो एक व्यक्ति को या अनेक व्यक्तियो को सम्यक् प्रकार से बताए बिना गृहपति के कुल की ओर आहार के लिए, अथवा पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना नही कल्पता है। अथवा अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार करना नही कल्पता, बाहर विहार भूमि अथवा विचार भूमि की ओर जाना नही कल्पता, अथवा स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग करना, या ध्यान के लिए अन्य आसन आदि से खड़ा रहना नही कल्पता।

कोई एक अथवा अनेक साधु जो उपस्थित हो उनसे भिक्षु को इस प्रकार कहना चाहिए--हे आर्यो ! आप कुछ समय तक इधर ध्यान रखें जब तक कि मैं गृहपति के कुल की ओर जाकर आता हूं यावत् कायोत्सर्ग करके आता हूं अथवा ध्यान के लिए किसी आसन से खड़ा रहकर आता हूं। जो वे भिक्षु की बात को स्वीकार करें और ध्यान रखने की स्वीकृति दें तो भिक्षुक को गृहपति के कुल की ओर आहार के लिए [illegible] या पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना कल्पता है, यावत् कायोत्सर्ग करना, या ध्यान के लिए किसी आसन से खड़ा रहना कल्पता है। जो वे साधु या साध्वियाँ उस भिक्षु की बात-

करे तो उस सम्बन्ध मे भी पूर्ववत् ही कहना चाहिए। अर्थात् गुरुजनो की आज्ञा प्राप्त करके ही तप करना चाहिए।

मूल :—

वासवासं पज्जोसविए भिक्खु य इच्छिज्जा अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणाजूसणाभूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओव-गए कालं अणवकखमाणे विहरत्तए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए वा, उच्चारपासवणं वा परिट्ठावित्तए सज्झायं वा करित्तए धम्मजाग-रियं वा जागरित्तए नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता तं चेव ॥२७६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए भिक्षु को सबसे अन्तिम, मारणान्तिक सले-खना का आश्रय लेकर के उसके द्वारा शरीर को खपाने की वृत्ति से आहार पानी का त्याग करके, पादपोपगत (वृक्ष की तरह निश्चल) होकर मृत्यु की अभिलाषा नही रखते हुए विचरण करने को इच्छा करे और सलेखना की दृष्टि से गृहस्थ के कुल की ओर निकलने की और उसमे प्रवेश करने की इच्छा करे अथवा अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार की इच्छा करे अथवा मल-सूत्र के परिस्थापन की इच्छा करे अथवा स्वाध्याय करने की इच्छा करे अथवा धर्म जागरण के साथ जागने की इच्छा करे तो यह सभी प्रवृत्ति भी आचार्य आदि से बिना पूछे करनी नही कल्पती है। इन सभी प्रवृत्तियो के सम्बन्ध मे पूर्व प्रमाण ही कहना चाहिए।

मूल :—

वासावासं पज्जोसविए भिक्खु य इच्छिज्जा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अन्नयरिं वा उवहिं आया-वित्तए वा पयावित्तए वा, नो से कप्पइ एगं वा अणेगं वा अपडि-ण्णवित्ता गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा

वा पविसित्तए वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहा-रित्तए, वहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए. काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए, अत्थि या इत्थ केइ अहासन्निहिए एगे वा अणेगे वा कप्पइ से एवं वदित्तए--इमं ता अज्जो ! तुमं मुहुत्तगं जाणाहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए, से य से पडिसुणिज्जा एवं से कप्पइ गाहावइ तं चेव, से य से नो पडिसुणिज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए ॥२८०॥

अर्थ—वर्षावास में रहा हुआ भिक्षु वस्त्र को, पात्र को अथवा कम्बल को, अथवा पादप्रोञ्छन को, अथवा अन्य किसी भी उपाधि को धूप में तपाने की इच्छा करे, अथवा धूप में बारम्बार तपाने की इच्छा करे तो एक व्यक्ति को या अनेक व्यक्तियों को सम्यक् प्रकार से बताए बिना गृहपति के कुल की ओर आहार के लिए, अथवा पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता है। अथवा अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आहार करना नहीं कल्पता. बाहर विहार भूमि अथवा विचार भूमि की ओर जाना नहीं कल्पता, अथवा स्वाध्याय करना, कायोत्सर्ग करना, या ध्यान के लिए अन्य आसन आदि से खड़ा रहना नहीं कल्पता।

कोई एक अथवा अनेक साधु जो उपस्थित हो उनसे भिक्षु को इस प्रकार कहना चाहिए--हे आर्यो ! आप कुछ समय तक इधर ध्यान रखें जब तक कि मैं गृहपति के कुल की ओर जाकर आता हूँ यावत् कायोत्सर्ग करके आता हूँ अथवा ध्यान के लिए किसी आसन से खड़ा रहकर आता हूँ। जो वे भिक्षुक की बात को स्वीकार करें और ध्यान रखने की स्वीकृति दें तो भिक्षुक को गृहपति के कुल की ओर आहार के लिए, अथवा पानी के लिए निकलना और प्रवेश करना कल्पता है, यावत् कायोत्सर्ग करना, या ध्यान के लिए किसी आसन से खड़ा रहना कल्पता है। जो वे साधु या साध्वियाँ उस भिक्षु की बात

स्वीकार न करे, अथवा ध्यान रखने की अस्वीकृति करे तो उस भिक्षु को गृह-पति के कुल की ओर निकलना और प्रवेश करना नही कल्पता, यावत् कायोत्सर्ग करना या ध्यान के लिए किसी आसन से खड़ा रहना नही कल्पता।

विवेचन—प्रस्तुत विधान अप्काय के जीवो की विराधना न हो इत्यादि दृष्टि से किया गया है।[30] धूप मे वस्त्रो को सुखाकर यदि श्रमण आहारादि के लिए बाहर चला गया या साधना-आराधना मे तल्लीन हो गया, उस समय कदाचित् वर्षा आ जाय तव उसके वे वस्त्रादि आर्द्र हो जाएँगे। अतः प्रत्येक साधना करते समय अहिंसा और विवेक की दृष्टि रखना अतीव आवश्यक हैं।

मूल :—

वासवासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अणभिग्गहियसेज्जासणियं होत्तए, आयाणमेतं, अणभिग्गहियसेज्जासणियस्सअणुच्चाकुइयस्स अणट्ठाबंधिस्स अमियासणियस्स अणातावियस्स असमियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं अप्पडिलेहणासीलस्स अप्पमज्जणासीलस्स तहा तहा णं संजमे दुराराहए भवइ, अणायाणमेतं, अभिग्गहियसेज्जासणियस्स उच्चाकुवियस्स अट्ठाबंधिस्स मियासणियस्स आयाविस्स समियस्स अभिक्खणं अभिक्खणं पडिलेहणासीलस्स पमज्जणासीलस्स तहा तहा णं संजमे सुआराहए भवइ ॥२८१॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए श्रमणो और श्रमणियो को शय्या और आसन का अभिग्रह किए विना रहना नही कल्पता। इस प्रकार रहना आदान है, अर्थात् कर्मबन्ध या दोष का कारण है।

जो श्रमण और श्रमणियाँ आसन का अभिग्रह नही करते, शय्या या आसन को जमीन से ऊँचा नही रखते तथा स्थिर नही रखते, बिना कारण ही

उन्हे बांधते रहते है, प्रमाण रहित आसन रखते है, आसन आदि को धूप दिखाते नही है, पांच समितियो मे सावधानी नही रखते है, पुन पुन प्रतिलेखना नही करते हैं, प्रमार्जन करने मे सावधानी नही रखते है, उनको संयम की आराधना करना कठिन होता है।

यह आदान (दोष) नही है—जो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी शय्या और आसन का अभिग्रह करते हैं, उनको ऊँचे और स्थिर रखते हैं, उनको प्रयोजन के बिना पुनः पुन. बांधते नही हैं, प्रमाण पुरस्सर आसन रखते है, शय्या और आसन को धूप दिखाते हैं, पाच समिति में सावधान रहते हैं, बारम्बार प्रतिलेखना करते हैं, प्रमार्जना करने मे पूर्ण सावधानी रखते है, उनको संयम की आराधना करना सुगम है।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उच्चारपासवणभूमीओ पडिलेहित्तए न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासावासेसु. से किमाहु भंते !? वासावासेसु णं ओसन्नं पाणाय तणा य बीया य पणगा य हरियायणा य भवंति ॥२८७॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए श्रमण और श्रमणियों को शौच के लिए या लघुशंका के लिए तीन स्थानों की प्रतिलेखना करना कल्पता है। जिस प्रकार वर्षाऋतु में करने का होता है उस प्रकार हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में करने का नहीं होता।

प्रश्न—हे भगवन् ! यह किस दृष्टि से कहा है ?

उत्तर—वर्षाऋतु में प्राय. इन्द्रगोपादि प्राणी बीज पनक (नीलन-फूलन) और हरित के अंकुर प्राय बारम्बार होते रहते हैं।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए, तंजहा—उच्चारमत्तए पासवणमत्तए खेलमत्तए ॥२८३॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए श्रमणो और श्रमणियो को तीन पात्र ग्रहण करना कल्पता है। वे इस प्रकार (१) शौच के लिए एक पात्र (२) लघुशका के लिए द्वितीय पात्र, (३) कफ आदि थूकने के लिए तृतीय पात्र।

——● केश लुंचन

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्ते वि केसे तं रयणिं उवायणावित्तए, पक्खिया आरोवणा, मासिते खुरमुंडे अद्धमासिए कत्तरिमुंडे, छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेरकप्पे ॥२८४॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियो को सिर पर गाय के रोम जितने भी केश हो, तो इस प्रकार पर्युषणा के पश्चात् उस रात्रि को उल्लघन करना नही कल्पता। अर्थात् वर्षाऋतु के बीस रात्रि सहित एक मास की अन्तिम रात्रि को गाय के रोम जितने भी केश शिर पर रखना नही कल्पता। अर्थात् इससे पहले ही केश लुचन कर लेना चाहिए।

पक्ष पक्ष मे आरोपणा करनी चाहिए। उस्तरे से मुण्ड होने वाले को एक एक माह से मुण्ड होना चाहिए। कैंची से मुण्ड होने वाले को पन्द्रह दिन से मुण्ड होना चाहिए, लुचन से मुण्ड होने वाले को छह मास से मुंड होना चाहिए और स्थविरों को वार्षिक लोच करना चाहिए।[३१]

विवेचन—हाथ से नोचकर बालों को निकालना केशलोच है। सभी तीर्थंकर प्रव्रज्या ग्रहण करते समय अपने हाथ से पंचमुष्टि लोच करते है,[32] एतदर्थ यह परम्परा भगवान् ऋषभदेव से चली आ रही है। लोच उग्र तप है, कष्ट-सहिष्णुता की बडी-भारी कसौटी है। आचार्य हरिभद्र ने दशवैकालिक वृत्ति में लोच को काय-क्लेश माना है, वह संसार विरक्ति का मुख्य कारण है। काय-क्लेश के वीरासन, उकडूआसन, और लोच मुख्य भेद है। तथा लोच करने से (१) निर्लेपता, (२) पश्चात् कर्म वर्जन, (३) पुरः कर्म वर्जन, (४) कष्ट सहिष्णुता ये चार गुण प्राप्त होते हैं।[33]

हां तो, प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि संवत्सरी के पूर्व लोच अवश्य करना चाहिए। लोच करने के कुछ हेतु चूर्णि और व्याख्या साहित्य, मे इस प्रकार बताये गये है—(१) केश होने से अप्काय के जीवो की हिंसा होती है। (२) भीगने से जुएं उत्पन्न होती है। (३) खुजलाता हुआ श्रमण उनका हनन कर देता है। (४) खुजलाने से सिर मे नख-क्षत हो जाते हैं (५) यदि कोई मुनि क्षुर (उस्तरे) या कैंची से बालो को काटता है तो उसे आज्ञा भंग का दोष होता है। (६) ऐसा करने से संयम और आत्मा दोनो की विराधना होती है। (७) जुएँ मर जाती हैं। (८) नाई अपने उस्तरे और कैंची को सचित्त जल से साफ करता है, एतदर्थ पश्चात् कर्म दोष होता है। (९) जैन शासन की अवहेलना होती है।

इन हेतुओ को सलक्ष्य मे रखकर मुनि केशो को हाथ से नोच डाले, यही उसके लिए श्रेयस्कर है। प्रस्तुत सूत्र मे आपवादिक स्थिति का उल्लेख किया गया है, पर जैन धर्म के मर्म को समझने के लिए उत्सर्ग और अपवाद मार्ग को समझना आवश्यक है। आगमो के जितने ही विधान उत्सर्ग मार्ग के हैं और जितने ही विधान अपवाद मार्ग के हैं। अपवाद मार्ग के विधानों को जब कभी उत्सर्ग का रूप दे दिया जाता है, तब अर्थ का अनर्थ हो जाता है। श्रमण के लिए हाथ से केशलोच करना उत्सर्ग मार्ग है। उसके लिए अनिवार्य है कि वह लोच करे, पर रोगादि की विशेष परिस्थिति में अपवाद रूप से छुरा कैंची आदि अन्य साधन का भी उपयोग किया जा सकता है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वह उत्सर्ग मार्ग नहीं है।

कठोर वाणी : क्षमापना

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वदित्तए, जो णं निग्गंथो वा २ परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से णं अकप्पेणं अज्जो ! वयसी, ति वत्तव्वे सिया, जो णं निग्गंथो वा २ परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ से णं निज्जूहियव्वे सिया ॥२८५॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियो को पर्युषणा के पश्चात् अधिकरण वाली वाणी अर्थात् हिंसा असत्य आदि दोष से दूषित वाणी वोलना नही कल्पता है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी पर्युषणा के पश्चात् ऐसी अधिकरण वाली वाणी वोले उसे इस प्रकार कहना चाहिए-हे आर्य ! इस प्रकार की वाणी बोलने का आचार नही है। जो आप बोल रहे है वह अकल्पनीय है, आपका ऐसा आचार नही है। जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी पर्युषणा के पश्चात् अधिकरण वाली वाणी बोलता है उसे गच्छ से वाहर कर देना चाहिए।

विवेचन—अधिकरण वाली वाणी का प्रयोग साधु और साध्वी को यद्यपि पर्युषणा से पहले भी नही करना चाहिए मगर बाद मे तो करना ही नही चाहिए। पर्युषणा से पूर्व अधिकरण-वाणी का प्रयोग किया गया हो तो पर्युषणा के अवसर पर अध्यवसाय आदि की विशिष्ट निर्मलता होने से क्षमापना का प्रसग सहजतया प्राप्त हो सकता है, किंतु पर्युषणा के वाद मे वैसी निर्मलता का प्रसग दुर्लभ होता है। सम्भवत. इसी विचार से यह विधान किया गया है। श्रमण-श्रमणी का कर्तव्य है कि जिस दिन ऐसी वाणी का प्रयोग हो जाय उसी दिन उसके लिए क्षमापना करले।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं इहखलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अज्जेवं कक्खडे कडुए वुग्गहे समुप्पज्जिज्जा सेहे राइणियं खामिज्जा, राइणिए वि सेहं खामिज्जा, खमियव्वं खमावेयव्वं, उवसमियव्वं उवसमावेयव्वं, सम्मुइसंपुच्छणाबहुलेणं होयव्वं, जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं, से किमाहु भंते ! ? उवसमसारं खु सामण्णं ॥२८६॥

अर्थ—निश्चय ही यहाँ पर वर्षावास रहे हुए निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियो को आज ही पर्युषणा के दिन ही—कर्कश और कटुक क्लेश उत्पन्न हो तो शैक्ष—लघु श्रमण रात्निक गुरुजन श्रमणो को खमाले। और रात्निक (गुरुजन) भी शैक्ष को खमाले।

खमना, खमाना, उपशमन करना, उपशमन करवाना, कलह के समय श्रमण को सन्मति रखकर सम्यक् प्रकार से परस्पर पृच्छा करने की विशेषता रखनी चाहिए।

जो (कषायों का) उपशमन करता है, उसकी आराधना होती है और जो उपशमन नहीं करता है उसकी आराधना नहीं होती। अतः स्वयं को उपशम (शान्त) रखना चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा किसलिए कहा है ?

उत्तर—श्रमणत्व का सार उपशम ही है, अतः ऐसा कहा है।

विवेचन—श्रमण धर्म का सार उपशम है, क्षमा है। क्रोध, कलह आदि होना तो एक मानवीय दुर्बलता है, पर होने के बाद उसे मन में गांठ बांध के रखना या रखने देना आत्मिक दोष है। इसलिए यहां पर इसी बात पर बल दिया गया है कि पर्युषण के दिन, उससे पहले या बाद में भी [illegible]

दिन भी परस्पर में यदि कठोर, कटुक शब्दो से कलह हो गया हो, लड़ाई झगडा हो गया हो, तो लघु को तुरन्त ही बडो के पास जाकर विनयपूर्वक खमाना चाहिए और यदि बडो से कुछ भूल हुई हो तो उन्हे लघु को स्नेह पूर्वक खमाना चाहिए ।

मूल मे 'खमियव्वं' खामियव्व के द्वारा दो बातो का निर्देश किया है, दूसरो के कटुवचन आदि को स्वयं खमना-सहन करना चाहिए और अपने कटु वचन आदि को दूसरो को खमाना चाहिए । और स्वय को उपशान्त करना चाहिए तथा दूसरो को भी उपशान्त कराना चाहिए ।

यदि सार्धमिको मे परस्पर कलह शान्त नही होता है तो उससे उनके तप, नियम, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय आदि ज्ञान-दर्शन चारित्र की हानि होती है ससार की वृद्धि होती है और लोको मे उनकी अप्रीति—अश्रद्धा उत्पन्न होती है ।

इसीलिए भगवान ने कहा है—श्रमण धर्म का सार उपशम—शान्ति है । परस्पर क्षमा याचना करने से आत्मा मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है ।[34]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उवस्सया गिण्हित्तए, वेउव्विया पडिलेहा साइज्जिया पमज्जणा ॥२८७॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियो को तीन उपाश्रय ग्रहण करना कल्पता है । तीन उपाश्रयो मे से दो उपाश्रयो की प्रतिदिन सम्यक्तया प्रतिलेखना करनी चाहिए और जिस उपाश्रय का उपयोग किया जाता है उसकी प्रमार्जना करनी चाहिए ।

विवेचन—वर्षावास मे जीवो की उत्पति अधिक मात्रा मे होती है । संभव है जिस स्थान मे श्रमण अवस्थित है, उस स्थान पर जीवो की उत्पत्ति हो गई तो वह जिन दो अन्य स्थानो का अवग्रह लेकर रखता है उसमे जा

सकता है। यदि वर्षावास से पूर्व अवग्रह नहीं लेता है, तो वर्षावास में अन्य स्थान पर रात्रि-निवास नहीं कर सकता, अतः तीन मकानों का विधान किया है और साथ ही उनकी प्रतिलेखना करने का भी। प्रतिलेखन के समय का सूचन करते हुए चूर्णिकार ने कहा है, भिक्षा के समय बाहर जाने पर, पूर्वाह्न में या सायंकाल (वेतालिय) तक दिन में एक बार अवश्य प्रतिलेखना करनी चाहिए।[३०]

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अन्नयरिं दिसं वा अणुदिसं वा अवगिज्झिय भत्तपाणं गवेसित्तए. से किमाहु भंते ! ? ओसन्नं समणा वासासु तवसंपउत्ता भवंति, तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्ज वा पवडिज्ज वा तामेव दिसं वा अणुदिसं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति ॥२८८॥

अर्थ—वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को किसी एक निश्चित दिशा को या विदिशा को उद्देश्य कर भक्त पान के लिए गवेषणा करने के लिए जाना कल्पता है।

प्रश्न—हे भगवन्! ऐसा किसलिए कहा है?

उत्तर—श्रमण भगवान् वर्षाऋतु में अधिकतर तप में सम्यक् प्रकार से संलग्न होते हैं। तपस्वी तन से दुर्बल और थके हुए होते हैं। कदाचित् वे मार्ग में मूर्च्छा को प्राप्त हो जाए या गिर जाएँ तो यदि वे एक निश्चित दिशा या विदिशा में गये हों तो उस ओर श्रमण भगवान् तपस्वी की खोज कर सकते हैं।

मूल :—

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गं-

थीण वा जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतु पडियत्त ए, अंतरा वि से कप्पइ वत्थए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥२८६॥

अर्थ—वर्षावास मे रहे हुए निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनियो को ग्लान या रुग्ण (सेवा, औषधि आदि) के कारण यावत् चार या पांच योजन तक जाकर के पुन. लौटना कल्पता है। अथवा इतनी मर्यादा के अन्दर रहना भी कल्पता है, परन्तु जिस कार्य के लिए जिस दिन जहाँ पर गये हो, वहा का कार्य पूर्ण करने के पश्चात् वहाँ से शीघ्र ही निकल जाना चाहिए। वहाँ पर रात्रि व्यतीत नही करनी चाहिए, अर्थात् रात्रि तो अपने स्थान पर ही आकर बितानी चाहिए।

—— ● उपसंहार

मूल :—

इच्चेयं संवच्छरियं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासित्ता पालित्ता सोभित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहित्ता आणाए अणुपालित्ता अत्थेगइया समणा णिग्गंथा तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतंकरेंति, अत्थेगइया दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणमंतंकरेंति, अत्थेगइया तच्चेणं भवग्गहणेणं जाव अंत करेंति, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं नाइक्कमंति ॥२९०॥

अर्थ—इस प्रकार के इस स्थविरकल्प को सूत्र के कथनानुसार कल्प-आचार की मर्यादा के अनुसार, धर्म मार्ग के कथनानुसार, यथार्थ रूप से शरीर के द्वारा स्पर्श कर—आचरण करके, सम्यक् प्रकार से पालन कर, शुद्ध कर अथवा

सुशोभन प्रकार से दिपाकर के, किनारे तक लेजाकर के, जीवन के अन्त तक पालन करके, दूसरो को समझाकर के, अच्छी तरह से आराधना करके और भगवान् की आज्ञा के अनुसार पालन करके, कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थ उसी भव मे सिद्ध, बुद्ध मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते है। और सर्व दुःखो का अन्त करते है। कितने ही श्रमण द्वितीय भव मे सिद्ध होते है, कोई-कोई श्रमण तीसरे भव में सिद्ध होते है यावत् सर्वदुःखो का अन्त करते है। वे सात आठ भव से अधिक तो ससार मे परिभ्रमण करते ही नही है। अर्थात् अधिक से अधिक सात-आठ भवो मे अवश्य सिद्ध होते है यावत् सर्व दुःखो का अन्त करते है।

मूल :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीण मज्झगए चेव एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ पज्जोसवणाकप्पो नाम ऽज्झयणं सअट्ठं सहेउयं सकारणं ससुत्तं सअत्थं सउभयं सवागरणं भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ, त्ति बेमि ॥२६१॥

पज्जोसवणा कप्पो सम्मत्तो।
अट्ठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—उस काल उस समय राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में बहुत श्रमणों के, बहुत श्रमणियों के, बहुत श्रावकों के, बहुत श्राविकाओं के बहुत देवों के और बहुत देवियों के मध्य में विराजमान श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार भाषण करते हैं, इस प्रकार बताते हैं, इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं और पर्युषणाकल्प को अर्थात् पर्युषणकल्प के आचार प्रधान धर्मप्रधान आचार नामक अध्ययन को अर्थ के साथ हेतु के साथ, कारण के

साथ, सूत्र के साथ, अर्थ के साथ, सूत्र और अर्थ दोनो के साथ स्पष्टीकरण पूर्वक वारम्वार दिखाते हैं, समझाते हैं, ऐसा मै कहता हूँ।[३६]

पज्जोसवणा कप्प समाप्त हुआ ।

आठवाँ अध्ययन समाप्त हुआ ।

॥ श्री कल्प सूत्र समाप्त ॥

श्री कल्प सूत्र

परिशिष्ट

(श्री कल्पसूत्र-विवेचन के अन्तर्गत सूचित विशेष टिप्पण एवं ग्रन्थ-सन्दर्भ)

९ आचेलुक्को धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
मज्झिमगाण जिणाण होइ सचेलो अचेलो य ॥ —कल्पसमर्थन गाथा ३, पृ० १

१० "आचेलक्क" त्ति आचेलक्य (अचेलकत्व) वस्त्र रहितत्त्व, तत्र प्रथमान्तिमजिनतीर्थे सर्वेषा साधूना श्वेतमानोपेतजीर्णप्रायतुच्छ (अल्पमूल्य) वस्त्रधारित्वेनाचेलकत्व । —कल्पार्थ वोधिनी पृ० १

११. अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सतरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥
एगकज्जपवन्नाण, विसेसे किन्नु कारण ।
लिंगे दुविहे मेहावी, कह विप्पच्चओ न ते ? —उत्तरा० अ० २३, गा० २९।३०

१२ उत्तराध्ययन अध्य० २३, गा० ३१-३२-३३

१३ सव्वे वि एग दूसेण णिग्गया जिणवरा चउवीस—समवायाग

१३ A (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
(ख) कल्पसूत्र
(ग) तहवि गहिएगवत्था, सवत्थतित्थोवए मणत्थति ।
अभिनिक्खमति सव्वे, तम्मि चुएऽचेलया होति ॥
—विशेपावश्यक भाष्य गा० २५८३ पृ० ३०७ द्वि० भा०
(घ) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र देखें

१४ णो चेविमेण वत्थेण पिहिस्सामि तसि हेमते से पारए आवकहाए, एय खु अणुधम्मिय तस्स सवच्छर साहिय मास ज न रिक्कासि वत्थगं भगव अचेलए तओ चाइ त वोसिज्ज वत्थमणगारे ।
—आचाराग १।९।१

१५ (क) भगवती सूत्र शतक ८, उद्दे० ८, पृ० १६१
(ख) उत्तराध्ययन अध्ययन—२
(ग) समवायाङ्ग २२,
(घ) तत्त्वार्थ सूत्र अ० ९ सूत्र० ९

१६ (क) उत्तराध्ययन अ० २, गा० १२-१३
(ख) प्रवचन सारोद्धार वृत्ति पत्र १९३

१७ (क) उद्दिस्स कज्जइ त उद्देसिय, साधुनिमित्त आरभो त्ति वुत्त भवति ।
—दशवैकालिक, जिनदास चूर्णि पृ० १११
(ख) उद्देसित ज उद्दिस्स कज्जति —दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्णि ।
(ग) 'उद्देसिय' ति उद्देशन साध्वाद्याश्रित्यदानारम्भस्येत्युद्देश तत्र भवमौद्देशिक ।
—दशवैकालिक, हारिभद्रीया टीका प० ११६

१८ दशवैकालिक अ० ५।१।५१—५२

१९ (क) सघादुद्देसेण ओघाईहि, समणाइ अहिगच्च ।
कडमिह सव्वेसि चिय न कप्पई पुरिमचरिमाण ॥

अवरण्हो मज्भण्हो, पुव्वरत्तोवरत्त वा, अड्ढरत्तो वा ताहे चेव पडिक्कमन्ति। नत्थि तो न पडिक्कमन्ति, जेण ते अमढा पण्णावन्ता परिमाणगा न य पमादवहुला, तेण तेसि एव भवति।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास गणी

६१ कप्पइ निग्गथाण वा, निग्गथीण वा, हेमतगिम्हासु चारए। —वृहत्कल्प भाष्य भाग १।३६

६२ भारडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते। —उत्तराध्ययन अ० ४, गा० ६

६३ सवच्छर इति कालपरिमाण। त पुण णेह वारसमासिग सवज्भति किन्तु वरिसा रत्त चातुर्मासित। स एव जेट्ठोग्गहो। —दशवैकालिक, अगस्त्यसिह चूर्णि

६४ वृहत्कल्पभाष्य भाग १।३६

६५ वृहत् कल्पभाष्य भाग १।६।७।८

६६ सवच्छर चावि पर पमाण, वीय च वास न तहि वसेज्जा॥
सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जइ आणवेइ॥

—दशवैकालिक द्वि० चूलिका गा० ११

६७ वितिय च वाम-वितिय ततो अणतर च सद्देण ततियमवि जतो भणित तदुगुण, दुगणेण अपरिहरित्ता ण वट्टति। ततिय च परिहरिऊण चउत्थहोज्जा। —दशवैकालिक, अगस्त्यसिह चूर्णि

६८ (क) पुरिमतिमतित्थगराण, मासकप्पो ठिओ मुणेयव्वो।
मज्भिमगाण जिणाण, अट्ठियओ एस विन्नेओ॥ —कल्पसमर्थनम् गा० १६ प० २

(ख) "मासकल्प" श्री आदिनाथमहावीरसाधुभि शेपकाले अष्टमासेपु मासकल्प क्रियते। द्वाविंशति तीर्थ कर साधुभिस्तु न मासकल्प क्रियते —कल्पसूत्र, कल्पलता टीका,

(ग) कल्पसूत्र कल्पार्थ वोधिनी टीका, प० २।३

(घ) कल्पसूत्र सुवोधिका टीका, व्याख्यान १

(ङ) कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका टीका प० ३।१

६९ समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे वइक्कते सत्तरिएहिराइ दिएहि सेसेहि वासावस पज्जोसवेइ। —समवायाङ्ग ७० वा समवाय, पृ० ५०१

(ख) तेण कालेण तेण समएण समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे विइक्कते वासावास पज्जोसवेइ। —कल्पसूत्र सू० २२४ पृ० ६६ पुण्यविजयजी

७० कल्पसूत्र, कल्पार्थ वोधिनी, टीका प० ३।१

७१ कल्पसूत्र नियुक्ति, १—२

७२ कल्पसूत्र नियुक्ति चूर्णि १६

७३ कप्पइ पचहि ठाणेहि णिग्गथाण णिग्गथीण पढमपाउससि गामाणुगाम दूइज्जत्तए त णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरियउवज्भायाण वा से विसु भेज्जा आयरिय उवज्भायाणं वा वहिया वेयावच्च करणाए। —स्थानाङ्ग सूत्र, ५ वा ठाणा

(ख) मुद्धाभिसित्तरण्णो " पिंड —रायपिंड। —दशवैकालिक, जिनदास चूर्णि पृ० ११२-११३

(ग) मुदियाइगुणो राया अट्ठविहो तस्स होइ पिंडुत्ति,
पुरिमेअराण एसो वाघायाईहिं पडिकुट्ठो। —कल्पसमर्थनम्—गा० ६, पृ० १

(घ) "राजपिण्ड" राजा = छत्रधर, तस्य पिण्ड।
—कल्पसूत्र, कल्पलता, ४, पृ० २, समयसुन्दर

(ङ) "रायपिंड" त्ति राजपिण्ड, तत्र राजा-छत्रधर सेनापति-पुरोहित-श्रेष्ठ्य-मात्य-सार्थवाहरूपै पञ्चभिर्लक्षणै युतोमूर्द्धाभिषिक्तस्तस्य अशनादिचतुर्विध आहारो वस्त्र पात्र कबल रजोहरण चेत्यष्टविध पिण्ड " —कल्पार्थबोधिनी ४, पृ० २

३७ निशीथ भाष्य गा० २४९७ चूर्णि

३८ (क) अतोसो रायपिण्डो गेहिपडिसेहणत्थ एषणा रक्खणत्थ च न कप्पइ।
—दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ०११२-११३

(ख) एषणा रक्खणाए एतेसि अणातिण्णो। —दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्णि

३९ निशीथ ९ | १ | २

४०. (क) निर्गच्छदागच्छत्सामन्तादिभि स्वाध्यायस्य अपशकुनबुद्ध्या शरीरादेश्च व्याघातसम्भवात्खाद्य-लोभलघुत्व-निन्दादिबहुदोष सम्भवाच्च' —कल्पार्थबोधिनी, कल्प ४ प० २

(ख) —कल्पसमर्थन गा० १० प० १

४१ निशीथभाष्य गा० २५०३—२५१०

४२ दशवैकालिक ३ | २

४३ श्री आदिनाथ महावीर साधूना न कल्पते। अजितादि २२ तीर्थंकर साधूना तु कल्पते।
—कल्पसूत्र कल्पलता टीका

(ख) श्री आदीश्वर-महावीरयो. साधूनामेव न कल्पते। द्वाविंशतितीर्थंकर साधूना तु कल्पते।
—कल्पद्रुम कलिका पृ० २

४४ (क) असणाईण चउक्क, वत्थ तह पत्त पायपुछणए।
निवपिंडम्मि न कप्पइ, पुरिमंतिमजिणजईण तु॥ —कल्पसमर्थनम् गा० ११ प० २

(ख) कल्पार्थ प्रबोधिनी टीका मे भी प्रस्तुत गाथा उद्धृत है।

४५ (क) किइकम्मपि य दुविह, अब्भुट्ठाण तहेव वदणय।
समणेहि समणीहि य, जहारिह होइ कायव्व॥ —कल्पसमर्थनम—गा० १२ प० २

(ख) "कियकम्मे" कृतकर्म लघुना साधुना वृद्धस्य साधोश्चरणयोर्वन्दनकानिदातव्यानि।
—कल्पद्रुम कलिका टीका प० २

(ग) निशीथ चूर्णि द्वि० भा० पृ० १८७

४६ सव्वाहि सजईहि किइकम्म सजयाण कायव्व।
पुरिसुत्तमुत्ति धम्मो सव्वजिणाणपि तित्थेसु॥ —कल्पसर्थनम् गा० १३

४७ हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् —तत्त्वार्थ सूत्र ७।१

४८ अकरण निवृत्तिरुपरमो विरतिरित्यनर्थान्तरम्। —तत्त्वार्थ सूत्र ७।१।भाष्य

अवरण्हो मज्झण्हो, पुव्वरत्तोवरत्त वा, अड्ढरत्तो वा ताहे चेव पडिक्कमन्ति। नत्थि तो न पडिक्कमन्ति, जेण ते अमढा पण्णावन्ता परिमाणगा न य पमादवहुला, तेण तेसिं एव भवति।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास गणी

६१ कप्पइ निग्गथाण वा, निग्गथीणं वा, हेमतगिम्हासु चारए। —वृहत्कल्प भाष्य भाग १।३६

६२ भारडपक्खी व चरेऽप्पमत्ते। —उत्तराध्ययन अ० ४, गा० ६

६३ सवच्छर इति कालपरिमाण। त पुण णेह वारसमासिग सवज्झति किन्तु वरिसा रत्त चातुर्मासित। स एव जेट्ठोग्गहो। —दशवैकालिक, अगस्त्यसिह चूर्णि

६४ वृहत्कल्पभाष्य भाग १।३६

६५ वृहत् कल्पभाष्य भाग १।६।७।८

६६ सवच्छर चावि पर पमाण, वीय च वास न तहि वसेज्जा॥
सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जइ आणवेइ॥

—दशवैकालिक द्वि० चूलिका गा० ११

६७ वितिय च वास-वितिय ततो अणतर च सद्देण ततियमवि जतो भणित तदुगुणं, दुगणेण अपरिहरित्ता ण वट्टति। ततिय च परिहरिऊण चउत्यहोज्जा। —दशवैकालिक, अगस्त्यसिह चूर्णि

६८ (क) पुरिमतिमतित्यगराण, मासकप्पो ठिओ मुणेयव्वो।
मज्झिमगाण जिणाण, अट्ठियओ एस विन्नेओ॥ —कल्पसमर्थनम् गा० १६ प० २

(ख) "मासकल्प" श्री आदिनाथमहावीरसाधुभि शेषकाले अष्टमासेषु मासकल्प क्रियते। द्वाविंशति तीर्थंकर साधुभिस्तु न मासकल्प क्रियते —कल्पसूत्र, कल्पलता टीका,

(ग) कल्पसूत्र कल्पार्थ वोधिनी टीका, प० २।३

(घ) कल्पसूत्र सुवोधिका टीका, व्याख्यान १

(ड) कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका टीका प० ३।१

६९. समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे वइक्कते सत्तरिएहिराइ दिएहिं सेसेहि वासावस पज्जोसवेइ। —समवायाङ्ग ७० वा समवाय, पृ० ५०१

(ख) तेण कालेण तेणं समएण समणे भगव महावीरे वासाण सवीसइराए मासे विइक्कते वासावास पज्जोसवेइ। —कल्पसूत्र सू० २२४ पृ० ६६ पुण्यविजयजी

७० कल्पसूत्र, कल्पार्थ वोधिनी, टीका प० ३।१

७१ कल्पसूत्र निर्युक्ति, १—२

७२ कल्पसूत्र निर्युक्ति चूर्णि १६

७३ कप्पइ पचहिं ठाणेहिं णिग्गथाण णिग्गथीणं पढमपाउससि गामाणुग्गाम दूइज्जत्तए त णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरियउवज्झायाण वा से विसुभेज्जा आयरिय उवज्झायाणं वा वहिया वेयावच्च करणाए। —स्थानाङ्ग सूत्र, ५ वां ठाणा

८० वाहिमवणेइ भावे, कुणइ अभावे तयं तु पढमति ।
विइअमवणेइ न कुणइ, तइय तु रसायण होइ ।
एव एसो कप्पो दोसा-भावेऽवि कज्जमाणो अ ।
सुन्दरभावाओ खलु, चारित्तरसायण होइ ॥
एव कप्पविभागो, तइओसहनायओ मुणेयव्वो ।
भावत्यजुओ इत्य उ, सव्वत्यवि कारण एय ॥ —कल्पसमर्थनम् गा० ३१-३२-३३, पृ० ३

८१ पुरिमचरिमाणकप्पो, मगलं वद्धमाणतित्थम्मि ।
इह परिकहिया जिणगणहराइथेरावलिचरित्त ॥
—पर्यु पणाकल्पार्थ वोधिनी टीका मे उद्धृत प०११

८२ आचारात्तपसाकल्प, कल्प कल्पद्रुरीप्सिते ।
कल्पो रसायन सम्यक्, कल्पस्तत्त्वार्थदीपक ॥ —कल्पसमर्थनम्, कल्प महिमा श्लोक १ पृ० ३

८३ एगग्गचित्ता जिणसासणम्मि, पभावणा पूअपरायणा जे ।
तिसत्तवार निसुणति कप्प, भवन्नव ते लहुसा तरति ॥ —कल्पसमर्थनम् कल्पमहिमा गा० ४ पृ० ३

८४ उत्तराध्ययन अध्य० २९ पृ० ९

८५. उत्तराध्ययन अ० २९ प्रश्न १४

९ श्राम्यन्तीति श्रमणा , तपस्यन्तीत्यर्थं —दशवैकालिक हारिभद्रीया, टीका प० ६८

१०, ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशस. श्रिय ।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णा भग इतीङ्गना ॥

११ (क) भगशब्देन ऐश्वर्यरूपयश श्री धर्मप्रयत्ना अभिधीयते, ते यस्यास्ति स भगवान्-भगो।
(ख) जमादी भण्णइ, सो जस्स अत्थि सो भगव भण्णइ —दशवैकालिक, जिनदास चूर्णि पृ० १३१

१२ भग्गरागो भग्गदोसो भग्गमोहो अनासवो ।
भग्गास्सपापको धम्मो भगवा तेन वुच्चति । —विसुद्धिमग्गो ७।५६

१३ महतो यशोगुणेहिं वीरोत्ति महावीरो । —दशवैकालिक, जिनदास, चूर्णि पृ० १३२

१४ महावीरेण—"शूर वीर विक्रान्ता" विति कषायादिशत्रुजयान्महाविक्रान्तो महावीर ।
—दशवैकालिक, हारिभद्रीया टीका प० १३७

१५ सहसमइए समणे भीमं भयभेरव उराल अचलय परीसहसहत्तिकट्टु देवेहिं से नामं कय समणे भगव महावीरे । —आचाराग २।३।४०० प० ३८९

१६ हत्थस्स उत्तरातो हत्थुत्तरातो, गणण वा पडुच्च हत्थो उत्तरो जासि तातो हत्थुत्तरातो-उत्तरफग्गुणीतो,
—कल्पसूत्र चूर्णि सू० १ पृ० १०२

१७ (क) हस्त उत्तरो यासा ता । —आचार्य पृथ्वीचन्द्र, कल्पसूत्र टिप्पण सू० २ पृ० १
(ख) हस्त उत्तरो अग्रवर्ती यासा वा ता हस्तोत्तरा-उत्तरा-फाल्गुन्य
—कल्पार्थ वोधिनी टीका प० १३।१

१८ लघुक्षेत्रसमास, गाथा ९०

१९. काललोक प्रकाश सर्ग २९ श्लोक ४४

२० काल लोक प्रकाश, सर्ग २९ श्लोक ४५

२१. लघुक्षेत्रसमास, गाथा ९०

२२ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक ९८।१

२३. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक पत्र ९८—२
(ख) भगवती शतक १, उद्दे० ८, सू० ६४ भाग १ पत्र ९२—९३
(ग) वनान्येकजातीय वृक्षाणि । —कल्पसूत्र, सन्देहविषौषधि प० ७५

२४ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

२५ काललोक प्रकाश, पृष्ठ १४९

२६ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार
(ख) काललोक प्रकाश, पृ० १७९

२७ काललोक प्रकाश पृ० १८५

२८ काललोक प्रकाश पृ० ५९२

२९ काललोक प्रकाश पृ० ६०९

३० जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सटीक, पत्र ११८-१७१ तक

४९. (क) आवश्यक नि० गा० ३५५
(ख) त्रिषष्टि० १।६।१९

५० (क) आव० नियु॔० गा० ३५६
(ख) त्रिषष्टि० १।६।२०

५१ (क) आव० नियु॔० गा० ३५७
(ख) त्रिषष्टि० १।६।२१

५२ (क) आवश्यक नियु॔क्ति गा० ३५८
(ख) त्रिषष्टि० १।६।२२

५३ (क) आवश्यक नियु॔० गा० ३५९
(ख) त्रिषष्टि० १।६।२३

५४. आवश्यक नि० गा० ३६०

५५. आवश्यक नि० गा० ३८८

५६ (क) आवश्यक नि० ३६०
(ख) त्रिषष्टि० १।६।२७

५७. (क) आवश्यक भाष्य गा० ४४ प० २४३
(ख) आवश्यक नियु॔क्ति गा० ३६७
(ग) महावीर चरिय गुण० गा० १२४ प्र० २

५८. (क) आवश्यक नियु॔० गा० ४२२, से ४२४
(ख) महावीर चरिय गा० १२६ से १२८ तक प्र० २
(ग) त्रिषष्टि १।६ श्लोक ३७२-३७८

५९. (क) आवश्यक नियु॔क्ति गा० ४२८
(ख) महावीर चरिय गा० १२९ प० २४८७२

६० आवश्यक नियु॔क्ति गा० ४३१

६१ आवश्यक नियु॔क्ति गा० ४३२

६२ (क) आवश्यक मलय० वृत्ति प० २४७।१ ।
(ख) महावीर चरिय पर्व ६ श्लोक२९—३२
(ग) त्रिषष्टि० पर्व १, सर्ग ६, श्लोक २९से३२

६३ (क) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति प० २४७।१
(ख) त्रिषष्टि० १।६।४८
(ग आवश्यक नियु॔क्ति ४३७
(घ) महावीर चरिय गुणचन्द्र प० २२

६४ (क) आवश्यक नियु॔० गा० ४३८प० २४७
(ख) उत्तर पुराण ७४।६६, पृ० ४४७

६५. (क) आवश्यक नियु॔क्ति गा० ४४०
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २२९

६६ (क) आवश्यक मलय० वृ० २४८।२
(ख) त्रिषष्टि० १०।१।८३

६७ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३१
(ख) आवश्यक मलय० प० २४९
(ग) उत्तर पुराण ७४।१०६ से ११० पृ०४५०
(घ) समवायाङ्ग सूत्र २६० सुत्तागमे ३८१

६८. (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३१
(ख) आवश्यक मलय० वृत्ति २४९

६९. (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३१—२३२
(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति० २४९
(ग) उत्तर पुराण ११६ पृ० ४५१

७०. (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३२
(ख) आवश्यक मलय० प० २४९
(ग) त्रिषष्टि० १०।१।१०६
(घ) महावीर चरियं ३।११।४०
(ङ) उत्तर पुराण ७४।११७
(च) समवायाङ्ग सूत्र २६२ सुत्तागमे ३८१

७१. (क) आवश्यक मलय० वृत्ति २४९
(ख) आवश्यक चूर्णि २३२
(ग) त्रिषष्टि० १०।१।१०७

७२ (क) समवायाङ्ग सूत्र २५७ सुत्तागमे पृ० ३८०
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३२
(ग) आवश्यक मलय० वृत्ति प० २५०।१

७३ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३३
(ख) त्रिषष्टि० १०।१।१२२-१२३

७४ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३३
(ख) त्रिषष्टि० १०।१।१३९—१४०

७५ (क) आवश्यक मलय० वृ० प० २५०।२
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३४

७६ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३४
(ख) आवश्यक नियु॔क्ति मलय० वृ० २५०
(ग) उत्तर पुराण ७४।१६१से१६४ पृ० ४५४

(ग) समवायाङ्ग सू० १३३ प० ९८ | १
(घ) महावीर चरियं, ३।३।७११।

८८. देवोऽभूदिति द्वितीय —समवायाङ्ग, अभयदेव वृत्ति १३६ प० ९९

८९ प्रान्ते प्राप्य सहस्रारमभून्सूर्यप्रभोऽमर । —उत्तरपुराण ७४।२४१।४५९

९०. पुत्ता वणंजयस्सा पुट्टिल परियाउ कोटि सव्वट्ठे —आवश्यक निर्युक्ति गा० ४४९

९१. सत्तरसागरोवमट्ठितीतो आवश्यक चूर्णि० २३५
(ख) आवश्यक मलय० २५१

९२. आवश्यक निर्युक्ति गा० ४४९
(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० २३५
(ग) त्रिपष्टि १०।१।२१७
(घ) आवश्यक मलय० २५१
(क) ततो नन्दनाभिवानो राजसूनु छत्राग्रनगर्यां जज्ञे इति
—समवायाङ्ग अभयदेववृत्ति १३६ स० प० ९९
(ख) आवश्यक मलय० वृ० २५२।१

९३ (क) पणवीसाउ सयसहस्मा — आवश्यक निर्युक्ति गा० ४४९
(ख) आवश्यक मल० वृ० प० २५२

९४ आवश्यक चूर्णि० २३५

९५ (क) आवश्यक निर्युक्ति गा० ४५०
(ख) आवश्यक चूर्णि प० २३५
(ग) आवश्यक मलय वृ० प० २५२
(घ) समवायाङ्ग अभय० १३६ स० प० ९९

९६. (क) आवश्यक चूर्णि २३५
(ख) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति प० २५२

९७. (क) आवश्यक निर्युक्ति गा० ४५०
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३५
(ग) समवायाङ्ग अभयदेव वृ० १३६ स० प० ९९

९८. ततो ब्राह्मणकुण्डग्रामे ऋपभदत्तब्राह्मणस्य भार्याया देवानन्दाभिवानाया कुक्षावुत्पन्न इति पञ्चम
—समवायाङ्ग अ० १३६ प० १२
(अ) माहणकुण्डगामे कोडालसगुत्तमाहणो अत्थि।
तस्य घरे उववन्नो, देवाणदाइ कुच्छिसि ॥ —आवश्क निर्युक्ति गा० ४५७

९९. "चइस्सामि" त्ति यतस्तीर्थंकर सुरा पर्यन्तसमये अविकतर कान्तिमन्तो भवन्ति विशिष्टतीर्थंकरत्व-लाभात् शेपाणा तु पण्मासावशेपे काले कान्त्यादिहानिर्भवति, उक्त —
माल्यम्लानि कल्पवृक्षप्रकम्प । श्री ह्रीनाशो वाससा चोपराग ।
दैन्य तन्द्रा कामरागोङ्गभङ्गो,। दृष्टि भ्रान्तिर्वेपथुश्चारतिश्च ॥१॥ इति
—कल्पसूत्र टिप्पण, आचार्य पृथ्वीचन्द्र सू० ३ पृ० १

११२ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० १५२, (ख) आव० नि० गा० १८६

११३. कल्पसूत्र आचार्य पृथ्वीचन्द्र टिप्पण सू० १७

११४. (क) स्थानाङ्ग, अभयदेव वृत्ति पृ० ४६३
(ख) प्रवचन सारोद्धार, सटीक उत्तर भाग

११५ उवसग्गगब्भहरण इत्थीतित्थ अभाविया परिसा।
कण्हस्सअवरकंका, उत्तरण चन्दसूराण ॥
हरिवंसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पाओ य अट्ठसया सिद्धा।
अस्संजएसु पूया, दस वि अणतेण कालेणं ॥ —स्थानाङ्ग सू० ७७७

११६ प्रवचन सारोद्धार, सटीक उत्तरभाग

११७ उपदेश माला—दो घट्टी टीका पत्र २८३

११८ भगवती, शतक १५, पृ० २६४

११६ (क) समवायाङ्ग ३४ वा समवाय
(ख) योगशास्त्र, हेमचन्द्राचार्य पृ० १३०
(ग) अभिधान चिन्तामणि ११५६—६३

१२० बासीतीहिं राइ दिएहिं वइक्कतेहिं तेसीतिमस्स राइ दियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिणमाहणकुण्ड-पुरपुरसन्निवेसाओ . देवाणदाए माहणीए जालधरायणस्स गुत्ताए कुच्छिसि गब्भ साहरइ।
—आचाराङ्ग द्वि० श्रु० प० ३८८-१-२

१२१ समवायाङ्ग ८३ - पत्र ८३ । २

१२२. स्थानाङ्ग सू० ४११ स्था० ५ प० ३०७

१२३ आवश्यक निर्युक्ति पृ० ८०—८३

१२४. गोयमा! देवाणदा माहणी मम अम्मगा। —भगवती, शतक ५, उद्दे० ३३ पृ० २५६

१२५ गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणी योगनिद्रया।
अहो विस्र सितो गर्भ इति पौरा विचक्रुशु ॥ १५ ॥
—श्रीमद्भागवत, स्कंध १० पृ० १२२—१२३

१२६ महात्माबुद्ध का भी यह मन्तव्य है कि स्त्री अर्हत् व चक्रवर्ती नही बनती।
—अगुत्तर निकाय १।१५।१२—१३

१२७ दिगम्बर परम्परा मे मल्लि को पुरुष मानते हैं, देखिए—महापुराण

१२८. "सत्तरियसयठाणा" नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ मे उनका नाम 'श्रमण' दिया है। दिगम्बर "वैश्रमण" मानते हैं। ज्ञातृ धर्म कथा मे 'महाबल' नाम आया है।

१२६. इमेहियाण विसाहिय-कारणेहिं आसेविय बहुलीकएहिं तित्थियर-णाम-गोय-कम्म निव्वत्तेसु, त जहा—
अरहंतसिद्धपवयण गुरुथेर बहुस्सुए तवस्सीसु।
वच्छल्लया य एसिं अभिक्खनाणोवयोगे य ॥

१५६ 'मनोन्मान' तत्र मान—जलद्रोणमानता, जलभृतकुण्डिकाया हि मातव्य पुरुष प्रवेश्यते, तत्प्रवेशे च यज्जल ततो नि सरति तद् यदि द्रोणमान भवति तदाऽसौ मानोपेत उच्यते। उन्मान तु अर्द्ध-भारमानता, मातव्यपुरुषो हि तुलारोपितो यद्यर्द्धभारमानो भवति तदा उन्मानोपेतो ऽसावुच्यते। प्रमाण पुन स्वाङ्गुलेनाष्टोत्तरशताङ्गुलोच्छ्रयता। —कल्पसूत्र, पृथ्वीचन्द टिप्पण सू० ५३

१५७. सत वाराओ पक्क ज तं सतपाग, सतेण (वा) काहावणाण।

कल्पसूत्र चूर्णि सू० ६१

१५८ 'पम्हलसुकुमालाए' पक्ष्मवत्यासुकुमालया चेत्यर्थ 'गवकासाइय' गवप्रधानया कपायरक्तशाटिकयेत्यर्थ —कल्पसूत्र टिप्पण सू० ६२

१५९ कल्पसूत्र पृथ्वीचन्द्र टिप्पण सू० ६२

१६०. 'कयकोउय' कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि दु स्वप्नादि विघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद् यैस्ते तथा।" पादेन वा छुप्ता—चक्षुर्दोषपरिहारार्थं पादच्छुप्ता कृतकौतुकमङ्गलाश्च ते पादच्छुप्ताश्चेति विग्रह। तत्र कौतुकानि मषीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थकदध्यक्षत दूर्वाङ्कुरादीनि। —कल्प सूत्र, पृथ्वी० टि० सू० ६६

१६१ अनुभूत श्रुतोदृष्ट, प्रकृतेश्च विकारज।
स्वभावत समुद्भूतश्चिन्तासन्ततिसम्भव॥
देवताद्युपदेशोत्यो, धर्म-कर्म-प्रभावज।
पापोद्रेकसमुत्थश्च, स्वप्न स्यान्नवधा नृणाम्॥
प्रकारैरादिमै षड्भिरशुभश्च शुभोऽपि वा।
दृष्टो निरर्थक स्वप्न, सत्यस्तु त्रिभिरुत्तरै॥ —कल्पसूत्र सुबोधिका टीका मे उद्धृत

१६२, रात्रेश्चतुर्षु यामेषु, दृष्ट स्वप्न फलप्रद।
मासैर्द्वादशभि षड्भिस्त्रिभिरेकेन च क्रमात्॥
निशाऽन्त्यघटिकायुग्मे, दशाहात्फलति ध्रुवम्।
दृष्ट सूर्योदये स्वप्न, सद्य फलति निश्चितम्॥ —कल्पसूत्र सुबोधिका टीका मे उद्धृत

१६३ मालास्वप्नो ऽह्नि दृष्टश्च, तथा ऽऽधिव्याधिसम्भव।
मल-मूत्रादिपीडोत्थ स्वप्न सर्व निरर्थक॥
धर्मरत समधातुर्य स्थिरचित्तो जितेन्द्रिय सदय।
प्रायस्तस्य प्रार्थितमर्थं स्वप्न प्रसाधयति॥
स्वप्नमनिष्ट दृष्ट्वा सुप्यात्पुनरपि निशामवाप्यापि।
नाम कथ्य कथमपि केषाचित् फलति न स यस्मात्॥
न श्राव्य कुस्वप्नो गुर्वादिस्तदितर पुन श्राव्य।
योग्यश्राव्याभावे गारपि कर्णे प्रविश्य वदेत्॥
इष्ट दृष्ट्वा स्वप्न न सुप्यते नाप्यते फलं तस्य।
नेया निशाऽपि सुधिया जिनराजस्तवनसस्तवत॥
पूर्वमनिष्ट दृष्ट्वा स्वप्न य प्रेक्षते शुभ पश्चात्।
स तु फलदस्तस्य भवेद् द्रष्टव्यं तद्वदिष्टेऽपि॥

१३८ वीरओ वि कालगतो मोहम्मे कप्पे तिपलिओवमट्ठिती किब्बिमिओ देवो जातो।

—वसुदेव हिण्डी पृ० ३५७

१३९ कुणति य मे दिव्वप्पभावेण वगुमम उच्चत। —वसुदेव हिण्डी पृ० ३५७

१४० (क) भगवती शतक ३ उद्दे-३ पृ० १९७

(ख) महावीर चरिय, गुणचन्द्र, ७ वा प्रस्ताव पृ० २३४ मे २४०

१४१ रिसहो रिमहस्स सुया, भरहेण विवज्जिया नव नवई।

अट्ठेव भरहस्स सुया, मिद्धिगया एक समयम्मि॥

१४२ उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झन्ते जुगव दुवे।

चत्तारि जहन्नाए, मज्झे अट्ठुत्तरसय॥

—उत्तराध्ययन अ० ३६ गा० ५३

१४३ (क) अट्ठावयम्मि मेले चउदसभत्तेण मो महरिसीण।

दसहि महस्सेहि मम निव्वाणमणुत्तर पत्तो॥ —आवश्यक निर्युक्ति गा० ४३४

(ख) आद्य सहस्रै र्दशभि। —लोक प्रकाश मर्ग ३२, श्लोक ३८

१४४ वत्तीसा अडयाला मट्ठी वावत्तरी य वोद्धव्वा।

चुलमीइ छन्नउइ उ दुरहियमट्ठुत्तर सय च॥ —पन्नवणा पद १, जीवप्रज्ञापना प्रकरण

१४५ स्थानाङ्ग सूत्र पृ० ५२४

१४६ (क) रिसह अट्ठहियसयसिद्ध, मियलजिणम्मि हरिवसो।

नेमिजिणे अपरकका-गमण कण्हस्स सपन्न॥१॥

इत्थितित्थ मल्ली पूआ-अमजयाणनवमजिणे।

अवमेमा अच्छेरा वीर जिणदस्मतित्थम्मि॥२॥

मिरि रिसह सियलेसु एक्केक मल्लि नमि नाहेण।

वीरजिणंदे पचओ, एग मव्वेसु पाएण॥३॥

—कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका, टीका मे उद्धृत पृ० ३३

१४७ हरिणैगमेषी—शब्द एक अति प्राचीन शब्द है। ऋग्वेद के खिलसूत्र मे एव महाभारत के आदिपर्व (४५०।३७) मे 'नैगमेष' शब्द आता है। जो एक विशेष देव का वाचक है। बौद्ध माहित्य मे (बुद्धिष्ट हाइब्रिड सस्कृत ग्रामर ए ड डिक्शनरी खड २ पृ० ३१२) मे भी यह शब्द आया है और उसे एक यक्ष बताया है। जैन साहित्य मे आचार्यो ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—"हरिणैगमेसिति"—हरेरिन्द्रस्य नैगमेषी आदेश प्रतिच्छक इति'—(कल्पसूत्र, सन्देह विषौषधि टीका, पत्र ३१) इन्द्र का आदेश—आज्ञापालक हरिणैगमेषी है। यही व्युत्पत्ति राजेन्द्रकोषकार ने मान्य की है—**हरेरिन्द्रस्य नैगममादेशमिच्छतीति हरिनैगमैषी** (अभि० राजेन्द्र ७।११८७) इसी दृष्टि को लेकर कल्पसूत्र के बगला अनुवादक श्री बसत कुमार चट्टोपाध्याय ने 'हरि—नैमेगषी' शब्द मे विग्रह किया है। तात्पर्य यह है कि हरिनैगमेषी देव, देवराज इन्द्र का एक विशेष कार्य दक्षदूत 'हरिणगमेसी सक्कदूए' (भग० ५।४) आज्ञापालक है। जो उसकी पदातिसेना का नायक भी है।

१५६ 'मनोन्मान' तत्र मान—जलद्रोणमानता, जलभृतकुण्डिकाया हि मातव्य पुरुष प्रवेश्यते, तत्प्रवेशे च यज्जल ततो नि सरति तद् यदि द्रोणमान भवति तदाऽसौ मानोपेत उच्यते। उन्मान तु अर्द्ध-भारमानता, मातव्यपुरुषो हि तुलारोपितो यद्यर्द्धभारमानो भवति तदा उन्मानोपेतो ऽसावुच्यते। प्रमाण पुन स्वाङ्गुलेनाष्टोत्तरशताङ्गुलोच्छ्रयता। —कल्पसूत्र, पृथ्वीचन्द टिप्पण सू० ५३

१५७ मत वाराओ पक्क ज त सतपाग, सतेण (वा) काहावणाण।

कल्पसूत्र चूर्णि सू० ६१

१५८ 'पम्हलसुकुमालाए' पक्ष्मवत्यासुकुमालया चेत्यर्थ 'गधकासाइय' गधप्रधानया कषायरक्तशाटिकयेत्यर्थ —कल्पसूत्र टिप्पण सू० ६२

१५९ कल्पसूत्र पृथ्वीचन्द्र टिप्पण सू० ६२

१६०. 'कयकोउय' कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि दु स्वप्नादि विघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद् यैस्ते तथा।" पादेन वा छुप्ता—चक्षुर्दोषपरिहारार्थ पादच्छुप्ता कृतकौतुकमङ्गलाश्च ते पादच्छुप्ताश्चेति विग्रह। तत्र कौतुकानि मषीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थकदध्यक्षत दूर्वाङ्कुरादीनि। —कल्प सूत्र, पृथ्वी० टि० सू० ६६

१६१ अनुभूत श्रुतोदृष्ट, प्रकृतेश्च विकारज।
स्वभावत समुद्भूतश्चिन्तामन्ततिसम्भव॥
देवताद्युपदेशोत्थो, धर्म-कर्म-प्रभावज।
पापोद्रेकसमुत्थश्च, स्वप्न स्यान्नवधा नृणाम्॥
प्रकारैरादिमै षड्भिरशुभश्च शुभोऽपि वा।
दृष्टो निरर्थक स्वप्न, सत्यस्तु त्रिभिरुत्तरै॥ —कल्पसूत्र सुबोधिका टीका मे उद्धृत

१६२, रात्रेश्चतुर्षु यामेषु, दृष्ट स्वप्न फलप्रद।
मासैर्द्वादशभि षड्भिस्त्रिभिरेकेन च क्रमात्॥
निशाऽन्त्यघटिकायुग्मे, दशाहत्फलति ध्रुवम्।
दृष्ट सूर्योदये स्वप्न, मद्य फलति निश्चितम्॥ —कल्पसूत्र सुबोधिका टीका मे उद्धृत

१६३ मालास्वप्नो ऽह्नि दृष्टश्च, तथाऽऽधिव्याधिसम्भव।
मल-मूत्रादिपीडोत्थ स्वप्न सर्व निरर्थक॥
धर्मरत समधातुर्य स्थिरचित्तो जितेन्द्रिय सदय।
प्रायस्तस्य प्रार्थितमर्थं स्वप्न प्रसाधयति॥
स्वप्नमनिष्टं दृष्ट्वा सुप्यात्पुनरपि निशामवाप्यापि।
नाम कथ्य कथमपि केषाचित् फलति न स यस्मात्॥
न श्राव्य कुस्वप्नो गुर्वादिस्तदितर पुन श्राव्य।
योग्यश्राव्याभावे गोरपि कर्णे प्रविश्य वदेत्॥
इष्टं दृष्ट्वा स्वप्न न सुप्यते नाप्यते फलं तस्य।
नेया निशाऽपि सुधिया जिनराजस्तवनसस्तवत॥
पूर्वमनिष्ट दृष्ट्वा स्वप्न य प्रेक्षते शुभ पश्चात्।
स तु फलदस्तस्य भवेद् द्रष्टव्य तद्वदिष्टेऽपि॥

अत्युष्ण हरति वल, ह्यतिशीत मारुत प्रकोपयति ।
अतिलवणमचाक्षुष्य—मतिस्नेह दुर्जर भवति ॥

१६८ दु चउत्थ नवम वारस-तेरस पन्नरस सेम गब्भट्ठिई ।
मासा अड-नव तदुवरि उसहाउ कमेणिमे दिवसा
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
चउ पणवोस छद्दिण, अडवीस छच्च छ च्चिगुणवीम ।
८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
सग छव्वीम छच्छ य, वीसिगवीस छ छव्वीमं ।
१६ १७ १८ १९ २०
छप्पण अडसत्तट्ठय
२१ २२ २३ २४
अडडट्ठय छ सत्त होति गब्भदिणा ।' —सप्ततिस्थानक आचार्य सोमतिलक
तिहि उच्चेहि नरिंदो, पचहि तह होइ अद्धचक्की य ।
छहि होइ चक्कवट्टी सत्तहि तित्थकरो होइ ॥

१६९ तिहिठाणेहि लोगुज्जोएमिया, त जहा अरहतेहि जायमाणेहि, अरहंतेमु पव्वयमाणेसु, अरहताण णाणुप्पायमहिमासु । —स्थानाग ३

१७० वीस भवनपति निकाय के इन्द्र, वत्तीस वाणव्यन्तर निकाय के ईन्द्र, दो ज्योतिष्क निकाय के ईन्द्र और दस वैमानिक निकाय के इन्द्र—इस प्रकार ६४ इन्द्र होते हैं ।

१७१ (क) पदागुष्ठेन यो मेरुमनायासेन कपयन् ।
लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात्
—रविषेणाचार्य कृत, पद्मचरित्र पर्व २, श्लो० ७६ पृ० १५

(ख) वामम (य) पायगुट्ठय कोडीए तो सलीलमह गुरुणा ।
तह चालिओ गिरीमो जाओ जह तिहुयणक्खोहो ॥
चउप्पन्नमहापुरिसचरिय, आचार्य शीलाङ्क
प्र० प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी ५, पृ० २७१

(ग) आकम्पिओ य जेण, मेरू अङ्गुट्ठेएण लीलाए ।
तेणेह महावीरो, नाम सि कय सुरिन्देहि ।
—पउमचरिय, विमलसूरि, २।२६ प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी ५ पृ० ६०

१७२ णगरगुत्तिय—नगर का रक्षक । —अर्धमागधी कोष भा० २।९०६

१७३ (क) आवश्यक सूत्र मलयगिरिवृत्ति प० २५८
(ख) उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लो० २९०
(ग) आवश्यक चूर्णि, भाग १, पत्र २४६

१७४ (क) त्रिषष्टि० १०।२।१०४-५-६
(ख) आवश्यक भाष्य, गा० ७२।७३। प० २५८
(ग) उत्तर पुराण, पर्व ७४, श्लो० २८८

(ग) कौटिलीय अर्थशास्त्र २।३७—पृ० १०३

(घ) मनुस्मृति ८।१३५ भट्टमेधातिथि का भाष्य पृ० ६१८

१९० आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पत्र २६१

१९१ (क) आवश्यक भाष्य गा० १०६ प० २६५

(ख) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, प० २६५

(ग) मलिना कुटिला मुग्धैः पूज्यास्त्याज्या मुमुक्षुभिः ।
केशाः क्लेशसमास्तेन यूना मूलात्समुद्धृताः ॥ उत्तर पुराण, पर्व ७४ श्लोक ३०७

१९२ काऊण नमोक्कारं, सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे ।
सव्वं मेऽकरणिज्जं, पावंति चरित्तमारूढो ॥ —आवश्यक भाष्य गा० १०६

१९३ (क) तिहिं नाणेहिं समग्गा, तित्थयरा जाव होंति गिहवासो ।
पडिवन्नमि चरित्ते, चउनाणी जाव छउमत्था ॥ —आवश्यक भाष्य गा० ११०

(ख) उत्तरपुराण, प० ७४ श्लोक ३१२ पृ० ४६८

१९४ बारस वासाइं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उपसग्गा समुप्पज्जंति तं जहा-दिव्वा व माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा—ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि अहिया-सइस्सामि । —आचारांग श्रुत २ अ० २३ प० ३९१।२

१९५ एक्को भगवं वीरो पासो मल्लि य तिहिं तिहिं सएहिं ।
भगवंपि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं णिक्खंतो ॥
उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं य खत्तियाणं य ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो सेसा उ सहस्स परिवारा ॥ —समवायांग, पृ० १०६१ (घासी०)

१९६. संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगं भगवं ।
अचेलए तओ चाइ, तं वोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥ —आचारांग १।९।१।४

१९७ (क) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति ।

(ख) महावीर चरियं, गुणचन्द्र प्र० ४ पृ० १४२।१

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२

१९८ (क) महावीर चरियं गुण० प्र० ५ गा० ४ पृ० १४३

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।३

१९९ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति प० २६६

(ख) महावीर चरियं गुणचन्द्र प्र० ५ प० १४३।१

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।६

२०० (क) महावीर चरियं गुण० १४३।२।१४४।१

(ख) त्रिषष्टि १०।३।८

(ग) महावीर चरियं प० १४४।१

२०१ (क) ताहे सामिणा तस्स देवदूसस्स अद्धं दिन्नं । —आव० मल० प० २६६

(ख) महावीर चरिय १५५
(ग) त्रिषष्टि० १०।३।७८

२३५ (क) आवश्यक मल० प० २७०
(ख) महावीर चरिय प० १५६

२३६ (क) आवश्यक मलय० २७२
(ख) महावीर चरिय प० १५८।१
(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२१५-२१८

२३७ (क) आवश्यक मल० प० २७३
(ख) महावीर चरिय, गुण० प० १५९

२३८ (क) आवश्यक मल० प० २७३
(ख) महावीर चरिय, गुण० प० १५९
(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२५१

२३९ (क) आवश्यक मलय० टीका० २७३।२
(ख) त्रिपष्टि० १०।३।२५५—२६१

२४० (क) आवश्यक मल० वृ० प० २७३
(ख) महावीर चरिय, गुण० १७६

२४१ (क) आवश्यक मलय वृ० २७३
(ख) त्रिपष्टि० १०।३।२६६
(ग) उत्तरवाचालतर वणसडे चउकोसिओ सप्पो।
न डही चिंता सरण जोइस कोवाऽहिजाओऽहं ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ४६

२४२ (क) आवश्यक मलय० पृ० प० २७३
(ख) महावीर चरिय पृ० १७६
(ग) त्रिपष्टि० १०।३।२७२ से २७५

२४३ (क) उत्तरवाचाला नागसेण खीरेण भोयण दिन्न।
सेयवियाए पदेसी पंचरहो णेज्जरायाणो ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ४६

(ख) त्रिपष्टि० १०।३।२८० से २८६
(ग) आवश्यक मलय० वृति० प० २७४।१
(घ) महावीर चरिय गुणचन्द्र प० १७७।१—२

२४४ (क) आवश्यक मलय० प० २७४।१—२
(ख) महावीर चरिय प० १७८।१
(ग) वीरवरस्स भगवतो नावारूढस्स कासि उवसग्गं।
मिच्छादिट्ठिपरद्धो, कंवलसवलेहि तित्थ च ॥

—निशीथ भाष्य, गा० ४२१८ पृ० ३६६ तृतीय भाग प्र० सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

२१२ आवश्यक मलय० वृत्ति प० २६८
(ख) महावीर चरिय, गुण० १४६

२१३ (क) ताहे सो सामिस्स सागएण उवट्ठितो।
सामिणा पुव्वपयोगेण वाहा पसारिया। —आवश्यक मलय० प० २६८
(ख) महावीर चरिय प्र० ५, प० १४६
(ग) त्रिषष्टि० १०।३।५०

२१४ (क) त्रिषष्टि० १३।३।५१—५२
(ख) महावीर चरिय, प० १४६

२१५. (क) आवश्यक मलय० पृ० २६८
(ख) महावीर चरिय १४७
(ग) त्रिषष्टि० १०।३।६६-७३

२१६ महावीर चरिय—१४७

२१७ (क) महावीर चरिय प्र० ५ पृ० १४८
(ख) आवश्यक निर्युक्ति मलय० पृ० २६८

२१८ (क) इमेण तेण पच अभिग्गहा गहिया, तजहा (१) अचियत्तोग्गहे न वसियव्व, (२) निच्चं वोसट्ठे काये, (३) मोण च, (४) पाणीसु भोत्तव्व, (५) गिहत्था न वदियव्वो, न अव्भुट्ठेयव्वो, एए पच अभिग्गहा गहिया। —आवश्यक मलयगिरि वृत्तिपृ० २६८
(ख) महावीर चरियं प्र० ५-१४८
(ग) कल्प सुबोधिका टीका पृ० २८८
(घ) त्रिषष्टि० १०।३।७५ से ७७

२१९ णो सेवई य परवत्थ पर-पाए वि से न भुञ्जित्था। —आचाराग अ० ९ उ० १

२२० (क) प्रथमपारणक गृहस्थपात्रे वभूव, तत पाणिपात्रभोजिना मया भवितव्यमित्यभिग्रहो गृहीत।
—आवश्यक मलय० वृ०
(ख) भगवत्रा पढमपारणगे परपत्तमि भुत्त
—महावीर चरिय, गुणचन्द्र

२२१ अयोत्पन्नेऽपि केवलज्ञाने कस्मान्न भिक्षार्थं भगवानटति ?
उच्यते, तस्यामवस्थाया भिक्षाटने प्रवचनलाघवमम्भवात्।
उक्त च—"देविंदचक्कवट्टी मडलिया ईसरा तलवरा य।
अभिगच्छंति जिणिद गोयरचरियं न सो अडइ॥ —आवश्यक निर्युक्ति मल० पृ० २६८

२२२ उत्पन्न केवलज्ञानस्य तु लोहार्य आनीतवान्, तथा चोक्त—
"धन्नो सो लोहज्जो, खतिखमो पवरलोहसरिवन्नो।
जस्स जिणो पत्ताओ, इच्छई पाणीहिं भोत्तुं जे।"

—आवश्यक निर्युक्ति गा० पृ० ३६८

२५९ आवश्यक मलय प० २८०।१

२६० आवश्यक मलयगिरि वृत्ति २८१।१

२६१ (क) आवश्यक मलय० वृ० प० २८१।१
(ख) त्रिपष्टि० १०।३।५५३

२६२ (क) आवश्यक मलय० वृ० प० २८१।१
(ख) महावीर चरिय प्र० ६। प० १९५

२६३ (क) अह दुच्चर-लाढ-मचारी —आचाराग अ० ९, उद्दे० ३, गा० २ प्रथम श्रु०
(ख) दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं, —आचाराग अ० ९ उद्दे० ३ गा० ६

२६४. वज्ज भूमि च सुब्भ-भूमि च, —आचाराग अ० ९। उ० ३, गा० ६

२६५ आचाराग प्रथम श्रुतस्कध, अ० ९, उद्दे ३ गा० २ से ७

२६६ आचाराग प्रथम श्रुतस्कध अध्य ९ उ० ३, गा० ७ से १०

२६७ आचाराग, प्र० श्रु० ९।३।११-१२

२६८. आचाराग, प्र० श्रु० ९।३।१३

२६९ (क) आवश्यक निर्युक्ति० गा० ४८२
(ख) आवश्यक मलय० वृत्ति० प० २८१
(ग) महावीर चरिय प्र० ६, प० १९५

२७० (क) आवश्यक मलय० २८१
(ख) महावीर चरिय० प्र० ६ प० १९६

२७१ (क) आवश्यक मलय० प० २८२
(ख) आवश्यक निर्युक्ति० गा० ४८४
(ग) त्रिपष्टि० १०।३।५८३-५८७

२७२ त्रिषष्टि० १०।३।५९५

२७३ आवश्य निर्युक्ति० गा० ४८५

२७४ आवश्यक मलय० वृ० प० २८३।१

२७५ (क) आवश्यक निर्युक्ति मलय० वृत्ति० प० २८३
(ख) महावीर चरिय प्र० ६ प० २१२-१३
(ग) त्रिपष्टि० १०।३।६१४-६२४

२७६ (क) आवश्यक मलय० वृत्ति० २८३
(ख) आवश्यक निर्युक्ति० गा० ४८७

२७७ आवश्यक मलय० वृत्ति० २८४

२७८ आवश्यक मलय० वृत्ति० प० २८४।२८५

२७९. (क) अविक्काइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए।
झाण उड्ढ अहे तिरियं च पेहमाणे समाहिमपडिन्ने। —आचाराग १।९।४।१०८
(ख) आवश्यक मलय० प० २८५

हत्थी हत्थिणियाओ पिसाभए घोररुव वग्घो य।
थेरो थेरी सूओ आगच्छइ पक्कणो अ तहा॥
खरवाय कलकलिया, कालचक्क तहेव य।
पाभाइयमुवसग्गे, वीसइमे होति अणुलोमे॥
मामाणियदेविढ्ढि देवो दाएइ सो विमाणगओ।
भणई वरेह महरिसि। निप्फत्तो सग्गमोक्खाण॥ —आवश्यक नियुंक्ति गा० ५०२ से ५०५

२९५ आवश्यक नियुंक्ति० गा० ५०६ से ५०७

२९६. (क) आवश्यक नियुंक्ति० गा० ५०८
(ख) आवश्यक मलय० प० २९१

२९७ (क) आवश्यक नियुंक्ति गा० ५०९
(ख) आवश्यक मलय० वृ० प० २९२

२९८ आव० नि० गा० ५१०, आव० म० वृ० २९२

२९९ (क) महावीर चरिय, प्र० ७ प० २३०
(ख) आवश्यक मल० प० २९२

३०० (क) आ० नि० गा० ५११—(ख) महा० चरि० प्र० ७ प० २३०

३०१ आव० नि० गा० ५१२

३०२ महावीर चरियं प्र० ७ पृ० २३१। (ख) त्रिषष्टि० १०।४।३०२

३०३ (क) आवश्यक नियुंक्ति० गा० ५११
(ख) त्रिषष्टि० १०।४।३१९-३२०

३०४ आवश्यक नियुंक्ति गा० ५

३०५ जिनेश्वर सूरि कृत कथाकोष

३०६ (क) त्रिषष्टि १०।४।३४६ से ३५८
(ख) महावीर चरिय० प्र० ७ गा० १४ प० २३३

३०७ (क) आवश्यक नियुंक्ति० गा० ५१७
(ख) त्रिषष्टि० १०।४।३७२

३०८ (क) भगवती सूत्र शतक ३, उद्दे० २
(ख) देखिए कल्पसूत्र आश्चर्य वर्णन

३०९. (क) आवश्यक नियुंक्ति० गा० ५१७-५१८
(ख) आवश्यक मलय० वृ० प० २९४

३१० (क) सामी य इम एतारूव अभिग्गह अभिगेण्हति चउव्विह दव्वतो, ४ दव्वतो कु मासे सुप्पकोणेण, खित्तओ एलुग विक्खभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु भावतो जदि रायधूया दासत्तण

३१८. (क) उग्ग च तवोकम्म, विसेसओ वद्धमाणस्स। —आवश्यक निर्युक्ति० गा० २४०
(ख) सूत्र कृताग १।६
३१९ तिन्नि सए दिवसाण अउणापन्ने य पारणाकालो —आवश्यक निर्युक्ति० गा० ५३४
३२०. आवश्यक निर्युक्ति गा० ५२६ से ५३५
३२१. छट्ठेण एगया भुञ्जे अदुवा अट्ठमेण दसमेण।
दुवालसमेण एगया भु जे पेहमाणे समाहिंअपडिन्ने

—आचाराग १।६।४।७

३२१ विजयावत्तस्स चेतियस्स। विजयावत्त णामेण, वियावत्तं वा' व्यावृत्तं चेतियत्तणातो जिण्णुज्जाण-मित्यर्थं। —कल्प सूत्र चूर्णि सू० १२०
३२२. (क) वारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो य।
वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ५३६

(ख) उत्तर पुराण, गुणचन्द्र ७४।३४८ से ३५२
३२३ आवश्यक मलयगिरि वृत्ति प्र० भा० प० ३००।१
३२४ मगहा गोव्वर गामे जाया तिण्णेव गोयमसगोत्ता।
कोल्लागसन्निवेसे जा ओ विअत्तो सुहम्मो य॥ ६४३॥
मोरीयसन्निवेसे दो भायरो मंडमोरिया जाया।
अयलो य कोसलाए महिलाए अकपिओ जाओ॥६४४॥
तुंगीयसन्निवेसे मेयज्जो वच्छभूमिए जाओ।
भगवपियप्पभासो, रायगिहे गणहरो जाओ॥६४५॥

—विशेषावश्यक भाष्य

३२५ (क) आवश्यक वृत्ति
(ख) वाजसनेयी सहिता ४०—५ मे भी यही वाक्य है।
(ग) तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तदन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यत

—ईशावास्योनिपद् मे यह पाठ प्राप्त होता है

(च) पुरुप एवेद सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम्
उतामृतत्वस्येशनो यदन्नेनाति रोहति

—वाजसनेयी सहिता ३२—२
—श्वेताश्वतरोपनिपद २४६
—पुरुपसूक्त, इन सभी मे यह पाठ प्राप्त हैं।

३२६ (क) आवश्यक टीका से उद्धृत
(ख) सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येप ब्रह्मचर्येण नित्यम्, अन्त शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो य पश्यन्ति यतव क्षीणदोपा।

—मुण्डकोपनिपद् १४०

३३८ भगवती सूत्र शतक ६ उद्दे० ३२, सू० ३७८

३३९. सूत्रकृताग श्रुत २, अ० ७ सू० ८१२

३४० तए णं मे कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवते वदई, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता चाउज्जायामो धम्माओ पचमहव्वइय सपडिक्कमण धम्म उवसपज्जित्ताण विहरइ।

—भगवती शत० १ उ० ९ सू० ७६

३४१ भगवती शतक० २, उद्दे० १०

A (क) औपपातिक टीका सू० ४, १८२—१९५

(ख) भगवती श० १४, उद्दे० ८

B भगवती सूत्र श० २, उ० ५

C भगवती सूत्र शत० ११ उ० ६

D भगवती सूत्र शत० उ० १०

E भगवती सूत्र शतक २ उ० ५

F भगवती शतक १२, उ० २

G भगवती शतक १८ उद्दे० ३

H भगवती सूत्र शतक १ उद्दे० ६

३४२ सजय काम्पिल्यपुर का राजा था। इसका विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन १८ नेमिचन्द्रीय टीका मे आया है।

A 'सेय' राजा आमलकल्पा नगरी का स्वामी था। इसका विस्तृत वर्णन रायपसेणी (बेचरदास जी द्वारा सपादित) सूत्र १० मे आया है।

B शिव हस्तिनापुर के राजा थे। भगवती सूत्र शतक ११ उ० ९ मे विस्तार से इसका वर्णन मिलता है।

C शख मथुरा नगरी का राजा था। विस्तृत वर्णन देखें उत्तराध्याय १२ नेमिचन्द्रीय टीका

३४३ समणेण भगवया महावीरेण अट्ठ रायणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारिअ पव्वाविया, त०-वीरगय वीरजसे सजयए, णिज्जए य। रायरिसी सेयसिवे उदायणे तह सखे—कासिवद्धणे

—स्थानाङ्ग, स्थान ८ सू० ७८८

३४४ (क) ज्ञातृ धर्म कथा अ० १

(ख) दशाश्रुत स्कध १

(ग) आवश्यक चूर्णि, त्रिपिष्टि शलाका० आदि मे श्रेणिक के जीवन का विस्तृत वर्णन आता है।

३४५ अन्तकृत् दशा

३४६ त्रिपष्टि० १०।१०।१३६-१४८ पत्र १३४-१३५

३४७ त्रिपष्टि० १०।१०।८४

३४८ सूत्र कृताङ्ग टीका श्रु० २ अ० ६ प० १३६।१

३४९. उत्तराध्ययन अ० १२

३५० अन्तकृत् दशा १

३५१ (क) सो चेडको सावओ— —आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्द्ध प० १६४

(ख) चेटकस्तु श्रावको —त्रिपष्टि० १०।६।१८८, प० ७७—२

जो तोलइ तइलोक्क वलेण का तस्म इह गणणा ॥
कहऽणंतसत्तिजुत्ता जिणा हवतित्ति वयणमवि अम्हे ।
पत्तिज्जिस्सामो पहु । जइ न तुम ठासि खणमेक्क ॥

—महावीर चरिय, प्रस्ताव ८ गा० से ४ पृ० ३३८ । १

३६३ अह जयगुरुणा भणिय सुरिंद ! तीया इति विह कालेऽवि ।
नो भूय न भविस्सइ न हवइ नूण इम कज्ज ॥
ज आउकम्मविगमेऽवि कोवि अच्छेज्ज समयमेत्तमवि ।
अच्चंताण तविमिट्ठसत्तिपब्भार जुत्तोऽवि ॥
अवि जोडिज्जइ सयखडियपि वयरागरुब्भव रयण ।
परिसडियमाउदलिय न उ तीरइ कहवि सघडिउ ॥
ता जइ आच्च तमभूयमत्यमम्हे न साहिमो एय ।
किं एत्तिएण नाणं तसत्तिणी ? मुयसु ता मोह ॥

—महावीर चरिय, प्र० ८ गा० ५ से ८ पृ० ३३८

३६४ (क) कु भूमि तस्या तिष्ठनीति कुन्यू, अणु सरीरग धरेति अणु धरी ।

—कल्पचूर्णि, सू० १३१

(ख) त रयणि 'कु थू' अणुद्धरी नाम' ति कु —भूमिस्तस्या तिष्ठतीति कुन्यू अणु सरीर धरेइ त्ति अणुधरी ।

—कल्प सूत्र टिप्पण सू० १३१

३६५ (क) कल्पसूत्र चूर्णि सू० १४५ पृ० १०४
(ख) कल्पसूत्र टिप्पण सू० १४५

दश गणधरो का उल्लेख आव० नि० गा० २६०, आव० मल० टीका (पत्र २०६) आदि ग्रन्थो मे भी मिलता है। किंतु कल्पसूत्र सुबोधिका टीका (पत्र ३८१) मे इसका स्पष्टीकरण किया है—"द्वौ अल्पायुष्कत्वादिकारणान्नोक्तौ इति टिप्पनके व्याख्यातम् ।"

इसी प्रकार गणधर के नाम के सम्बन्ध मे भी कुछ भेद है। कल्पसूत्र मे 'शुभ' तथा पासनाह चरिय मे (पत्र २०२) शुभदत्त नाम आया है। समवायाग मे सिर्फ 'दिन्न' शब्द ही है जबकि त्रिषष्टि० मे 'आर्यदत्त।'

—सम्पादक

८ (क) कल्पसूत्र की सकलना के समय से यह कालगणना की गई है।

(ख) भगवान पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता प्राय निर्विवाद है। इस सम्बन्ध मे विशेष ऐतिहासिक गवेषणा के लिए देखें—

१ चार तीर्थ कर—प० सुखलाल जी सिंघवी

२ जैन साहित्य का इतिहास भाग १—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री

३ इण्डियन एन्टीक्वेरी जि० ९ पृ० १६०—डा० याकोवी के लेख

९ (क) समवायाग, सूत्र २४।१

(ख) समवायाग सूत्र १५७—११

(ग) अर्हत् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता वैदिक ग्रन्थो एव ऐतिहासिक विद्वानो की गवेषणा से भी सिद्ध होती है।

अथर्व वेद के माण्डूक्य, प्रश्न और मुण्डक उपनिषदो मे अरिष्टनेमि का नाम आया है। महाभारत के अनुशासन पर्व अध्याय १४९ मे विष्णुसहस्रनाम मे दो स्थानो पर 'शूर शौरिजिनेश्वर' पद आया है—

"अशोकस्तारणस्तार. शूरः शौरि जिनेश्वरः।५०।"
"कालिनेमि महावीर शूर शौरि जिनेश्वर ।" ८२।

छांदोग्य उपनिषद् मे देवकी पुत्र कृष्ण के उल्लेख से व्यक्त होता है कि उन्होने घोर अगरिस से अहिसा और नीति का उपदेश ग्रहण किया। श्री धर्मानन्द कौशाम्बी (भा० स० अ० पृ० ३८) के अनुसार ये घोर अगरिस नेमिनाथ ही थे, क्योकि नेमिनाथ श्रीकृष्ण के धर्म-गुरु थे यह प्राचीन जैन ग्रन्थो से प्रमाणित होता है (विशेष विवरण के लिए देखें—जैन साहित्य का इतिहास पूर्व पाठिका, प० कैलाशचन्द्र जैन पृ० १७०)

१० सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
समुद्दविजए नाम, रायलक्खण सजुए।
तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो।
भगव अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे।

— उत्तराध्ययन २२।३—४

११ अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयगओ। —उत्तराध्ययन २२।३६

१२ एवं सच्चनेमी, नवर समुद्दविजये पिया सिवा माता। एव दढनेमी वि सव्वे एगगमा।

—अन्तकृतदशा, वर्ग ४, अ० ९-१०

३१. भीया य सा तहि दट्ठु एगते सजय तय ।
वाहाहि काउ सगोप्फ, वेवमाणी निसीयई ॥ —उत्तरा० २२।३५

३२ जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण, नलकूवरो ।
तहा वि ते न इच्छामि, जइ सि सक्ख पुरदरो ।
पक्खदे जलिय जोइं, धूमकेउ दुरासय ।
नेच्छति वतय भोत्तु, कुलेजाया अगधणे ।
घिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीवियकारणा ।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे । —उत्तरा० २२।४०-४३

३३ (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ६।८
(ख) उत्तराध्ययन

३४ (क) वसुदेव हिन्डी
(ख) त्रिषष्टि शलाका० सर्ग ७
(ग) जैन रामायण

३५. (क) अर्हत् भगवती मल्ली के विस्तृत वर्णन के लिए देखें—ज्ञाता धर्मकथा १६
(ख) त्रिषष्टि शलाका ६।६

३६ अर्हत् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एव अरनाथ ये तीनो तीर्थंकर क्रमश पाचवे, छट्ठे एव सातवें चक्रवर्ती भी हुए। एक ही भव मे दो महान् पदवी का उपभोग किया। इनके विस्तृत जीवन चरित्र के लिए देखें—

१ चउप्पन्न महापुरुष चरिउ
२ त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ५।१, ६।१, ६।२
३ शातिनाथ चरित्र

३७ (क) धण मिहुण सुर महब्बल ललियग य वइरजघ मिहुणे य ।
सोहम्म विज्ज अच्चुय चक्की सव्वट्ठ उसभे य । —आव० मलय० वृत्ति पृ० १५७।१
(ख) लेखक की पुस्तक ऋषभदेव एक परिशीलन ।

३८ त्रिषष्टि० १।१।५५ से ६१ पृ० ३।२

३९ (क) आवश्यक नियुक्ति गा० १६८
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२
(ग) त्रिषष्टि० १।१।१४० से १४३ प० ६

४० (क) आवश्यक मलय० वृ० प० १५८
(ख) त्रिषष्टि० १।१।७१४।७१५

४१ (क) आवश्यक चूर्णि० १३३-१३४
(ख) त्रिषष्टि १।१।९०७—९०९ प० ३२

भरतस्यचसोदर्या ददौ ब्राह्मी जगत्प्रभु ।
भूपाय बाहुबलिने तदादि जनताप्यथ । —श्री काललोक प्रकाश सर्ग ३२ श्लोक ४७-४८

५३ (क) इति दृष्ट्वा तत आरभ्य प्रायो लोकेऽपि कन्या पित्रादिना दत्ता सती परिणीयते इति प्रवृत्तम् ।
—आवश्यक मलय० पृ० २००
(ख) गुरुदत्तिआ य कण्णा परिणिज्जते तओ पाय । —आवश्यक हारि० वृ० पृ० १३३
(ग) भिन्नगोत्रादिका कन्या दत्ता पित्रादिभिर्मुदा ।
विधिनोपायत प्राय प्रावर्तत तथा तन । —श्री काललोक प्रकाश सर्ग ३२, श्लोक ४६

५४ (क) आवश्यक निर्युक्ति० गा० १९४
(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० १५३-१५४

५५ आवश्यक निर्युक्ति० गा० १९६

५६ पुराणसार १८।३।३६

५७ आवश्यक मलय० प० १५७-२

५८ (क) आवश्यक हारिभद्रीया प० १२०-२
(ख) आवश्यक मलय० प० १६३

५९ आवश्यक निर्युक्ति० गा० १५१

६० (क) आवश्यक निर्युक्ति० गा० १९८
(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० १५४
(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प० १२८
(घ) त्रिपष्टि० १।२।९७४ से ९७६

६१ त्रिपष्टि० १।२।९२५-९३२

६२ स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

६३ आद्यद्वयमृषभकाले अन्ये तु भरतकाले इत्यन्ये । —स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

६४. परिभापणाउ पढमा, मडलबंधम्मि होइ बीया तु ।
चारग छविच्छेदावि, भरहस्स चउव्विहा नीई । —स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

६५ निगडाइजमो बन्धो, घातो दडादितालणया । —आवश्यक निर्युक्ति गा० २१७

६६ बन्धो—निगडादिभिर्यम सयमन, घातोदण्डादिभिस्ताडना, एतेऽपि अर्थशास्त्रबन्धघातास्तत्काले यथायोग प्रवृत्ता । —आवश्यक मलय० वृत्ति प० १९९।२

६७. (क) मारणं जीववधो-जीवस्य जीविताद् व्यपरोपण, तच्च भरतेश्वरकाले समुत्पन्न ।
—आवश्यक मलय० प० १९९।२
(ख) मारणया जीववहो जन्ना नागाइयाण पूयाओ । —आवश्यक निर्युक्ति गा० २१८

६८. आवश्यक निर्युक्ति० गा० २०९

६९ (क) आवश्यक निर्युक्ति गा० २१२
(ख) विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति १३२

८४ धम्माण कासवो मुह। —उत्तरा० अ० २५, गा० १६

८५ (क) आवश्यक निर्युक्ति० मलय० वृत्ति पृ० २३०।१ (ख) त्रिषष्टि० १।३।६५४ पृ० ८६

८६ (क) आवश्यक मलय० वृ० पृ० २२६ (ख) त्रिषष्टि० १।३।६५१
(ग) कल्पलता, समयसुन्दर पृ० २०७ (घ) त्रिषष्टि० १।४।७३०-७४६

८७ आवश्यक चूर्णि० पृ० २०६

८८ आवश्यक मलय० पृ० २३१।१

८९ (क) आवश्यक मलय० पृ० २३१।१ (ख) त्रिषष्टि० १।४।८१८ से ८२६

९० (क) आवश्यक चूर्णि० २०६।२१० (ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति

९१ आवश्यक निर्युक्ति० गा० ३४८

९२ आवश्यक चूर्णि० पृ० २१०

९३ पढमं दिट्ठोजुद्ध, वायाजुद्ध तहेव बाहाहिं।
मुट्ठीहि अ दडेहि अ सव्वत्थवि जिप्पए भरहो। —आवश्यक भाष्य गा० ३२

९४ (क) त्रिषष्टि० पर्व १, सर्ग ४-५ (ख) आदि पुराण (जिनसेन) पर्व ३४-३६
(ग) कथाकोष प्रकरण (जिनेश्वर सूरि) कथा ६

९५ (क) आवश्यक मलय० पृ० २३२ (ख) आदि पुराण, पर्व ३६

९६ (क) आवश्यक मलय० वृत्ति (ख) त्रिषष्टि० १।५।७९५ से ७९८
(ग) आवश्यक चूर्णि० पृ० २१०-२११

९७ (क) आवश्यक निर्युक्ति० गा० ४३६ (ख) आवश्यक मलय० वृत्ति पृ० २४६
(ग) आवश्यक चूर्णि० पृ० २२७

९८ भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध मे प्राय वैदिक ग्रन्थ एक स्वर से श्रद्धाभिव्यञ्जना करते हैं। ऋग्वेद (२-३३-१५) मे रुद्र सूक्त मे एक ऋचा है—

"एव वभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हसी।"

हे वृषभ! ऐसी कृपा करो कि हम कभी नष्ट न हो।

इसके अलावा नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत चक्री का ताण्ड्य ब्राह्मण (१४-२-५) शत० ब्रा० (५, २-५-१७) श्रीमद्भागवत (स्कव २०) तथा उत्तर कालीन मार्कण्डेय पुराण (अ० ५०) कूर्म पु० (अ० ४१) अग्नि पु० (१०) वायु पु० (३३) गरुड पुराण (१) ब्रह्माण्ड पु० (१४) विष्णु पु० (२-१) स्कद पु० (कुमार खण्ड ३७) आदि अनेको पुराणो मे विस्तार के साथ उनकी चर्चा मिलती है।

पुरातत्त्व विभाग के अनुसन्धानो ने तो यह प्राय सिद्ध कर दिया है कि ऋषभदेव ही भारतीय सभ्यता और योग मार्ग के आद्य प्रवर्तक थे। इसके लिए विशेष जिज्ञासु लेखक का ऋषभ देव, एक परिशीलन ग्रन्थ देखें।

नि० गा० ६५३-६५४ । ३८ आ० नि० गा० ६५५-६५६ । ३६. आ० नि० गा० ६५३ । ४० आ० नि० गा० ६४७ । ४१ आ० नि० गा० ६४८ । ४२ आ० नि० गा० ६४४ । ४३ आ०नि०गा० ६४८ ४४ आ० नि० गा० ६५३-६५४ । ४५ आ० नि० गा० ६५५ । ४६ आ०नि० गा० ६४४ । ४७ आ० नि० गा० ६४६ । ४८ आ० नि० गा० ६४७ । ४६ आ० नि० गा० ६४८ । ५० आ०नि० गा० ६५० ५१ आ० नि० गा० ६५५-६५६ । ५२ आ० नि० गा० ६४४ । ५३. आ० नि० गा० ६४८ । ५४ आ० नि० गा० ६४७ । ५५ आ० नि० गा० ६४८ । ५६. आ० नि० गा० ६५० । ५७ आ० नि० गा० ६५५-६५६ । ५८ आ० नि० गा० ६४५ । ५६ आ० नि० गा० ६४६ । ६० आ० नि० गा० ६४७ ६१ आ० नि० गा० ६४८ । ६२ आ० नि० गा० ६५१ । ६३ आ०नि० गा० ६५५-६५६ । ६४. आ० नि० गा० ६४५ । ६५ आ० नि० गा० ६४६ । ६६ आ० नि० गा० ६४७ । ६७ आ० नि० गा० ६४८ ६८ आ० नि० गा० ६५१ । ६६ आ० नि० गा० ६५५-६५६ ।

७० A वीर निर्वाण सवत् को जानने का तरीका यह है कि वि० स० मे ४७० मिलाने पर, शक सवत् मे ६०५ और ई० स० मे ५२७ मिलाने पर वो० नि० सवत् मिल जाता है। जैसे वर्तमान वि० स० २०२५ मे ४७० शक १८६० मे ६०५ और १६६८ मे ५२७ मिलाने पर वीर सवत् २४६५ आ जाता है।

७० B मण परमोहि पुलाए, आहार खवग उवसमे कप्पे ।
सजमतिग केवल सिज्झणा य जवूम्मि वुच्छिण्णा ।

—जैन परपरानो इतिहास भा० १ पृ० ७२ मे उद्धृत, (त्रिपुटी)

७१ स्थविर सुस्थित गृहस्थाश्रम मे कोटिवर्ष नगर के रहने वाले थे, अत वे कोटिक नाम से पहचाने जाते थे। स्थविर सुप्रतिवुद्ध गृहस्थाश्रम मे काकन्दी नगर के निवासी थे, अत वे काकन्दक नाम से विश्रुत थे।

७२ 'ताम्रलिप्तिका' शाखा की उत्पत्ति वग देश की उस समय की राजधानी ताम्रलिप्ति या ताम्रलिप्तिका से हुई थी। उस युग मे वह एक प्रसिद्ध वन्दरगाह था। वर्तमान मे वह वगाल के मेदिनीपुर जिले मे 'तमलुक' नाम का गाव है।

कोटिवर्षीया शाखा की उत्पत्ति राढ देश की राजधानी कोटिवर्ष नगर से हुई थी। वर्तमान मे वह पश्चिमी वगाल मे मुर्शिदावाद के नाम से प्रसिद्ध है।

पौण्ड्रवर्धनिका शाखा की उत्पत्ति पुण्ड्रवर्धन नगर से हुई थी। वर्तमान मे वह उत्तरी वगाल के (फिरोजावाद) माल्दा से ६ मील उत्तर की ओर 'पाण्डुआ' नाम के गाँव से पहचाना जाता है। उस युग मे इसमे राजशाही, दीनाजपुर, रंगपुर, नदिया, वीरभूम, मिदनापुर, जंगलमहल, पचेत और चुनार सम्मिलित थे। एक अन्य विद्वान के मतानुसार (जैन परपरानो इतिहास भा० १ पृ० २०५) वर्तमान पहाडपुर (वगाल के वोगरा जिला E B. R के स्टेशन से ३ मील दूर) पोड्रवर्द्धन नगर का वर्तमान अवशेष है।

'दासी कर्पटक' शाखा की उत्पत्ति वगाल के समुद्र के सन्निकटवर्ती 'दासी कर्पट' नामक स्थान से हुई है।

७३ दशाश्रुतस्कध, चूर्णि

९२ 'क्षौमिलिया' शाखा की उत्पत्ति पूर्व बगाल के क्षौमिल नगर से हुई थी जो वर्तमान मे 'कोमिला' नाम से प्रसिद्ध है।

९३ मानवगण की ये तीन शाखायें क्रमश काश्यप, गौतम और वासिष्ठ गोत्रो से विश्रुत हुई हैं और चतुर्थ शाखा 'सारठ्ठिया' की उत्पत्ति सोरठ नगर से हुई है, जो वर्तमान मे मधुवनी से उत्तर-पश्चिम मे आठ मील पर 'सोरठ' नाम से अवस्थित है।

९४ कोटिकगण की उत्पत्ति सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध स्थविरो से हुई है। आर्य सुस्थित गृहस्थाश्रम मे कोटिवर्ष नगर के निवासी थे और सुप्रतिबुद्ध काकन्दी नगरी के। अत इन स्थविरो के अपर नाम क्रमश कोटिक और काकन्दक भी थे। इन स्थविरो से प्रादुर्भूत होने वाला गण 'कोटिक' नाम से विश्रुत हुआ।

९५ 'उच्चानागरी' शाखा की उत्पत्ति 'उच्चानगरी' से हुई है। उच्चानगरी' ही वर्तमान मे 'बुलन्द शहर' के नाम से विख्यात है।

९६ मध्यमिका शाखा की उत्पत्ति चित्तोड के सन्निकटवर्ती मध्यमिका नगरी से हुई थी।

९७ बभलिज्जिय' कुल के स्थान पर मथुरा के शिलालेखो मे ब्रह्मदासिका नाम उपलब्ध होता है। कल्याणविजय गणि के अभिमतानुसार यह नाम शुद्ध है—"कोटिक गण' के जन्मदाता ,सुस्थित—सुप्रतिबुद्ध के गुरुभ्राता 'ब्रह्मगणा का पूरा नाम 'ब्रह्मदास गणि' हो और उन्ही के नाम से ब्रह्मदासिक कुल प्रसिद्ध हुआ हो।" पट्टावली पराग पृ० ४१-४२

९८ वाणिज्य कुल के स्थान पर मथुरा के शिलालेखो मे 'ठाणियातो' नाम उत्कीर्ण है। कल्याण विजय जी इस नाम को ठीक मानते हैं। देखें—पट्टावली पराग पृ० ४२

९९ (क) कल्पसुबोधिका टीका पृ० ५५४, सागभाई मणिलाल नवाब
(ख) जैन परम्परानो इतिहास, भा० १, पृ० २२०-२२१

१०० सो पइट्ठाण आगतो। तत्थ य सातवाहणो राया सावगो। तेण समणपूयणओच्छणो पवत्ति तो, अतेउर च भणिय—अमावसाए उववास काउ "अट्मिमादीसु उववास कातु" इति पाठान्तरम्। पारणए साधूण भिक्ख दाउ पारिज्जह। अध पज्जोसमणादिवसे आसण्णीभूते अज्जकालएण सातवाहणो भणितो—भद्दवयजोण्हस्स पचमीए पज्जोसावणा। रण्णा भणितो—तद्दिवस मम इदो मणु जायव्वो होहिति तो 'ण पज्जुवासिताणि चेतियाणि साधुणो य भविस्सति" ति कातु तो छट्ठीए पज्जोसवणा भवतु। आयरिएण भणिय—न वट्टति अतिकामेतु। रण्णा भणित—तो चउत्थीए भवतु' आयरिएण भणित एव होउ, त्ति चउत्थीए कता पज्जोसवणा। एव चउत्थी वि जाता कारिणता। —पज्जोसमणाकप्पणिज्जुत्ती पृ० ८९
(क) श्री निशीथसूत्र चूर्णि० उ० १०
(ख) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति

१०१ तुम्बवन के परिचय के लिए देखिए—मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रथ पृ० ६७७

१०२ (क) आवश्यक चूर्णि०,प्रथम भा० प० ३९०
(ख) अवती जणवए तुम्बवणसन्निवेसे धणगिरी नाम इब्भपुत्तो।
—आवश्यक हारिभद्रीय टीका प्र० भा० प० २८९-१

परिशिष्ट—५

[समावायंन्तर्गत टिप्पणानि]

१ (क) समणे भगव महावीर० । चदसवच्छरमधिकृत्यापदिश्यते जेण जुगादी सो ।

—कल्पसूत्र चूर्णि सू० २२४

(ख) वासाण सवीसइराए, चन्द्रसवत्सरमधिकृत्यापदिश्यते जेण सो जुगाई ।

—कल्पसूत्र, टिप्पनक सू० २२४

२ नो से कप्पई त रयणि, ति भाद्रशुक्लपञ्चमीमतिक्रमितुम् ।

—कल्पसूत्र टिप्पनक सू० २३१

३ (क) अत्थेगतिया आयरिया 'दाए भंते ।' दाते गिलाणस्स मा अप्पणो पडिग्गाहे चातुम्मासिगादिसु ।

—कल्पसूत्र चूर्णि सू० २३४

(ख) 'एव वुत्तपुव्व' ति यद्येतदुक्त भवति गुरुभिर्यदुत 'दापयेर्ग्लानाय त्वं' तदा दातु कल्पते न स्वय ग्रहीतुमिति ।

—कल्पसूत्र टिप्पण सू० २३४

४ पडिग्गाहे भते । त्ति अप्पणो पडिग्गाहे अज्ज गिलाणस्स अण्णो गिण्हिहि त्ति ण वा भुजति । अध दोण्ह वि गेण्हति तो पारिट्ठावणियदोसा । अपरिट्ठवेंते गेलण्णादि ।

—कल्पसूत्र चूर्णि० २३५

५ दाए पडिग्गाहे गिलाणस्स अप्पणो वि, एवाऽऽयरियवाल-वुड्ड पाहुणगाण वि वितिण्णं, स एव दोसो मोहुब्भवो, खीरे य धरणे आत—सजमविराधणा ।

—कल्पसूत्र चूर्णि सू० २३६

(ख) दावे भते ।' दापये 'पडिगाहे' त्वमपि गृह्णीया ।

—कल्पसूत्र, आचार्य पृथ्वीचन्द्र टिप्पण सू० २३६

६ (क) उत्तराध्ययन अ० १७, गा० १५।

(ख) वही, अ० ३०, गा० २६

(ग) विकृतिहेतुत्वाद्विकृती उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति शान्त्याचार्य प० ४३५

(घ) स्थानाङ्ग ९।६७४

(च) चत्तारि सिणेह विगतीओ पन्नत्ताओ, त जहा—तेल्ल घय वसा णवणीतं ।

—स्थानाङ्ग ४।१।२७४

(छ) चत्तारि महाविगतीओ पन्नताओ, त जहा—महु, मस, मज्ज, णवणीतं ।

—स्थानाङ्ग ४।१।२७४

(ज) विकृति—अशोभनं गति नयन्तीति विगतय, ताश्च क्षीरविगयादय विगतीमाहरयत मोहोद्भवो भवति ।

—उत्तराध्ययन चूर्णि० पृ० २४६

(झ) विशेप जिज्ञासु लेखक का 'मासाहार निषेध', लेख देखें ।

१९. वाल-वृद्ध-ग्लाननिमित्त वर्षत्यपि जलधरे भिक्षायै नि मरता कम्बलावृत्तदेहाना न तथा विधाप्काय विराधना । —योगशास्त्र, स्वोपज्ञ वृत्ति ३, ८७

२० अह पुणेव जाणेज्जा—तिव्वदेसिय वास वासमार्ग पेहाए, तिव्वदेसिय वा महिय सण्णिवयमाणि पेहाए' ' ' ' से एव णच्चा णो सव्वडिग्गहमायाए गाहावइ-कुल पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा । —आयारो तह आयार चूला, चूला १, अ० ६ उद्देशा २, सू० ५३, पृ० २६६

२१ दशवैकालिक ५।१।८

२२ ण इति पडिसेहसद्दो, चरण गोचरस्स त पडिसेहेति 'वास' मेघो, तम्मि पाणिय मुयन्ते ।
— दशवैकालिक, अगस्त्यसिंह चूर्णि

२३ नकारो पडिसेहे वट्टइ, चरेज्ज नाम भिक्खस्स अट्ठा गच्छेज्जाति. वास पसिद्धमेव, तमि वासे वरिसमाणे उ चरियव्व, उत्तिण्णेण य पब्बुट्ठे अहाछन्नाणि सगडगिहाइणि पविसित्ता ताव अच्छइ जावट्ठिओ ताहे हिंडइ । —दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ० १७०

२४. न चरेद्वर्षे वर्षति, भिक्षार्थं प्रविष्ठो वर्षगे तु प्रच्छन्ने तिष्ठेत् ।
—दशवैकालिक हारिभद्रीया टीका प० १६४

२५ कणगफुसियमित्त पि ।

२६ (क) महियाए व पडतिए । —दशवै० ५।१।८
(ख) महिया पायमो सिसिरे गब्भमासे भवइ ताएवि पडत्तीए नो चरेज्जा ।
—दशवै० जिनदास चूर्णि० पृ० १७०

२७ निगिज्झिय निगिज्झिय स्थित्वा स्थित्वा । कप्पइ अहे वियडगिह सि वा आस्थानमण्डपम् । पुव्वाउत्ते 'भिलगसूवे' मसूरदालि उडिददालिर्वा इति जनश्रुति व्यवहारवृत्तौ त्विदमुक्तम् "यद् गृहस्थाना पूर्वप्रवृत्तमुपस्क्रियमाण तत् पूर्वायुक्तम् ।" इति । साधोरागमनात् पूर्वं गृहस्थै स्वभावेन राध्यमानः सतन्दुलोदन' 'भिलंगसूपो नाम' सस्नेह सूपो दालिरिति स कल्पते प्रतिग्रीहतुम् । यो ऽ सौ तत्र 'पूर्वागमनेन' पूर्वागता साधव इति हेतो पश्चाद् दायक प्रवृत्तो राद्ध स तन्दुलोदनो भिल गसूपो वा नासौ कल्पते प्रतिग्रहीतुमिति ।
—कल्पसूत्र, आचार्य पृथ्वीचन्द्र टिप्पण सू० २५७

२८. एत्थ वि वियडरुक्खमूलेसु कह अच्छितव्व ? "तत्थ णो कप्पति एगस्स णिग्गथस्स एगाए य णिग्गथीए ।" कह एगाणिओ ? स घाडइल्लओ अब्भत्तट्ठिओ असुहितओ कारणिओ वा । एव णिग्गथीण वि आयपरोभयसमुत्था दोसा स कादओ य भवति । अह पचमओ खुड्डओ वा खुड्डिया वा, छक्कण्ण रहस्स ण भवति तत्थ वि अच्छतो अण्णेसि धुवकम्मियादीण सलोए 'सपडिदुवारे' सपडिहुत्तदुवार सव्वगिहाण वा दुवारे । खुड्डतो साधूणं स जतीण खुड्डिया। साधू उस्सग्गेण दो, सजती-ओतिण्णि चत्तारि पच वा । एव अगारीहिं वि । —कल्पसूत्र चूर्णि सू० २५९-२६९-२६१

२९ (क) 'अण्णतर वा विगति', खीरादि, 'एवदिय' एत्तिय परिमाणेण, 'एवतिखुत्तो' एत्तियवारातो दिवसे वा मोहुब्भवदोसा खमगगिलाणाण अणुण्णाता । —कल्पसूत्र चूर्णि २७६
(ख) कल्पसूत्र टिप्पण २७६

३४. ज अज्जिय समीरवल्लएहिं तवनियमवभमइएहिं ।
त दाणि पच्छ नाहिसि, छड्डितो सागपत्तेहिं ।।२७१४।।
तवो भेदो अयसो, हाणी, दसण-चरित्त-नाणाण ।
साहुपदोसो ससारवड्ढणो साहिकरणस्स ।।२७०८।। —कल्पलघुभाष्य

३५ खमावणयाएण जीवे पल्हायणभाव जणयइ । —उत्तरा० २९

३६ वासासु वाघातणिमित्त तिण्णि उवस्सया घेत्तव्वा । का समाचारी ? उच्यते—वेउव्विया पडिलेहा पुणो पुणो पडिलेहिज्जति ससत्ते असत्ते, तिण्णि वेलाओ—पुव्वण्हे १ भिक्ख गतेसु २ वेतालिय ३ । जे अण्णे दो उवस्सया तेसिं 'वेउव्विया पडिलेहा' दिणे दिणे निहालिज्जति, मा कोति ठाहिति ममत्त वा काहिति, ततिए दिवसे पादपु जणेण पमज्जिज्जति । —कल्पसूत्र चूर्णि सू० २८७

३७ (क) तेण कालण तेण समेएण समणे भगव महावीरे रायगिहे णगरे सदेवमणूयासुराए 'परिसाए' उद्घाट्य शिर परि-सर्वत सीदति परिषत् 'मज्झे ठितो' मज्झगतो 'एव यथोक्त कहेति, भासति वाग्योगेण, पण्णवेति अणुपालियस्स फल, परुवेति, प्रति फल प्रतिरूवेति । 'पज्जोसवणा-कप्पो ।' त्ति वरिसारत्तमज्जाता । अज्जो ! त्ति आमत्रणे । द्विर्ग्रहण निकाचनार्थ, एव कर्तव्य नान्यथा । सह अत्थेण सअट्ठं । सेहेतु न निर्हेतुकम् । 'सनिमित्त सकारण' अणुणपालितस्स दोसा अय हेतु, अपवादो कारण जहा सवीसतिराते मासे वीतिक्कते पज्जोसवेयव्व । किंनिमित्त हेतु पाएण अगारीहिं अगाराणि सट्ठाए कडाणि । कारणे उरेण वि पज्जोसवेति आसाढपुण्णिमाए । एव सव्वसुत्ताण विभासा । दोसदरिसण हेतु. । अववादो कारणं । सहेतु सकारण भुज्जो भुज्जो ।' पुणो पुणो उवदसेति । परिग्रहणात् सावगाण वि कहिज्ज-ति, समोसरणे कड्ढिज्जति पज्जोसमणाकप्पो । —कल्पसूत्र चूर्णि सू० २९१

●

(वाद्य, संगीत परिचय)

१ तत—तन्तुवाद्य-वीणा आदि
२ वितत—मढे हुए वाद्य-पटह आदि
३ घन—कांस्यताल
४ झुसिर—शुषिर-फूंक द्वारा बजने वाला वाद्य बांसुरी आदि।

—स्थानाङ्ग ४

१ शंख
२ शृंग
३ शंखिका
४ खरमुही
५ पेया
६ पीरिपिरिया—कूकर-पुटावनद्धमुखो-वाद्य विशेषः।
७ पणव—लघु पटह
८ पटह
९ भंभा—ढक्का
१० होरंभ—महाढक्का
११ भेरी
१२ झल्लरी
१३ दुंदुभि—देव के एक भाग को [illegible] बनाया गया वाद्य।
१४ मुरज—[illegible]
१५ मृदंग
१६ नदी मृदंग—[illegible] विशेष.।
१७ आलिंग
१८ कुतुम्ब चर्मावनद्धपुटो वाद्यविशेष.।
१९ गोमुखी
२० मर्दल
२१ वीणा
२२ विपंची—त्रितंत्री वीणा
२३ वल्लकी—सामान्य वीणा
२४ महती—शततंत्रिका वीणा
२५ कच्छभी
२६ चित्रवीणा
२७ बद्धीसा
२८ सुघोषा
२९ नन्दीघोषा
३० भ्रामरी
३१ षड्भ्रामरी
३२ परवादनी—सप्ततंत्री वीणा
३३ तूणा
३४ तुम्बवीणा
३५ आमोद
३६ झंझा
३७ नकुल
३८ मुकुन्द
३९ हुडुक्की
४० विचिक्की
४१ करटा
४२ डिंडिम

४३ किणित
४४ कडंव
४५ दर्दरिका—गोहिया
४६ दर्दरक
४७ कलशी
४८ मड्डुक
४९ तल
५० ताल
५१ कांस्यताल
५२ रिंगिसिया
५३ लत्तिया
५४ मगरिका
५५ सुंसुमारिया
५६ वंश
५७ वेणु
५८ वाली
५९ परिल्ली
६० वद्धगा

—राजप्रश्नीय सूत्र ६४

१ भंभा
२ मुकुन्द
३ मद्दल
४ कडंव
५ झल्लरि
६ हुडुक्क
७ कांस्यताल
८ काहल
९ तलिमा
१० वंश
११ पणव
१२ शंख

—बृहत्कल्पभाष्यपीठिका २४ वृत्ति

संगीत

गीत के तीन प्रकार हैं:—

१ प्रारंभ मे मृदु
२ मध्य मे तेज
३ अन्त में मन्द

—स्थानाङ्ग ७, उ० ३
—अनुयोगद्वार

गीत के दोष

१ भीतं—भयभीत मानस मे गाया जाय,
२ द्रुतं—बहुत-शीघ्र-शीघ्र गाया जाय
३ अपित्थं—श्वास युक्त शीघ्र गाया जाय अथवा ह्रस्व स्वर लघु स्वर मे ही गाया जाय।
४ उत्तालं—अति उत्ताल स्वर मे व अवस्थान ताल मे गाया जाय,
५ काकस्वरं—कौए की तरह कर्ण-कटु शब्दो से गाया जाय।
६ अनुनासिकम्—अनुनासिका से गाया जाय।

—अनुयोगद्वार

गीत के आठ गुण—

१ पूर्ण—स्वर, लय और कला से युक्त गाया जाय।
२ रक्तं—पूर्ण तल्लीन होकर गाया जाय।

३ **अलंकृत**—स्वर विशेष से अलंकृत होकर गाया जाय।

४ **व्यक्तं**—स्पष्ट गाया जाय।

५ **अविघुष्टं**—अविपरीत स्वर से गाया जाय।

६ **मधुरं**—कोकिला की तरह मधुर गाया जाय।

७ **समं**—ताल, वंश, व स्वर से समत्व गाया जाय।

८ **सुललित**—कोमल स्वर से गाया जाय।

अन्य आठ गुणः—

१ **उरोविशुद्ध**—वक्षस्थल से विशुद्ध होकर निकलना।

२ **कण्ठविशुद्ध**—जो स्वर भग न हो।

३ **शिरोविशुद्ध**—मूर्धा को प्राप्त होकर भी जो स्वर-नासिका से मिश्रित नहीं होना।

४ **मृदुक**—जो राग कोमल स्वर से गाई जाय।

५ **रिङ्गित**—आलाप के कारण स्वर खेल-सा करता-सा प्रतीत हो।

६ **पदबद्ध**—जो गेय पद विशिष्ट साहित्य युक्त भाषा मे निमित किये गये हो।

७ **समताल प्रत्युत्क्षेप**—[illegible] का पाद-निक्षेप और ताल आदि परस्पर मिले हो।

८ **सप्त स्वर सीभर**—सातो स्वर अक्षरादि से मिलान खाते हो।

अक्षरादि सम भी सात प्रकार का है—

१ **अक्षर सम**—ह्रस्व दीर्घ प्लुत, सानुनासिक से युक्त।

२ **पद-सम**—पद विन्यास से युक्त।

३ **ताल-सम**—ताल के अनुकूल कर आदि का हिलाना।

४ **लय-सम**—वाद्य यन्त्रों के साथ स्वर मिलाकर गाना।

५ **ग्रह-सम**—बासुरी या सितार की तरह गाना।

६ **निश्वसितोच्छ्वसितो सम**—श्वास ग्रहण करने और निकालने का क्रम व्यवस्थित।

७ **संचार-सम**—वाद्य यन्त्रों के साथ गाना।

—स्थानांग ७।३।७५

—अनुयोगद्वार गा० ७

प्रकारान्तर से अन्य आठ गुण—

१ **निर्दोष**—गीत के बत्तीस दोष से रहित गाना।

२ **सारवन्तं**—विशिष्ट अर्थ से युक्त गाना।

३ **हेतुयुक्तं**—गीत से निबद्ध, अर्थ का गमक और हेतु युक्त।

४ **अलंकृत**—उपमादि अलंकारों से युक्त।

५ **उपनीतं**—उपनय से युक्त।

६ **सोपचार**—कठिन न हो, विरुद्ध हो।

७ **मित**—[illegible] युक्त।

८ **मधुर**—कोमल शब्दों से गायन से श्रुति-मधुर।

—स्थानांग

छन्द के तीन प्रकारः—

१ **सम**—[illegible] समान।

२ **अर्धसम** –प्रथम और तृतीय, द्वितीय और चतुर्थ पाद समान सख्या वाले हो ।

३ **विषमसम**—किसी भी पाद की सख्या एक दूसरे से नही मिलती हो ।

—अनुयोग द्वार गा० १०

सप्तस्वर

१ **षडज**—नासिका, कठ, छाती, तालु, जिह्वा, दात, इन छह स्थानो से उत्पन्न ।

२ **वृषभ**—जव वायु नाभि से उत्पन्न होकर कण्ठ और मूर्धा से टक्कर खाकर वृषभ के शब्द की तरह निकलता है ।

३ **गांधार**—जव वायु नाभि से उत्पन्न होकर हृदय और कण्ठ को स्पर्श करता हुआ सगध निकलता है ।

४ **मध्यम**—जो शब्द नाभि से उत्पन्न होकर हृदय से टक्कर खाकर पुनः नाभि मे पहुँचे । अर्थात् अन्दर ही अन्दर गूंजता रहे ।

५ **पञ्चम**—नाभि, हृदय, छाती, कठ और सिर इन पांच स्थानो से उत्पन्न होने वाला स्वर ।

६ **धैवत**—अन्य सभी स्वरो का जिसमे मेल हो, इसका अपर नाम रैवत भी है ।

७ **निषाद**—जो स्वर अपने तेज से अन्य स्वरो को दवा देता है और जिसका देवता सूर्य हो ।

ग्राम और मूर्च्छनाएँ:—

सात स्वरो के तीन ग्राम हैं:—

१ **षडज ग्राम**

२ **मध्य ग्राम,**

३ **गांधार ग्राम**

षडज ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ —

१ **मार्गी**

२ **कौरवी,**

३ **हरिता,**

४ **रत्ना**

५ **सारकान्ता**

६ **सारसी**

७ **शुद्धष ड्जा**

मध्य ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ—

१ **उत्तरमदा**

२ **रत्ना**

३ **उत्तरा**

४ **उत्तरासमा**

५ **समकान्ता,**

६ **सुवीरा**

७ **अभिरूपा**

गांधार ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ

१ **नदी**

२ **क्षुद्रिका**

३ **पूरिमा**

४ **शुद्धगान्धार**

५ **उत्तर गांधार**

६ सुष्ठुतर मायामा
७ उत्तरायत कोटिमा

संगीत शास्त्र मे मूर्च्छनाओ के नाम अन्य उपलब्ध होते हैं—

१ ललिता,
२ मध्यमा
३ चित्रा
४ रोहिणी
५ मतगजा
६ सौवीरी
७ षण्मध्या

१ पचमा
२ मत्सरी
३ मृदुमध्यमा
४ शुद्धा
५ अन्त्रा
६ कलावती
७ तीव्रा

१ रौद्री
२ ब्राह्मी
३ वैष्णवी
४ खेचरी
५ सुरा
६ नादावती
७ विशाला

कल्पसूत्र का संक्षिप्त पारिभाषिक शब्द-कोश

अचेलक—कल्प का एक भेद । देखिये 'कल्प' शब्द ।

अट्ठमभक्त—लगातार आठ समय (वक्त)तक आहार पानी का परित्याग, किंवा केवल आहार का त्याग—तीन दिन का उपवास, तेला ।

अनगार—मुनि । गृह का त्यागकर मुनिव्रत स्वीकार करने वाला श्रमण ।

अनुत्तरौपपातिक—अनुत्तर—सर्वश्रेष्ठ देव विमान मे, औपपातिक- जन्म लेने वाला देव ।

अनुत्तर विमान—सर्वश्रेष्ठ देव विमान ।

अभिग्रह—दृढ सकल्प, निश्चय जो कि जहाँ तक सफल नही होता, वहां तक गुप्त रखा जाता है ।

अवग्रह— चातुर्मास मे एक स्थान पर रहने के वाद आस-पास के क्षेत्र मे जाने-आने की मर्यादा का निर्धारण करना ।

अवधिज्ञान—इन्द्रियो की सहायता के विना होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान ।

अवधिज्ञानी—अवधिज्ञान जिसे प्राप्त हुआ हो वह साधक ।

अनशन— अशन—भोजन । भोजन का परित्याग करना—अनशन । एक प्रकार का तप ।

अवसर्पिणी—कालचक्र का अर्धभाग । भूमि, वृक्ष आदि वस्तुओ का स्वारस्य तथा मनुष्यो के पुरुषार्थ आदि गुण जिस कालक्रम मे क्रमश घटते-जाते हैं, वह समय । काल चक्र का अपकर्ष-युग ।

अवस्वापिनी—मनुष्य आदि को गहरी नीद दिला देने वाली एक विद्या ।

अष्टांग महानिमित्त—आठ प्रकार की निमित्तविद्या । जैसे (१) अंग विद्या–शरीर के अगोपाँग के फुरकने से लाभालाभ का ज्ञान । (२) स्वप्न विद्या–शुभाशुभ स्वप्नो का फल ज्ञान । (३) स्वरविद्या–काक, शृगाल, उल्लू आदि पक्षियो के स्वर से लाभालाभ का परिज्ञान । (४) भू विद्या–भूकम्प आदि से लाभालाभ का ज्ञान । (५) लक्षण विद्या–शरीर पर के तिल, मष आदि लक्षणो से शुभाशुभ का परिज्ञान । (६) रेखाविज्ञान—हाथ पाव आदि की रेखाओ पर से शुभाशुभ परिज्ञान, सामुद्रिक शास्त्र । (७) आकाश विज्ञान–आकाश में होने वाले उल्कापात आदि आकस्मिक आघातो पर से लाभालाभ का ज्ञान । (८)नक्षत्रविद्या–नक्षत्रो के उदयअस्त आदि पर से शुभाशुभ का परिज्ञान ।

अष्ट कर्म—देखो 'कर्म' शब्द ।

आदानभांडमात्र निक्षेपणा समिति—देखिए 'समिति'।

आभोगिक—अवधिज्ञान का एक वह प्रकार जो उत्पन्न होने के बाद कभी विनष्ट नहीं होता, केवल ज्ञान प्राप्त होने तक रहने वाला ज्ञान।

आयाम—चावल आदि का धोवन (ओसामण)।

आयुष्य कर्म—देखिए 'कर्म'

आरा— आरा—चक्र। जिस प्रकार रथ गाड़ी आदि के चक्र-चक्के लगे होते हैं, वैसे ही काल रूपी रथ के भी चक्र (आरा) होते हैं। ऐसे बारह आरा का एक कालचक्र होता है। जो बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। काल चक्र के छ आरा अवसर्पिणी काल एवं छ आरा उत्सर्पिणी काल कहलाता है।

ईर्या समिति—देखिए 'समिति'।

उपपात— नरक एवं देवयोनि में जन्म ग्रहण करने को उपपात कहते हैं।

उष्ण-विकट—अग्नि पर उबला हुआ पानी।

उत्सर्पिणी—कालचक्र का अर्ध भाग। जिस समय (काल) में भूमि, वृक्ष आदि का रसादि एवं मनुष्यों में पुरुषार्थ आदि गुण निरन्तर वृद्धिगत होते रहते हैं, वह समय। कालचक्र का अर्धांश।

उत्स्वेदिम—आटा आदि का धोवन।

ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञान का एक भेद। इस ज्ञान से मन के भाव मोटे जाते हैं। यह ज्ञान होने के बाद वापस चला भी जाता है। तथा अधिक विशुद्ध नहीं होता है।

एषणासमिति—देखिए 'समिति'।

कर्म— आत्मा के मूल गुणों को आच्छादित करने वाली सूक्ष्म पौद्गलिक शक्ति। इनके आठ भेद होने से अष्टकर्म तथा 'घाती कर्म' 'एवं अघाती कर्म' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

आठ भेद—(१) ज्ञानावरण-ज्ञान शक्ति को आवरण अर्थात् ढकने वाला कर्म। (२) दर्शनावरण-दर्शन (सामान्यबोध) शक्ति को ढकने वाला। (३) मोहनीय-आत्मस्वरूप के अवबोध को रोककर मोह में फंसाने वाला। (४) अंतराय-दान, लाभ, भोग आदि में विघ्न उपस्थित करने वाला (५) वेदनीय-सुख दुःख का निमित्त बनने वाला। (६) आयुष्य—जीवन धारण का निमित्त। (७) नामकर्म-गति, जाति, शरीर अवयव आदि का निमित्त। (८) गोत्र-उच्चता, नीचता आदि का निमित्त।

इनमें प्रथम चार कर्म आत्मा के मूल स्वरूप का घात करने वाले होने से घाती कर्म कहलाते हैं। शेष चार अघाती कर्म हैं।

कल्प— नीति, आचार, मर्यादा, विधि और समाचारी। कल्प के दस भेद हैं (१) आचेलक्य, (२)

औद्देशिक (३) शय्यातर पिण्ड (४) राजपिण्ड (५) कृतिकर्म (६) व्रत (७) ज्येष्ठ (८) प्रतिक्रमण (९) मासकल्प (१०) पर्युषणा कल्प ।

विवरण के लिए देखें पृष्ठ ३ से १६ तक

कायोत्सर्ग—शरीर आदि के विकल्प से मुक्त होकर ध्यान करना। एक प्रकार की ध्यान मुद्रा।

कायगुप्ति—देखिए - 'गुप्ति।'

कुलकर—कुल की व्यवस्था करने वाला। युग की आदि मे जब मानव-प्रजा कुल व समूह के रुप मे व्यवस्थित नही थी, उस युग मे सर्व प्रथम कुल व्यवस्था का प्रारम्भ करने वाले, कुलकर कहलाए। इस युग मे सात कुलकर हुए। जिनमे अन्तिम कुलकर थे भगवान ऋषभदेव के पिता नाभि राजा।

केवलवरज्ञान—निखिल विश्व के जड चेतन के भूत-भविष्य एव वर्तमान कालीन समस्त भावो को जानने वाला श्रेष्ठतमज्ञान। त्रिकाल-ज्ञान।

केवलज्ञानी—केवलज्ञान को धारण करने वाला महान आत्मा

क्षुल्लक—छोटी उम्र का श्रमण। लघु मुनि।

खादिम—फल आदि खाद्य पदार्थ।

गणधर—तीर्थङ्कर के मुख्य शिष्य, जो गण की व्यवस्था करते हैं, तथा उनके प्रवचन को सूत्र-आगम रुप मे ग्रथित करते है।

गणनायक—गणतत्र राज्य व्यवस्था का प्रधान पुरुष—मुख्य नेता।

गणावच्छेदक—मुनि समूह को 'गण' कहते है, 'गण' की सुरक्षा व विकास के लिए मुनि मडल को सयम आदि की दृष्टि से सभालने वाला प्रमुख मुनि।

गणिपिटक—बारह अगो का समूह वाचक नाम 'गणिपिटक' है।

गणी—गण की व्यवस्था करने वाला अधिकारी मुनि—आचार्य।

गुप्ति—विवेक पूर्वक आत्म-सयम, नियमन करना गुप्ति है। गुप्ति के तीन भेद है-(१) मनोगुप्ति - मन का सयम, (२) वचन गुप्ति-वाणी का सयम, (३) कायगुप्ति-शरीर का सयम।

गोदोहासन—गाय को दुहते समय ग्वाला जिस प्रकार बैठता है उस प्रकार बैठना गोदोहासन है।

गधहस्ती—वह श्रेष्ठ जाति का हस्ती, जिसके शरीर से एक प्रकार की विचित्र गन्ध निकलती रहती है जिसके कारण अन्य हाथी भय खाते हैं।

चउदसम भक्त—लगातार चौदह वक्त तक आहार आदि का परित्याग करना। छह दिन का उपवास।

चतुर्थ भक्त—लगातार चार वक्त तक आहार आदि का परित्याग करना। एक दिन का उपवास।

च्यवन—नारक एवं देवता के आयुःक्षय को 'च्यवन' कहा जाता है, अर्थात् देव एवं नारक की 'मृत्यु।'

चाउलोदक—चावल का धोवन।

च्युत होना-देव एवं नरक गति में मृत्यु प्राप्त करना।

चौदह पूर्व—जैन परंपरा के मूल अंग बारह है। बारहवें अंग दृष्टि-वाद (जो वर्तमान में विच्छिन्न है) में चौदह पूर्व आते हैं, जिनका ज्ञान अत्यंत विस्तृत माना जाता है।

चौदह पूर्वी (पूर्व धर)—जिसे संपूर्ण चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त हो वह, चौदहपूर्वी या चतुर्दश पूर्वधर मुनि कहलाता है।

छट्ठभक्त—लगातार छः वक्त तक आहार आदि का त्याग करना। दो दिन का उपवास।

जवोदक—जौ का धोवन।

जातिस्मरण ज्ञान—अपने पूर्व जन्म का ज्ञान। जाति-स्मृति।

ज्योतिषिक देव—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिषिक देव कहलाते हैं।

तिलोदक—तिल आदि का धोया हुआ पानी, धोवन।

तुषोदक—तुष अर्थात् छिलका, भूसा आदि किसी धान्य वस्तु का धोवन।

दण्डनायक—प्रजा के न्याय तथा व्यवस्था के लिए दण्ड आदि की व्यवस्था करनेवाला अधिकारी।

दत्ति—एक बार में सतत व अखण्डधारा रूप से दिया जाने वाला आहार पानी। चाहे एक बार में एक कण भर आहार दिया हो, या एक बूंद भर जल। वह एक 'दत्ति' ही कहलाती है।

नगर गुप्तिक—नगर की व्यवस्था का जिम्मेदार अधिकारी। कोटवाल आदि।

नाम कर्म—देखिए 'कर्म'।

पर्याप्ति—शरीर, इन्द्रिय आदि की संपूर्ण रचना।

पल्योपम—एक विशेष प्रकार का समय सूचक माप। अंकों द्वारा जो संख्या प्रकट न की जा सके उसे उपमा द्वारा प्रकट करना होता है। पल्य—एक विशेष प्रकार का माप है, उसकी उपमा से काल गणना करना—पल्योपम कहलाता है, अर्थात् असंख्यात वर्ष। असंख्य काल।

पादपोपगमन—अनशन तप की विशेष अवस्था। अनशन ग्रहण करके मृत्यु पर्यन्त वृक्ष (पादप) की भांति शरीर को स्थिर करके समाधिस्थ रहना-पादपोपगमन संथारा कहलाता है।

पान—पीने का सादा पानी।

पारिष्ठापनिका समिति—देखिए 'समिति'।

पुरुषादानीय—पुरुषों में आदरणीय श्रेष्ठ। भगवान पार्श्वनाथ का विशेषण।

पौरुषी—समय का एक भाग। अहोरात्र (दिन रात) का आठवा हिस्सा एक पौरुषी (प्रहर) कहलाता है। दिन मे चार पौरुषी होती है, रात्रि मे चार।

प्रहर—देखिए - 'पौरूषी'।

प्रतिमा-साधु एव श्रावक के सामान्य नियमो के अतिरिक्त विशेष प्रकार के कठोर नियमो का व तपश्चर्या आदि का आचरण करना प्रतिमा कहलाता है। भिक्षु को बारह प्रतिमा हैं, एव श्रावक की ग्यारह।

बलिकर्म—गृह देवता का पूजन करना।

भक्तप्रत्याख्यान— भक्त अर्थात् भोजन-पानी, अथवा भोजन का परित्याग करना - भक्तप्रत्याख्यान है।

भवनपति—विशेष प्रकार की देव जाति, जो भवनो मे रहती है।

भाषा समिति—देखिए-'समिति।'

मडंब जिस स्थल के चारो ओर दो-दो कोश तक कोई ग्राम न हो, वह स्थल विशेष।

मन पर्यव ज्ञान—मन के भावो को जानने वाला ज्ञान। यह ज्ञान सिर्फ सयती को ही होता है।

मनोगुप्ति—देखिए 'गुप्ति।'

मारणांतिक सलेखना जीवन के अन्त्य समय मे मृत्युपर्यन्त आहार आदि का परित्याग करना।

यवनिका—पर्दाविशेष।

रसविकृति (विगय)—जिन सरस वस्तुओ के सेवन से मन मे विकार आदि उत्पन्न होने की सभावना हो—उन्हे रस-विकृति—विगय कहते हैं। विगय नौ प्रकार की होती हैं—दूध, दही, मक्खन, घी, तैल, गुड, मधु, मद्य और मास।

लोकान्तिक—एक जाति के देव जो ब्रह्म-लोक के अन्त मे रहते हैं, तथा तीर्थङ्कर जब दीक्षा लेने का सकल्प करते हैं, तब उन्हे विश्वकल्याण के लिए प्रार्थना करने आते हैं।

वचन गुप्ति—देखिए-'गुप्ति।'

वादी—वाद विवाद करने मे निपुण। (वादलब्धि)—वाद विवाद करने की योग्यता वाली विशेष शक्ति।

वाणव्यन्तर—एक जाति के देव जो वन विशेष मे उत्पन्न होते हैं, रहते हैं और वन मे क्रीडा करते हैं जिन्हे भूत पिशाच आदि नाम से भी पुकारा जाता है।

विकट—निर्दोष आहार पानी।

विकट गृह—ग्राम की पचायती व लोको के एकत्र होने का स्थान, चबूतरा आदि।

विकृष्ट भक्त—अट्ठम भक्त (तीन दिन के उपवास) से अधिक तप करना।

विपुल मतिज्ञान—मन पर्यव ज्ञान का भेद। इस ज्ञान मे भावो की विशुद्धि विशेष रहती है तथा

केवल ज्ञान पर्यन्त स्थायी रहता है।

विचार भूमि—शौच आदि के लिए बाहर जाना।

विहार भूमि– स्वाध्याय आदि के लिए एकान्त स्थान मे जाना।

वृष्टिकाय—वर्षा, बूदे या फुहारें।

वेदनीय कर्म– देखिए – 'कर्म'।

वैमानिक देव—विमान मे उत्पन्न होने वाली उत्तम देव जाति।

वैक्रियलब्धि—शरीर को छोटे बडे आदि विभिन्न रूपो मे बदलने वाली शक्ति विशेष। देव एव नारक मे जन्मजात होती है, मनुष्य आदि मे योग, तप आदि द्वारा प्राप्त की जाती है।

वैक्रियसमुद्घात—शरीर को तथा शरीर परमाणुओ को विशेष रूपो मे बदलने के लिए की जाने वाली विशेष प्रक्रिया।

श्रुतकेवली—चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रमण।

सागरोपम—असंख्य पल्योपम जितना काल सागर कहलाता है, सागर से उपमित किया जाने योग्य काल-सागरोपम।

समिति—श्रमण जीवन मे सम्यक् प्रकार (विवेक पूर्वक) से गति करने का नाम समिति है। श्रमण जीवन की समस्त प्रवृत्तियो को पांच रूप मे विभक्त कर के 'पंच समिति' का रूप दिया है। (१) ईर्यासमिति – मार्ग में, यतना पूर्वक चलना। (२) भाषा समिति-विवेक व यतना पूर्वक बोलना। (३) एषणा समिति-खाने पीने, पहनने आदि कार्य के लिए शुद्ध, निर्दोष वस्तु को यतनापूर्वक ग्रहण (याचना) करना। (४) आदान भांड मात्र निक्षेपणा समिति – अपने वस्त्र, पात्र आदि उपकरणो को विवेक पूर्वक उठाना व विवेक पूर्वक रखना। (५) पारिष्ठापनिका समिति-फेंकने व छोड़ने योग्य वस्तु को उचित स्थान पर विवेक पूर्वक फेंकना व छोड़ना।

स्वादिम—मुखवास आदि के लिए स्वाद वाले खाद्य पदार्थ।

सौवीर—कांजी।

संखडी (सुखंडी)—मिष्ठान्न-पकवान्न, तथा मिष्ठान्न आदि जहाँ बनते हो, वह स्थान। भोज आदि का स्थल।

संधिपाल—राज्यो के बीच विग्रह आदि समस्याओ को सुलझाकर सन्धि कराने वाला, एव सन्धि की रक्षा का जिम्मेदार अधिकारी राजदूत।

सास्वेदिम—वृक्ष के पत्ते आदि को उबाल कर उन पर छिड़का जाने वाला पानी।

शुद्ध वियट (क)—देखिए 'उष्ण वियट'।

हरिणगमेसी—देवराज इन्द्र का एक सेनापति, तथा विशेष आज्ञाकारी दूत, जो गर्भ परिवर्तन आदि की कला मे प्रवीण होता है

कल्पसूत्र विवेचन में प्रयुक्त ग्रन्थसूची

अष्टाग हृदय (वाग्भट्ट)
अगुत्तर निकाय
अन्तकृद्दशा
अर्धमागधी कोष – रतनचन्द जी म०
अनुयोगद्वार टीका
अमरकोष
अभिधान चिन्तामणि कोष
अभिधान राजेन्द्र कोष
आचाराग सूत्र
आचाराग टीका
आचाराग – मलयगिरि वृत्ति
आप्टेज् सस्कृत-इग्लिश – डिक्शनरी भाग १
आवश्यक चूर्णि
आवश्यक भाष्य
आवश्यक हारिभद्रीय टीका
आवश्यक निर्युक्ति (भद्रबाहु)
आवश्यक मलयगिर वृत्ति
इण्डियनएन्टीक्वेरी
ईशावास्योपनिषद्
उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तराध्ययन (बृहद् वृत्ति, शान्त्याचार्य)
उत्तर पुराण
उत्तराध्ययन, बृहत्वृत्ति
उपदेश मालादोघट्टी टीका
ऋग्वेद
ऋषि मण्डल प्रकरण
ओघनिर्युक्ति
कथा कोष प्रकरण (जिनेश्वर सूरि)
कल्पसूत्र सुबोधिका – विनय विजय
कल्प सुबोधिका–गुजराती अनुवाद (साराभाई नवाब)
कल्पसूत्र (पुण्य विजय जी)
कल्पसूत्र (मणिसागर)
कल्पसूत्र - कल्पलता (समय सुन्दरगणि)
कल्पसूत्र - कल्पद्रुम कलिका
कल्यार्थबोधिनी
कल्पसूत्रसदेह विषोषधि
कल्पसमर्थनम्
कल्पसूत्र चूर्णि
कल्पसूत्र निर्युक्ति
कल्पसूत्र (पृथ्वीचन्द टिप्पणकम्)
काललोक प्रकाश
कौटिलीय अर्थशास्त्र
चउप्पन्नमहापुरुष चरिय–प्राकृतग्रन्थ परिषद् वाराणसी - ५
चार तीर्थंकर (प० सुखलाल जी)
छादोग्योपनिषद्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक
जैनपरपरा नो इतिहास
जैन साहित्य का इतिहास (पीठिका) – प० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री
तत्त्वार्थ-सूत्र
तत्त्वार्थ भाष्य
तत्त्वार्थ भाष्य टीका
तित्थोगालिय पइन्ना
तैत्तिरीयारण्यक
तैत्तिरीयोपनिषद्

दशवैकालिक
दशवैकालिक – अगस्त्यसिंह चूर्णि
दशवैकालिक–जिनदास चूर्णि
दशवैकालिक निर्युक्ति
दशवैकालिक–हारिभद्रीय वृत्ति
दशाश्रुतस्कन्ध
दशाश्रुतस्कन्ध चूर्णि
धनंजय नाममाला
धर्मसंग्रह वृत्ति
धवला टीका
नारायणोपनिषद्
निबन्ध निचय (कल्याण विजय)
निशीथ सूत्र
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
पउमचरियं (विमल सूरि)
पट्टावली पराग
पद्मचरित्र – रविषेण आचार्य
पद्मपुराण
पन्नवणा सूत्र
पर्युषणा कल्प सूत्रम् (केशर मुनि)
पार्श्वनाथ चरित्र – भावदेव सूरि
पुराणसार
प्रवचन सारोद्धार वृत्ति
प्रशमरति प्रकरण
प्रश्नव्याकरण
बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत ग्रामर एण्ड डिक्शनरी, खण्ड २
बृहत्कल्पभाष्य
बृहदारण्यकोपनिषद्
भगवती आराधना
भगवती सूत्र
[illegible] वृत्ति ([illegible])
मनुस्मृति – भट्ट मेधातिथि का भाष्य
महापुराण
महावीर चरियं – गुणचन्द्र
महावीर चरियं – नेमिचन्द्र
महावीर जीवन दर्शन – देवेन्द्र मुनि
मुण्डकोपनिषद्
मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ
योग शास्त्र – हेमचन्द्र आचार्य ।
योग शास्त्र – स्वोपज्ञवृत्ति
लघुक्षेत्र समास
लोकप्रकाश
वसुदेव हिण्डी
वाजसनेयी संहिता
विसुद्धिमग्गो
विशेषावश्यक भाष्य
वीरनिर्वाण संवत और जैन कालगणना
वीरविहार मीमांसा – विजयेन्द्र सूरि
शान्तिनाथ चरित्र
श्वेताश्वतरोपनिषद्
स्थानांग - अभयदेव वृत्ति (टीका)
सत्तरिसयठाणा
सप्तति स्थानक (आचार्य सोम तिलक)
सुत्तागमे
सूत्र कृताङ्ग
सूत्रार्थ प्रबोधिनी
सूत्रकृतांग (शीलांकाचार्य टीका)
श्रमण भगवान महावीर
श्रीमद् भागवत
समवायांग सूत्र – मुनि कन्हैयालाल जी
समवायांग (अभयदेव वृत्ति)
[illegible]
हरिवंश पुराण
त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
ज्ञाता धर्म कथांग

कल्पसूत्र का शुद्धि पत्र

(मूल पाठ)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	४	निघट्ट	निघट
६८	१२	साहरावित्ताए	साहरावित्तए
७१	१७	कुच्छिीओ	कुच्छीओ
७२	६	उत्तरपुरा	उत्तरपुर
७६	११	नायण	नायाण
७६	२१	चउद्दत	चउद्दत
८१	४–५	कोमलभाइय	कोमलमाइय
८१	८	सोहिय	सोहिय
८२	३	कुंभ	कुम्म
८२	१६	घणसण्हलवत	घणसण्हलवत
८५	२	देवी	देवी
८८	१७	लोलतोय	लोलतोय
८८	१८	चालिय	चलिय
८८	२२	खीरोयसागार	खीरोयसागर
९३	२३	सुमिण	सुमिणे
९४	३	मियमहुर	मियमहुर
१०१	१४	पिणद्धगोविज्जे	पिणद्धगेविज्जे
११४	२२	दिट्ठा	दिट्ठा
१२६	१६	जोगमुवागएण × ...	आरोगा
१३९	२	उवक्खाडावित्ता	उवक्खडावित्ता
१४६	२१	अभिनदाणा	अभिनदमाणा
१८४	(क) १९	असमे	अममे
१८४	(फ) २१	निरावलवणे	निलावलवणे
१८७	२५	वट्टमाणाण ×	सव्वलोए
२००	१	पोतिवद्धणे ×	मासे नन्दीवद्धणे
२८६	११	सुट्ठि × ...	मुट्ठिय
२८६	१७	गोयमगोत्तस्स	गोयमसगोत्तस्स
२९२	७–८	थेरे घणट् × .	थेरे सिरिट्ठे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९२	८	थरे	थेरे
२९८	१	वच्छलिज्जं	वत्थलिज्ज
२९८	३	अज्जचेडय	अज्जवेडय
२९८	१८	उडुवाडियगये	उडुवाडियगणे
२९९	१९	कुलाइ	कुलाइ
३०५	६	साहा निग्गया × . .	थेरेहिंतो ण अज्जताव सेहिंतो एत्थण अज्जतावमी साहा निग्गया,
३०५	२१	वभदेवीया	वभदेवीया
३१३	८	सघवालिय	मघपालिय
३२०	५	पज्जोसवित्ताए	पज्जोसवित्तए
३२०	१६	का	वा
३२६	८	कप्ति	कप्पति
३२६	१०	गाहावइकुल	गाहावइ कुल
३४७	१५	त चेव	त चेव
३४८	६	अणवकखमाणे	अणवकखमाण
३५०	१५	तहा	तहा
३५१	१७	भवति	भवति
३५८	१	जोयणाइ गतु	जोयणाइ गतु

(अर्थ और विवेचनका शुद्धि पत्र)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	१२	जतना	जितना
१९	१२	×	उपाध्यायों को नमस्कार हो।
३६	२	पोट्टिलाचाय	पोट्टिलाचार्य
६१	२५	.... × ह	यह
६६	६	मा	की
६९	१६	वसुदेव	वासुदेव
६९	२१	वर्नमान	वर्धमान
७२	१७	पादति	पदाति
८६	३	तरगित	तरंगित
१०२	१७	कारनों	कारणों
१६६	२५	मंचका	मचका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७७	२	क	के
१८४ (ख)	१२	नही	नही
१८४ (ग)	१२	जोन	जीव
(घ)	९	इहलाक	इहलोक
१९०	४	या	को
१९२	३	श्रद्धा	श्रद्धा गे
१९४	२६	ज्योतिर्मर्य.	ज्योतिर्मय
२५४	२	वयावृत्य	वैयावृत्य
२६५	१८	कारण	वरण
२६७	११	वलिवत्व	वलीवत्व
२६७	१४	भगवान को	भगवान की
२६८	८	भोगे	भीगे
२७३	१४	वाल	वाले
२८३	२६	समार	ससार
२९३	११	श्रेयक	श्रेयस्क
२९४	११	रतन	रत्न
२९६	५	भद्रयशा	भद्रयश
३२०	६	रइते	रहते
३२६	१८	तीर	तीन
३३२		तिव्वदोसीय	तिव्वदेमीय